शांतिप्रिय द्विवेदी जीवन और साहित्य

पी एच० डी० के लिए स्वीकृत प्रबंध

शांतिप्रिय द्विवेदी

जीवन और साहित्य

डॉ० मालती रस्तोगी

मूल्य ◇ पचास रुपये

प्रथम संस्करण ◇ अक्टूबर १९७४

प्रकाशक ◇ कलाकार प्रकाशन
१७ बादशाह नगर
लखनऊ-७

मुद्रक ◇ रचना आर्ट प्रिंटर्स
लखनऊ-१

प्राक्कथन

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म श्री शातिप्रिय द्विवदी का योगदान अपनी मौलिकता और विशिष्टता क कारण महत्वपूण है। उन्होंने गद्य और पद्य साहित्य की रचनात्मक और आलोचनात्मक विधाओं के क्षेत्र में समान रूप से अपनी प्रतिभा और पाडित्य का परिचय दिया। द्विवेदी जी के विषय में हिन्दी साहित्य के अनक शीषस्थ विद्वानो ने जो उद्गार प्रकट किये हैं वे एक स्वर से उनकी उपलब्धियो और महत्ता को मान्य करते हैं। अनक कारणो स द्विवेदी जी का जीवन अत्यन्त सघषपूण रहा और उन्हे साहित्यिक वादविवाद का भी भागी बनना पडा। यह एक विडबना है कि जब द्विवदी जी के साहित्यिक योगदान के विषय म विद्वान एकमत हैं तब भी उनकी उपलब्धियो के मूल्यांकन की दिशा मे कोई प्रयत्न अब तक नही हुआ है। केवल कुछ स्फुट निबध एव मस्मरणात्मक रचनाए ही उनके विषय म प्रकाशित हुई हैं। यह तथ्य एक साहित्यनिष्ठ लेखक के प्रति उपक्षा भाव का द्योतक है। लखिका इस अपना सौभाग्य समझती है कि हिन्दी के इस तपस्वी के साहित्य पर शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा म उसका यह प्रयास सम्भवत अपने क्षेत्र मे सवप्रथम है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में विषय प्रवेश शीर्षक के अन्तगत स्वर्गीय श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का सक्षिप्त जीवन वत्त देते हुए उनकी रचनाओ से सम्बन्धित सक्षिप्त परिचयात्मक विवरण दिया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य का विश्लेपणात्मक अध्ययन किया गया है। आलोचना साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी की लिखी हुई हमारे साहित्य निर्माता, ज्योति विहग, 'सचारिणी, 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतिया आदि रचनाए हैं। आधुनिक हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे जो प्रमुख प्रवत्तिया विकासशील मिलती हैं उनका समावेश इन कृतियों में भी हुआ है। शुक्लोत्तर हिन्दी आलोचना म द्विवेदी जी के स्थान निर्धारण तथा उनके चिन्तन वशिष्टय के परिचय की दष्टि स भी इनका महत्व है। इस अध्याय म इन कृतियो के विषय तत्व का परिचय देत हुए हिन्दी आलोचना मे द्विवेदी जी का स्थान निर्धारण किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के तृतीय अध्याय म श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य का विश्लेपणात्मक अध्ययन किया गया है। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र म द्विवेदी जी की लिखी हुई जीवन यात्रा, 'साहित्यिकी, 'युग और साहित्य, सामयिकी, 'धरातल, साकल्य, पदमनाभिका, 'आधान', 'वृन्त और विकास, 'समवेत एव 'परिक्रमा आदि रचनाए हैं। ये निबन्ध कृतियाँ लेखक की रचनात्मक क्रियाशीलता सूक्ष्म लोक

निरीक्षण दृष्टि एवं बहुक्षेत्रीय चिन्तन की परिचायक हैं। इस अध्याय में इन कृतियों में संगृहीत विविध विषयक निबन्धों का यथार्थ परिचय देते हुए हिन्दी निबन्ध में द्विवेदी जी का स्थान निर्धारण किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास साहित्य का विश्लेषण एवं उपन्यास के क्षेत्र में द्विवेदी जी की मौलिक उपलब्धियों के साथ हिन्दी उपन्यास के विकास में द्विवेदी जी के योगदान को स्थापित किया गया है। उपन्यास साहित्य के अन्तर्गत द्विवेदी जी द्वारा रचित 'दिगम्बर', 'चारिका', तथा 'चित्र और चिन्तन' आदि औपन्यासिक कृतियाँ हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के पंचम अध्याय में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के संस्मरणात्मक साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदी जी की संस्मरणात्मक कृतियों में मुख्यतः 'पदचिह्न', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि हैं। लेखक की ये रचनाएँ आत्मव्यंजना प्रधान हैं तथा इनमें लेखक के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न संस्मरणों की अभिव्यक्ति हुई है। प्रस्तुत प्रबन्ध के षष्ठ अध्याय में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। काव्य साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी रचित 'नीरव' तथा 'हिमानी' आदि मौलिक काव्य रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त 'परिचय' तथा 'मधुसंचय' काव्य संकलन का भी उल्लेख किया गया है। 'परिचय' काव्य संकलन में छायावादी कवियों की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय एवं उनकी कविताओं का संकलन हुआ है तथा 'मधुसंचय' में ब्रज भाषा के विशिष्ट शृंगारिक कवियों की कविताओं का संकलन है। 'नीरव' तथा 'हिमानी' काव्य कृतियाँ कवि के अपने कलेवर के सदृश ही क्षीण हैं। इन काव्य कृतियों में संगृहीत कविताएँ कवि के सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति एवं भावुक हृदय की परिचायक हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के सप्तम एवं अन्तिम अध्याय में उपसंहार के रूप में प्रबन्ध में किये गये अध्ययन का सारांश दिया गया है। निष्कर्ष रूप में इस अध्याय में यह संकेत किया गया है कि शान्तिप्रिय द्विवेदी जी की साहित्य क्षेत्रीय उपलब्धियाँ अनेक दृष्टियों से विशिष्टता रखती हैं। अनेक संघर्षों के बीच जीवित रहकर भी उन्होंने महत्वपूर्ण देन हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में प्रस्तुत की।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा० प्रतापनारायण टंडन के निर्देशन में लिखा गया था। मैं डा० टंडन के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती हूँ जिनके विद्वत्तापूर्ण निर्देशन एवं स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन के फलस्वरूप यह प्रबन्ध इस रूप में प्रस्तुत किया जा सका। प्रबन्ध के सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए मैं कल्पकार प्रकाशन के स्वामी श्री देवकान्त के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ।

विजया दशमी —मालती रस्तोगी

सं० २०३९ वि०

विषय-क्रम

विषय-प्रवेश

आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म श्री शांतिप्रिय द्विवदी का योगदान अनेक दृष्टियो से मौलिक और विशिष्ट है। गद्य और पद्य साहित्य की विभिन्न विधाओ के क्षेत्र म उन्होने जो कृतियाँ प्रस्तुत की है य उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की असमानता की द्योतक हैं। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र म 'ज्योति विहग, कवि और काव्य' 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'सचारिणी शीषक से जो कृतियाँ प्रस्तुत की हैं वे उनके आलोचनात्मक दृष्टि की गम्भीरता और सम्यक्ता का परिचय देती हैं। उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण मे जहाँ एक ओर प्राचीन शास्त्रीय मानदण्डो को मान्य किया गया है वहाँ दूसरी ओर आधुनिक जीवन सिद्धान्तो पर आधारित मूल्यो का भी उसम समावेश मिलता है। निबन्ध साहित्य क क्षेत्र म द्विवेदी जी ने 'आधान, 'पदमनाभिका, वन्त और विकास 'धरातल', 'जीवन यात्रा 'साकल्य 'सामयिकी, 'साहित्यिकी 'युग और साहित्य, परिक्रमा' तथा समवेत' आदि जा कृतिया प्रस्तुत की हैं वे विषयगत विस्तार रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वैचारिक परिपक्वता की दृष्टि से महत्वपूण कही जा सकती हैं। इनम लखक की रचनात्मक क्रियाशीलता के साथ साथ बहुक्षेत्रीय चिन्तन का भी परिचय मिलता है। शुक्लोत्तर युग की विचारात्मक आलोचनात्मक, विवरणात्मक भावात्मक, सस्मरणात्मक आदि निबन्ध-क्षेत्रीय प्रवत्तियाँ इनमे स्पष्न्त परिलक्षित की जा सकती हैं। यह कृतिया लेखक की वैचारिक जागरूकता के साथ उस पर पूववर्ती प्रभाव को भी स्पष्ट करती है। उपन्यास साहित्य के क्षत्र मे द्विवदी जो न 'चारिका' दिगम्बर तथा चित्र और चिन्तन शीषक से जो रचनाए प्रस्तुत की हैं व हिन्दी उपन्यास के समकालीन शिल्प रूपो से सवथा भिन्न है। औपन्यासिक रेखाकन क रूप मे प्रस्तुत की गयी य रचनाएँ सैद्धान्तिक, वचारिक एव कलात्मक दष्टियो से अपन स्वरूपगत वशिष्टय की द्योतक हैं। सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी न पथचिह्न परिव्राजक की प्रजा, 'प्रतिष्ठान तथा 'स्मृतियाँ और कृतिया नामक जो कृतिया प्रस्तुत की हैं वे आज कथात्मक एव आत्मव्यजना प्रधान रचनाओ क रूप म हिन्दी आत्म कथा और साहित्य के क्षेत्र मे एक नई दिशा का निदशन करती हैं। काव्य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवदी जी न 'नीरव' तथा हिमानी आदि जो कृतियाँ प्रस्तुत की है वे उनकी समवेदनशीलता, भावात्मकता अनुभूत्यात्मकता तथा अभिव्यजना वशिष्टय का द्योतक है। इस प्रबन्ध मे द्विवेदी

जी के समग्र साहित्य के आधार पर उनके जीवन और साहित्य का अनुसन्धानपरक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का जीवन वृत्त

आधुनिक हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा सपन्न साहित्यकार श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी का जन्म सन् १९०६ ई० म काशी के भदनी मुहल्ले मे हुआ था। अपनी एक सस्मरणात्मक कृति म उन्होने स्वय यह बताया है कि आज जहा माता आनन्दमयी का आश्रय है, वही भदैनी मुहल्ला मेरे बचपन का निवास स्थान है। लेखक ने स्वय काशी को अपनी जन्मभूमि स्वीकार किया है तथा उसकी महत्ता का दिग्दशन इस प्रकार से किया है 'काशी—विद्यागुरु विश्वनाथ की काशी, गगाधर चन्द्रशेखर भगवान भूत भावन की काशी शिव के त्रिशूल पर टिकी तीन लोक से न्यारी पाप ताप नाशिनी काशी[1] इसके घाटो की छटा देखने के लिए यहा पयटक भी आते है और अपने पापो के प्रक्षालन के लिए तीर्थयात्री भी। सदियो के उलट फर मे भी इसकी सास्कृतिक परम्परा अभी तक बनी हुई है। वस्तुत काशी और बनारस दो भिन्न क्षत्र हैं। बनारस म व्यापार है काशी में अन्त साक्षात्कार। यह काशी सरस्वती की तरह मुमुक्षुओ और पिपासुओ के हृदय में बसी हुई है। बनारस तो दिखाई देता है, किन्तु काशी अपने आराधकों के अन्त करण में अदश्य है। यही काशी मेरी जन्मभूमि है।'' काशी के एक विप्र विपन्न घराने मे इनका जन्म हुआ था जो अपनी सास्कृतिकता एव रुचिता शुचिता म सम्पन्न था। उन्होंने स्वय ही सकेत किया है कि यद्यपि पिता जी हमारे लिए कोई लौकिक सपत्ति नही छोड गये तथापि अपने मानसिक सस्कारो की छाप हमारे हृदयो पर अवश्य छोड गये थे। वे तपोधन थे। उनका बचपन का नाम मुच्छन था। लेखक ने सकेत किया है— घर म सबसे सादा नाम मेरा था—मुच्छन श्मश्रु विहीन शिशु।' अपने जीवन के विषय म लेखक ने इस प्रकार किया है जिसम उनकी आयु से सम्बधित व्याख्या है और उसके निराकरण म स्वय लेखक की अबाधता परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी के शब्दो म म शिशु स किशोर हुआ किशोर से युवक। किन्तु मैंने जाना ही नही कि कब शशव छोडकर वयस्क हो गया मस्तक पर बहिन के वात्सल्य का अचल जो था। उसके साया मे यह नन्हा सा बिरवा जीवन ही जीवन पा रहा था। जीवन के अतिरिक्त ससार मे और भी कुछ है यह मैंने नही जाना था न आयु न मृत्यु। लोगो न अपने हिसाबी स्वर म मुझसे भी पूछना शुरू किया—तुम्हारी उमर क्या है जी ? मैं क्या जानू मेरी उमर क्या है। बहुत छुटपन म मा मरी थी तब मैं रोया था मा के दूध के लिए। मरे अबोध आसुओ को पोछने के लिए मा से भी करुण कोमल एक

---

[1] 'परिव्राजक की प्रजा, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३।

स्नेहाचल बढ आया था वहिन का। बहिन स पूछता—'बहिन, मेरी उमर क्या है ?' उगलिया पर मानो दुख की घडिया अश्रु की अविरल झडिया को जुगो कर वह कहती—'अरे, तू मुझसे बारह बरस छोटा है रे। इससे मैं क्या जानू कि मेरी बहिन मुझस कितनी बडी है या मैं उससे कितना छोटा। मैं लोगो स यही कह दू— मुझे मालूम नहीं अपनी उमर। या कहू जीवन के पथ मे मैं अपनी वहिन स बारह वष छोटा शिशु हू। मैं बारह वष पीछे के नन्हे परो से उस करुण साधना का अनुगमन कर रहा हू।"

नामकरण श्री शातिप्रिय द्विवदी का बचपन के नाम मुच्छन के अतिरिक्त एक अन्य नाम भी था। द्विवेदी जी की मझली बहिन के वृद्ध श्वसुर उन्हें गुडिया' नाम स भी सम्बोधित करते थे। इसका उल्लेख लेखक ने इस प्रकार स किया है 'उन्ही को पाकर वहाँ भी मैंने पिता का हृदय पा लिया था। उनका सारा वात्सल्य मुझ पर केन्द्रित हो गया था। मैं उन्हें बाबा कहता, वे मुझे 'गुडिया' कहते। देहात मे नगर की तरह ही मैं पतग को 'गुडडी' कहा करता। इसलिए मेरा नाम भी साथियो मे गुडडी और बडो म गुडिया' हो गया। गाव क सभी बडे गुडिया को बहुत प्यार करते। और साथी अपन पतग की तरह ही 'गुडडी' से भी अपना मन बहला लेते।" श्री द्विवदी के बाल्यकाल के नामों के उपरान्त जो नवीन नामकरण हुआ उसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार से किया है कि जब वह देहात से काशी मे आए उन्हीं दिनो सन १९२२ के ग्रीष्मावकाश मे आदरणीय प० रामनारायण मिश्र भी काशी आए हुए थ। सयोगवश वह एक दिन उनके आवास मे आ पहुँचे और वही स्मृति उनके नाम के साथ जुड सी गई है जिसको इन्होंने इस रूप म अकित किया है "पडितजी न कहा—'आपका नया नामकरण होना चाहिए। मुच्छन नाम अच्छा नहीं लगता।' मैंने अपना कोई नवीन स्वरूप पाने की आशा स पडित जी से कहा— कपया आप ही कोई नया नाम रख दीजिये। कुछ सोच कर उन्होंने कहा—'आपको शाति की आवश्यकता है इसलिए आपका नाम शातिप्रिय होना चाहिए। यह नाम आय समाजी ढग का जान पडता है। मैं आयसमाजी नही, वष्णव कुमार हूँ। साहित्यिक क्षेत्र म आन पर न जाने अपना कसा कवित्वपूर्ण नाम रखता। फिर भी इस नाम में मेरे जीवन का एक इतिहास है। स्वामी राम के अनुगामी का कुछ ऐसा ही नाम होना चाहिए था। मैंन नतमस्तक होकर आशीर्वाद के साथ यह सात्विक नाम शिरोधाय कर लिया।'

वश परिचय श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी के पिता उनके बचपन म ही सन्यासी हो गए थे। द्विवेदी जी ने लिखा है कि काशी मे उनके पिता की गृहस्थी किसी सुनामा की ही गहस्थी थी किन्तु व आजन्म तन मन धन से दुबलो महाराज' थे। उन्होंने अपनी गहस्थी के लिए कुछ भी नहीं जुटाया था वे तो सब तज राम भज' का सन्देश ग्रहण कर चुके थे। अत उनकी यह निधनता स्वेच्छा से अगीकृत थी।

श्रद्धालु भक्त उन्हें तरह तरह के अन्न वस्त्र द्वारा भेंट में दे जाते लेकिन उन्हें तो केवल एकान्त ध्यान ही अभीष्ट था। वे उन उपहारों को स्पर्श भी न करते थे। द्विवेदी जी के पिता का निवास स्थल आजमगढ़ जिले का बरहदुर गाँव था। यहीं दिना के पूर्वजों का भी वास रहा था। बरहदुर ब्राह्मणों का गाँव था जहाँ प्रकृति अपने संपूर्ण वैभव में विचरण करती थी। इसी प्रकार वहाँ राग द्वेष, हर्ष विषाद सब कुछ प्रकृति की तरह ही उन्मुक्त थे। द्विवेदी जी कई भाई-बहिन थे। सबसे बड़ी बहिन काशी वासिनी थी, सबसे बड़े भाई वह स्वयं थे। इन दोनों के बीच में मझली बहिन ग्राम्यगृहिणी बन गयी थी। इनसे छोटे दो भाई थे, दो बहिनें थीं। इन सबका नामकरण बड़ी बहिन ने अपने स्नेह के अनुरूप ही किया था—एक का नाम था रक्षन, दूसरे का नाम था हीरामन, छोटी बहनों में एक थी कलावती, दूसरी थी मुन्नी। ये सभी अपने दुधमुँहे दिनों में ही चल बसे थे।

प्रारम्भिक शिक्षा द्विवेदी जी की शिक्षा का श्रीगणेश इनके पूर्वजों के स्थल आजमगढ़ के बरहेंदुर ग्राम में ही हुआ। परन्तु पढ़ने की अपेक्षा इनका चित्त प्रकृति प्रांगण में क्रीड़ा करने तथा विचरण करने में ही अधिक लगता था। ग्राम के प्राकृतिक वातावरण में द्विवेदी जी अधिक दिनों तक न रह सके और उन्हें काशी के सांस्कृतिक वातावरण में प्रवेश करना पड़ा। यहीं मदनी के प्राइमरी स्कूल में इनकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ। लेकिन हिन्दी की प्रथम कक्षा में पहुँचते ही पुनः इनको अपने ग्राम की ओर प्रस्थान करना पड़ा। किन्तु वह अपने ग्राम में भी अधिक दिनों तक न रह सके। बड़ी बहन के अनुरोध पर छोटी बहन की ससुराल से जो अमिला में ब्याही थी, निमंत्रण आ गया। अतः उन्हें अब अपने जीजा जी के संरक्षण में रहने का अवसर मिला। अमिला में मदरसे में मास्टर का अनुशासन तो दुःसह्य था ही, घर का अनुशासन भी असह्य था। कक्षा में भी साथी इन्हें अपनी पंक्ति में बैठाना नहीं चाहते थे और इसका मुख्य कारण इनके कानों का निरन्तर बहते रहना ही था। धीरे धीरे अमिला में इनका ध्यान पढ़ाई की ओर रमने लगा और परिणामस्वरूप यह कक्षा में अग्रगण्य हो गये। अपनी छोटी बहन एवं जीजा के संरक्षण में रहकर सन् १९१५ ई० से १९१८ ई० तक उन्होंने वहीं पर तीन कक्षाएँ अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण कीं। चौथे दर्जे में भी वह सदा अग्रगण्य रहे परन्तु अपनी दो तीन महीने की लम्बी बिमारी के कारण वे चौथी कक्षा न पास कर सके। अन्ततः वह पुनः अपनी बड़ी बहन के संरक्षण में काशी पहुँच गए। सन् १९१९ में इनका नाम मदनी के उसी स्कूल में चौथे में लिखाया गया जहाँ वह बचपन में भी पढ़ चुके थे। अपने पूर्व पाठ्यक्रम को यहाँ भी पाकर उनका मन उत्साहित हो उठा और अपने इसी उत्साह एवं स्वाभाविक रुचि के कारण वह वहाँ भी छात्रों में सर्वदा अग्रगण्य रहे। अपनी इस रुचि एवं लगनशीलता के कारण उन्होंने म्युनिसिपल बोर्ड के सभी प्राइमरी स्कूलों के छात्रों को हरा कर वार्षिक छात्रवृत्ति प्रतियोगिता में सबसे

अर्धिक अक प्राप्त कर अपनी तेजस्विता का परिचय दिया। सन् १९२० ई० मे इनका नाम कबीर चौरा के मिडिल स्कूल मे पाँचवी कक्षा में लिखाया गया। परन्तु वह वहाँ अपने को व्यवस्थित न कर पाए। इनका बधिरपन और कृशकाय शरीर इन्हें आगे पढ़ने के लिए प्रोत्साहित न कर सका और पढाई से चित्त के उतर जाने पर उन्होंने ऐसी शिक्षा पद्धति से प्राप्त विद्या को तिलांजलि देकर स्वय स्वाध्याय करना आरम्भ कर दिया। उनकी विशेष रुचि साहित्य की ओर उन्मुख हुई और उन्होंने विभिन्न उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार इनकी शिक्षा का प्रारम्भ और अन्त इन्ही कटु परिस्थितियों के मध्य ही हो गया। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने वास्तविक विद्याध्ययन से भी मुख मोड लिया था।

पारिवारिक जीवन उस समय परिवार की मुख्य विशेषता उसकी संयुक्तता होती थी। ऐसे ही आजमगढ के बरहपुर गाव के एक परिवार में द्विवेदी जी के अन्य वंशज निवास करते थे। खेती के लिए जमीन कम होने और उस पर भार अधिक होने पर भी असन्तोष और अभाव न था उनकी कमी जजमानी से पूर्ण हो जाया करती थी। काशी में भी अगर वह इच्छा करते तो सरलता से परिवार के लिए सभी सामग्रियां जुटा सकते थे परन्तु उन्होंने तो 'सब तज राम भज' का सन्देश ग्रहण कर लिया था। उनकी यह निर्धनता स्वेच्छा से अंगीकृत थी। वे भिक्षुक न होकर संन्यासी थे। इस परिवार के आश्रयदाता दुक्खू चाचा (पुण्यश्लोक प० दुःखभंजन मिश्र) स्वयं भी अपने बड़े भाई के आश्रय में थे और इसका मुख्य कारण यह था कि दुक्खू चाचा के पिता ने अपनी सारी जायदाद बड़े पुत्र के ही नाम कर दी थी और इस प्रकार द्विवेदी जी का परिवार भी एक आश्रित के आश्रय में संरक्षण पा रहा था। अन्य छोटे भाई-बहिन यहीं पर दिवंगत हो गए। इसके साथ ही माँ का भी स्वर्गवास हो गया और श्री द्विवेदी जी के संरक्षण का संपूर्ण भार इनकी एक मात्र बडी बहन कल्पवती पर ही आया। वह स्वयं भी बाल विधवा थी और संसार की विभीषिकाओं एवं विडम्बनाओं से अभिशप्त थी। अतएव इस काशीवास तथा अपने पैतृक ग्राम के मध्य ही इनके जीवन का प्रस्फुटन हुआ। कभी वह काशी में रहते तो कभी अपने ग्राम में। ग्राम में केवल वृद्धा दादी का ही स्नेह श्री द्विवेदी जी प्राप्त कर सके और अन्य सदस्य अपने में ही आत्मलीन थे। अतः ग्राम में भी पालन पोषण की समुचित व्यवस्था न थी। ग्राम के प्रकृति प्रांगण में क्रीडा करते हुए अन्य बच्चों के साथ श्री द्विवेदी जी का भी कुछ स्वास्थ्य संवर्द्धन और मनोरंजन होता था तथा प्रकृति से ही पोषण के लिए भी कुछ आहार मिल जाता था। प्रकृति की कोई अदृश्य शक्ति एवं चेतना ही उन्हें लाड-दुलार देती थी। *अन्यत्र जिसका आभास उन्हें अपनी बडी बहिन* में मिलता था। बडी बहिन भी दस्तकारी के माध्यम से ही जीवन के लिए कुछ अर्जन कर पाती थीं। दोनों भाई-बहिन ही एक तरह से निराश्रय से ही थे। बचपन के

कुछ वर्ष श्री द्विवेदी जी के अमिला ग्राम म भी व्यतीत हुए जहाँ इनकी छोटी बहिन की ससुराल थी। यहाँ भी आपका पोषण प्राकृतिक माध्यम स ही होता था अन्यथा इस प्रवास काल म भी शारीरिक और मानसिक पोषण का अभाव था। इसका मुख्य कारण यह था कि बहिन की स्थिति भी वहाँ पिजडे म बन्द पक्षी के सदृश्य थी अत वह कितनी ममता प्यार-दुलार दे सकती थीं और कितना उनका पोषण कर सकता था। जीजा जी का घर मे पूर्णरूपेण आधिपत्य था जो उचित पालन-पोषण की ओर ध्यान न देकर कवल मार पीट पर ही अधिक विश्वास करते थ। इस अमिला क प्रवास काल म ही इनके पिता का भी देहान्त हो गया। अमिला म लम्बी बिमारी क बाद उन्हें पुन काशी की शातिप्रदायिनी भूमि म रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बडी बहन स्वय ही इन्हे आकर स्कूल से ले गयी। माँ की मृत्यु के उपरान्त बहन ने अपने पहले निवास स्थान को बदल दिया था और उसका मुख्य कारण दुक्खू चाचा की कर्कशा भौजाई का दुर्व्यवहार था स्वय दुक्खू चाचा की दुहिता 'पियारी जो कि बाल विधवा थी, उसका जीवन भी उनसे आक्रान्त रहता था। अब उनकी बहिन वृद्ध ब्राह्मण पुरुषोत्तम बाबा के घर म रहने लगी थी जिसे एक मौंझी परिवार ने खरीद लिया था। काशी मे स्कूल मे दाखिला के उपरान्त उसम चित्त न रमने के कारण उन्होने पढाई छोड दी। परन्तु बहिन इन्ह अकर्मण्य नहीं रहने देना चाहती थी अत इनके शिक्षा से असहयोग करने पर बहिन ने भी इनसे असहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। श्री द्विवेदी अपनी बहिन स भी झगडा करके ज्ञान और धान्य (अन्न) के लिए भ्रमण करने लगे। इस प्रकार प्रारम्भ से ही यह अस्त-व्यस्त पारिवारिक जीवन मे निरन्तर अभाव मे और निराहार रहे। जीवन की कठोर भूमि म पग रखते ही अभावो से प्रेरित होकर वह अपने एकान्त जीवन से बाहर समाज म आया क सम्पर्क म आये। प्रारम्भ से ही इनका भावुक स्वभाव इन्ह अब साहित्य के क्षेत्र मे खीच लाया। श्री द्विवेदी के संस्कार और स्वाध्याय स्वभाव ही इनके जीवन का सम्बल बना। अन्त मे इनका अपना कोई परिवार न था। आज के इस आर्थिक युग म वह अपना विवाह न कर पाये थे। समाज म उन्हें कहीं न कहीं आश्रय मिल जाता था और कहीं पर तो स्नेह वत्सल अचल की छाया भी। सन १९५३ मे इनका जीवन अपनी फुफेरी बहन के यहाँ व्यतीत हुआ था जो स्वय विधवा थी और उनके दोनो लडके भी निकम्मे थे। उन्हे तो केवल नशा और मौज चाहिए। उनकी शादी भी न हो सकी थी। उनकी विधवा माँ को भी अभावो ने कूटनीतिज्ञ बना दिया था। अब वही श्री द्विवेदी का शोषण करके अपनी गृहस्थी चलाती थी। इसके उपरान्त अपने जीवन काल मे इन्होंने कितनी ही यात्राए की। बहिन का देहान्त भी १९३९ मे हो चुका था। अत अन्यत्र कहीं आश्रय का सम्बल भी न था।

स्वर्गवास श्री द्विवेदी अपने जीवन के अन्तिम वर्षों म मदैनी के लोलकि

कुण्ड में रहते थे। यह काल उन्हें अनेक कष्टों में व्यतीत करना पड़ा था। इस सम्बन्ध में जो विवरण उपलब्ध होता है वह उनकी मनोदशा और व्यथा का परिचायक है। मृत्यु के पूर्व भयानक रोग से अनवरत संघर्ष करते हुए जब वह टूट-से गये तब उन्हें अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया। उन्होंने अन्तिम साँस लेने से पूर्व अपने दाह संस्कार के विषय में यह इच्छा व्यक्त की थी कि "मेरी अन्त्येष्टि वहाँ न की जाए जहाँ राजा महाराजाओं या महान नागरिकों की होती है वरन् मेरे शव को हरिश्चन्द्र घाट के उस स्थान पर जलाया जाए जहाँ सामान्य नागरिक जलाए जाते हैं।"[1] यह शब्द द्विवेदी जी की निराश मन स्थिति के परिचायक हैं। उदर रोग के अत्यन्त नाजुक दौर से गुजरते हुए और मर्मान्तक व्यथा को सहन करते हुए २७ अगस्त, सन् १९६७ को द्विवेदी जी का काशी में स्वर्गवास हो गया।

स्वभाव और प्रकृति

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी को अन्य ब्राह्मणों के सदृश्य ही मधुरता प्रिय थी क्योंकि ब्राह्मणों के लिए प्रमुखतः यह विख्यात है कि 'ब्राह्मणम् मधुर प्रिया'। श्री द्विवेदी जी की यही स्वाभाविक प्रवृत्ति इन्हें प्राकृतिक वातावरण की ओर अग्रसर करती थी। प्रकृति के संसर्ग से प्रकृतिपुष्प कनेर जो अपनी मधुरता के लिए प्रसिद्ध है से मित्रता-सी हो गयी थी। श्री द्विवेदी का स्वभाव बचपन में इतना भोला-भाला एवं निष्कलंक था कि बचपन में एक बार कुछ गोंद खा लेने पर इनको यह भय हुआ कि कहीं नीम का वृक्ष इनके सिर पर ही न उग आए। जीवन के प्रारम्भिक क्षणों से ही प्रकृति के प्रति अनुराग था, प्रकृति की चतुरंगिनी कलाएँ इन्हें सर्वदा अपनी ओर आकर्षित करती रहती थीं। अपने स्वभाव की सरलता-तरलता में वे मानव जगत और प्रकृति जगत में भिन्नता लक्ष्य नहीं कर पाते थे। बाल्यावस्था में बालकों का जिस प्रकार हठी स्वभाव होता है परन्तु वह हमेशा हठ नहीं करते कुछ यही स्वभाव श्री द्विवेदी का भी था। उनमें भी प्रतिद्वन्द्विता का भाव जाग चुका था परन्तु उनका यह स्वभाव हमेशा नहीं बना रह सका। पढ़ने की अपेक्षा इन्हें प्रकृति प्रांगण में अकेले घूमना अधिक अच्छा लगता था। देहाती मदरसे में इन्हें उत्तराधिकार के रूप में काव्य का प्रेम तथा आदर्श का आभास मिला था। परन्तु स्वभाव लजालू और झेंपू था। वह सबके अहंकार का भार वहन करते-करते स्वयं अहं शून्य हो गये थे। प्रारम्भ से ही द्विवेदी आत्मलीन भावुक व्यक्ति थे। ये काव्य प्रेमी थे और भावना के भीतर से जीवन का स्पर्श चाहते थे। इसके साथ ही इनकी वृत्ति कोमला थी। बचपन में प्रकृति की निर्द्वन्द्वता और प्रफुल्लता के वातावरण के आभास

---

१ दे० नवजीवन हिन्दी दैनिक में श्री रंजन सूरि दवे लिखित 'शांतिप्रिय द्विवेदी व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक निबन्ध, ७ अगस्त सन् १९६   ।

को ही कवि और उसके काव्य में परिलक्षित करना चाहते थे। इनके स्वभाव की एक मुख्य विशेषता स्वाध्याय करना भी था जो कि बौद्धिक प्राणायाम का एक मुख्य साधन है। अपनी विभिन्न कमियो एवं कठिनाइयों मे भी अपना मनोबल एकत्र करके वे उनका निराकरण कर लेते थे। यह प्रवृत्ति उनमे बचपन से ही आभासित होने लगी थी। अन्ततोगत्वा उनकी स्वाध्याय प्रवृत्ति ही उनके जीवन का सम्बल बनी। श्री द्विवेदी ने अपनी पढाई की इति करके स्वयं ज्ञान और अन्न जल आदि जीविका के प्रसाधन के लिए भ्रमणशील प्रवृत्ति को अपना लिया। परन्तु इन्हे मित्र और शत्रु की पहचान न थी और व अपने सरल, सहज स्वभाव के कारण अपनी व्यथा कथा भी सुना देते थे। वह किसी से भी मीठे वचनों को सुन कर उस पर विश्वास कर लेते थे। शत्रुगण इससे अपने विद्वेष को दूसरे रूप मे प्रकट कर स्वार्थसिद्धि मे लग जाते थे। श्री द्विवेदी की एक अन्य प्रवृत्ति उनकी टिकट संग्रह करने की थी परन्तु एक बार जब बहुत परेशानी हुई और इनके आत्म सम्मान को ठेस पहुँची तभी से उन्होंने अपने इस स्वभाव को तिलांजलि दे दी।

मित्र समाज

मानव जीवन की बाल्यावस्था एक ऐसी अवस्था होती है, जिसमे वह निर्द्वन्द्व निर्भय और स्वच्छन्दता से समाज और प्रकृति की वस्तु को आत्मसात करने की चेष्टा करता है। इस अबोध काल मे तो समस्त बाल जगत वह जिसके भी सम्पर्क मे आता है ही एक मित्र मंडली सी हो जाती है परन्तु समय के व्यवधान से उनमे अल्पता आती जाती है। मानव जीवन पर अपने वातावरण का प्रभाव अत्यधिक पड़ता है अतएव स्थान परिवर्तन से मित्र समाज और खेलकूद मे भिन्नता आ जाती है। मानव का मित्र समाज कितना विस्तृत होगा यह उसकी मिलनसार प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। कुछ बालक बहुत शीघ्र ही अन्यो से सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं परन्तु कुछ आत्मकेन्द्रित ही रहते है। उनमे दूसरों से वार्तालाप करने और सम्पर्क स्थापित करने मे संकोच सा होता है। मानव की भ्रमणशील प्रवृत्ति भी उसकी मिलनसारिता की घातक है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का स्वभाव आत्मकेन्द्रित था। यद्यपि उनकी प्रवृत्ति भ्रमणशील थी तथापि वे प्रकृति प्रांगण मे ही अठखेलियाँ करते थे वही पर उनका मित्र समाज, बाल मंडली एकत्र हो जाती थी। वस्तुत इनके मित्रों की संख्या बहुत ही अल्प अथवा नही के बराबर है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है 'मेरा जीवन बचपन से ही निःसंग रहा है। मवेशीयों के बीच मे भी एकाकी रहा हूँ। जन्म से ही अल्पश्रुत होने के कारण बहिर्जगत से वंचित हूँ। आज भी मन स्थिति उस अममय शिशु की सी है जो न तो अपने को व्यक्त कर पाता है न विश्व की अभिव्यक्ति ग्रहण कर पाता है। वह न सुन सकता है न गुन सकता है। स्वयं भी जो कुछ कहना चाहता है भाषा उसका साथ नही देपाती।' इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ से ही वह नितान्त एकान्तवासी रहे हैं।

यही प्रवृत्ति उनमे आत्मलीनता के रूप मे प्रस्फुटित हुई। घर से बाहर उनका परिचय केवल उस विशाल वटवृक्ष से ही हुआ था जिसकी छाया जगत इनका क्रीडा स्थल था। परन्तु धीरे धीरे वह बाल सखाओ के साथ मिल कर उनके खेलो मे भी सम्मिलित होने लगे। परतु बालको मे जो सयानापन और चालाकी होती है, इनमे न आ सकी। वातावरण परिवर्तन से पहले के साथी छूट जाते हैं उस समय के खेल भी समाप्त हो जाते हैं। नये वातावरण मे नय स्थान मे पुन नये साथी और नये खेलो के सपर्क मे मानव आता है। अपने सहपाठियो के अतिरिक्त प्रसाद जी और राय कृष्णदास से भी बाल्यावस्था से ही मित्रता थी। श्री द्विवेदी अपने साहित्यिक जीवन मे पदार्पण के पूर्व कई साहित्यिको के मध्य मे पहुच जहाँ इन्हे प्रोत्साहन एव प्रेरणा मिली। इसके साथ ही वह पत और निराला के काव्य प्रभाव से मुक्त न हो सके थे। इन दोनो से उनका साक्षात्कार एव सपर्क भी स्थापित हुआ। उनका सपर्क पाडेय बचन शर्मा 'उग्र', प० कमलापति त्रिपाठी, श्री प्रकाश जी ('आज' के प्रमुख सपादक) रायसाहब गोस्वामी रामपुरी, श्री काशीनाथ पडरीनाथ तैलग बाबू हरिदास माणिक, आदरणीय प० रामनारायण मिश्र डा० सपूर्णानन्द एव उनके परिवार, ब्रह्मचारी प्रभुदत्त, क्रातिकारी चन्द्रशेखर आजाद', सवश्री बालकृष्ण शर्मा नवीन, मदन मोहन मिहिर, भगवतीचरण वर्मा प्रेमचन्द बाबू शिवपूजन सहाय, प० कृष्ण बिहारी मिश्र आचार्य प० केशव प्रसाद मिश्र, सवश्री मैथिलीशरण गुप्त मुशी अजमेरी जी श्री सियारामशरण प० केदारनाथ पाठक, आदरणीय मित्र श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला, श्री भगवती प्रसाद चन्दोला प० केशवदेव शर्मा बाबू विश्वनाथ प्रसाद, श्री दुलारे लाल भार्गव आदि से हुआ। इन लोगो के सन्निकट आने के साथ ही कई महानुभावो से तो सहयोग भी प्राप्त हुआ। गुरुदेव रवि बाबू और शरद बाबू से भी इनका साक्षात्कार हुआ था।

साहित्यिक प्रतिभा

श्री शातिप्रिय द्विवदी मे साहित्यिक प्रतिभा के स्फुरण का आभास उनकी बाल्यावस्था से ही परिलक्षित होने लगा था। इनके छात्र काल मे ही काव्य के प्रति अनुराग का आभास मिलने लगा था। ओजस्वी प्रवाहमय काव्य का सस्वर पाठ करने से इनके हृदय में भी काव्य का रसोद्रेक होने लगता था और उसी लय मे यह भी अपनी तुकबन्दियाँ लिखने लगते थे। लेकिन वह तुकबन्दियाँ आज विलीन हो चुकी हैं। उनका रूप इनकी तीसरी चौथी कक्षा तक ही सीमित रहा। बाद में वह लुप्त हो गया था। उपरोक्त तथ्य को कि प्रारम्भ मे वह काव्य की ओर ही आकर्षित हुए थे उन्होंने स्वय भी स्वीकार किया है कविताओ के गुनगुनाने से मेरी सुकुमार स्नायुओं में भावना का स्वाभाविक स्फुरण होने लगा। एक एक शब्द मुझे रहस्यगर्भित जान

पडते थे शशव के अछूते हृदय का ममस्पश कर लते थे।" 'उस समय मैं अबाध, भावुक किशोर था। बचपन म ही मुझम काव्यानुराग था।'[१] अपनी प्रतिभा की ओर तथा अपनी प्ररणा की ओर उन्होने स्वय ही सकेत किया है "अपनी सुकोमल स्नायुओ के कारण मैं बचपन से भावुक था, दूसरे, पिता की एकान्त साधना और बहिन की गृह साधना स प्रभावित था। स्वभावत साहित्य क्षत्र म चला आया। जन्म का ब्राह्मण कुमार कमक्षत्र म भी सरस्वती हो गया।"[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री शांतिप्रिय द्विवेदी म साहित्य के प्रति अतीव अनुराग था। उनके सपूण साहित्य को दखते हुए कहा जा सकता है कि उनम साहित्यिक प्रतिभा सवतोमुखी थी। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओ म आपने प्रवेश किया और उस अपनी सशक्त लखनी स परिपक्वता प्रदान की। विभिन्न साहित्यिक विधाओ मे मुख्यत उपन्यास, निबन्ध समीक्षा, आलोचना काव्य सस्मरण आदि विधाओ पर आपकी दृष्टि केन्द्रित हुई तथा इन विधाओ म भी आपकी रचनात्मक प्रवत्ति एव रचनात्मक उदबोधन का ही रूप लक्षित होता है। इस प्रकार विभिन्न विधाओ के नवीन शली का प्रयोग श्री द्विवदी को अन्य समसामयिक साहित्यकारो से कुछ विलग सा कर देता है और यही कारण है कि कुछ विद्वान भ्रमवश आपको आलोचक न मान कर शलीकार के रूप मे आख्यायित करते हैं। परन्तु यह कहना कि वह आलोचक न होकर शलीकार है, युक्तिसगत नही है। इसका मुख्य कारण यही है कि कोई भी शलीकार कवि, आलोचक आदि हो सकता है। वह साहित्य की विविध विधाओ को शली के ही माध्यम से चित्रांकित करता है। अतएव स्पष्ट ही है कि सामाजिक जीवन की विविध विडम्बनाओ ने और परिवार के सदस्यो के भावनात्मक जीवन के कारण ही इनम भी साहित्यिक प्रतिभा का स्फुरण हुआ और साहित्य रचना की प्रेरणा मिली। यही कारण है कि इनका सपूण साहित्य मुख्यत अनुभूतिपरक है।

साहित्यिक प्रेरणा और प्रभाव श्री शांतिप्रिय द्विवदी ने अपनी साहित्यिक प्रेरणा के लिए यह स्वीकार किया है कि यो तो द्विवदी युग के गद्य पद्य के प्रभाव से मैं साहित्य क्षत्र म सन १९२० क कुछ ही बाद आ गया था किन्तु मेरा रागात्मक सस्फुरण छायावाद के प्रभाव से सन २४ मे हुआ। छायावाद युग का जिन कवियो ने प्रतिनिधित्व किया उनक शुभ नाम हैं—प्रसाद निराला पत, महादेवी। यद्यपि छायावाद के सवप्रथम प्रतिनिधि कवि प्रसाद जी हैं तथापि उनकी अपेक्षा म निराला जी और पन्त जी की कविताओं स ही प्रभावित और उत्प्रेरित हुआ। निराला जी के मुक्त छन्द और ओजस्वी स्वर से उत्साहित होकर मैं भी कविता लिखने लगा था।

---

१ परिव्राजक की प्रजा, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ६२।
२ स्मृतियाँ और कृतियाँ श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ३१।
३ परिव्राजक की प्रजा श्री शांतिप्रिय द्विवदी, पृ० १२९।

परन्तु कमला म काम करते समय मुझमे एक प्रतिक्रिया हो गयी। जिन निमम परिस्थितियो मे बहिन का देहावसान हुआ उन परिस्थितियों न मुझे सामाजिक चिन्तन के लिए प्रेरित कर दिया। मैं छायावाद के बाद प्रगतिवाद की ओर उन्मुख हो गया।[1] अत स्पष्ट है कि श्री द्विवेदी अपनी अविकच वय म ही सन १९२० मे प्रचलित पढाई लिखाई के कायक्रम को तिलाजलि द कर विभिन्न सामाजिक विडम्बनाओ को झेलते हुए तथा निरुद्देश्य इधर-उधर भटकते हुए स्वाध्याय के माध्यम से वह भी धीरे धीरे साहित्य मे प्रवेश करते गय। वह स्वाध्याय के लिए विभिन्न पुस्तकालयों और छात्रावास मे जान लग तथा सभाओ म जाकर राष्ट्रीय जानकारी भी प्राप्त करन लगे। परतु उन्हें उस समय अपन अभ्यन्तर की अभिव्यक्ति के लिए आत्मोमेष की आवश्यकता थी। प्रारम्भ मे श्री द्विवेदी जी स्वामी सत्यदेव जी के भाषण श्रवण तथा उनके साहित्य की वणन शैली स अत्यन्त प्रभावित हुए। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप वह भी एक स्वतत्र रचनाकार होना चाहते थ। अतएव सुस्पष्ट पथ प्रदशन और सामाजिक सम्वेदन के लिए वह अचानक भैय्या मणिशकर पडया से परिचित हो गए तथा उनस सपक स्थापित किया जिनका व्यक्तित्व स्वय ही किसी सात्विक काव्य की तरह शातिप्रदायक था। पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी न श्री द्विवेदी जी को विशारद' करन का प्रोत्साहन दिया परतु उन्होंने स्वय को इसक लिए सवथा असमथ पाया। इसके साथ ही 'उग्र जी क साथ सामाजिक सम्पक म आन की भी प्रेरणा मिली। प्रत्यक्ष सम्पक से प्रेरणा के साथ ही साथ श्री द्विवेदी ने विभिन्न पुस्तको एव जीवनियो से भी प्रेरणा ग्रहण की है। उन्होंने इस स्वीकार किया है कि स्वामी रामतीथ की जीवनी पढन से उनकी आत्मा का उदघाटन हो गया था। उनमे भी एक लेखक बनन की लालसा का जागरण हुआ। स्वय काशी भी साहित्यिक प्रोत्साहन देन म अपना विशिष्ट महत्व रखती है और प्रयाग भी। श्री द्विवेदी जी को काशी के साथ ही प्रयाग तीथ से साहित्यिक प्रेरणा और आध्यात्मिक सम्बल प्राप्त हुआ। इसक साथ ही श्री द्विवेदी निराला जी की रचनाओ के स्वाध्ययन के द्वारा काव्य प्रेरणा को ग्रहण करते रह थे। इसी मध्य श्री द्विवेदी जी का सम्पक आचाय केशव प्रसाद मिश्र स हुआ जिन्होंने श्री द्विवेदी को रामायण पढने क लिए प्रोत्साहित किया। रामायण स वह अत्यधिक प्रभावित थे। इन्ही के माध्यम स रामकृष्ण दास जी स भी सौजन्य का लाभ प्राप्त हुआ। श्री मदन मोहन मिहिर स भी श्री द्विवदी को प्रोत्साहन एव प्रेरणा मिली थी। कविता के अनन्तर श्री द्विवेदी जी को कथा साहित्य ने आकर्षित किया। शरद और विक्टर ह्यूगो की रचनाओ से इन्हें विशेष तथ्य उपलब्ध हुए। इसके अतिरिक्त रनाल्डस के लन्दन रहस्य न भी इन्हें आकृष्ट किया जिसमें कविता और उपन्यास दोना का रस मिश्रित है। इसमे सौन्दय और

---

१ 'स्मतियाँ और कृतियाँ श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५–९।

यौवन के उन्मादक चित्र के साथ मानवी आत्मा का करुण रुदन भी है। श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी के साहित्यिक जीवन का विधिवत् श्रीगणेश प्रयाग के सुन्दर भवन में ही हुआ।

द्विवेदी जी की कृतियों का संक्षिप्त परिचय

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का साहित्य रचना काल लगभग चार दशक तक प्रलम्ब है। प्रथम विश्व युद्ध के उपरान्त उन्होंने साहित्य रचना आरम्भ कर दी थी और जीवन के अन्तिम वर्षों तक वह अनवरत रूप से साहित्य प्रणयन करते रहे थे। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है गद्य और पद्य साहित्य की अनेक विधाओं के क्षेत्र में द्विवेदी जी ने अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। उनमें से विविध विषयक कृतियों का अध्ययन इस प्रबन्ध के विभिन्न अध्यायों में प्रस्तुत किया जा रहा है। यहाँ पर श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की सभी प्रकाशित पुस्तकों का उनके प्रकाशन वर्ष के क्रमानुसार संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है

[१] *परिचय' : प्रस्तुत काव्य ग्रंथ का प्रकाशन साहित्य सदन, चिरगांव* (झांसी) से सन् १९२७ में हुआ। 'परिचय' में श्री द्विवेदी जी ने विभिन्न कवियों की कविताओं के आधार पर उनकी काव्यात्मा का भावात्मक परिचय दिया है जिससे कवि और काव्य दोनों का ही सम्यक रूप में पाठकों को परिचय प्राप्त हो जाए। लेखक इसी दृष्टि को सम्मुख रख कर इस नवीन पथ पर अग्रसर हुए हैं जिसमें वह पूर्णत: सफल भी हुए। अपनी इस कृति के माध्यम से श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने साहित्यिक जगत में प्रवेश किया तथा लोकप्रिय भी हुए। इसका प्रमुख प्रमाण यह है कि उनकी उपरोक्त कृति हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में एम० ए० के पाठ्य ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत हो गयी थी। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की उत्कट इच्छा थी कि प्रस्तुत कृति में अन्य कवियों के साथ मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा आदि को भी स्थान दें परन्तु किसी कारणवश वह ऐसा न कर सके। 'परिचय' के आधार पर श्री द्विवेदी जी ने विभिन्न कवियों के काव्यों की आत्मा—उनके गूढ़ भावों—को व्यक्त करने की चेष्टा की है।

[२] नीरव : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की प्रमुख काव्य कृति 'नीरव' संवत १९८६ (सन् १९२९) में भारती भंडार, लीडर प्रेस, काशी से प्रकाशित हुई। श्री द्विवेदी ने मानव की प्राकृतिक मनोवृत्ति से प्रभावित होकर काव्य सृजन किया। इसमें द्विवेदी जी रचित सतीस मौलिक कविताएँ संगृहीत हैं। यह कविताएं संग्रह रूप में प्रकाशित होने के पूर्व 'शेष', 'प्रभा', 'त्यागभूमि', 'विशाल भारत', 'सरस्वती', 'चाँद', 'सुधा', 'माधुरी', 'मनोरमा', 'युवक', 'मतवाला', 'प्रताप' तथा 'अभ्युदय' आदि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसा प्राप्त कर चुकी थी। कवि का प्रस्तुत काव्य संग्रह निराला के 'परिमल' तथा पन्त के 'पल्लव' से प्रभावित है। संग्रह की प्रथम

चना 'उपक्रम है। यह गीत कवि के हृदय की उल्लासमयी भावनाओ के साथ वेदना की भी अभि यजना करता है। दूसरी रचना 'मलयानिल' शृगारिक भावो स पूर्ण है। कवि ने प्रकृति व्यापारों मे जड और चेतन के मिलन मे, सूक्ष्म आलिगन की अभिव्यक्ति की है। तीसरी कविता 'अधखिली कली से मे कवि न शैशव की अबाधना का परिचय दिया है जो सासारिक जीवन की यथाथ पृष्ठभूमि से अलग तथा अनजान रहती है। परन्तु समय उसे भी कुचल कर अपनी कठोरताओ से परिचित करा जाना है। पद अक शीषक कविता मे कवि का वेदनात्मक रूप मुखरित हुआ है। 'यमुन में कवि यमुना के कल-कल शब्द प्रवाहित होने मे तथा उसके निरतर अबाध गति स बहने म किसी महान् स देश का अनुभव करता है। तितली' कविता कवि की सूक्ष्म विश्लेपण दृष्टि की परिचायक है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है वह दुख म नहीं बधना चाहता परन्तु तितली अपनी प्रणय की करुण कथा का प्रचार करते हुए भी, व्यथा को दिग्दर्शित करते हुए प्रफुल्लित रहती है। स्वागत फूल शीषक कविता म प्रेमातिरेक से पूण युवती के हार्दिक भावा का चित्रण है जो अपन प्रिय का स्वागत अपन नेत्र फूला के माध्यम स करती है। मनोवग' कविता म नव नवोढ़ा नारी की लज्जा सुलभ भावनाओं का चित्रण है। निवेदन' मे सात्विक एव अलौकिक प्रेम को महत्ता प्रदान करते हुए कवि ने मानव से निवेदन किया है। लग सुहागिन' मे शैशव सखी की यौवनावस्था का रूप चित्रित है जो अनजान में अपन प्रिय से बद्ध हो जाती है। 'अरुण तितली' में कवि की कल्पना शृगार की ओर उ मुख है। 'निराश' मे मलय पवन थक कर विश्राम हेतु स्थल खोजता है। परन्तु उसे केवल निराशा ही प्राप्त होती है। 'प्रतीक्षा कविता मे कवि ने अपने हार्दिक वेदनापूण भावा को व्यक्त किया है। 'स्नेह स्मृति' में प्रकृति के सु दर व्यापारा के द्वारा अपनी प्रेयसी को स्मरण किया है। 'दीवाली मे कवि ने प्रकृति के उपादानों के माध्यम से दीवाली आगमन का चित्र एक सखी को सम्बोधित करते हुए प्रस्तुत किया है। 'सशय' म कवि अपन निरुद्देश्य पथ म आशकित हो उठता है। आकाक्षा मे कवि की इच्छा है कि वह स्वय दूसरों के दग्ध हृदय का भार वाहक बन कर विश्व में पूर्णिमा के शशि के सदृश्य हो जाए। 'शरच्च द में शरद पूर्णिमा के उत्सव रूप म कवि किसी प्रिय के स्वागत को आभासित करता है। निर्झरिणी की स्वतत्रता मे कवि गीतात्मक रूप म परोक्षत मानव स्वतत्रता की ओर सकेत करता है। पथिक मे कवि की राष्ट्रीय भावना उद्घाटित मिलती है। 'खादी में कवि की गाधीवादी विचारधारा तथा खादी की सात्विक भावना के साथ खादी के प्रति ममत्व प्रदर्शित किया गया है। 'छिद्र शीषक कविता में कवि ने परोक्ष रूप मे निम्न मानवा के गुणा की ओर सकेत किया है। याचना' म मानवीय कुप्रवत्तियो पर विजय पाने की कवि ने प्रभु से याचना की है। 'उत्मग' में सौ दय एव हर्षित जीवन म दगो के मोती रूप म दु ख को स्थान मिला है। वेदना से' मे कवि न वेदना का प्रिय रूप म चित्र प्रस्तुत किया है।

'यथित वशी जो हृदय के द्रवित उदगारो को मधुरता से व्यक्त करके दूसरो को आकर्षित करती है। 'मौन विषाद' म कवि के भावुक हृदय म जग के ताप के प्रति एक विषाद भाव अकित है। 'बालुके मे तट पर बिखरी बालू के प्रति कवि ने करुणा पूण शब्दो मे उसकी विकलता का आभास करके उसके प्रति सदभावना व्यक्त की है। विकल समीर म कवि ने समीर की विकलता का कारण किसी विरहणी के उच्छवास अथवा दोनो की चीत्कार की कल्पना करके उसके प्रमुख कार्यों की ओर सकेत किया है। मुरझे फूल से' मे कवि ने विकसित पुष्पो के सुदर सौभाग्य की ओर निर्देश कर कुम्हलाये पुष्प के उच्छवासो को अकित किया है। तर पात म कवि न नश्वर जीवन की ओर सकेत कर उसके प्रति तटस्थ रहने का निर्देश दिया है। विजन मे' कविता म विश्व मे आसू एकान्त मे बहने की ओर सकेत है। विजन अपन दुखी जनो को आश्रय देती है। कोलाहल मे कवि की दाशनिक विचार धारा का परिचय मिलता है। कोलाहल प्रकृति के, सष्टि के कण-कण मे विद्यमान है। 'मा मे कवि की भावात्मक कल्पना का विकास है। मा के मगलमय मदिर के द्वार पर व्याकुल, विकल हृदयो के उच्छवास ही गुजित हो, ऐसी कवि की कामना है।

[३] हिमानी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की दूसरी काव्य कृति हिमानी' हिंदी मदिर प्रेस प्रयाग से माच सन् १९३४ मे प्रकाशित हुई। प्रस्तुत काव्य कृति की भी अनेक रचनाएँ इसमे सगहीत होने से पूव ही पत्र पत्रिकाओ म स्थान पा चुकी थी। इसम द्विवेदी जी की इक्कीस मौलिक रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त काव्य कृति के प्रारम्भ म भी एक कविता माँ को सम्बोधित करके लिखी गयी है तथा उसे वदना रूप मे प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत काव्य सग्रह मे सगृहीत कविताओ मे कवि सुमित्रानदन पत के गुजन काव्य का प्रभाव है। कवि के भावो से पूण इन कविताओ मे अधिकाश कविताए शीषक रहित हैं। प्रस्तुत काव्य कृति की प्रथम कविता *हिमानी है जिसमे कवि ने अपने हृदयोद्गार को व्यक्त किया है।* प्रकृति जिन गीतो की सृष्टि कवि क मानस मधुवन म करती है कवि उसी का आभास अय प्रकृति के उपादाना म भी करता है। दूसरी कविता कवि हृदय के राग विराग सम्बन्धी विचारो को व्यक्त करती है। सुख और दुख दोना म ही प्रियतम की उज्ज्वलतर और करुणतर मूर्ति के दशन कवि करता है। तीसरी कविता मे कवि ने सरिता का मानव जीवन से सामजस्य स्थापित किया है। मानव भी सरिता के प्रवाह के सदृश्य अपनी इच्छाओ म लघु गुरु गति म बहकर सुख दुख को स्पश करता हुआ जीवन यापन करता रहता है। चौथी कविता म कवि ने प्रकृति के प्रणय व्यापारो का *शृगार रस से पूण चित्रण किया है परतु कविता मे अश्लीलता नही है।* 'शिशु कविता म शशवावस्था की अबोधता सारल्य है तथा उनके सौदय मे निहित उनके भविष्य की उज्वल रूप रेखा को कवि ने प्रस्तुत किया है। जुगनू की बात' मे कवि ने अपने हृदय की लालसा को अभिव्यक्त किया है। कवि भी जुगनू के सदृश्य निजन मे

मा के प्रेम प्रकाश को खोजता रहता है। 'भिखारिणी' शीर्षक कविता मे कवि ने एक भिखारिणी स्त्री की करुण रूप रेखा को प्रस्तुत कर अपने जीवन से उसकी समता स्थापित की है। 'भिखारिणी' कविता मे कवि विश्व का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए भिखारिणी को प्रकृति की ओर ले जाने की चेष्टा करता है जहाँ मानव अपने सहज, सरल जीवन मे आनन्दित होता है। कवि विहग कुमार बन कर कल्पना के पखो मे आधार खोजता है तथा इस सुख-दुख मय ससार मे मधुर प्रेम के उदगारो को सुनने की आकाक्षा करता है। 'अधे का गान' मे कवि ने अधे के माध्यम से प्रभु के प्रति भक्ति व्यक्त की है तथा स्वर' को जग एव जगदाधार का रूप माना है। गगन के प्रति' कविता म कवि गगन म निहित अनादि युगो के इतिहास के करुण पृष्ठो को खोलता है। चेतन व्यापारो को कवि आत्मसात करना चाहता है परन्तु नभ के रुदन पर कवि भी द्रवित हो उठता है। 'हल्दी घाटी' शीर्षक कविता ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म लिखी हुई है। इसम कवि ने मानव जीवन के शाश्वत मूल्यो को निर्दिष्ट करके मानव मे राष्ट्रीय चेतना की प्रेरणा दी है।

[४] मधु सचय' प्रस्तुत काव्य सकलन हिन्दी पुस्तक भडार, लहरिया सराय से प्रकाशित हुआ। इसमे कवि ने व्रज भाषा के शृगारिक कवियो की रचनाओ का सकलन किया है। कवि स्व० लक्ष्मीनारायण सिंह 'ईश' की कृपा एव प्रेरणा से द्विवेदी जी ने व्रज भाषा के रसास्वादन के आधार पर प्रस्तुत सकलन प्रकाशित किया। प्रस्तुत काव्य सकलन अप्राप्य है।

[५] 'मोतियों की लडी' प्रस्तुत काव्य का उल्लेख कही भी नही मिलता है। केवल एक सूचीपत्र ही इसका साक्षी है और यह सर्वथा अप्राप्य है।

[६] 'हमारे साहित्य निर्माता' ग्रन्थमाला कार्यालय बाकीपुर से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दूसरी गद्य पुस्तक हमारे साहित्य निर्माता का प्रकाशन समय सन १९३५ ई० है। इसके द्वितीय सस्करण का समय सन १९३७ है। इसमे लेखक ने विभिन्न साहित्यिको के विचार भाव विकास, उनके दृष्टिकोण का निदर्शन और उनकी शैली पर सामान्य दृष्टिपात किया है। इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक म सगृहीत लेख व्यावहारिक आलोचना के अन्तगत रखे जा सकते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी शीर्षक लेख मे उनके जीवन परिचय, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म पदार्पण 'सरस्वती' पत्रिका के सपादन काय मे उनका व्यक्तित्व भाषा शैली, विभिन्न साहित्य का उन पर प्रभाव—मराठी साहित्य और अग्रेज कवि वडसवर्थ आदि का, इनकी आलोचनापूर्ण साहित्यिक प्रवृत्ति आदि का दिग्दर्शन कराया गया है। 'अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध' विगत युग की हिन्दी कविता के महारथी कवि हैं। 'श्यामसुन्दर दास' लेख मे काशी की नागरी प्रचारिणी सभा का सपूर्ण इतिहास ही बाबू श्यामसुन्दर दास जी का सपूर्ण जीवन चरित है। 'रामचन्द्र शुक्ल' के साहित्य के माध्यम से उनके भावोद्गारो, दृष्टिकोण एव कविता काव्य म रहस्यवाद के प्रति आपकी विचारधारा

के साथ ही शुक्ल जी के गद्य और पद्य साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत की है। 'प्रेमचन्द' लेख में कहानियों और उपन्यास साहित्य के यशस्वी लेखक प्रेमचन्द जी के जीवन चित्र को प्रस्तुत किया गया है। 'मैथिलीशरण गुप्त' लेख में गुप्त जी की कविताओं में जो जीवन में जागृति, स्फूर्ति और प्रेरणा का चित्रण, गुप्त जी के काव्यों का सम्पूर्ण हिन्दी कविता का भावात्मक रूप प्रस्तुत करने का श्रेय तथा खड़ी बोली का वर्तमान हिन्दी कविता के प्रचार और सर्वप्रथम प्रतिनिधि कवि के रूप में दिखाते हुए उनके जीवन तथा साहित्य का मूल्यांकन किया है। 'जयशंकर प्रसाद' शीर्षक लेख में प्रसाद जी की मौलिक प्रतिभा का आभास एवं जीवन परिचय के साथ उनके सम्पूर्ण साहित्य की विशेषता संक्षेप में प्रस्तुत की गई है। 'रायकृष्ण दास' शीर्षक लेख में भारत कला भवन के संग्राहक और संस्थापक रायकृष्ण दास हैं। 'राधिकारमण प्रसाद सिंह' शीर्षक लेख में गद्य शैली की पूर्ण परिपक्वता से पूर्व ही लिखे सुन्दर कवित्वपूर्ण भाषा की छटा दिखाने वाले लेखक राजा राधिकारमण के जीवन वृत्त का चित्र अंकित है। 'माखनलाल चतुर्वेदी' शीर्षक लेख में हिन्दी संसार की एक भारतीय आत्मा श्री माखन लाल चतुर्वेदी जी के देश प्रेम के साथ ही उनका कवित्वपूर्ण उपास्य भाव चित्रित है। 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' शीर्षक लेख में हिन्दी कविता की बाह्य कला के स्वतन्त्र सूत्राधार एवं कविताओं में अपराह्न की मधुरता को प्रतिबिम्बित करने वाले निराला जी के जीवन परिचय, काव्य कृतियों की समीक्षा के साथ विभिन्न विचारकों के मत में निराला जी की कला की आलोचना तथा निराला जी के विचारों को प्रकट किया गया है। 'सुमित्रानन्दन पंत' शीर्षक लेख में कविता में प्रभात की गुलाबी छटा को दिखाने वाले तथा अपनी भावनाओं को प्रकृति सौंदर्य में समाविष्ट करने वाले कवि पंत के जीवन परिचय, उनकी विचारधारा, उनकी काव्य शैली तथा विभिन्न काव्य कृतियों का समीक्षात्मक परिचय सन्निहित है। 'सुभद्रा-कुमारी चौहान' शीर्षक लेख में बाह्य विश्व की स्थूल वास्तविकता का प्रत्यक्ष करने वाली कवियित्री सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान का जीवन परिचय, राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत कविताओं के अन्तर्गत उनकी विचारधारा आदि का दिग्दर्शन किया गया है। 'महादेवी वर्मा' शीर्षक लेख में आन्तरिक भावनाओं के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर को प्रकट करने वाली सुश्री महादेवी वर्मा के जीवन परिचय के साथ ही उनके काव्य के आन्तरिक पक्ष का भी विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

[७] 'साहित्यिकी' : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध संग्रह 'साहित्यिकी' का प्रकाशन समय सन् १९३८ है। इसके अन्तर्गत लेखक ने साहित्यिक और रचनात्मक लेखों को संगृहीत किया है। प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में भावात्मक, संस्मरणात्मक, सैद्धान्तिक और वैचारिक आदि निबन्ध कोटियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। 'प्रेमपूर्ण मानवता की पुकार' भावात्मक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने कवि हृदय की भावुकता के साथ ही उसकी मानवता के प्रति संवेदनशील दृष्टि को भी प्रकट किया है। 'शरद

की औपन्यासिक सहृदयता व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध मे श्री द्विवदी जी ने शरत् बाबू को आदशवादी और यथाथवादी कलाकार के रूप मे चित्रित कर उनकी कहानियो और उपन्यासो की सम्यक विवेचना प्रस्तुत की है। 'मानव समाज की एक समस्या—अन्ना मनोवैज्ञानिक निबन्ध के अन्तगत श्री द्विवेदी ने टाल्स्टाय के लोक विख्यात उपन्यास 'अन्ना' क अन्तगत आए अन्ना के चरित्र का विश्लेषण प्रस्तुत किया है जो अनमेल विवाह समस्या स ग्रसित थी। ब्रजभाषा का माधुय विलास शास्त्रीय आलोचनात्मक लेख म ब्रजभाषा के सगुणोपासक काव्य के माध्यम स कृष्ण गोपी के राम रग एव उनके माधुय विलास का चित्रण किया है जो आज भी अपन अनुरागियो का भाव विभोर किए रहती है। नव पलको म सौन्दय और प्रम सौन्दय शास्त्रीय निबन्ध के अन्तगत सौन्दय और प्रेम की शास्त्रीय मीमासा प्रस्तुत की है। 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि सैद्धान्तिक निबन्ध के अन्तगत श्री द्विवेदी न आदश और यथाथ की सद्धान्तिक विवेचना प्रस्तुत की है। 'कवि और कहानी' सैद्धान्तिक निबन्ध म कविता और कहानी के उदभव, विकास और उसके क्षेत्र का दिग्दशन कराया है। 'काशी के साहित्यक हास्य रसिक सस्मरणात्मक परिचयात्मक लेख मे काशी की आध्यात्मिक धार्मिक चचा करत हुए वहाँ क सभी कालो के साहित्यिक हास्य रसिको की उनकी कविताओ के माध्यम से विवेचना प्रस्तुत की है। 'भारतेन्दु जी का साहित्यिक हास्य' सस्मरणात्मक निबन्ध के अन्तगत लेखक ने भारतेन्दु जी की कृतियो के दृष्टान्तो के माध्यम से उनकी हास्य प्रवृत्ति की सम्यक विवेचना की है। समालोचना की प्रगति साहित्यिक (ऐतिहासिक) निबन्ध के अन्तगत भारतेन्दु युग की विभिन्न गद्य अगो मे स एक अग समालोचना साहित्य का विकासात्मक स्वरूप प्रस्तुत किया है। 'प्रवास सस्मरणात्मक निबन्ध मे दिल्ली और इलाहाबाद यात्रा सस्मरण के साथ वहाँ की वाह्य साज सज्जा का बडा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण है। हमारे साहित्य का भविष्य' वचारिक निबन्ध के अन्तगत श्री द्विवेदी जी ने प्राचीन साहित्य के मूल्याकन को प्रस्तुत करके आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियो म रचे गये साहित्य का मूल्याकन किया है। 'महापथ के पथिक प्रसाद सस्मरणात्मक निबन्ध म श्री द्विवेदी ने जयशकर प्रसाद जी से अपन परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी जीवन सम्बन्धी विचारधारा और उनकी भावुकता को व्यक्त किया है। 'गोदान और प्रेमचन्द व्यावहारिक आलोचना मे श्री द्विवेदी न प्रेमचन्द जी के उपन्यास गोदान की आलोचना प्रस्तुत की है। 'सास्कृतिक कवि मैथिलीशरण गुप्त' व्यावहारिक निबन्ध मे श्री द्विवेदी न कवि मैथिलीशरण गुप्त जी के काव्य साहित्य के माध्यम स उनके सस्कृति के प्रति अनुराग को प्रतिविम्बित किया है। 'साकेत म उर्मिला' व्यावहारिक आलोचना म श्री मैथिलीशरण गुप्त के प्रबन्ध काव्य साकेत की प्रमुख नायिका उर्मिला क अन्तपक्ष की विवचना प्रस्तुत की है। सहज सुषमा के कवि गोपालशरण' व्यावहारिक निबन्ध म श्री मैथिलीशरण गुप्त

और ठाकुर गोपाल शरण सिंह के विचारो की तुलनात्मक विवेचना के साथ गोपल शरण सिंह जी के काव्य म स्थित कोमल एव सरल सहज सुषमा को प्रस्तुत किया गया है। गार्हस्थिक रचनाकार सियारामशरण व्यावहारिक आलोचनात्मक निबंध म श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज श्री सियाराम शरण गुप्त की साहित्य मे पठ का उल्लेख है। एकान्त के कवि मुकुटधर व्यावहारिक आलोचना निबन्ध मे द्विवेदी युग और छायावाद युग के संधि काल के कवि श्री मुकुटधर की काव्य प्रतिभा के दिग्दशन के साथ उनकी सौंदय प्रमी प्रवृत्ति प्रकृति के प्रति अनुराग एव उनकी भक्ति भावना का चित्रण है। गद्यकार निराला व्यावहारिक आलोचना निबन्ध म उन्हे सक्षप मे कवि रूप म प्रस्तुत करके उनके गद्य साहित्य का उल्लेख किया है। प्रगतिशील कवि पन्त' वचारिक निबन्ध म पत जी के साहित्य के माध्यम से उनके जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण तथा उनके प्रगतिशील भावा को व्यक्त किया गया है। ' नीहार म करुण अध्यात्मक की कवि महादेवी व्यावहारिक आलोचना निबन्ध मे श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य ग्रन्थ नीहार के माध्यम से श्री द्विवेदी ने कवयित्री की आराधना पद्धति की विश्लेषणात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। एक अतीत स्वप्न' वचारिक निबन्ध म मानव समाज जस अतीत का शिशु रहा है वसे ही वह वतमान युग का भी शिशु है' के साथ मानव समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवीन्द्र एक बाल्य झलक' शीषक परिचयात्मक निबन्ध मे कवि रवीन्द्रनाथ टगोर के बाल्य काल जीवन की एक स्पष्ट झलक प्रस्तुत की गयी है।

[८] सचारिणी इडियन प्रस (पब्लिकशस) प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवदी की निबन्ध पुस्तक सचारिणी के प्रथम सस्करण का प्रकाशन काल सन १९३९ है और पाचव सस्करण का सन् १९५७ ई०। प्रस्तुत पुस्तक म भावात्मक तथा साहित्यिक लख सगृहीत किय गए हैं। सचारिणी म लखक की अन्तरोन्मुखता से प्रतिभासित होकर उनके प्रयत्न और विश्वास की बहिर्मुखता आभासित होती है। सचारिणी के निबन्धा मे विविध वादो म सहयोग और सामजस्य का आभास होता है जो लखक के रचनात्मक दृष्टिकोण को इगित करती है। भक्तिकाल की अन्तश्चेतना वचारिक निबन्ध के अन्तगत भक्ति काल के साहित्य की मूल चेतना का स्पश किया है। ब्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि वचारिक निबन्ध के अन्तगत लखक न कवि जगन्नाथ रत्नाकर को अन्तिम प्रतिनिधि कवि माना है। शरत्साहित्य का औपन्यासिक स्तर सैद्धान्तिक निबन्ध के अन्तगत लेखक ने साहित्यिक और तात्कालिक समाज एव उसकी विभिन्न सामाजिक और राजनतिक समस्याओं का अकन करते हुए शरत्साहित्य म उनक प्रतिबिम्ब को देखने की चेष्टा की है। कला म जीवन की अभिव्यक्ति' वचारिक निबन्ध के अन्तगत लेखक ने कला के लिए विशिष्ट अथ उद्भावित किया है जो एक निश्चित अभिप्राय स प्रयुक्त होना चाहिए। कला साहित्य का बाह्य रूप है जीवन उसका अन्तस्वरूप। कला जगत

और वस्तु जगत सद्धान्तिक निबन्ध म वस्तु जगत और काव्य जगत के पार्थक्य को प्रकट किया है। भारतेन्दु युग के बाद की कविता व्यावहारिक साहित्यिक निबन्ध मे उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से छायावादी युग तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक की कविता के गुणो का दिग्दशन तथा मूल्याकन किया है। 'नवीन मानव साहित्य व्यावहारिक साहित्यिक निबन्ध म कल्पना के महत्व पर विशेष जोर दिया गया है जिसस हृदय को कोमल विश्राम मिलता है। 'छायावाद का उत्कष' व्यावहारिक आलोचनात्मक निबन्ध म द्विवेदी युग के उपरान्त छायावाद की कविता म शृगार और भक्तिमूलक प्रवत्ति के मध्य माग अनुराग का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत किया है। 'हिन्दी गीतिकाव्य' विचारात्मक निबन्ध क अन्तगत उसके विकासात्मक स्वरूप की ओर दृष्टिपात किया गया है जो अपने शैशव म लहरा कर यौवन मे ही सूख सा गया था। 'कवि का आरम जगत भावात्मक लेख के अन्तगत मानव जीवन मे कविता के स्वत प्रस्फुटन की ओर सकेत किया है।

[९] 'युग और साहित्य' इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की युग और साहित्य' पुस्तक का प्रकाशन समय सन १९४० है। इसके तृतीय सस्करण का प्रकाशन समय १९५८ है। लेखक ने इसमे साहित्यिक सामाजिक और राष्ट्रीय सन्दभ में ऐतिहासिक लखो का सग्रह किया है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखो मे प्रगतिवादी दष्टिकोण का प्राधान्य है और गान्धीवाद अन्त स्पन्दन की भाति उसके अन्तस मे विद्यमान है। द्विवेदी जी न केवल गाधीवाद और छायावाद से प्रभावित थ प्रत्युत वह समाजवाद और प्रगतिवाद को भी अन्तश्चेतना की आधुनिक विकृतियो के बन्धन स मुक्ति के लिए महत्वपूण मानते थे। इसमे लेखक ने युग द्वन्द्वो और तद्जनित सम्भावनाओ को उपस्थित करने का प्रयत्न किया है। विभिन्न वादो के चित्रण म द्वन्द्व नही ऐक्य, सामजस्य और सयोजन है। वस्तुत इसम वतमान हिन्दी साहित्य का इतिहास चित्रित है जो लेखक के प्राचीन इतिहास लेखन शली से भिन्न अपनी नवीनता और मौलिकता लिए हुए प्रतिभासित होती है। 'युग और साहित्य का रचनात्मक दष्टिकोण वैज्ञानिक नही सास्कृतिक है तथा साधन ग्रामीण हैं। नखबिन्दु व्यावहारिक लख में श्री द्विवेदी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे समाज का चित्र अकित कर के उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे रूढ़िया एव अकर्मण्यता के विरुद्ध समाज सुधारको का असन्तोष एव उनके दृष्टिकोण को अकित किया है। 'साहित्य के विभिन्न युग' लेख मे ऐतिहासिक विकासात्मक युग का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करके आधुनिक युग के साहित्य का पर्यावलोकन किया है। 'युग का आगमन लेख मे प्रत्यक युग की महत्ता दर्शित है जो आने वाले युग को कुछ न कुछ उपलब्धियाँ एव विशिष्ट विचारधाराओ से आप्लावित करता है। 'प्रगति की ओर' लेख के अन्तगत प्राचीन काव्य साहित्य की अन्तश्चेतना का दशन कराते हुए लेखक ने आधुनिक कविता साहित्य को प्रगति की ओर उन्मुख होने का सकेत किया

है। हिन्दी कविता म उलट फेर लख म कविता का विभिन्न युगो म अन्तर का कारण स्पष्ट किया है जो मानव और समाज की आवश्यकताओ की ओर सकेत करता है। इतिहास के आलोक म एक अत्यन्त विस्तृत लेख है। इसम लखक न सन् १९४० के सत्याग्रह से पूव तक की साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियो का निरूपण किया है। वतमान कविता का क्रम विकास लख म हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग स छायावाद के पूव तक की कविता का क्रम विकास निरूपित हुआ है। छायावाद और उसके बाद सद्धान्तिक लख म पत, निराला, प्रसाद और महादेवी आदि छायावादी कवियो की मान्यताओ एव विचारधाराओ का उल्लख है। कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ साहित्यिक लख म समाज एव राजनीति का स्पश करत हुए कथा साहित्य का विकासात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। प्रसाद और कामायनी व्यावहारिक आलोचनात्मक लख म प्रसाद क साहित्यिक व्यक्तित्व एव साहित्य की विभिन्न विधाओ म उनकी पहुच के निदशन के साथ कामायनी के कला पक्ष और भाव पक्ष की विवेचना और प्रसाद क व्यक्तित्व का कामायनी महाकाव्य पर प्रभाव को प्रतिबिम्बित किया है। प्रमचन्द और गोदान व्यावहारिक लख म प्रसाद और प्रेमचन्द की भिन्न परिस्थितियो का उल्लेख कर उनके साहित्य म भी उसके प्रभाव को दर्शित किया है। इसम गोदान की समीक्षा के साथ प्रमचन्द साहित्य के विभाग को प्रस्तुत किया है। निराला लेख म श्री द्विवदी ने निराला और जनेन्द्र का सक्षिप्त कलात्मक व्यक्तित्व अकित करके निराला जी के परिचय, उनके दृष्टिकोण तथा उनकी मान्यताओ को दर्शित करत हुए उनके अभूतपूव व्यक्तित्व को उभारा है। पत और महादेवी व्यावहारिक लख मे क्रमश सौन्दय और वेदना की प्रतिमूर्ति को स्थापित करके इन दोनो के दष्टिकोण का तुलनात्मक परिचय दिया है तथा उनके काव्यात्मक व्यक्तित्व का दिग्दशन कराया है।

[१०] 'सामयिकी ज्ञान मडल लिमिटेड कबीर चौरा वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृति सामयिकी का प्रकाशन समय सन १९४४ ई० है। इसका ततीय सस्करण सन १९६१ ई० मे प्रकाशित हुआ। सामयिकी आलोचना कृति म युग की सावजनिक विचारधाराओ और साहित्यिक प्रवत्तियो की विवचना की गयी है जिसम लखक न अपने मतो का निर्धारण किया है। सामयिकी म उनका दष्टिकोण गाधीवादी है। गाधीवाद ही प्रस्तुत पुस्तक का मुख्य सवेदन बन गया है। सामयिकी कृति के युग दशन सास्कृतिक आलोचनात्मक लेख म श्रूयते हि पुरा लोके के अन्तगत पतनोन्मुख जीवन प्रणाली नारी का व्यक्तित्व समस्याओ के मूल म नारी समस्या आध्यात्मिक स्तर पर सष्टि मे सत चित आनन्द की एकताभग के कारण और आनन्द म विलास के समावेश के कारण शिव के प्रलयनेत्र के उन्मीलित होन फलत ससार म महानाश की ज्वाला आदि क चित्रण के माध्यम से लखक ने आधुनिक युग का अत्यन्त ही

सूक्ष्मता स छायाचित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक व्यावहारिक आलोचनात्मक लेख मे श्री द्विवेदी ने ऐश्वर्य और कवित्व का सम्मिलन, जीवन निर्माण के लिए माडल महात्मा जी स मतभेद जीवन और कला का समन्वय आधु भारत के अर्वाचीन कवि, रवीन्द्र युग और गाधी युग का भविष्य, बहुमुखी प्रतिभा और बहुमुखी कृतियाँ, विस्मयजनक व्यक्तित्व आदि शीर्षकों के अन्तगत कवीयनीषी रवीन्द्रनाथ टगोर के जन्म, जीवन, व्यक्तित्व, दृष्टिकोण, युग विश्लेषण, साहित्यिक प्रतिभा एव बहुमुखी कृतिया मे दृष्टिकोण एव शैली की नवीनता आदि उनसे सम्बन्धित विविध क्षेत्रा का स्पश किया है। 'कवि कलाकार और सन्त शीर्षक व्यावहारिक आलोचनात्मक लख मे भारतीय साहित्य क त्रिदेव रवीन्द्र, शरद और गाधी क दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। 'शरच्चन्द्र शेष प्रश्न पुस्तक समीक्षा म श्री द्विवेदी ने शरत् के उपन्यास शष प्रश्न' की समीक्षा कलात्मक गूढता, नारी का रूपान्तर, मानवता की पृष्ठभूमि व धनो की स्वामिनी नारी का आधुनिक परिष्कार, प्राच्य और प्रतीच्य, लोकान्तर, प्रेम की नीरव अभिव्यक्ति आदि शीर्षका के अन्तगत प्रस्तुत की है। जवाहरलाल एक मध्य बिन्दु व्यावहारिक आलोचना म श्री द्विवेदी जी न प० जवाहरलाल नहरू को आधुनिक एव अपन समकालीन युग के तरुण विचारा का केन्द्र मान कर उनकी कृति मरी कहानी के आधार पर नहरू जी क व्यक्तित्व एव उनके दृष्टिकोण का चित्रण किया है। हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि साहित्यिक आलोचना लख म खडी बोली की कविता के विकासात्मक स्वरूप को स्पष्ट करते हुए प्रगतिवादी युग की कविता म मानवमन की ज्वालाओ एव आधुनिक युग की विभीषिका की आलोचना प्रस्तुत की है। 'आधुनिक हिन्दी कविता के माग चिन्ह आलाचना क अन्तगत लेखक न आधुनिक हिन्दी कविता में माग चिन्हों को पाच काला म विभक्त किया है। शुक्ल जी का कृतित्व व्यावहारिक आलोचना म आचाय प० रामचन्द्र शुक्ल जी का अजलि पूव पीठिका, काव्य म प्रकृति रहस्यवाद अन्तराल, कलात्मक धरातल, मानसिक निर्माण समालोचना की सम्मिलित पष्ठभूमि प्रभाविक समालोचना, वधानिक समालोचना व्यक्तिप्रधान साहित्यिक रुचि छायावाद रहस्यवाद और समाजवाद युग निर्देशन, हिन्दी साहित्य का इतिहास आदि शीर्षकों के अन्तगत उनका जन्म जीवन श्रद्धाजलि के साथ उनके कृतित्व एव व्यक्तित्व की समीक्षा प्रस्तुत करते हुए उनके दृष्टिकोणा को अभिव्यक्त किया है। 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' म आत्मविवृत्ति शीर्षक लख गद्य काव्यात्मक स्वरूप का बोध कराता है। इसमे लेखक न अपने मन्तव्य की ओर दृष्टिपात किया है। 'छायावादी दृष्टिकोण मे वैभव विलास और भाव विलास छायावाद और प्रगतिवाद, वातावरण प्रवत्ति और निवत्ति, रूप और अरूप समन्वय, गाधीवाद और बुद्धवाद, छायावाद का व्यक्तित्व वास्तविकता और कविता आदि शीर्षकों के अन्तगत छायावाद के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन तथा छायावाद का प्रतिनिधित्व करने वाल

प्रमुख साहित्यिकों के दृष्टिकोण की आलोचना प्रस्तुत की है। 'हिन्दी साहित्य' म द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद अणु युग का सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य के विकासात्मक स्वरूप और उसके साहित्य के विविध रूपों पर प्रकाश डाला है। भविष्य पथ' सग में पतन प्रकाश की अमिट रेखा बापू गीतक के अन्तर्गत आधुनिक विभीषिका और मानवीय बौद्धिक प्रवृत्ति का मूल्यांकन करते हुए महात्मा गांधी को इस तामसिक युग के पतन प्रकाश की अमिट रेखा के रूप म अंकित किया है। प्रकृति पुरुष का उत्तराधिकार लेख म बापू के देहावसान के बाद आधुनिक युग के वास्तविक रूप को परिवष्ठित किया गया है।

[११] पथचिन्ह' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत सस्मरणात्मक पुस्तक चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी स सन् १९४६ म प्रकाशित हुई थी एव चतुथ सस्करण का प्रकाशन काल सन् १९६६ ई० है। पथ चिन्ह जसा कि नाम स ही स्पष्ट है इसम आधुनिक युग में आक्रान्त समय म भी मानव के लिए नए पथ निदिष्ट किया गया है जो भारत के शांति पूर्ण पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार पथचिन्ह में अशांत और अव्यवस्थित युग के बाद भविष्य म जीवन की रूपरेखा खींचने का प्रयास किया गया है एव जीवन के स्वाभाविक निर्माण को अंकित किया गया है। अत पथ चिन्ह लोक जीवन के निर्माण का पथ निर्देशक है। पथचिन्ह' म लेखक ने अपनी स्वर्गीया भगिनी को भारत माता की आत्मा के रूप म स्मरण किया है उसी के व्यक्तित्व को केन्द्र बिन्दु मानकर अपने जीवन और युग की समस्या को स्पश किया है। लेकिन बहिन के स्मृति चिन्तन के रूप म इस सस्मरण पुस्तक को ७ अध्यायों में बाँट दिया है। वह स्वर्गीया निधि की आहुति के पश्चात् स्वय अभिशापों की परिक्रमा करते हुए इस विश्व का पूर्णत पर्यवेक्षण करके स्वय अपने जीवन एव विश्व जीवन म अन्त सस्थान' को महत्व दिया है जिससे आज भटकती मानवता सजग होकर पुन उस मायाजाल के कीचड मे न फसे। यही लेखक की अभिलाषा है। कहीं कहीं पर श्री शांतिप्रिय ने ऐसे गूढ़ तथ्यों का निर्देश किया है जो वास्तव मे आज समाज के अन्दर घटित हो रहे हैं। आज धर्म के वर्ग के अन्दर भी आर्थिक सत्ता का बोलबाला है। धर्म कर्म के आधार पर आज अर्थ धर्म को ही धर्म कर्म मान लिया गया है जिससे आज मानव समाज मे अनाचार छद्माचार की अत्यन्त घातक वृद्धि हुई है। लेखक ने अपने भावों को व्यक्त करने एव उनकी तात्विक व्यजना के लिए श्लाघनीय नवीन शब्दों की सृष्टि की है एव उनकी शैली आत्म परिचयात्मक है।

[१२] जीवन यात्रा प्रस्तुत ग्रन्थ ग्रन्थ कार्यालय पटना से अगस्त १९५१ मे द्वितीय सस्करण म प्रकाशित हुआ है। यह पुस्तक रचनात्मक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमे मानव जीवन के विविध पक्षों की सरचनात्मक एव दार्शनिक विवेचना है। जीवनोपयोगी विभिन्न तथ्यों को दृष्टि मे रख कर जीवन का सूक्ष्म

पर्यावलोकन किया गया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने समकालीन निबन्धकार जिस धरातल पर निबन्ध साहित्य मे अपना योगदान दे रहे थे उसका परित्याग कर आपने अपने नवीन दृष्टिकोण एव नवीन पद्धति के द्वारा नवीन धरातल पर निबन्ध साहित्य को विशिष्ट स्थान प्रदान किया। इस प्रकार आपने निबन्ध साहित्य की धारा का एक मोड-सा देकर उसके साहित्य की परिपक्वता मे प्रशसात्मक योगदान दिया। यात्री' शीर्षक निबन्ध म मानव को एक यात्री के रूप मे चित्रित कर उसे किसी आज्ञात लोक का वासी माना है। 'जीवन का लक्ष्य' और 'जीवन का उद्देश्य' शीर्षक निबन्धा म लक्ष्य और उद्देश्य की महत्ता का प्रतिपादन हुआ है। 'मग तृष्णा' निबन्ध म मानव की अतप्त महत्वाकाक्षाओ का दिग्दर्शन करते हुए उसकी दो प्रखर लपटो—द्वेष और ईर्ष्या—की ओर सकेत किया है जो मानव को निरन्तर अवनति की ओर ले जाती हैं। इनसे आत्मशाति और आत्मानन्द नही प्राप्त हो सकता। ससार म जीवन के निर्वाह के लिए लौकिक योग्यता की आवश्यकता एव अनिवार्यता है, इससे रहित मानव जीवन की कसौटी पर पूर्णरूपेण खरा नही उतर सकता। यही निर्देशन लौकिक योग्यता नामक निबन्ध म किया गया है। जीवन मे स्थायी सुख शाति के लिए 'आत्म चिन्तन' मनन अधिक आवश्यक है तथा जीवन पथ के अधकार को मिटा कर उत्तरोत्तर जीवन विकास के लिए आत्म विश्वास' भी एक प्रधान गुण है। जीवन क आगन मे सुख दुख के पौधे तो विकसित होते ही रहते हैं लेकिन निरन्तर दुख ही दुख की कल्पना कर हृदय द्रवित करना हानिकर है। जीवन की श्रेष्ठता के लिए हसना एव मुस्कराना भी आवश्यक है जिससे उर के सौरभ से जग का आँगन भी सुवासित हो उठे। यही सार 'हसता जीवन' म अकित किया गया है।

[१३] ज्योति विहग' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग स प्रकाशित श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'ज्योति विहग आलोचना का प्रकाशन काल १९५१ है। प्रस्तुत आलोचनात्मक पुस्तक मे लखक ने सौन्दय और सस्कृति क सुकुमार कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी की कृतियो की आलोचना प्रस्तुत की है। द्विवेदी जी ने प्रस्तुत आलोचनात्मक पुस्तक के साकल्य सत्य शिव सुन्दरम' 'सुन्दरम् छायावाद युग' शिवम् प्रगतिशील युग तथा सत्यम् सास्कृतिक युग आदि शीर्षको के अन्तगत पत जी की समस्त कृतियो का विभाजन प्रस्तुत किया है। प्रथम शीर्षक म लेखक ने 'शिल्पी अध्याय के अन्तगत हिन्दी कविता की कमनीयता और उदयाचल के छायावादी कवि पत को एक उत्कृष्ट शिल्पी के रूप मे अकित किया है। 'हिन्दी कविता का क्रम विकास' अध्याय के अन्तगत ब्रजभाषा और खडी बोली द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि, छायावाद युग, विरोध और विकास तथा छायावाद के वहत्त्रयी आदि शीर्षको के अन्तगत आधुनिक हिन्दी कविता के विकास क्रम को प्रतिबिम्बित किया है। अन्तरदर्शन' मे बालिका एक भाव प्रतीक, रवीन्द्र और पत सस्मरण, सौन्दय की साधना, युग का प्रभाव, पत की प्रगति शीर्षको के अन्तगत पत जी के छायावादी

दृष्टिकोण सुन्दरम् को स्पष्ट करते हुए प्रगति युग में उनकी पद तथा पंत की कला का विभाजन प्रस्तुत किया गया है। काव्यारम्भ वीणा में रचनाओं का कालक्रम नवोन्मेष और ग्रंथि के अन्तर्गत पंत की प्रारम्भिक प्रतिभा एवं साहित्यिक प्रभाव का उच्छ्वास आंसू नवजीवन की साधना आदि शीर्षकों के अन्तर्गत द्विवेदी जी ने पंत के प्रकृति के प्रति अनुराग उनके रचित प्रणय काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'नारी' में पंत के नारी के प्रति विचारों का निरूपण उन्हीं के काव्यों के आधार पर किया गया है। काव्य कला में शब्दों का व्यक्तित्व चित्रभाषा और चित्रराग छन्दों की परख अतुकान्त और मुक्त छन्द तुकान्त और सानिध्य अलंकार आदि शीर्षकों के अन्तर्गत पंत जी के काव्य के बाह्यावरण एवं बाह्य उपकरणों को विवेचित किया गया है। सुन्दरम् छायावाद युग के 'उद्घाटन' में प्रकृति का वरदान कवि का स्वप्न साधना की व्यापकता शीर्षकों के अन्तर्गत व्यक्त किया गया है कि पंत की कला की साधना प्रकृति प्रदत्त है। पल्लव में पंत द्वारा रचित अनेक कविताओं का संग्रह है। गुंजन में पंत जी की नवप्राण प्रेरणाओं का उद्घोष होता है। ज्योत्स्ना' में पंत जी ने गुंजन की अप्सरा का ही सार्वजनिक रूप प्रतिष्ठित किया है। पाँच कहानियाँ पुस्तक में पंत जी की पाँच कहानियाँ संगृहीत हैं—पानवाला उस पार दम्पति बन्नू अवगुंठन। इन कहानियों में लेखक चित्रकार के सदृश्य ही अत्यन्त मुखर हो उठा है। अतएव ये शब्द चित्र भी आभासित होती हैं। युगान्त में द्विवेदी जी ने धुंधले पद चिह्न मनःस्थिति नव सृजन की प्रेरणा जीवन और कला के अन्तर्गत 'युगान्त' के प्रकाशन काल में पंत जी की परिस्थितियों के आभास के साथ उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन का उल्लेख किया है। प्रगति, संस्कृति और कला अध्याय के अन्तर्गत आधुनिक कवि की विवेचना की गयी है। ग्राम्या अध्याय के अन्तर्गत सामाजिक स्थिति, बौद्धिक सहानुभूति सांस्कृतिक दृष्टि भाव सृष्टि शीर्षकों में ग्राम्या में संगृहीत कविताओं के माध्यम से कवि पंत की परिस्थितियों का उल्लेख एवं उनकी विचारधारा के नवीन मोड़ का प्रस्तुतीकरण है। 'रचनात्मक निर्देशन' अध्याय में युगवाणी काल में पंत को ऐतिहासिक और उपनिषद् युग में चित्रित किया है। स्वर्णकिरण स्वर्णधूलि उत्तरा' और युगपथ में कवि उसी ओर उन्मुख हुआ है। कवि की श्रद्धांजलि अध्याय में स्वर्णधूलि में संगृहीत कविता कवि की श्रद्धांजलि का विवेचन है। स्वर्ण किरण' अध्याय में कला में नवीनता द्युतिमती चेतना सांस्कृतिक वातावरण रहस्यवाद प्रकृति की परमात्म सत्ता चित्र गरिमा गीत निबन्ध रजतालय, हिमाद्रि इन्द्रधनुष स्वर्ण निर्झर उषा स्वर्णोदय अशोक वन आदि शीर्षकों के अन्तर्गत पंत जी की स्वर्ण किरण में संगृहीत कविताओं की आलोचना प्रस्तुत की है। स्वर्णधूलि में कला का सामंजस्य, पद्य और गीत गद्य कथा काव्य साधना और आराधना, मानसी आदि शीर्षकों के अन्तर्गत उसमें संगृहीत कविताओं की आलोचना के साथ उसके अन्तरदर्शन को प्रकट किया गया है। उत्तरा में शान्ति का स्वरूप चेतना का अव

तरण, प्रकृति का निरूपण, गीति काव्य की नवीन प्रगति आदि शीर्षको के अन्तर्गत उनमे संगृहीत कविताओ के माध्यम से पंत के विभिन्न दृष्टिकोणो को प्रस्तुत किया गया है। 'युग पथ' मे अतीत का आविर्भाव राष्ट्रीय संगीत कला के विविध प्रयोग, चेतना का मानवीकरण त्रिवेणी शीर्षक के अन्तर्गत पंत जी की कला का रचनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है।

[१४] 'परिव्राजक की प्रजा' इंडियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद से प्रकाशित श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की संस्मरणात्मक पुस्तक 'परिव्राजक की प्रजा' का प्रकाशन काल सन १९५२ है। इसमे लेखक ने साहित्यिक आत्मकथा का परिचयात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है। 'परिव्राजक की प्रजा' श्लिष्ट पद है जिनमे ध्वन्यार्थ भी आभासित होता है। लेखक की यह आत्मकथा ही सबकी 'आप बीती जग बीती' हो गयी है। प्रस्तुत पुस्तक के क्रमबद्ध संस्मरणो ने पसनल एसे' का रूप धारण कर लिया है। श्री द्विवेदी ने परिव्राजक की प्रजा संस्मरणात्मक पुस्तक को दो भागो मे विभक्त कर दिया है—बाल्य काल और उत्तर काल। बाल्य काल के विभिन्न लेखो के अन्तर्गत लेखक ने प्रारम्भिक दिनो से शिक्षा ग्रहण करने तक के अपने जीवन को आबद्ध किया है। उत्तर काल में उसके अनन्तर से साहित्यिक क्षेत्र मे आने तथा विभिन्न संपादन कार्यो का उल्लेख है। प्रथम खंड बाल्य काल के लेखो मे क्रमानुसार 'मुक्त पुरुष' मे श्री द्विवेदी के पिता के निवास स्थान उनकी प्रकृति आदि का चित्रण है। सगुण शिशु' संस्मरण लेख मे स्वयं लेखक के शैशव काल मे निवास स्थान तथा भाई का चित्र प्रस्तुत किया गया है। 'मान विसर्जन मे मा के और छोटे भाई हीरा के निधन के साथ बहिन कल्पवती का दारुण विलाप है। वनदेवी के अंचल मे लेख मे लेखक की शैशवावस्था के देहात के उन्मुक्त वातावरण मे प्रकृति प्रांगण मे क्रीडा कौतुक के दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं। साधना की साध्वी मे बहिन के वैधव्य जीवन की विडम्बनाओ के साथ उसके स्वावलम्बन की ओर संकेत है। बाल्य क्रीडा मे प्राइमरी स्कूल की पढाई, वहाँ की पुस्तको की व्याख्या, बाल्य काल के खेल कूद का चित्रण रामलीला मेल उत्सव आदि के साथ लेखक के कुए मे गिरने का संकेत आदि भी सन्निहित है। लीला और मेला लेख मे भी रामलीला और कृष्ण लीला तथा वहा के वातावरण का सजीव चित्र मेले के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'अप्रत्याशित निमन्त्रण मे लेखक का पुन अपने गाँव मे जाना तथा वहा रहने का चित्रण है। अन्त प्रस्फुटन और वातावरण मे अमिला कस्बे के प्राकृतिक वातावरण के चित्रण के साथ वहाँ की पढाई लिखाई और घर के कठोर वातावरण का चित्र प्रस्तुत हुआ है। जीवन के तट पर लेख मे अपने नये आवास का चित्रण है तथा लेखक की स्वयं चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने का संकेत है। 'परिपाटी का त्याग' मे लेखक की तेजस्विता का संकेत है जिसके परिणामस्वरूप इन्हे छात्रवृत्ति मिली। द्वितीय खंड उत्तर काल के लेखो मे आधार की खोज में लेख मे लेखक की नि सहाय अवस्था, फलस्वरूप भ्रमणकारी प्रवृत्ति के

साथ ही स्वअध्ययन की प्रवृत्ति और विभिन्न छात्रा स सपर्क का चित्रण है। कुतू हल और प्रेरणा' म पाडय बेचन शर्मा उग्र' स परिचय पुस्तक म अपना नाम छप वाने की लालसा, हिन्डी से परिचय और उन्ही क द्वारा प्रकाश पत्र म आज क प्रमुख सपादक श्री प्रकाश जी और द्विवेदी जी के पूवनाम का उल्लेख कर पौन दोहो की रचना आदि का उल्लेख है। सन् २० क असहयोग आन्दोलन उग्र जी के मित्र प० कमलापति त्रिपाठी स परिचय विश्वविद्यालय क छात्रावास म विभिन्न पत्र पत्रिकाओ क अध्ययन तथा श्री प्रकाश जी और प० जवाहरलाल नेहरू स भट का चित्रण है। नताओ की झांकी लख म गांधी जी का भाषण, अवध क एक किसान कार्यकर्ता बाबा रामचन्द्र की गिरफ्तारी, भिन्न भिन्न नताओ क दौर— राजेन्द्र बाबू टडन जी श्रीमती सरोजिनी नायडू डा० भगवानदास सी०एफ० एन्डूज मालवीय जी स्वामी सत्यदेव आदि के व्यक्तित्व एव भाषणो क साथ ही स्वामी सत्यदेव क साहित्य का अध्ययन और श्री द्विवेदी जी का प्रतिलिपि क काम का प्रारम्भ परन्तु रुचि के अनुरूप न होन पर उसक परित्याग आदि का उल्लेख है। अलक्षित भविष्य की ओर म प्रारम्भ मश्री प्रकाश जी क द्वारा आज कार्यालय गुरुधाम कबीर चौरा म काम मिला वहाँ से छोड कर रायसाहब गोस्वामी रामपुर के आवास म शरण ली परन्तु उसे भी मनोनुकूल न पाकर उसका परित्याग आदि का चित्रण है। आनन्द परिवार म श्री द्विवेदी जी के लख स्त्री दपण के उपरान्त विद्यार्थी म छपे डा० सपूर्णानन्द जी के परिवार का चित्रण है जहाँ श्री द्विवेदी जी को भी आश्रय मिला। रोमान्टिक अनुभूति मे ज्ञानमडल म प्रेमचन्द जी स परिचय, उनकी सहायता स माधुरी के सपादकीय विभाग मे क्लर्क का काम वहाँ स अलग होकर पत और निराला के साहित्य का अध्ययन वही पर हिन्दू मुस्लिम दगे आदि का चित्रण इस दग के फलस्वरूप मन की दहशत का अकन उल्लिखित है। मानसिक स्थिति लख म काशी मे आकर निराला काव्य से काव्य प्ररणा ग्रहण कर काव्य साधना का चित्रण है। सस्कृति की आत्मा म बहिन के देहात मे स्कूल खोलने आदि का वणन है। अध्ययन और अनुभव म विभिन्न साहित्यकारो से सपक और परिचय के उपरान्त उनके साहित्यिक अध्ययन और विभिन्न पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव आदि का चित्रण है। छायावाद की स्थापना लख मे छायावाद का एक सुव्यवस्थित पृष्ठभूमि म स्पष्टीकरण हमारे साहित्य निर्माता आलोचनात्मक ग्रथ म हुआ है। नीरव और हिमानी लेखक की काव्य कृतियाँ हैं जिनम सन १९२४ से १९३४ तक की लिखी कविताए सग्रहीत है। बहिन का बलिदान म बडी बहिन के दिवगत होने का उल्लेख है। बहिन के श्राद्ध सस्कार म बनारस आने पर वह बनारस मे रुककर बहिन की स्मृति म उनके कमरे को कल्पवती कुटीर बना कर उसी मन्दिर मे साहित्य की आराधना करने लगे। इसी की स्वीकृति इस लेख म है।

[१५] 'प्रतिष्ठान इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) लिमीटेड इलाहाबाद से

प्रकाशित श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'प्रतिष्ठान' का प्रकाशन समय सन् १९५३ ई० है। विविध लेखों के संग्रह 'प्रतिष्ठान' में लेखक की लेखन शैली की विविधता दृष्टिगोचर होती है। यही विविधता लेखक का रचनात्मक प्रवृत्ति की द्योतक है। इसमें वयक्तिक तथा समीक्षात्मक साहित्यिक निबन्धों के अतिरिक्त संस्मरण एवं रिपोर्ताज भी संगृहीत हैं। अतएव प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने जीवन और साहित्य के सम्पादन का सक्रिय प्रयास किया है। प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में बाल्य स्मृति संस्मरणात्मक लेख है जिसमें लेखक अपने अतीत के स्वप्निल भावों में लीन होता है। 'नव सन्धान' संस्मरण में लेखक के स्वभाव, समाज में यथार्थ स्थिति, आधुनिक युग में मनुष्य और प्रकृति दोनों के शोषण आदि का चित्रण है। प्रकृति, संस्कृति और कला सांस्कृतिक निबन्ध में लेखक ने जीवनदायिनी नदियों के प्रति श्रद्धा का दिग्दर्शन करके प्रकृति के प्रति अपने आकर्षण को व्यक्त किया है। इसके साथ ही आपने संस्कृति के आध्यात्मिक तत्वों का भी स्पर्श किया है। 'युग निर्माण की दिशा' में मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में लिया है परन्तु आधुनिक मानव सामाजिक न होकर आर्थिक प्राणी बन गया है। 'छायावाद की प्राकृतिक दशा' साहित्यिक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने रहस्यवाद और छायावाद के काव्य में वस्तुगत तथा उसके वाह्य अन्तर को स्पष्ट किया है। मिथिला की अमराइयों में लेख में यात्रा संस्मरण के रूप में रिपोर्ताज का एक नमूना-सा लक्षित होता है। 'संस्कृति की साधना' सांस्कृतिक निबन्ध के अन्तर्गत साम्प्रदायिक उपद्रवों के कारण धर्म के स्थान पर संस्कृति के प्रयोग को दर्शित किया है। 'त्रिवेणी के अंचल में' एक साहित्यिक संस्मरण है जिसमें लेखक ने प्राक्कथन के अन्तर्गत वयक्तिक दृष्टिकोण से सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों का स्पर्श किया है। 'समकालीन साहित्य' एक साहित्यिक निबन्ध है जिसमें लेखक ने उसके शीर्षक के अनुरूप ही आधुनिक हिन्दी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों की ओर दृष्टिपात किया है।

[१६] 'दिगम्बर' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय द्वारा इस पुस्तक का प्रथम एवं द्वितीय संस्करण क्रमशः नवम्बर ५४ और मार्च ५६ में प्रकाशित हुआ। औपन्यासिक क्षेत्र में आपकी औपन्यासिक कृतियों में दिगम्बर उपलब्ध आपको सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित करने के लिए यथेष्ठ है। उपन्यास विधा के लिए आपने कम ही अपनी लेखनी चलाई है। उपन्यास के क्षेत्र में सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में रचनात्मक दृष्टिकोण स्पष्ट लक्षित होता है। शास्त्रीय दृष्टि से उपन्यास विधा की विशेषताओं को दृष्टि में रख कर यह कहा जा सकता है कि इसमें उपन्यास के तत्वों का अंशतः अभाव है। प्रस्तुत उपन्यास में गद्य साहित्य की अन्य विधाएं कहानी शब्द चित्र पसनल एसे आदि भी पुष्प की पंखुड़ियों के सदृश्य इसमें सामाहित हो गए हैं। इस प्रकार कथा साहित्य के क्षेत्र में यह आपका नवीन रचनात्मक प्रयोग है। इसमें आधुनिक और प्राचीन उपन्यास कला का सम्मिश्रण है। उपन्यास का कथानक

कथात्मकता की पृष्ठभूमि में न होकर रेखाचित्र का आश्रय लेकर क्रमबद्ध कथानक का औपन्यासिक विन्यास है। संस्मरणात्मक शैली पर लिखा यह पूर्णतः उपन्यास नहीं उसका रेखांकन मात्र है। उपन्यास के कथानक में सत्यता है पर कहीं-कहीं कल्पना का भी पुट है। नवीन कथा शिल्प की रचनात्मक पद्धति के कारण इसकी लिखावट में एकलयता, एकरूपता एवं समरसता नहीं प्रत्युत खुरदुरापन है। इसका अपना एक स्वतंत्र शिल्प है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक काव्यशास्त्र में वर्णित नायकत्व के गुणों से ओतप्रोत न होकर इसी दूषित समाज के एक मानव के रूप में अपनी समस्त विशेषताओं के साथ चित्रित है। जीवन पथ पर चलते चलते अनुभवों की शृंखला ने लेखक को स्तम्भित एवं आक्रान्त कर दिया था परन्तु दिगम्बर शिवत्व की ओर है उसकी अनावृत आत्मा पर सभ्यता का कोई आडम्बर नहीं है। उपन्यास में लेखक ने मनन चिंतन के आधार पर आधुनिक मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं की ओर संकेत किया है। मानव चेतना जहाँ मानव को आदर्श शिव की ओर प्रेरित करती है वहीं बाह्य परिस्थितियाँ एवं उसका यथार्थ उसे पशुत्व की ओर ले जाता है। इन दोनों के मध्य मानव संघर्ष करता हुआ आत्म विस्मृत हो जाता है। निरंतर वह बाह्याडम्बरों में संघर्षरत रहता है और अन्त में वह सुख शांति की खोज में भटकता है। वह शांति उसे स्वयं की आत्मा एवं प्रारम्भिक प्राकृतिक जीवन में ही उपलब्ध होती है। यही उपन्यास का परिप्रेक्ष है जिसमें लेखक की भावनाएं उसका युग और उसका रचनात्मक चिंतन है।

[१७] साकल्य' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी से प्रकाशित श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की साकल्य' का प्रकाशन समय सन् १९५५ है। इसके द्वितीय संस्करण का प्रकाशन सन् १९६१ है। इसमें लेखक के आर्थिक साहित्यिक और सांस्कृतिक लेखों का संग्रह है जिसके आधार पर श्री द्विवेदी ने उद्योग, संस्कृति, साहित्य और सौन्दर्य का संयोजन प्रस्तुत किया है। 'साकल्य में संगृहीत लेखों में युग का भविष्य वैचारिक लेख के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के साथ भूदान यज्ञ के संयोजक विनोबा भावे तथा गांधी जी के दृष्टिकोण को प्रमुखता दी है। संस्कृति का आधार सांस्कृतिक निबन्ध में युग की सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्र अंकित कर उनके इतिहास का प्रस्तुत किया गया है। समन्वय अथवा एकान्वय बौद्धिक लेख के अन्तर्गत आधुनिक युग के भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय के प्रयास को एक स्लोगन कहा गया है।। साहित्य का व्यवसाय शीर्षक वैचारिक लेख के अन्तर्गत श्री द्विवेदी ने व्यवसाय के विभिन्न दोषों का एवं साहित्यिक क्षेत्र में हुए दोषपूर्ण व्यवसाय का दिग्दर्शन कराया है। आज जीवन का प्रत्येक क्षेत्र व्यवसाय से आक्रान्त है जिसमें केवल स्वस्वार्थों की पूजा होती है। [हिन्दी] का आत्मार्पण' वैचारिक लेख के अन्तर्गत लेखक का सांस्कृतिक तथा रचनात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। जन क्रान्ति का आह्वान वैचारिक लेख

मे आदिम मानव को आधुनिक मानव से श्रेष्ठता प्रदान की गयी है। 'ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र' शीर्षक सांस्कृतिक लेख के अन्तर्गत ग्राम्य जीवन की प्राकृतिक रूपरेखा एवं नैसर्गिक जीवन का चित्र अंकित करके आधुनिक युग में उनकी विकृतियों का आभास कराया है। 'प्रसाद और प्रेमचन्द की कृतियाँ' में द्विवेदी जी ने दोनों लेखकों की कृतियों एवं दृष्टिकोण का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। 'वर्मा जी के उपन्यास' व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत उपन्यास की कला एवं अन्तरपक्षों का विवेचन किया गया है। 'गुप्त बन्धु और छायावाद' में बाबू मैथिलीशरण गुप्त और बाबू सियारामशरण गुप्त के काव्यों में छायावादी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया है। 'पन्त का काव्य जगत' में 'प्रकृति की उपासना', 'वीणा' से 'युगान्त' तक, 'ग्राम्या', 'नयी रचनाएँ' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत पन्त के काव्य की आलोचना प्रस्तुत की है। 'महादेवी की मधुर वेदना' में फ्रायड के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते 'विराट पुरुष की प्रेयसी', 'हृदयोल्लास', 'करुणा का माधुर्य', 'अभिव्यक्ति और अनुभूति', 'वेदना और आराधना', 'साधना का स्वरूप' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत महादेवी जी की काव्य कृतियों के माध्यम से उनकी मधुर वेदना का रूप अंकित किया गया है। 'छायावाद के बाद' वैचारिक लेख में वर्तमान हिन्दी कविता का छायावाद युग से सर्वोच्च विकास दिखाते हुए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का एक धुंधला चित्र प्रस्तुत किया है। 'नयी हिन्दी कविता' वैचारिक लेख में छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की कविताओं का विवेचन किया गया है। 'दिव्या' में यशपाल के बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास की आलोचना एवं यशपाल का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। 'साहित्य में अश्लीलता' में मानव की आर्थिक और मनोवैज्ञानिक विकृति का दिग्दर्शन करते हुए समाज में व्याप्त और साहित्य में व्याप्त अश्लीलता के कारणों का उल्लेख किया है। 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' में रीतिकाल से प्रारम्भ हुई हिन्दी आलोचना का विकासात्मक रूप है। 'दिगम्बर' में स्वरचित और मासिक रचनाकार 'दिगम्बर' का विश्लेषण प्रस्तुत है। 'सौन्दर्य बोध' लेख में चेतना के अमूर्त और अदृश्य सत्ता से आभासित सौन्दर्य के मूर्त रूप प्रकृति की नैसर्गिक शोभा सुषमा के चित्रण के साथ उसके कलात्मक एवं सांस्कृतिक पक्ष का प्रतिबिम्ब दर्शित किया गया है।

[१८] 'धरातल' ज्ञान मंडल लिमिटेड बनारस से प्रकाशित श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन काल चैत्र संवत २००५ (सन् १९४८) है। 'धरातल' के परिचय में लेखक ने संकेत किया है कि धरातल लोक जीवन का धरातल है, गांधी जी जिस धरातल पर रामराज्य की स्थापना करना चाहते थे यह वही धरातल है। आज के इस उथल-पुथल एवं उलझन वाले युग मे जब कि अनेक वादों एवं विचारों का चारों ओर बोलबाला है एवं समस्त मानव समाज इस पृथ्वी पर प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर अपना अपना स्थान बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, एसे उद्भ्रान्त युग में मानवता की सुस्थिरता एवं सुरक्षा के लिए एक निश्चित बिंदु

की ओर सकेत किया गया है और वह केन्द्र है ग्राम। 'धरातल' म विविध कोटि के निब ध सगृहीत हैं। मानव के सामाजिक जीवन स सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर विचारपूण लेख हैं—नतिक हिंसा, मनुष्य और यत्र, रोगी और सेवा आदि। 'जीवन दशन' मे मानव की विभिन्न समस्याओ को उद्घाटित किया गया है। सपन्नता और विपन्नता दानो की सामाजिक अधोगति एक सी हो गयी है। इन समस्याओ के निरा करण के लिए लेखक न तपस्या एव श्रम के द्वारा मनुष्यो को श्रमण बनने के लिए अनुप्रेरित किया है। किसान और मजदूर प्रत्यावतन श्रम धम की ओर टाल्स्टाय की श्रम साधना, गावो की सास्कृतिक रचना आदि भी इसी कोटि के निबन्ध हैं। साथ ही साहित्य से सम्बन्धित लख भी हैं—साहित्यिक सस्थाओ का गन्तव्य तुलसी दास का सामाजिक आदश, सूरदास की काव्य साधना आदि। दूसरे महायुद्ध के बाद, जन सस्कारिता भाषा साम्प्रदायिकता सन् ४२ के बाद की भूल गाधी जी का बलिदान आदि अपनी मौलिकता से पूण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म लिख विचारपूण लेख हैं। अत धरातल म उद्योग सस्कृति और कला का स्वाभाविक समन्वय हुआ है। इसके साथ ही आज के यात्रिक युग के दुष्परिणामो की ओर सकेत करते हुए ग्रामो की महत्ता पर विशेष बल दिया गया है।

[१९] 'पदमनाभिका' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'पदमनाभिका कल्याणदास एण्ड ब्रदस ज्ञानवापी वाराणसी से प्रकाशित हुई है। इसका प्रकाशन काल सवत २०१३ वि० (सन १९५६) है। प्रस्तुत निब ध सग्रह मे आर्थिक, सास्कृतिक और साहित्यिक लेख हैं जिनम निबन्ध विधा के विविध रूप दष्टिगोचर होते हैं। इस निबन्ध सग्रह म लेखक ने सस्कृति को दष्टि मे रखते हुए साहित्यिक तथा सास्क तिक लेखो को सगहीत किया है जो वस्तुत प्रकृति के मूल तत्वो से ओतप्रोत हैं। द्विवेदी जी ने स्वय इसे स्वीकार किया है कि आधुनिक यथाथवादियो से भिन्न वह प्रकृतिधर्मा देहात्मवादी हैं। प्रस्तुत निबन्ध सग्रह के अन्तगत 'गोस्वामी तुलसीदास की भगवदभक्ति व्यावहारिक निबन्ध म तुलसीदास जी का जन्म परिचय तथा उनकी सस्कति का उल्लेख करते हुए राम और रामनाम के प्रति उनके दृष्टिकोण को लखक ने अभिव्यक्त किया है। नूतन और पुरातन वचारिक निबन्ध मे मानव और विश्व की नश्वरता का भान कराते हुए समय के प्रवाह की ओर सकत किया है। परिवतन सष्टि का एक प्राकृतिक नियम है इसी आधार पर लेखक ने नूतन और पुरातन काल की सभ्यता को स्पश किया है। सवेदना की शिराए वचारिक निबन्ध के अन्तगत लखक ने आधुनिक युग मे वास्तविक व्यवहार को स्पष्ट किया है। ग्रामगीत सद्धा न्तिक निबन्ध म लेखक ने सकेत किया है कि ग्राम गीतो के माध्यम स ही जीवन के निर्माण जगत म प्रवेश किया जा सकता है। इसमे लेखक ने गीतो की महत्ता के साथ ग्राम्य गीतो का उल्लेख किया है। 'छायावाद और प्रकृति वचारिक निबन्ध मे गाधीवाद के स्थूल औद्योगिक रूप और छायावाद के भावात्मक रूप म तादात्म्य

स्थापित किया गया है। 'पत जी की अतिमा' व्यावहारिक निबन्ध मे पन्त जी की अतिमा की आलोचना के साथ ही साहित्यिक दष्टिकोण से उनकी अन्य रचनाओ पर भी दृष्टिपात किया है। 'यशपाल की कला और भावना' व्यावहारिक निबन्ध के अन्तगत लेखक न यशपाल जी के उपन्यासो के माध्यम से जीवन के प्रति यशपाल के दष्टिकोण को प्रत्यक्ष किया है। 'नया कथा साहित्य' वैचारिक निबन्ध मे कला और जीवन की दृष्टि से कथा साहित्य मे अतीत और वतमान युग परिवतन की ओर सकेत किया गया है। बोधिसत्व कथात्मक निबन्ध म कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धाथ के जन्म एव जीवन का परिचय दिया गया है। नगर भ्रमण मनोमन्थन, महाभिनिष्क्रमण, तत्वान्वेषण, नवद्य, सम्बोधित आदि शीर्षकों क अन्तगत सपूण जीवन के चित्रण के साथ सम्बोधि प्राप्ति तक की कथा का उल्लेख है।

[२०] 'आधान' हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, ज्ञानवाणी वाराणसी से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की साहित्यिक, सास्कृतिक लेखो से पूर्ण पुस्तक आधान का प्रकाशन समय सन १९५७ ई० है। आधान का अभिप्राय स्थापन स है अत स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तक मे श्री द्विवेदी ने अपनी विचारधारा, दृष्टिकोण तथा मता की प्रतिस्थापना की है। 'आधान पुस्तक के काव्य मे भक्ति भावना' वचारिक लेख क अन्तगत भक्ति भावना का वास्तविक अथ बतलाते हुए हिन्दी साहित्य के भक्ति काल की सगुण और निगुण काव्यधारा की विवेचना की गयी है। 'रवीन्द्रनाथ का रूपक रहस्य' व्यावहारिक आलोचना मे नाटका और निबन्धा मे अन्तर्निहित साकेतिक रूपक रहस्यवाद का विवचन तथा कवि रवीन्द्रनाथ के नाटको की आलोचना की गयी है। 'प्रसाद की भाव सष्टि' व्यावहारिक आलोचना म जयशकर प्रसाद की काव्य कृतिया एव नाटको के माध्यम से प्रसाद जी क काव्यारम्भ एव उसके क्रमिक विकास पर दृष्टिपात किया गया है। 'मौलिकता का प्रतिमान' शीपक वैचारिक लेख क अन्तगत श्री द्विवेदी ने मौलिकता के वास्तविक अथ उसकी व्यापकता का मूल्याकन करते हुए उसके मानदण्डा की बडी ही सजीव विवेचना की है। निराला जी की काव्य दृष्टि' के अन्तगत निराला जी की काव्यात्मक दृष्टि का परिचय दिया गया है। 'निबन्ध का स्वरूप' म निबन्ध शब्द के आविर्भाव की पुष्टि विभिन्न प्राचीन साहित्यिक कृतिया क माध्यम से हुई है। 'प्रभाववादी समीक्षा' वचारिक लख म साहित्य के शास्त्रीय पक्ष एव प्रभाववादी समीक्षा पर श्री द्विवेदी न अपने मौलिक विचारों को प्रस्तुत करते हुए साहित्य समालोचना की अनेक प्रचलित पद्धतिया की विवेचना की है। 'विश्वविद्यालयो म साहित्य का ह्रास' मे आधुनिक युग की सकीण मनोवत्ति स्वरूप अर्थोपाजन ही जीवन का मुख्य ध्यय और विश्वविद्यालय मे व्यापारिक भावना के प्रवश स उसकी शिक्षा प्रणाली म भी दोष प्रारम्भ हो गए तथा धीरे धीरे साहित्य के ह्रास का लेखक न मनोवैज्ञानिक चित्र अकित किया है। 'धुरीहीनता एक नतिक समस्या' म भारती के लख धुरीहीनता क आधार पर ही द्विवेदी

जाने इस पर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'उद्योग और आत्मीय विचारात्मक
संघ में २७ अप्रैल सन् १९५७ को प्रयाग में उत्तर प्रदेशीय शिक्षा अधिकारी संघ
के आठवें अधिवेशन में मुख्य मंत्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी द्वारा दिये गये भाषण के
अन्तर्गत शिक्षा के प्रति उनके विचारों का अध्ययन तथा उनके विरोधी विवेचनों के
अपने विचारों को प्रस्तुत किया। 'सांस्कृतिक धारा' सांस्कृतिक संघ में पराधीन युग
में भारत के जन जीवन की सांस्कृतिक धारा को सूचित दर्शित किया गया है।
रचनात्मक योजना' वर्षारम्भ संघ में सहकारिता और सामाजिक भावना को
अन्त प्रस्फुटन माना है। 'निष्कर्ष' में स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री नेहरू के अखिल भारतीय
युवक कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में दिये गये भाषण की कुछ महत्त्वपूर्ण पंक्तियों को
उल्लिखित करते हुए जाता को सांस्कृतिक अभावमय और अन्य कल्प शून्य माना है।

[२१] 'चारिका' राष्ट्रीय प्रकाशन मन्दिर अमीनाबाद लखनऊ से प्रकाशित श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृति 'चारिका' का प्रकाशन काल अक्टूबर १९५८ है। वस्तुतः यह उपन्यास न होकर उसका ही एक अन्य रूप आख्यायिका है जिसे लेखक ने अपने शब्दों में 'आख्यायिका' कहा है। 'चारिका' में भगवान बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण है अतः इसका कथानक महर्षि प्रधान एवं दार्शनिक आध्यात्मिक विचारों से ओतप्रोत है। 'चारिका' में भगवान बुद्ध के सम्बोधि प्राप्ति से उनकी सम्पूर्ण आध्यात्मिक यात्रा की कथा को लेखक ने सोलह अध्यायों में विभक्त किया है। इस कथा में लेखक ने भगवान बुद्ध के जीवन का भी स्पर्श किया है। भगवान बुद्ध ही उपन्यास के प्रमुख नायक के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। 'धर्मचक्र प्रवर्तन' में बोधिवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध की सम्बोधि प्राप्ति तथा उसके प्रवर्तन हेतु चारिका एवं उनके प्रभाव का उल्लेख है। 'युग दर्शन' अध्याय के अन्तर्गत गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन का चित्रण है। स्वयं गौतम उसे स्मरण कर रहे हैं। 'अन्तर्निवेश' में श्रेष्ठिपुत्र यश का परिव्राजक की शरण में प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है। 'अनुसंधान' में श्रेष्ठिपुत्र यश के माता पिता की विकलता एवं उसे खोजने का प्रयत्न इंगित है। 'प्रबोधन' में यश की माता की इन सांसारिक प्रवृत्तियों का उल्लेख तथा मन में उठती विभिन्न शंकाओं का समाधान तथागत के माध्यम से किया गया है। 'पथनिर्देश' में श्रेष्ठिपुत्र यश के प्रव्रजित हो जाने के उपरान्त उसके अन्तरंग सखा के प्रव्रज्या धारण करने का उल्लेख और विश्व शान्ति के लिए विभिन्न दिशाओं में चारिका के लिए प्रस्थान का उल्लेख है। 'समर्पण' में बुद्धगया के महन्त उरुवेल काश्यप, उरुवेल काश्यप राजगृह के प्रमुख शिष्यों—सारिपुत्र और मौदगल्यायन—की पारिव्रज्यता धारण करने का चित्रण है। 'सान्त्वना' में यशोधरा अपने अतीत जीवन की स्वर्णिम स्मृतियों में खो जाती है। 'वात्सल्य' में राजा शुद्धोदन की पुत्र वियोगावस्था एवं विकलता का चित्रण है। 'परितोष' में भगवान बुद्ध के बारे में कपिलवस्तु की प्रजा एवं राजा-रानी को ज्ञात होता है। 'सम्मिलन' में राजा शुद्धोदन, महाप्रजावती, यशोधरा और

राष्ट्र आदि का गौतम बुद्ध से मिलाप का चित्रण है। 'उत्सर्ग' में श्रावस्ती के गृहपति का लोक कल्याण के लिए अपना सब वैभव आदि के उत्सर्ग करने का चित्रण है। 'लोकमाता' म महाप्रजावती तथा महिलाओं को प्रव्रजित करने न करने की दुविधा और अन्त म आनन्द के तर्क युक्त वाद विवादों के उपरात महिलाओं को भी उप सम्पदा ग्रहण करने की स्वतन्त्रता मिल गयी ऐसा इसम उल्लेख है। 'हृदय परिवर्तन' म श्रावस्ती के वन्य प्रान्त के नर पशु अगुलिमाल की कथा है जो अन्त म गौतम बुद्ध के प्रभाव से प्रभावित हो प्रव्रजित हो जाता है और स्वय को समर्पित कर देता है। विसर्जन' म लोकविश्रुत आम्रपाली की कथा का उल्लेख है जो अन्त मे तथागत की शरणागत हो जाती है। प्रस्थान' म गौतम बुद्ध के महाप्रयाण का चित्रण है जिसका आभास उन्हे उसम कुछ समय पूर्व ही हो गया था और वे अपने म ही समाहित होकर महापरिनिर्वाण के पथ पर अग्रसर हुए। इस प्रकार 'चारिका' की सपूर्ण कथा इतिहास स सम्बन्धित है और इसम गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का चित्रण है।

[२२] 'वृत और विकास भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी म प्रकाशित श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन समय सन् १९६१ है। इसम आर्थिक साहित्यिक और सास्कृतिक लेख सग्रहीत हैं। वृत और विकास साधन और साध्य का प्रतीक है। वृत म साधन कृषि और ग्रामोद्योग है साहित्य सस्कृति कला उसी का भाव विकास है। वृत और विकास म नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व लेख म नेहरू जी के भव्य व्यक्तित्व एव उनके अहिंसावादी और राष्ट्रीय विचारों की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। नेहरू जी की काव्यानुभूति लेख मे नेहरू जी का अपनी सस्कृति, अपने भारत और भारत की प्राकृतिक जलवायु प्रकृति के अपूर्व सौंदर्य सुषमा के प्रति अनुराग दर्शित है। छायावाद' लेख म आधुनिक भारतीय साहित्य के एक युग छायावाद' का उद्भव और विकास दिखाया गया है। 'पन्त की काव्य प्रगति और परिणति' लेख के अतर्गत क्रम विकास, समन्वय और अन्विति कला और रागात्मकता शीर्षक के अतर्गत श्री सुमित्रा नन्दन पन्त के सपूर्ण साहित्य के क्रमिक विकास उनम समयानुसार वैचारिक विभिन्नता, कला के प्रति उनका अनुराग तथा धरा एव प्रकृति स रागात्मक सम्बन्ध आदि का स्पष्टीकरण हुआ है। नयी पीढी—नया साहित्य लेख म नवीन तरुण युवकों के विभिन्न पाश्चात्य वादों से प्रभावित उनके नवीन साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। 'नाटक और रगमच लेख में नाटक को जीवन का कलात्मक सकलन माना गया है, और रगमच को ससार का सक्षिप्त क्रीडा क्षेत्र। 'नव युग की कविता' लेख म वातावरण और सचरण, कला और जीवन दर्शन शीर्षक के अतर्गत आधुनिक युग की कविता मे पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव को प्रतिबिम्बित किया है। 'वीरेन्द्र की काव्य सृष्टि' लेख म श्री वीरेन्द्र कुमार जैन की विभिन्न साहित्यिक उपलब्धियों के अन्तर्गत आए उनके

विचारों को स्पष्ट किया गया है। 'युगाभास' में लेखक ने छात्रों की अनुशासनहीनता, बेकारी की समस्या, दूषित शिक्षा प्रणाली, दूषित अर्थ प्रणाली, आदि समस्याओं का चित्रण करके उनके निराकरण पर विचार रूप में रचनात्मक कार्य प्रणाली से प्रभावित गांधी जी की बुनियादी शिक्षा, ग्रामीण एवं सामुदायिक उद्योग धंधा तथा रचनात्मक कार्यों को प्राधान्य माना है।

[२३] 'समवेत' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की विभिन्न निबन्धों से सगृहीत पुस्तक 'समवेत' नन्द किशोर एण्ड संस, चौक वाराणसी से प्रकाशित हुई जिसका प्रकाशन काल सन १९६० ई० है। प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने साहित्य, संस्कृति, कला, उद्योग व सामंजस्य के द्वारा एक मौलिक आधार प्रस्तुत किया है जो लेखक की क्रियात्मक एवं रचनात्मक साहित्यिक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। सौन्दर्य और कला शीर्षक निबन्ध में लेखक ने साहित्य संगीत कला के शब्द विन्यास में भी सरलता तथा अवबोधता का निदर्शन किया है। छायावाद का सगुण साहित्यिक निबन्ध के अन्तर्गत मध्य युग के सगुण और आधुनिक युग के छायावाद के सगुण के अन्तर को लेखक ने स्पष्ट किया है। रागात्मकता की समस्या साहित्यिक निबन्ध में कलानिधि एवं प्रकृति के सुकुमार कवि पन्त के साहित्य का पर्यावलोकन प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही हार पन्त का रचना सूत्र पुस्तक समीक्षात्मक निबन्ध की कोटि में आता है। 'शिवपूजन की साहित्य साधना' साहित्यिक व्यावहारिक निबन्ध में पद्मभूषण बाबू शिवपूजन सहाय की साहित्य सेवा का मूल्यांकन कर उनको हिन्दी भूषण से विभूषित किया गया है। 'हुतात्मा नवीन' व्यावहारिक निबन्ध में बालकृष्ण शर्मा नवीन के जीवन के विषय में उल्लेख करते हुए उनके जीवन दर्शन को भी प्रतिष्ठित किया गया है। 'प्रगति और संस्कृति' वैचारिक निबन्ध में हिन्दी में मार्क्सवाद के प्रभाव के फलस्वरूप प्रगतिवाद की समीक्षा कवि सुमित्रानन्दन पन्त और बालकृष्ण शर्मा नवीन के माध्यम से प्रस्तुत की है। नयी कविता के पांच रूप साहित्यिक निबन्ध में श्री द्विवेदी ने हिन्दी कविता के नवीन पाँच रूपों का उल्लेख किया है। नये उपन्यास और नये उपन्यासकार साहित्यिक निबन्ध में प्रसाद और प्रेमचन्द के बाद कालक्रमानुसार जनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास की मुख्य विशेषता की ओर संकेत है। झूठा सच एक युग निरीक्षण पुस्तक समीक्षात्मक निबन्ध में यशपाल के झूठा सच उपन्यास की आलोचना प्रस्तुत की गयी है। परिव्राजक का जीवन और चिंतन व्यावहारिक निबन्ध में स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के जीवन का परिचय देते हुए उनके बौद्धिक चिंतन को स्पष्ट किया है। विज्ञान और ग्रामोद्योग' वैचारिक निबन्ध में विनोबा जी के 'भूदान यज्ञ' का उल्लेख करते हुए स्वावलम्बन से ओतप्रोत नसर्गिक एवं घरेलू ग्रामोद्योगों की ओर मानव को प्रेरित किया है। 'प्रकृति और सहअस्तित्व' वैचारिक निबन्ध में प्रकृति को ही जीवन का मूल आधार माना गया है। अतएव सहअस्तित्व के लिए गांधी जी के ग्रामीण प्रयासों के अन्तर्गत चरखा खादी आदि को महत्व देते

हुए उसी को सहअस्तित्व का प्रतीक माना है। 'साधन और माध्यम' वैचारिक निबन्ध मे 'सर्वोदय सम्मेलन के लिए विचारणीय मुद्दे' के अन्तर्गत भूदान यज्ञ के सपादक श्री सिद्धराज चड्ढा के विचारो का उल्लेख करते हुए कुमरप्पा के विचारो का भी उल्लेख किया है और स्वय के मतो का स्थान-स्थान पर वैचारिकता के क्षेत्र मे सस्थापन किया है।

[२४] 'कवि और काव्य' इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवट लिमीटेड, प्रयाग से प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की पुस्तक 'कवि और काव्य' का प्रकाशन काल सन १९६० है। प्रस्तुत निबन्ध पुस्तक मे लेखक ने प्राचीन और नवीन हिन्दी कविता तथा काव्य सम्बन्धी व्यापक प्रसगो पर विविध समीक्षात्मक निबन्धो का सग्रह किया है। काव्य चितन मे कविता और सभ्यता का मानव जीवन मे महत्व एव कविता की ही प्रतिस्थापना लेखक ने इस सैद्धान्तिक निबन्ध मे प्रस्तुत की है। 'नूतन और पुरातन काव्य' मे काव्य का अमरत्व, भाव और सूक्ति हृदय की कविता सहृदयता और सदभाव की आवश्यकता, प्रेम का स्वप्न रहस्यमय चेतन आदि शीर्षको के अतगत नूतन और पुरातन काव्य की विवेचना प्रस्तुत की गयी है। मीरा का तन्मय सगीत व्यावहारिक समीक्षात्मक निबन्ध मे निर्गुण और सगुण, आर्य जाति का कला प्रेम वह पगली साधना की तल्लीनता उपासना पद्धति, निर्गुण की ओर तथा अपनी गल बताजा आदि शीर्षको के अतगत मीरा की उपासना पद्धति एव सगुण निर्गुण का पर्यावलोकन किया गया है। 'प्राचीन हिन्दी कविता' मे भक्तो की भाव दृष्टि मथुरा यात्रा, शृगारिक कवियो का कवित्व सास्कृतिक काव्याश विजातीय सहयोग, साहित्यिक सगम आदि शीर्षको के अतगत निर्गुण और सगुण धारा के कवियो की भक्ति के प्रति भावात्मक दृष्टि का विवेचन किया गया है। 'आधुनिक हिन्दी कविता' विचारात्मक निबन्ध मे श्री द्विवेदी जी ने उन्नीसवी शताब्दी के विभिन्न कवियो का परिचय दिया है। 'छायावाद रहस्यवाद और दर्शन' मे काव्य सगम, छायावाद का महत्व, वर्तमान जीवन, भिन्नता मे नूतनता वस्तुपाठ और छायावाद रहस्यवाद, दार्शनिकता और रहस्यवादिता आदि की विचारात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'कविता मे अस्पष्टता' वैचारिक निबन्ध मे भाषा और भाव, साहित्य और कला साहित्यिक सरलता कुलवधू कविता टैनीसन का परिहास, कवि का शिशु दृष्टि दृश्य और अदृश्य अस्पष्टता का अपर कारण अतर और वाह्य चेतना आदि पर क्रमबद्ध विचार प्रस्तुत किये हैं। नवीन काव्य क्षेत्र मे महिलाएँ व्यावहारिक निबन्ध मे ससार के शुष्क जीवन मे नारी की करुण और ममता का महत्व बतलाते हुए श्री द्विवेदी जी ने नवयुग की हिन्दी कविता मे महिलओ के योगदान का दिग्दर्शन किया है। ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला' विचारात्मक निबन्ध मे लेखक ने मानव के नैसर्गिक जीवन को स्पष्ट करते हुए आधुनिक युग मे उसका विश्लेषण किया है। 'कवि की करुण दृष्टि' व्यावहारिक निबन्ध के अतगत श्री द्विवेदी ने

विशेष कर्मों और दुःखद घटनाओं के फलस्वरूप कमल की आत्मग्लानि एवं पश्चात्ताप चित्रित है। 'विश्व' में संसार का विद्रूप अट्टहास है जहाँ केवल यंत्र ही गतिमान है, मनुष्य नहीं। 'व्यक्ति और युग' में प्रकृति की सजीवता और चेतना के द्वारा कृषि व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया गया है। 'शुभ चिह्न' के अन्तर्गत निराला महायुद्ध और भारतीय स्वतन्त्रता के चित्रण के साथ विभिन्न वादों का निरूपण है। 'खादी एक सार्वभौम समस्या' में बेकारी की समस्या का निराकरण है। ग्रामोद्योग के द्वारा श्रम सहयोग और स्वावलम्बन सम्भव है। ग्रामीण उद्योगों के पुनरुत्थान के लिए खादी का विशिष्ट महत्व है। 'खादी एक नैसर्गिक गाथा' में खादी के महत्व की ओर संकेत है। 'लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना' में सांस्कृतिक त्योहारों का सजीव चित्रण है जिसके अन्तर्गत सर्वकल्याण की भावना एवं पुरुषार्थ का मुख्य सन्देश अन्तर्निहित है। 'विज्ञान और अध्यात्म' में औद्योगिक और वैज्ञानिक तकनीकों के विरुद्ध आवाज उठाई गयी है। 'युग और जीवन' में मनुष्य 'उदर निमित्तम् बहुकृत वेशम्' के हेतु मिस्त्री के सम्पर्क में आकर स्वयं टकसाली हो गया है परन्तु जीवन के स्थायित्व के लिए अर्थशास्त्र को टकसाली से और श्रम को यंत्रों से मुक्त करना आवश्यक है। 'भविष्य की चिंता' में लेखक के सम्मुख एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा हुआ है। कारण यह क्षितिज में सुप्त है उसी के अनुरूप अदृश्य और अप्राप्य है। वस्तुतः लेखक का मुख्य उद्देश्य अपने समाज का अपने युग का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना है जिसमें वह पूर्ण सफल हुआ है। इस उपन्यास में लेखक का सूक्ष्म एवं वास्तविक निरीक्षण तथा युग विश्लेषण है।

[२७] स्मृतियाँ और कृतियाँ : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी की अंतिम प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी से हुआ। इसका प्रकाशन काल सन् १९६६ ई० है। 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' संस्मरणात्मक और समीक्षात्मक लेखों का संग्रह है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रथम स्मृतियों के रूप में कुछ संस्मरण प्रस्तुत हैं तथा कृतियों के अन्तर्गत कुछ समीक्षात्मक लेख हैं। संस्मरण के अन्तर्गत 'स्मृति के सूत्र' लेख में द्विवेदी जी ने अपनी परिस्थितियों और समस्याओं की अन्य साहित्यकारों की परिस्थितियाँ, समस्याओं एवं उनके व्यक्तित्व से तुलना प्रस्तुत की है। इसमें जीवन के विभिन्न स्मृति के सूत्र संजोये गये हैं। 'प्रतिक्रिया' में पंत जी ने नये जीवन के निरूपण हेतु मासिक पत्र 'रूपाभ' के प्रथम अंक के सम्पादकीय में जो कुछ लिखा था उस बात का प्रभाव श्री द्विवेदी जी पर प्रारम्भ से तो न पड़ सका परन्तु युग की गति और जीवन के आरोह-अवरोह से लय बद्ध न हो पाने पर उन्होंने पंत की उन पंक्तियों की सार्थकता को स्वीकार किया। 'प्रभात से संध्या की ओर' में पहले जीवन के प्रारम्भिक क्षणों का सारांश उल्लिखित है और फिर अपने जीवन का साम्य चार्ल्स लैम्ब से मिलाया है। 'शेष सम्पदा' में बहिन का देहावसान उससे प्राप्त सूनापन और ऐसे समय में राष्ट्रकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का संवेदनात्मक सूचक पत्र उल्लिखित

है। 'युग सकट' मे मुक्तिबोध श्री पन्त के देहान्त के दो वर्ष पूर्व हुए साक्षात्कार को स्मृति म सजोकर रखा गया है। 'निराला जी की प्रथम स्मृति' म १९२५ ई० कलकत्ता में मतवाला मडल मे हुई प्रथम भेंट की स्मृति में आकर कर लेख में बद्ध किया गया है। 'निराला जी मेरी दृष्टि में' म निराला जी का देहावसान, उनके जीवन का आकलन लेखक न अपनी दृष्टि से किया है। निराला जी जीवन और काव्य' में श्री द्विवेदी जी ने निराला जी से अपने प्रथम परिचय और अतिम परिचय का उल्लेख किया है। 'अनमिल आखर पत और मैं लेख में निराला और पत में भिन्नता दर्शित करके द्विवदी जी ने स्वय अपने प्रथम परिचय और वार्तालाप के विसम्वादी हो जाने का उल्लेख किया है। जीवन के क्षेत्र में दोनो में बहुत अन्तर था। नेहरू जी की अतिम स्मृति में सन् १९६३ में विजयादशमी क अवसर पर उनकी एक झलक मात्र दखने का अकन है। समीक्षा के अन्तर्गत 'एक साहित्यिक वार्तालाप में साप्ताहिक 'गिरिद्वार' में श्री अजयशेखर द्वारा लिए गए श्री द्विवेदी जी से इटरव्यू की समीक्षा प्रस्तुत है। 'समय और हम' में जनेन्द्र जी का बहुत नवीन सग्रह समय और हम की समीक्षा प्रस्तुत है। नयी सर्जना' में श्री द्विवेदी जी के 'नवलेखन' की पृष्ठभूमि में समीक्षा प्रस्तुत की है। 'अज्ञेय जी की पूर्वा' म श्री द्विवेदी जी ने पूर्वा की समीक्षा प्रस्तुत की है। प्रेम और वात्सल्य के अग्रज कवि माखनलाल' लेख म श्रद्धेय प० माखनलाल चतुर्वेदी जी की साहित्यिक और सास्कृतिक प्रेरणा की ओर सकेत किया गया है। 'राष्ट्र कवि गुप्त जी का काव्य योग' म गुप्त जी के काव्य म द्विवदी युग के प्रभाव का अकन करते हुए उसकी समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। गोदान और प्रेमचन्द म प्रेमचन्द के जीवन का चित्र खीचकर गोदान उपन्यास की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। 'प्रसाद का साहित्य' म प्रसाद जी के सपूर्ण साहित्यिक कृतियो की साराश म समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। कामायनी के बाद में पत और प्रसाद के साहित्य पर दृष्टि डालते हुए लेखक की दृष्टि महादवी पर जा टिकी है। छायावाद पुनर्मूल्याकन मे प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अन्तर्गत निराला व्याख्यानमाला म कविवर पत जी के पठित भाषणों का सग्रह है। लोकायतन' शीर्षक लेख में पत जी के बहुत काव्य लोकायतन की समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। माधवन जी का रचनात्मक चिन्तन' शीर्षक समीक्षात्मक लेख म श्री द्विवदी जी न उनके जीवन के अकन के साथ उनके विचारो को प्रदर्शित किया है और साहित्य की ओर दृष्टिपात किया है। बिना पैसे दुनिया का पैदल सफर म यात्रा वत्तान्त है। 'सामयिक कथा साहित्य में प्राचीन साहित्य का पर्यावलोकन करते हुए द्विवेदी जी इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जीवन की तरह ही आज कथा साहित्य का शिल्प भी नवीन और आधुनिक हो गया है। उन्होंने इसके कई दृष्टान्त भी प्रस्तुत किये हैं।

प्रस्तुत प्रब ध का विषय क्षेत्र और मौलिकता

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की लिखी हुई जिन कृतिया का सक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है उनका सम्बन्ध साहित्य की विभिन रचनात्मक विधाओ स है। कविता के क्षेत्र मे उनकी रचनाए छायावादी विचारधारा से साम्य रखती हैं। आलोचना के क्षेत्र म उनकी दष्टि समन्वयवादी है। निब ध क क्षेत्र मे उनकी कृतिया पर शुक्ल युग की प्रवत्तियो का स्पष्ट प्रभाव है। उपन्यास के क्षेत्र म वह प्रमच दोत्तर युग के लेखक हैं। आत्म कथा तथा सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे वह आत्मन्यजना प्रधान लखको म हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म आपन रचनात्मक प्रतिभा का समान रूप से परिचय न्यिा है यद्यपि ऐसे लेखको की सख्या बहुता बडी है जो किसी एक क्षेत्र विशेष म विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त कर चुके हैं। उदाहरण के लिए राहुल साकृत्यायन चतुरसेन शास्त्री तथा प्रेमचन्द जसे लेखको ने कथा साहित्य के क्षेत्र म महान उपलब्धियाँ प्राप्त की। शातिप्रिय द्विवेदी का स्थान इनसे पृथक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा जयशकर प्रसाद जसे साहित्यकारो के साथ है जिन्होने उपन्यास निबन्ध तथा कविता आदि क्षेत्रो म अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया। द्विवेदी जी का साहित्य अपने युग की प्राय सभी प्रवत्तिया को अपन आप म समाहृत किय हुए है। समकालीन साहित्य के गद्य और पद्य रूपो स सम्बधित जो आन्दोलन वचारिक स्तर पर द्विवेदी जी के युग म हुए उनम छायावाद प्रगतिवाद, यथार्थवाद तथा प्रयोगवाद आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी जी ने जहाँ एक ओर इन विचारान्दोलनो स व्यापक प्रेरणा ग्रहण की है वहा दूसरी ओर इनके क्षेत्रो म अपनी रचनात्मक प्रतिभा की मौलिकता का भी परिचय दिया है। दशन सस्कृति परम्परानुगामिना आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान समाजशास्त्र, राजनीति और साहित्य म निहित जीवन मूल्यो का सम्यक विवेचन उनके बहुपक्षीय चितन का द्योतक है। अनेक गम्भीर समस्याओ स सम्बन्धित उनके निर्णयात्मक म तव्य उनक वचारिक चितन की मौलिकता के द्योतक हैं। यद्यपि द्विवेदी जी ने एक जागरूक साहित्यकार की भाति सतत चितन शीलता का परिचय दिया है परतु आधुनिक राजनतिक जीवन दशनो स प्रभावित मनवाद म उनकी विचारधारा पर गाधीवाद तथा समाजवाद का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है क्योकि उनके मन से यह दष्टिकोण यवहारत आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्रीय एकरूपता रखते हैं। द्विवेदी जी ने अनेक समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए जहा एक ओर प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन पर बल दिया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन म सतुलन की आवश्यकता भी बतायी है। द्विवेदी जी का विविध विषयक साहित्य सम्यक मूल्याकन की अपेक्षा रखता है। यह उल्लेखनीय तथ्य है कि जहा एक ओर द्विवदी जी के जीवन काल एव उनकी मृत्यु क उपरात अनेक कृतिया न उनके व्यक्तित्व और कृतित्व से सम्बधित बहुत सी स्फुट रचनाए यत्र तत्र प्रकाशित की हैं वहा दूसरी ओर उनके जीवन और

साहित्य का समग्र रूप म मूल्याकन करने वाला आलोचनात्मक अथवा शोधपरक ग्रथ अब भी प्रकाशित नही हुआ है। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे 'ज्योति विहग', 'कवि और काव्य', 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'सचारिणी' के आधार पर आलोचना साहित्य, ततीय अध्याय म 'आधान', 'पद्मनाभिका वृत्त और विकास, धरातल, जीवन यात्रा, साकल्य, 'सामयिकी, साहित्यिकी, युग और साहित्य, परिक्रमा' तथा समवत के आधार पर निबन्ध साहित्य चतुथ अध्याय मे 'चारिका' 'दिगम्बर' तथा चित्र और चिन्तन' के आधार पर उपन्यास साहित्य पचम अध्याय म पथचिन्ह, 'परिव्राजक की प्रजा', प्रतिष्ठान तथा स्मृतियाँ और कृतियाँ के आधार पर सस्मरण साहित्य तथा षष्ठ अध्याय मे 'नीरव और हिमानी' के आधार पर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए सप्तम और अन्तिम अध्याय म उनकी विचारधारा और जीवन दशन का सम्यक विश्लेषण किया गया है जसा कि ऊपर सकेत किया गया है, इस विषय पर यह सवप्रथम शोधपरक अध्ययन है जिसमे समकालीन पृष्ठभूमि म द्विवेदी जी के जीवन और समस्त साहित्य का अध्ययन किया गया है। प्रबन्ध को अनावश्यक और अनपेक्षित विस्तार से बचाने के लिए इसके क्षेत्र को सीमित रखा गया है तथा इसमे यथासम्भव निष्पक्ष और तटस्थ दष्टिकोण स शातिप्रिय द्विवेदी के विविध विषयक साहित्य का अध्ययन और मूल्याकन करते हुए आधुनिक हिन्दी साहित्य क क्षेत्र म उनकी उपलब्धियों का निदशन किया गया है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का आलोचना साहित्य

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के विगत अध्याय म इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी रचित साहित्य मे उनकी आलोचनात्मक और सृजनात्मक दोनो ही प्रकार की कृतियाँ हैं। प्रस्तुत अध्याय म द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य का अध्ययन और मूल्यांकन किया जा रहा है। द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य के सम्बन्ध म यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि उनके आलोचना ग्रन्थ मुख्यत दो वर्गों म विभाजित किए जा सकते हैं। प्रथम वग म वे कृतियाँ आती हैं जो उनके सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षात्मक चिन्तन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करती है और द्वितीय वग म वे कृतियाँ आती हैं जो मुख्यत समीक्षात्मक निबन्धो का सग्रह हैं। इनम स प्रथम वग म 'ज्योति विहग' शीर्षक कृति को रखा जा सकता है और द्वितीय वग म 'हमारे साहित्य निर्माता' 'सचारिणी' 'कवि और काव्य' आदि को। इस द्वितीय वग म ही 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसका अर्द्ध भाग समीक्षात्मक निबन्धो क रूप म है। इसके साथ ही इसी प्रसग म यह उल्लेख करना भी अनावश्यक न होगा कि समीक्षा प्रधान दृष्टिकोण स लिखे गये निबन्धो का इस अध्याय म विवेचन नही किया गया है और उनका पृथक और स्वतन्त्र अध्ययन आगामी तृतीय अध्याय म किया गया है क्योकि उनका औचित्य निबन्धात्मक माध्यम क रूप म अधिक है। इस दृष्टि स इस अध्याय म द्विवेदी जी क आलोचना साहित्य का जो अध्ययन किया जा रहा है उसका आधार मुख्य रूप म 'हमारे साहित्य निर्माता' 'ज्योति विहग' 'सचारिणी' 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि कृतियाँ ही हैं।

द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

[१] हमारे साहित्य निर्माता प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी जी के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने म समर्थ है। डा० नगेन्द्र ने उनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व क प्रति अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है कि शान्तिप्रिय जी का साहित्य क मर्म की कमी परख है कमी कम आलोचकों को है। परिमाण और गुण दोनो की दृष्टि स हिन्दी आलोचना क विकास म उनका योगदान अक्षुण्ण है। उनकी मार्मिक रचनाओं क अभाव म छायावादी काव्य का रस हिन्दी क सहृदय समाज तक सम्प्रेषित न हो पाता। ऐसे आलोचक कम हैं जिनकी समीक्षा लेकर भी आलोच्य काव्य और आलोचक क हृदय रस म इस प्रकार मधुसिक्त हो

उठती है।' वस्तुतः आलोचना साहित्य के क्षेत्र में आपकी पैठ बहुत गहरी है। आलोचना के विकासात्मक इतिहास में आपका योगदान एवं उसमें भी आपकी रचनात्मक प्रवृत्ति एवं नवीनता के क्षेत्र में पदार्पण अविस्मरणीय है। व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में हमारे साहित्य निर्माता का विशिष्ट महत्व है। इसमें लेखक ने अपने समकालीन लेखकों में से कुछ को ही उल्लिखित किया है जो विभिन्न शैलियों एवं विचारधाराओं का अनुगमन करते थे। द्विवेदी जी ने स्वयं ही 'निवेदन' में अपने उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया है 'इस प्रस्तुत प्रयास का लक्ष्य साहित्य का ऐतिहासिक अनुसंधान उपस्थित करना नहीं, बल्कि वर्तमान काल के जीवित साहित्य निर्माताओं के क्रियाकलापों के अनुशीलन के लिए कुछ उपकरण मात्र उपस्थित करना है।'[1] स्पष्ट है कि द्विवेदी जी ने अपनी प्रस्तुत कृति को इतिहास की पृष्ठभूमि पर अवलम्बित नहीं किया है। इसमें साहित्यिकों के विचार एवं भाव विकास तथा उनके दृष्टिकोण का निदर्शन किया गया है। इसके साथ ही उनकी शैली एवं भाषा पर भी विचार किया गया है। प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति के लेखक चौदह प्रमुख साहित्यकारों से सम्बन्धित हैं जिनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्याम सुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर 'प्रसाद', राय कृष्ण दास, राधिकारमण प्रसाद सिंह, माखन लाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा हैं।

[२] 'ज्योति विहग' द्विवेदी जी की 'ज्योति विहग' शीर्षक आलोचनात्मक रचना आधुनिक हिन्दी साहित्य के विशिष्ट कवि सुमित्रानन्दन पन्त के साहित्य का सम्यक मूल्यांकन प्रस्तुत करती है। लेखक ने इसमें हिन्दी कविता के विकास के अन्तर्गत ब्रज भाषा, खड़ी बोली, द्विवेदी युगीन काव्य तथा छायावाद की काव्यभूमि प्रस्तुत की है। पन्त के काव्य के आधार का काव्य निरूपण करते हुए लेखक ने उसकी विकास रेखा, अन्तर्दर्शन, काव्यारम्भ, वीणा, नवोन्मेष, नैवेद्य, ग्रन्थि, तथा उच्छवास आदि के विकास बिन्दुओं को केन्द्रगत रखते हुए की है। 'ज्योति विहग' में शांतिप्रिय द्विवेदी ने शब्दों का व्यक्तित्व, चित्र भाषा और चित्र राग, छन्दों की परख, अतुकान्त और मुक्त छन्द, तुकान्त और गीति काव्य तथा अलंकार आदि काव्य तत्वों के आधार पर पन्त की काव्य कला का सम्यक निरूपण किया है। पन्त का काव्य छायावाद के स्वरूप वशिष्ट्य का द्योतक है। जैसा कि पन्त ने अपनी काव्य धारणा का स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं लिखा है 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है हमारे जीवन का हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है, अपने उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन छन्द ही में बहने लगता है। उसमें एक प्रकार की संपूर्णता स्वर ऐक्य तथा संयम आ जाता है। प्रकृति के प्रत्येक कार्य रात्रि दिवस की आँख मिचौनी,

---

१ हमारे साहित्य निर्माता श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, 'निवेदन', पृ० १।

षडरितु परिवतन सूय शशि का जागरण शयन, ग्रह उपग्रहो का अशात नत्तन, सृजन स्थिति सहार सब एक अन त छ द एक अखड सगीत हो म होता है कविता विश्व का अ तरतम सगीत है। उसके आन द का रोम हास है। उसम हमारी सूक्ष्मतम दष्टि का मम प्रकाश है। इस धारणा स छायावादी कविता की कला का रूप वशिष्ट्य स्पष्ट होता है। अपन आप म यह उद्धरण गद्य शिल्प का जो स्वरूप उपस्थित करता है वह का य के अ त पक्ष को अपेक्षाकृत अधिक महत्ता देता है। इसलिए द्विवेदी जी न पत क का य की जा व्यावहारिक आलोचना इस कृति म का य कला स इतर विवचन के रूप म प्रस्तुत की है वह सत्य शिव सु दरम् क शाश्वत दष्टिकोण पर आधारित है। द्विवेदी जी का म तव्य है कि पत द्वारा अपन का य म प्रयुक्त श द जीव त व्यक्तित्व स युक्त है। पत इस दष्टि से एक समथ श द निर्माता हैं। उनक श द प्रयोगो मे सूझ बूझ सूक्ष्म दष्टि पर्याय प्राचुय के साथ साथ श दो के नसर्गिक गुण भी मूर्तिमान हो उठे हैं। *श दो के व्यक्तित्व के अनुसार ही छ द रचना भी* नियोजित होती है। प त का यह विचार है कि प्रत्यक भाषा क छ द उसके उच्चारण सगीत के अनुकूल होन चाहिए। साथ ही राग ध्वनि आदि क नियोजन म पत न *जिस सजगता का परिचय दिया है वह सपूण शब्द रचना को एक सजीव सष्टि क* रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

[३] सचारिणी श्री शातिप्रिय द्विवेदी लिखित सचारिणी शीषक निब ध सग्रह भी विशेष रूप स आलोचना साहित्य के अ तगत ही उल्लिखित किया जा रहा है। इसका कारण यह है कि इसमे जो निब ध सगहीत किय गये हैं वे भावात्मक अथवा अनुभूत्यात्मक न होकर मुख्यत सद्धा तिक अथवा व्यावहारिक आलोचना स सम्ब धित हैं। कुछ निब ध इस सग्रह म वचारिक कोटि के भी हैं। इन निब धो मे लखक की आलोचना दष्टि के साथ साथ उसक साहित्य सम्ब धी सिद्धा तो और मा यताओ का भी परिचय मिलता है। सचारिणी के आलोचनात्मक लख विविध युगो के प्रतीक स्वरूप परस्पर क्रमबद्ध हैं जिनम लेखक की अपनी मा यताओ की अभिव्यक्ति है। भक्ति काल की अ तश्चेतना' आलोचनात्मक लेख म श्री द्विवेदी जी न भक्ति काल के का य साहित्य के मार्मिक स्थल का स्पश किया है। यह वष्णव साहित्य दुखान्त या सुखा त न होकर प्रशा त अथवा प्रसादा त है। श्री द्विवेदी जी न प्राचीन *साहित्य क आधार पर नारी के महत्व का निरूपण किया जिसक मस्तक* पर अनन्त करुणा क रूप म दुखा त पक्ष ही समाविष्ट हो जाता है। भारतीय की वष्णव सस्कृति कलात्मक है। सत्य शिव सु दरम क रूप म वह आध्यात्मिक और अलौकिक जगत का भी स्पश करता है। इसक विपरीत पाश्चात्य सभ्यता कवल लौकिक और कलात्मक है। अत मान व आत्मबोध क लिए और रस की आत्मसाधना म भारत का दष्टिकोण कला का सत्य शिव और सुन्दरम् है। मध्यकाल की हि दी कविता गृहस्थी क नश्वर जीवन में अविनश्वर का समावेश है। भारतीय संस्कृति

चेतनता मे विश्वास करती है। उसी के प्रति उसकी अनन्य भक्ति भावना है। फल-स्वरूप जीवन म दार्शनिक जागरूकता जाग्रत रहती है और मानव पुनर्जन्म का विश्वासी हो जाता है। भारतीय काव्य साहित्य म सच्चिदानन्द का करुणामय स्वरूप लोक का परमात्म रूप है। वैष्णव काव्य रहस्यवाद से ओतप्रोत है जिसम सगुण रूप म पार्थिव और अपार्थिव रूप विद्यमान है। तुलसी काव्य कर्म प्रधान है जब कि निर्गुण का ज्ञानमय और कृष्ण काव्य भाव योग है। ज्ञान और कर्म योग के सदृश भाव योग भी एक दिव्य योग है। तुलसीदास जी ने इन तीनो का सम्मिश्रण कर इस गृहस्थो के लिए सुलभ किया है। निर्गुण का माधुर्य रूप आधुनिक युग म रहस्यवाद है और सगुण का परिष्कृत रूप वर्तमान का छायावादी रूप है।

[४] 'कवि और काव्य' 'कवि और काव्य' शीर्षक कृति म श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के प्राचीन और नवीन हिन्दी कविता तथा काव्य सम्बन्धी व्यापक प्रसगो पर विविध समीक्षात्मक निबन्ध सगृहीत हैं। स्थूल वर्गीकरण के अनुसार यह कृति द्विवेदी जी के निबन्ध सग्रहो के अन्तर्गत भी रखी जा सकती है परन्तु यहां पर इसका उल्लेख विशेष रूप से आलोचना साहित्य के अन्तर्गत इसलिए किया गया है कि इसम जो निबन्ध सगृहीत हैं व लेखक के आलोचनात्मक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण करन मे सहायक हैं। इनसे लेखक की आलोचनात्मक मान्यताओ का भी परिचय मिलता है। अधिकाश लेखो के विषय व्यावहारिक आलोचना स सम्बन्धित हैं। कुछ निबन्ध अवश्य इस कथन का अपवाद हैं जिनम सैद्धान्तिक नियमन उपलब्ध होता है। कुछ निबन्ध सैद्धान्तिक व्यावहारिक आलोचना के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं जिनमे सिद्धान्त आंशिक रूप म ही उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त विचारात्मक लेखो म भी आलोचनात्मक शैली का प्रतिपादन हुआ है। प्रस्तुत कृति म काव्य चिन्तन, नूतन और पुरातन काव्य, मीरा का तन्मय सगीत, प्राचीन हिन्दी कविता आधुनिक हिन्दी कविता, छायावाद, रहस्यवाद और दर्शन, कविता मे अस्पष्टता, नवीन काव्य क्षेत्र मे महिलाएं, ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला, कवि की करुण दृष्टि, कवि का मनुष्य लोक वेदना का गौरव काव्य की लाछिता कैकेयी और काव्य की उपेक्षिता उर्मिला आदि लेख सगृहीत हैं। इसका प्रारम्भिक लेख ही सैद्धान्तिक नियमो से ओत प्रोत है जिसमें काव्य चिन्तन के अन्तर्गत लेखक ने अपनी मान्यताओ एव सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। मानव सभ्यता के उत्थान मे कविता के वास्तविक महत्व का प्रतिपादन किया गया है। आज ससार की अपनी विद्रूपता से मोक्ष कविता के माध्यम स ही सम्भव है। काव्य म रस की दृष्टि से मानव हृदय के कोमल रसो— शृंगार भक्ति, शान्त, करुण वात्सल्य—के साथ मानव म अवशिष्ट पाशविक अशो के रूप म रौद्र वीभत्स भयानक आदि को उद्धृत किया है। जिस प्रकार भावो के लिए समुचित शब्दो की आवश्यकता होती है उसी प्रकार भावो की गति के लिए छन्दो की भी आवश्यकता है। सगीत म जो काम ताल का है काव्य म वही काम छन्द का।

शब्द यदि भावो म सास भरते हैं तो छद भावो को गति देते हैं। काव्य म रस का वही स्थान है जो पुष्प मे गध का। जिस प्रकार विभिन्न सौरभ विभिन्न पुष्पो म अपने अनुरूप आवास पाते हैं उसी प्रकार विभिन्न छद विभिन्न रसो के लिए पुष्प का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्द से लेकर रस तक काव्य म प्रवाह की एक लडी सी बधी रहती है। शब्द छद को अग्रसर करते हैं, छद भाव को और भाव रस को।' चित्र सगीत और अलकार के साथ ही काव्य मे त्रिगुण—विभूति, श्री ऊर्ज—के फल स्वरूप अनुभूति के त्रिविधि स्वरूप—भावना चिता प्रभृति—तथा त्रिमूर्ति के अनुरूप त्रिवाणी—सत्य शिव, सुन्दर —की सत्ता का प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी ने चिरन्तन काव्य प्रवाह म नूतनता एव भाव अपनाव, वस्तु जगत और भावजगत कविता और कला मनुष्य और मनुष्येतर प्रकृति कविता और विज्ञान आदि पर अपने सिद्धान्ता एव विचारो का प्रतिपादन करते हुए उपस्थित किया है।

[५] स्मृतियां और कृतियां' समीक्षा एव सस्मरण दो खडा म विभक्त स्मृतियाँ और कृतियाँ नामक कृति म श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी ने अपनी नवीन रचनात्मक प्रवृत्ति की ओर सकेत किया है। प्रस्तुत कृति म सगृहीत समीक्षात्मक लेखा म अधिकाश लेख साहित्यिक दृष्टि से लिखे गये हैं। लेखक के साहित्य मे रचनात्मक शब्द का प्रयोग जीवन मे कम पक्ष की प्रधानता को महत्व प्रदान करता है। रचना शब्द मे रचने का जो भाव है वह शिल्प (लेखन कला) की अपेक्षा करता है। आचार्य पडित केशव प्रसाद मिश्र के शब्दो मे शिल्प साहित्य का क्रियाकल्प है।' और इस दृष्टि से शिल्प से हिन्दी साहित्य की समस्त विधाए रचना की कोटि म रखी जा सकती हैं। श्री द्विवेदी जी के सपूर्ण साहित्य मे उनका रचनात्मक दृष्टकोण भाषा भाव शैली आदि समस्त क्षेत्रो मे अवलोकित होती है। एक साहित्यिक वार्तालाप शीर्षक आलोचनात्मक लेख म श्री द्विवेदी जी ने श्री अजय शेखर जी के द्वारा लिये इटरव्यू को उसी रूप मे प्रस्तुत किया है जिस रूप मे श्री अजय शेखर ने साप्ताहिक 'गिरि द्वार म अपने स्नेह सौहार्द से सिक्त उद्गारो को उनके साथ हुए इटरव्यू के साहित्यिक वार्तालाप को प्रकाशित करवाया था। इसमें लेखक के अग्रेजी भाषा के सम्बन्ध म विचार नये कवियो के प्रति उनके विचार नयी कविता का भविष्य साहित्यिको की आर्थिक स्थिति म सुधार, साहित्य की ओर झुकाव का कारण आधुनिक मानव की मनोवृत्ति के सम्बन्ध म उनके विचार जीवन का अत्यन्त दुखमय और सुखमय दिन तथा स्वय पर आलोचक न होकर एक शैलीकार के रूप म आक्षेप का खडन आदि श्री द्विवेदी जी के विचारात्मक स्तर को प्रकट करता है जो उनकी निःसकोच और निश्छल प्रवृत्ति का द्योतक है। अग्रेजी भाषा के सम्बन्ध म उनका मत है कि भारत म गाधी जी के सिद्धान्तो एव रचनात्मक कार्यों के प्रतिपादन से

१ स्मृतियां और कृतियां श्री शांतिप्रिय द्विवेदी (निवेदन) पृ० १।

स्वावलम्बी भारत स्वयं ही अंग्रेजी भाषा को त्याग देगा, उसके लिए विरोध व्यर्थ है। नये कवियों के प्रति कटाक्ष करते हुए द्विवेदी जी के मन में नये कवियों में मनन चिन्तन का अभाव है वह विदेशी साहित्य की नकल कर उसे देशी रूप प्रदान करते हैं। अत नयी कविता का भविष्य भी उज्ज्वल नहीं है। साहित्यकारों की आर्थिक स्थिति में सुधार के प्रति उनकी दृष्टि में अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र के बदलने से ही समाज की स्थिति एवं साहित्यकारों की स्थिति में सुधार सम्भव है। आधुनिक मानव की साधारण मनोवृत्ति आर्थिक एवं स्वार्थी हो गयी है मानसिक विकास में यह अवरोधक है, इसके लिए भी अर्थशास्त्र में आमूल परिवर्तन आवश्यक है। शैलीकार तथा आलोचक के सन्दर्भ में उन्होंने उत्तर दिया 'यदि मुझे लोग शैलीकार के रूप में मानते हैं तो मेरी लेखन कला को पहचानते हैं किन्तु शैलीकार होने का अभिप्राय यह नहीं है कि साहित्यकार कवि और आलोचक ही नहीं रह जाता। साहित्य की कोई भी विधा शैली के लिए चित्रपट बन सकती है। आलोचना भी मेरा एक चित्रपट है। आलोचना में निबन्ध कला ही शैली बनकर आलोचना को नीरस नहीं होने देती।'[१]

आलोचक द्विवेदी जी और हिन्दी आलोचना की पृष्ठभूमि

हिन्दी आलोचना साहित्य का अवलोकन करते हुए आज के युग को 'समीक्षा युग' से अभिहित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, आज समीक्षा साहित्य गद्य के अन्य रूपों के सदृश ही अत्यन्त विकासशील तथा प्रगति के उच्च शिखर पर आसीन है। हिन्दी आलोचना के इतिहास को देखने से ज्ञात होता है कि वस्तुत हिन्दी आलोचना का मूल स्रोत संस्कृत साहित्य है। उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप ही हिन्दी में रीति शास्त्र का आविर्भाव हुआ। संस्कृत में समीक्षा शास्त्र के पुष्ट, गहन तथा दीर्घकालीन प्रसार के दर्शन के साथ ही साहित्य शास्त्र भी अपनी प्रौढ़ता और समृद्धता लिए हुए प्रचलित थी। हिन्दी के प्रारम्भिक साहित्य शास्त्रियों ने संस्कृत साहित्य शास्त्र की मान्यताओं का केवल समर्थन, पुष्टीकरण तथा अनुवाद ही किया। अतएव हिन्दी समीक्षा शास्त्र के क्षेत्र में प्रारम्भिक युगों में मौलिक चिन्तन का सर्वथा अभाव मिलता है। परन्तु आधुनिक युग में मौलिक चिन्तन पर आधारित समीक्षा साहित्य के सर्वत्र एवं अधिकांश रूप में दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी समीक्षा के विकास के स्वरूप का अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि संस्कृत साहित्य का सैद्धान्तिक प्रभाव उसकी पृष्ठभूमि में विद्यमान रहा है। संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में समीक्षा का अन्यतम महत्व निर्दिष्ट हुआ है। रस, अलंकार, ध्वनि, रीति तथा वक्रोक्ति आदि सिद्धान्तों के रूप में संस्कृत समीक्षा शास्त्र के विभिन्न सम्प्रदाय मान्य हुए हैं। संस्कृत के इन्हीं सम्प्रदायों के अनुकरण पर रीति

---

१ 'स्मृतियाँ और कृतियाँ', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५८।

काल म लक्षण ग्र था का निर्माण हुआ। हिदी मे रीति शब्द का अथ मुख्यत काय रचना के नियमा और सिद्धातो के रूप म प्रयुक्त होता है। रीतिकाल म यद्यपि आरम्भिक समीक्षा शास्त्रियो मे सबसे महत्वपूण नाम आचाय केशवदास का है परन्तु उनके पूव भी पुड अथवा पुष्य आदि के उल्लेख साहित्य ग्र थो म मिलते है। शिवसिंह सरोज, मिश्रबधु 'विनोद', तथा हिदी साहित्य के इतिहास[१] म यह नाम उपलब्ध होता है जो हिदी का सवप्रथम आचाय है। आगे चल कर कृपाराम ने इस क्षत्र म अपना हित तरगिणी[१] नामक ग्र थ प्रस्तुत किया। कृपाराम के उपरा त गोप कृत 'राम भूषण और अलकार चद्रिका,' मोहन लाल मिश्र कृत शृगार सागर नददास कृत रसमजरी तथा करनेस कृत करण भरण श्रुति भूषण तथा भूप भ्रमण आदि रचनाएँ उल्लिखित की जा सकती हैं। हिदी रीति साहित्य के प्रवतक के रूप म आचाय केशव को मायता दी जाती है। केशव दास ने 'रसिक प्रिया, नख शिख' कवि प्रिया, राम चद्रिका वीरसिंह देव चरित रतन बावनी विज्ञान गीता तथा जहाँगीर जस चद्रिका आदि की रचना की। इनम साहित्यशास्त्र क निरूपण की दृष्टि स रसिक प्रिया नखशिख कविप्रिया तथा रामचद्रिका विशिष्ट हैं।[३] इन ग्र थो मे केशवदास ने कवियो के प्रकार कवि रीति वणन काय दोष वणन रसदोष वणन अलकार वणन रस विवचन नायक भेद जाति अनुसार नायिका भेद अय नायिका प्रकार रस के अग वियोग शृगार आदि का विवेचन प्रस्तुत किया है। केशवदास के उपरात सुदर कवि का नाम उल्लेखनीय है जिन्होने अपने सुदर शृगार नामक ग्रथ मे शृगार रस का सम्यक विवेचन किया है।[१]

रीतिकाल के अय हिदी साहित्यचारो मे आचाय चितामणि का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चितामणि ने काय विवेक काय प्रकाश कवि कुल कल्प तरु 'रस मजरी पिंगल तथा रामायण' नामक ग्र थो की रचना करके उनम अपने साहित्य सिद्धाता का निरूपण किया है। इन ग्र थो के अतिरिक्त चितामणि लिखित शृगार मजरी' शीषक एक अय ग्रथ का भी उल्लेख किया जाता है। इन साहित्य शास्त्रीय रचनाओ म आचाय चितामणि ने काय का स्वरूप काव्य के भेद काव्य पुरुष का रूपक काव्य के गुण रस निरूपण रस के अग, काय दोष अलकार निरूपण शब्द शक्ति निरूपण तथा ध्वनि निरूपण प्रस्तुत किया है।

---

१ मिश्रबधु विनोद भाग १ मिश्रबधु पृ० ७२।
२ हिदी साहित्य का इतिहास रामचद्र शुक्ल पृ० ३।
३ रचनाकाल सवत् १५९१ वि०।
४ द० हिदी काव्य शास्त्र का इतिहास डा० भगीरथ मिश्र पृ० ४७।
आचाय केशवदास डा० हीरालाल दीक्षित पृ० ८९।
५ हिदी काव्य शास्त्र का इतिहास डा० भगीरथ मिश्र पृ० ६८।

चिन्तामणि के साथ ही आचार्य मतिराम का भी उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने अपने 'अलकार पचाशिका, 'ललित लालम' एव 'रस राज आदि ग्रयों में रस विवेचन, अलकार निरूपण तथा नायिका भेद प्रस्तुत किया है। कवि भूषण ने अपने लिखे हुए 'शिवराज भूषण', 'भूषण हजारा, 'भूषण उल्लास' तथा 'दूषण उल्लास' आदि ग्रथो मे मुख्यत अलकार निरूपण किया है'। आचार्य कुलपति मिश्र ने द्रोण पर्व युक्ति तरगिणी 'नख शिख', सग्राम सार' तथा रस रहस्य नामक ग्रथो म अपन सिद्धात प्रस्तुत किये हैं। साहित्य शास्त्रीय दृष्टि स इनम से अतिम ग्रथ का ही विशेष महत्व है। इस ग्रथ मे कवि ने काव्य के लक्षण काव्य का प्रयोजन, काव्य के कारण काव्य क भेद शब्द शक्ति, ध्वनि गुणीभूत व्यग्य, रस, काव्य क गुण, काव्य के दोष, शब्दालकार तथा अर्थालकार का निरूपण किया है। आचार्य सुखदेव मिश्र के लिखे हुए काव्य शास्त्रीय ग्रथो म 'वृत्त विचार, 'छद विचार' 'फाजिल अली प्रकाश रसार्णव 'शृगार लता' 'अध्यात्म प्रकाश' तथा 'दशरथ राय' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिनम शब्द विवेचन रस विवेचन तथा नायक नायिका भेद आदि विषयो का विवेचन हुआ है। इनके अतिरिक्त इस काल के अय काव्य शास्त्रीय ग्रथो मे रामजी लिखित 'नायिका भेद' गोपाल राम लिखित 'रस सागर' तथा 'भूषण विलास बलिराम लिखित 'रस विवेक', बलबीर लिखित 'उपमालकार, तथा दम्पति विलास कल्याणदास लिखित रस चन्द तथा श्री निवास लिखित 'रस सागर' आदि प्रमुख हैं। रीतिकालीन हिंदी समीक्षा की इस कडी म महाकवि देव लिखित रस विलास 'भवानी विलास 'भाव विलास काव्य रसायन शब्द रसायन, सुजान विनोद, 'कुशल विलास तथा सुख सागर तरग आदि के नाम विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं। इन ग्रथो मे देव ने काव्य निरूपण अलकार निरूपण तथा रस निरूपण आदि प्रस्तुत किया है। आचार्य सूरति मिश्र न अलकार माला 'रस रत्नमाला, सरस रस', 'रस ग्राहक चन्द्रिका' 'नखशिख, काव्य सिद्धात तथा रस रत्नाकर' आदि म काव्य क प्रयोजन काव्य क रूप शब्द विवेचन, काव्य प्रकाश काव्य क दोष काव्य के गुण, अलकार निरूपण तथा छन्द विवेचन प्रस्तुत किया है। इसी परम्परा के अतर्गत आचार्य गोप द्वारा लिखित 'रामालकार', राम चन्द्र भूषण' तथा रामचन्द्राभरण के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमे आचार्य गोप ने अलकार की परम्परानुगामिता के साथ शब्दालकार और अर्थालकार के उदाहरण और लक्षण प्रस्तुत किये हैं। आचार्य याकूब खा लिखित रस भूषण म अलकार निरूपण तथा नायिका भेद के साथ ही साथ रस, स्थायी भाव, विभाव अनुभाव आदि का वर्णन किया गया है। आचार्य कुमारमणि भट्ट लिखित रसिक रसाल नामक ग्रथ मम्मट के काव्य प्रकाश' स प्रभावित है। इसम आचार्य भट्ट न काव्य के प्रयोजन काव्य के कारण काव्य के भेद विविध रसो, भाव विभाव आदि नायिका भेद तथा विविध अलकारो का निरूपण किया है।

रीतिकालीन अन्य हिन्दी साहित्यकारो में आचार्य श्रीपति का नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने ग्रन्थो में काव्य शास्त्रीय विषयो पर विस्तार से एवं सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थो में कविकुल कल्पद्रुम', रस सागर, 'अनुप्रास विनोद, विक्रम विलास, 'सरोज कलिका, अलकार गंगा' तथा काव्य सरोज' आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं। इन ग्रन्थो में लेखक ने काव्य के स्वरूप, दोष, अलंकार तथा रस आदि का विस्तृत निरूपण प्रस्तुत किया है। आचार्य रसिक सुमति का ग्रन्थ अलंकार चन्द्रोदय का नाम भी इस क्षेत्र में उल्लिखित है। जैसा कि ग्रन्थ के शीर्षक से ही स्पष्ट होता है लेखक ने इसमे अलंकारो का विस्तृत निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियो एवं उनके ग्रन्थो में आचार्य श्रीधर का 'नायिका भेद तथा 'चित्रकाव्य आचार्य लाल का विष्णु विलास आचार्य कुन्दन बुन्देल खंडी का 'नायिका भेद, आचार्य केशव राम के नायिका भेद तथा रस लतिका आचार्य गोदुराम रचित रस भूषण तथा दशरूपक आचार्य वनीप्रसाद रचित रस शृंगार समुद्र, आचार्य सग राम के ग्रन्थ रस दीपक तथा नायिका भेद आचार्य गजन के कमरुद्दीन खा हुलास आचार्य भूपति के कठाभूषण तथा रस रत्नाकर, आचार्य वीर रचित कृष्ण चन्द्रिका', आचार्य वशीधर तथा आचार्य दलपति राय के अलंकार रत्नाकर तथा भाषा भूषण आदि के नाम भी उल्लिखित किये जा सकते हैं जिन्होने अपने ग्रन्थो में साहित्य शास्त्र के विविध अंगो का निरूपण किया है। रीति कालीन साहित्यकारों की परम्परा की इस कडी मे आचार्य सोमनाथ मिश्र का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके रचित ग्रन्थो मे रस पीयूषनिधि ग्रन्थ को ही प्रमुखता मिली है। इसमे लेखक ने छन्द शास्त्र, काव्य स्वरूप काव्य प्रयोजन, काव्य कारण, शब्द शक्ति, ध्वनि गुणीभूत व्यंग्य दोष, गुण तथा अलंकार का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ शृंगार विलास, कृष्ण लीलावती पचाध्यायी' सुजान विलास तथा माधव विनोद भी उल्लेखनीय हैं। आचार्य सोमनाथ के परवर्ती साहित्यचार्यों में आचार्य करन का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। आचार्य करन द्वारा रचित ग्रन्थ रस कल्लोल मे लेखक ने रस गुण, ध्वनि शब्द शक्ति काव्य भेद, वृत्ति आदि का निरूपण किया है। इसी सन्दर्भ मे आचार्य गोविन्द का कर्णाभरण' भी उल्लिखित है। इसमें विविध अलंकारो की विवेचना हुई है। आचार्य रसलीन के ग्रन्थो 'अगदर्पण' और रस प्रबोध में क्रमश नखशिख वर्णन तथा रस की सम्यक् विवेचना प्रस्तुत की गयी है। आचार्य रघुनाथ बन्दीजन के काव्य कलाधर और 'रसिक मोहन ग्रन्थो मे भाव भेद, रस भेद, नायिका भेद तथा अलंकार निरूपण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार आचार्य उदयनाथ कवीन्द्र के ग्रन्थ रस चन्द्रोदय अथवा विनोद चन्द्रोदय मे नायिका भेद तथा रस का निरूपण किया गया है। हिन्दी रीति शास्त्र की परम्परा मे आचार्य भिखारीदास का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होने कई समीक्षा सम्बन्धी ग्रन्थो की रचना की है जिनमें विशेष

रूप से निम्न उल्लेखनीय हैं 'शृंगार निर्णय', रस साराश', 'नाम प्रकाश', 'छ दोणव-प्रिगल', का य निणय तथा 'शृगार निर्णय' आदि। लेखक न उपरोक्त ग्रन्थो मे कायागा का विश्लेषण एव सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया है। इन ग्रन्थो मे पदाथ, अलकार रस, ध्वनि, गुण, दोष, चित्रकाव्य, नायिका भेद, छन्द शास्त्र की व्याख्या आदि के विवेचन को प्रस्तुत किया गया है। आचाय उदयनाथ कवी द्र के पुत्र आचाय दूलह का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके द्वारा लिखित ग्र थ कविकुल कठाभरण भी रीतिकालीन अलकार ग्रथो की परम्परा म अपना विशिष्ट स्थान रखता है। आचाय दूलह के साथ के आचार्यो म आचाय शम्भुनाथ मिश्र क ग्र य 'रस कल्लोल, 'रस तरगिणी तथा अलकार दीपक' आचाय हित राम कृष्ण का ग्र थ 'नायिका भेद, आचाय गिरधारी लाल का 'नायिका भेद, आचाय च द्रहास का 'शृगार सागर तथा आचाय रूप साहि का 'रूप विलास आदि के नाम भी उल्लखनीय हैं।

रीति कालीन लक्षण ग्रथो की परम्परा मे आचाय वरीलाल रचित 'भाषा भरण आचाय समनेस रचित 'रसिक विलास', आचाय शिवनाथ की कृति 'रस वष्टि,' आचाय रतन रचित 'फतेह भूषण, आचाय ऋषिनाथ का 'अलकारमणि मजरी, आचाय जनराज रचित 'कविता रस विनोद' आदि प्रमुख रूप स उल्लेखनीय हैं। आचाय जनराज ने अपनी कृति म छन्द वणन काव्य की कोटियाँ काव्य की परिभाषा, शब्द शक्ति निरूपण, ध्वनि निरूपण तथा गुणीभूत व्यग्य निरूपण, अलकार निरूपण काव्य गुणा तथा काव्य दोषा का वणन रस निरूपण भाव विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव वणन, नखशिख वणन तथा षटऋतु वणन आदि को प्रस्तुत किया है। इनके अतिरिक्त आचाय सजिमार लिखित जुगुल रस प्रकाश' तथा रस चन्द्रिका', आचाय हरिनाथ का अलकार दपण, आचाय रग खाँ का 'नायिका भेद', आचाय च दन का 'काव्याभरण', और आचाय देवकी न न की कृतियाँ शृगार चरित्र', अवधूत भूषण' तथा 'सरफराज चन्द्रिका आदि भी इमी काल की प्रमुख कृतियों म अपना स्थान रखती हैं। रीतिकालीन शास्त्रीय कृतियो की परम्परा म आचाय यशवन्तसिंह का नाम उल्लेखनीय है। इन्होने अपने शृगार शिरोमणि नामक ग्रथ म रस निरूपण क प्रसग म स्थायी भाव सचारी भाव, आलम्बन, उद्दीपन, विभाव, नायिका भेद, भाव वणन, नायक भेद, उद्दीपन वणन, अनुभाव वणन, सचारी भाव आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। आचाय जगतसिंह ने अपनी कृति साहित्य सुधानिधि' म का य के भेद, शब्द निरूपण, वत्ति वणन, शब्दालकार और अर्थालकार, काव्य गुण, भाव विभाव, सचारी भाव अनुभाव, सात्विक भाव, रीति निरूपण तथा का य दोष आदि विषयो की विवेचना प्रस्तुत की है। आचाय महाराज रामसिंह के ग्रथों म अलकार दपण, रस शिरोमणि, 'रस निवास तथा 'रस विनोद आदि उल्लेखनीय है। इस युग क अन्य आचार्यो म नर द्र भूषण' तथा 'दलेल प्रकाश' के रचयित कवि मान टिकतराय प्रकाश' तथा रस विलास ग्रथो के रचयिता बेनी बन्दीजन

और आचार्य सेवादास का नाम भी उल्लेखनीय है। इनके रचित ग्रन्थों में प्रमुख ग्रन्थ हैं 'गीता महात्म्य', 'भनवेश सानजू की टीका', 'राधा कृष्ण विलास', 'रघुनाथ अलंकार' तथा 'रस दर्पण' आदि उल्लेखनीय हैं। संस्कृत भाषा हिन्दी ग्रन्थों के आधार पर साहित्य शास्त्र के विविध विषयों का निरूपण करने वाले आचार्यों में आचार्य गोकुलनाथ के 'चेत चन्द्रिका', 'महाभारत' तथा मनसिज 'गीता राम' 'गुणार्णव' तथा 'कवि मुख मंडन' आदि। आचार्य पद्माकर के 'जगद् विनोद' तथा 'पद्माभरण' नामक ग्रन्थ। आचार्य यशोदानन्दन का 'बरवै नायिका भेद'। आचार्य ब्रह्मदत्त के 'विद्वद् विलास' तथा 'दीप प्रकाश' ग्रन्थ। आचार्य करन कवि के 'साहित्य रस' तथा 'रस कल्लोल' आदि ग्रन्थ, आचार्य शिव प्रसाद का 'रस भूषण' नामक ग्रन्थ, आचार्य यशी प्रवीन का 'नवरस तरंग' नामक ग्रन्थ जिसमें लेखक ने नव रसों स्थायी भाव के साथ ही नायिका के भेद प्रभेद का विस्तृत वर्णन किया है। आचार्य रणधीर सिंह के ग्रन्थ 'काव्य रत्नाकर', 'भूषण कौमुदी', 'निगम' 'नामार्णव' तथा 'रस रत्नाकर' में काव्य का प्रयोजन, काव्य की कोटियाँ, शब्द शक्तियाँ, ध्वनि निरूपण, नवरस, भाव, सात्विक भाव, स्थायी भाव, अनुभाव, नायिका भेद, अलंकार निरूपण, काव्य के गुण तथा दोष आदि की विवेचना प्रस्तुत की गयी है।

हिन्दी गद्य में नाट्य कला विषयक सर्वप्रथम रचनाकार आचार्य नारायण की 'नाट्य दीपिका' नामक कृति का हिन्दी समीक्षा साहित्य में अपना ऐतिहासिक महत्व है। आचार्य रसिक गोविन्द कृत 'रसिक गोविन्दानन्दघन' ग्रन्थ में काव्य के गुण दोष रस नायिका भेद तथा अलंकार आदि का विस्तार से विवेचन है। आचार्य प्रतापसाहि का नाम भी इस परम्परा में उल्लेखनीय है। आपने अपने मौलिक ग्रन्थों में शब्द शक्तियों अभिधा, लक्षणा, व्यंजना के स्वरूप काव्य के लक्षण, काव्य के प्रयोजन काव्य के कारण और भेद शब्द शक्ति ध्वनि गुणीभूत व्यंग्य तथा गुण दोष आदि का निरूपण किया गया है। इनकी कृतियों में विशेष रूप से 'जयसिंह प्रकाश' 'काव्य विलास' 'शृंगार मंजरी', 'व्यंग्यार्थ कौमुदी', 'शृंगार शिरोमणि', 'अलंकार चिन्तामणि', 'काव्य विनोद' तथा 'जुगुल नखशिख' आदि उल्लेखनीय हैं। आचार्य नवीन रचित 'रस तरंग' नामक ग्रन्थ भी उल्लखनीय है। इसमें विविध रसों का निरूपण नायिका भेद उद्दीपन विभाव अनुभाव संचारी भाव आदि की विवेचना है। यह ग्रन्थ रीति कालीन शास्त्रीय ग्रन्थों की परम्परा में अंतिम रचना मानी जाती है। हिन्दी समीक्षा शास्त्र की इस रीति कालीन परम्परा का प्रसार वस्तुतः संवत् १७७० वि० से सम्वत् १८९९ वि० तक मिलता है। जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि रीति कालीन परम्परा संस्कृत साहित्य शास्त्र की अनुगामिनी रही है, उसी के अनुकरण पर रीति शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना हुई है। परन्तु सूक्ष्म पर्यावलोकन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यद्यपि रीति परम्परा संस्कृत साहित्य शास्त्रीय परम्परा पर आधारित है परन्तु उसमें यत्र तत्र स्वतंत्र साहित्य चिन्तन के

भी सकेत मिलते हैं और सामाजिक राजनीतिक, बौद्धिक एव भावात्मक दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण उनमे मौलिक भेद भी परिलक्षित होते हैं।

आधुनिक युग मे हिन्दी साहित्य शास्त्रीय परम्परा रीति शास्त्रीय परम्परा की ही अगली कडी के रूप मे मान्य है। उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश से भारतेन्दु युग में हिन्दी समीक्षा का नवीन रूप मे आरम्भ हुआ। इस आविर्भाव म रीति काल के अनुकरण पर कतिपय टीका ग्रथ मिलते हैं जिनम मानसी नन्दन पाठक लिखित 'मानस सकावली', शिवलाल पाठक लिखित 'मानस मयक' तथा शिव राम सिह लिखित मानस तत्व प्रबोधिनी प्रमुख हैं।[1] इसके उपरान्त भारतेन्दु युगीन लेखको के द्वारा उस आलोचना पद्धति का आरम्भ हुआ जिसे समीक्षात्मक कोटि के अन्तगत रखा जा सकता है। प्रचीन एव नवीन साहित्य से सम्बन्धित इस प्रकार की आलोचना क्रमश लेखका के समीक्षा विषयक दष्टिकोण का बोध कराने मे समथ है। इस आलोचना शली मे लिखी गयी रचनाआ मे 'आनन्द कादम्बिनी', 'सयोगिता स्वयवर' तथा 'बग विजेता आदि की आलोचनाए हैं। इनमे कहीं-कही शास्त्रीय दष्टिकोण के साथ-साथ आलोचको की भावनात्मकता का भी परिचय मिलता है।[2] लगभग इसी काल में नागरी प्रचारिणी सभा काशी, की स्थापना हुई और नागरी प्रचारिणी पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। शोधपरक आलोचना की दिशा म इनके माध्यम से प्रयास किया गया। शिवसिह सेंगर न शिवसिंह सरोज' तथा गियसन ने दि माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान आदि ग्रथा की रचना भी इसी समय की। शास्त्रीय आलोचना ग्रथो मे 'रस कुसुमाकर' तथा काव्य प्रभाकर' आदि भी इसी काल मे लिखे गये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन तथा बालकृष्ण भट्ट आदि समालोचको ने इस युग मे समीक्षा के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक स्वरूप का सम्यक परिचय प्रस्तुत किया। शास्त्रीय, गम्भीर तथा विश्लेषणात्मक शली के साथ साथ इस युग मे व्यग्यात्मक समीक्षा शली के प्रवतन का श्रेय भी इन्ही साहित्यालोचका को है। भारतेन्दु युग की समीक्षा की विशिष्टता समीक्षा की प्रौढता एव गम्भीरता के लिए महत्वपूण न होकर उनम अन्तर्निहित उन तत्वो के लिए है जो उसके स्वर्णिम भावी विकास की ओर सकेत करता है। भारतेन्दु युगीन समीक्षको की दष्टि अपनी प्रचलित परम्परा से हट कर लोक साहित्य एव लोक जीवन की ओर आकृष्ट हुई। वस्तुत इस युग का मुख्य ध्येय जन जीवन से सम्बन्ध स्थापित करके उनके भावो को प्रकट करना तथा उनके आन्तरिक भाव जगत को साकार रूप मे प्रस्तुत करना है।[3] इन समीक्षको न

---

१ 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास' डा० भगवत्स्वरूप मिश्र, पृ० २३१।

२ दे० 'बग विजेता की समीक्षा आनन्द कादम्बिनी', श्रावण सम्वत १९४२।

३ आधुनिक हिन्दी आलोचना एक अध्ययन', डा० मक्खनलाल शर्मा पृ० ११२।

अपने समीक्षा साहित्य में जन जीवन के सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों को स्वीकार कर युगानुभव को प्रमाणित किया है जिनमें मौलिकता के दर्शन होते हैं।'[1] इससे स्पष्ट है कि इस युग के समीक्षा साहित्यकारों का दृष्टिकोण उदात्त न रही है। इसी के फलस्वरूप भारतेन्दु जी ने नाटकों में नाटकीय तत्त्वों को प्रधानता देते हुए नाटक लक्षण के नियमों में भी परिवर्तन घोषित किया है इस बीच की आलोचना नवीन की परम सुन्दरता बारम्बार दृष्टा के करतो थे है और इसी हेतु एक एक अंक में और अनेक स्थलों की व्याख्या की जाती है।'[2] द्विवेदी युगीन समीक्षा पद्धति के विकास की पृष्ठभूमि भारतेन्दु युग में ही परिलक्षित होने लगी थी। भारतेन्दु युगीन समीक्षा का विकास प्रचार एवं प्रसार द्विवेदी काल में हुआ परन्तु द्विवेदी युगीन सृजनात्मक साहित्य की तुलना में द्विवेदी युगीन समीक्षा की गति मन्द पड़ गयी थी। द्विवेदी युगीन समीक्षा अपने पूर्ववर्ती के समान ही सुगम होते हुए भी राजनीतिक तथा आर्थिक विकास की प्रेरणा समकालीन अवस्था के प्रति सजग थी। इसका मुख्य कारण यह था कि उस समय की वैयक्तिक वृहत् आलोचनाओं को ही प्रश्रय मिल रहा था। असन्तोष एवं वर्तमान भारतीय अवस्था को सुधारने का उत्तम दिशा निर्देश आदि भी अन्तर्निहित है। इस प्रकार द्विवेदी युगीन समीक्षा का मुख्य ध्येय रस भाव अलंकार छन्द शास्त्र और नायिका भेद के परिज्ञान तक ही सीमित न रहकर जन जीवन एवं जन चेतना से सम्बन्धित हो गया। इस युग में एक नवीन समीक्षा का रूप भी दृष्टिगोचर होता है वह है आलोचना की आलोचना अर्थात् प्रत्यालोचना। भारतेन्दु युगीन समीक्षा पुस्तक परिचय तथा दोषोद्भावना तक ही सीमित रह गयी थी। द्विवेदी युग में भी इसी का प्रभाव रहा परन्तु काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका सरस्वती और समालोचक के प्रकाशन से द्विवेदी युग में नव जागरण की लहर दौड़ गयी।'[3] इस युग को आचार्य द्विवेदी जी का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक सजग और कठोर निरीक्षण का काय किया। अपनी स्पष्टता और निडरता के कारण ही उन्होंने न केवल काव्य सम्बन्धी दोषों का ही निर्देश किया प्रत्युत साहित्य में अपनी सुरुचिता का परिचय देते हुए कविता के भविष्य के विकास का मार्ग दर्शन भी किया। आचार्य द्विवेदी जी की आलोचना की मूल प्रेरणा सुरुचि और सत्साहित्य का निर्माण है। इसका मूल्यांकन उनके संपूर्ण साहित्य के विश्लेषण के आधार पर किया जा सकता है। आचार्य द्विवेदी जी ने संस्कृत और हिन्दी के ग्रन्थों और कलाकारों की आलोचना की है। संस्कृत ग्रन्थों की आलोचना में 'नैषध चरित चर्चा' 'विक्रमांक

१ 'आधुनिक हिन्दी आलोचना एवं अध्ययन' डा० मक्खनलाल शर्मा पृ० ११५।
२ 'भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रथम भाग' प्रथम संस्करण, पृ० ७१९।
३ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास डा० भगवत्स्वरूप मिश्र पृ० २५१।

देव चरित चर्चा, 'कालिदास की निरकुशता आदि समीक्षा कृतियाँ हैं जिनका मुख्य
आधार शास्त्रीयता है। सस्कृत ग्रन्था की आलोचना म उन्होने अलकार रीति, रस
और प्रबन्ध के औचित्य को दष्टि मे रखा है।' इसम द्विवेदी जी आलोच्य वस्तु क
दोषो तक ही सीमित नही हैं उसके गुणो का भी दिग्दशन किया है। द्विवेदी जी क
आलोचना साहित्य म कहीं-कही तुलनात्मक और एतिहासिक आलोचना क भी क्षीण
तत्व परिलक्षित होते हैं।' द्विवेदी जी की प्रमुख साहित्यिक देन खडी बोली का
व्यवस्थित और व्याकरण सम्पन्न करन म है। 'सरस्वती पत्रिका म भाषा सम्बन्धी
तथा वाद विवाद सम्बन्धी लेखा के साथ 'सरस्वती पत्रिका की प्रत्यक प्रति म द्विवदा
जी की पुस्तक परिचय समीक्षा क दशन होते थे। सद्धान्तिक आलोचना म कवि
और कविता तथा 'मुकद्दमा आदि लख निर्दिष्ट किय जा सकते हैं। द्विवेदी युगीन
सम सामयिक आलोचको म बाबू श्यामसुन्दर दास बाबू राधाकृष्ण दास श्री स चन्द्रधर
शर्मा गुलरी आदि भी आलोचना क क्षत्र म बडी सक्रियता स भाग ल रहे थ। द्विवेदी
जी की आलोचनात्मक कृति हिन्दी कालिदास' की प्रत्यालाचना की गयी। गुलेरी
जी न स्वय मनमाराम और द्विवेदी जी की आलोचना की। उपरोक्त आलोचना के
लख भी 'सरस्वती' आदि पत्रिकाआ स निकलते रहत थ। हिन्दी आलोचना के क्रमिक
विकास के इस द्विवेदी युगीन लेखको म मिश्रबन्धुओं का नाम उल्लिखित किया जा
सकता है। इनकी आलोचना म साहित्यिक सौन्दय कवि का जीवन दशन आदि
गम्भीर विषयो का प्रौढ़ विवचन किया गया है। मिश्रबन्धु द्विवेदी जी के ही समसा
मयिक हैं तथा उन्होने द्विवेदी जी की ही परिचयात्मक एव निणयात्मक शली का
अनुसरण किया है। मिश्रबन्धुओ मे प्रमुखत तीन भाइयो के नाम अग्रगण हैं—प०
गणश बिहारी राय बहादुर प० श्याम बिहारी और राय बहादुर प० शुकदेव बिहारी।
यह तीनो भाई ही हिन्दी साहित्य क क्षेत्र म मिश्रबन्धुओ के नाम से प्रसिद्ध हैं।
हिन्दी साहित्य को मिश्रबन्धुआ की देन क रूप म दो कृतियाँ साहित्य मे अपना
विशिष्ट स्थान रखती हैं हिन्दी नवरत्न तथा 'मिश्रबन्धु विनोद'। द्विवेदी जी के
समीक्षा साहित्य म जिस छिद्रान्वेषणी प्रवृत्ति एव दोषारोपण की प्रवृत्ति के दशन
होते हैं मिश्रबन्धुआ की समीक्षा साहित्य म इसका अभाव है। हिन्दी आलोचना
साहित्य अब तक क्रमश प्रौढ़ गम्भीर, विश्लेषणात्मक और स्वच्छन्दतावादी होती
गयी है। अतएव मिश्रबन्धुओ की आलोचना विकास की दूसरी सीढी के रूप म
मानी जाती है।' मिश्रबन्धु विनोद' तथा 'हिन्दी नवरत्न' म आलोचना पद्धति क
आधुनिक स्वरूप के दशन होते हैं। सन्देश और उसकी सफल अभिव्यक्ति की मिश्र

---

१ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास डा० भगवतस्वरूप मिश्र, पृ० २५७।
२ वही पृ० २५९।
३ वही पृ० २८१।

बन्धुओ ने आलोचना का प्रधान आधार माना है।[1] यही कारण है कि उन्होने हिन्दी नवरत्न मे समाविष्ट कवियो के सन्देश का निर्देश दिया है।[1] तुलनात्मक आलोचना की एक अस्पष्ट सी झलक यद्यपि द्विवेदी युग मे दिखाई दी थी लेकिन इसका सूत्रपात मिश्रबन्धुओ से ही होता है। तुलना और निणय इनकी आलोचना की प्रमुख विशेषता थी और यह साहित्यकारो के यक्तित्व, दशन, विचार तथा उनकी तत्कालीन परिस्थितियो तक ही सीमित थी। तुलनात्मक आलोचना के अतिरिक्त मिश्रबन्धुओ के आलोचना साहित्य मे मनोवैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक समीक्षा क तत्व भी विद्यमान हैं।

हिन्दी साहित्य मे व्यवस्थित और प्रौढ तुलनात्मक पद्धति के प्रवतक के रूप म आचाय पद्मसिह शर्मा जी हैं। उन्होने बिहारी सतसई पुस्तक के भाष्य रूप मे इसकी भूमिका लिखी है। प० शर्मा की बिहारी सतसई की पद्धति पर ही प० कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी नामक आलोचनात्मक ग्रथ लिखा जिसमे देव की तुलना बिहारी तथा अन्य कवियो से करते हुए आलोचक ने देव को प्रधानता दी है तथा उन्ही को सवश्रेष्ठता प्रदान करने की चेष्टा की है। शुक्ल जी से पूव के आलोचना साहित्य की प्रमुख विशिष्टताएँ तुल प्रभाव तथा निणय आदि तत्व हैं जिसमे तत्ववादी तथा प्रभावाभिव्यजक समीक्षा पद्धतियो का पारस्परिक समन्वय अपनी पराकाष्ठा पर था। यहा तक कि आचाय शुक्ल जी तथा सौष्ठववादी प० नन्ददुलारे वाजपेयी मे भी इस समन्वय के कही-कही दशन होते हैं। देव और बिहारी म प० कृष्ण बिहारी मिश्र ने फुटकर शब्दो की भी तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। बिहारी और देव के वाद विवाद की अन्तिम आलोचनात्मक पुस्तक लाला भगवानदीन की बिहारी और देव है जो मिश्रबन्धुओ द्वारा दिये बिहारी के दोहो के अथ म स्थान-स्थान पर अशुद्धियो को दष्टि मे रख कर उनका निर्देश किया गया है। इसके साथ ही उनका मत है कि मिश्रबन्धु देव की कविता के भी शुद्ध और साहित्यिक सस्करण का सम्पादन नही कर सके हैं।[1] वस्तुत लाला भगवानदीन जी की प्रस्तुत आलोचना कृति मिश्रबन्धुओ की कटु आलोचना के प्रत्युत्तर दन के रूप म थी। दीन जी की इस आलोचना कृति म शास्त्रीयता एव प्रभाववादी तत्व का प्राय अभाव है। उन्होने केवल दोषो की उद्भावना करके ही सन्तोष कर लिया है। तुलनात्मक समीक्षा के भी अपने कुछ सिद्धान्त हैं जिन्ह इन आलोचको ने विस्मृत कर दिया है। उदाहरणाथ कृष्ण बिहारी मिश्र ने 'मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका म मतिराम की

---

१ दे० हिन्दी नवरत्न मिश्रबन्धु पृ० २३-२४।
२ वही पृ० २६।
३ 'बिहारी और देव' लाला भगवानदीन पृ० ५३।

तुलना सूर तुलसी कालिदास, रवीन्द्र शेक्सपियर तोष आदि से की है जिनकी वस्तुत कोई समता ही नहीं है। साम्य और वैषम्य के आधार पर दो कवियों की विशेषताओं का स्पष्टीकरण और अपेक्षित मूल्यांकन ही तुलनात्मक पद्धति का उद्देश्य है।[1]

आधुनिक हिन्दी समीक्षा की अगली कड़ी के रूप मे शुक्ल युग का अभिहित किया जा सकता है। इसक प्रमुख प्रवतक आचाय रामचन्द्र शुक्ल जी हैं जिन्होंने अपन आलोचना सिद्धान्तो से हिन्दी जगत को प्रकाशमान कर दिया। शुक्ल युग से पूव आलोचना का क्षेत्र दोष दशन, गुण दशन निणय तथा तुलना तक ही सीमित था। आचाय शुक्ल जी ने समीक्षा क इस प्राकृत रूप मे इतर आलोचना की कुछ निश्चित पद्धतियो को जन्म दिया जिनम विश्लेषण विवेचन और नियमन हैं। वस्तुत आगे चल कर यही पद्धतियां आलोचना के वास्तविक अर्थों म प्रयुक्त हुइ। इसके साथ इसम आलोचक की तटस्थता का तत्व भी अन्तर्निहित है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि शुक्ल युग की उपयुक्त पद्धतियो के अतिरिक्त आलोचको ने अपनी प्राचीन पद्धतियों का त्याग कर दिया था। नहीं प्रत्युत उस समय तक उन प्राचीन परन्तु सवदेशीय और सावकालिक पद्धतियो को स्थूल रूप म ही ग्रहण किया जाता था। वे आलोचक उसके अभ्यान्तर तक पहुँचने मे सफल न हुए थे जिसका सफल प्रयास इस युग म किया गया। आचाय शुक्ल जी न आलोचना के क्षेत्र म प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक आलोचना के समन्वय क आधार पर व्यावहारिक रूप म निगमन शैली का सूत्रपात किया। बाबू श्यामसुन्दर दास जी इस युग म भी आ जाते हैं। वह आचाय शुक्ल जी से प्रभावित थे। लेकिन उनके समीक्षा साहित्य मे इस समन्वयात्मक प्रवत्ति का अभाव है। शुक्ल जी न अपने काव्य सम्बन्धी विचारो एव सिद्धान्तो के लिए भारतीय साहित्य को अपना अवलम्बन बनाया है। लेकिन उनके सिद्धान्त मौलिक हैं। भारतीय परम्परा के अनुगमन के साथ ही उन्होंने पाश्चात्य सिद्धान्तो का खडन किया है। इस क्षेत्र म वह बहुत ही निर्भीक थ। भारतीय काव्य साहित्य की विविध विधाओं एव विभिन्न काव्य तत्वों—रस, अलकार रीति वक्रोक्ति आदि तथा आधुनिक काव्य तत्वो म अनुभूति कल्पना राग अभिव्यजना आदश यथाथ आदि सिद्धान्तो का विशेषता स निरूपण किया है। कविता की विविध विधाओं के अतिरिक्त उपन्यास कहानी नाटक आदि के सभी तत्वो का सश्लिष्ट एव प्रामाणिक विवेचन किया है। शुक्ल जी अपन इस आलोचक रूप से भी अधिक 'निबन्धकार' हैं और यही कारण है कि निबन्ध के क्षेत्र म उसके स्वरूप तथा मानदडो पर अधिक विस्तार से एव अधिकारपूवक विवेचन प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी के अधिकाश निबन्ध विचारात्मकता की कोटि मे आते हैं। आलोचना के क्षेत्र मे उन्होंने विश्ले-

---

१ 'हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास, डा० भगवतस्वरूप मिश्र पृ० ३३२।

पणात्मक आलोचना को प्रमुखता दी है तथा उसे ही उच्च माना है।

शुक्ल युग की समीक्षा पद्धति म नीति तत्व भी विद्यमान हैं। शुक्ल जी की व्यावहारिक आलोचना का क्षेत्र तुलसी क मानस म सीमित है अतएव यह लोक मर्यादा के उत्कृष्ट आदश को ही लेकर चलते हैं। लेकिन शुक्ल सम्प्रदाय क अय समीक्षकों ने उनक इस रूढ़ रूप को ग्रहण नहीं किया है। उनकी दृष्टि मानव दुबल ताओ स होती हुई नतिक आदर्शों पर गयी है। लेकिन रस और नीति क सम्बध म शुक्ल सम्प्रदाय क विचारो म अत्यधिक अतिशयोक्ति का आश्रय लिया गया है जिसका खुल कर विरोध उनके परवर्ती समीक्षकों ने किया है। शुक्ल युग क प्रधान समीक्षकों मे बाबू श्यामसुदर का नाम अग्रणीय है। इनकी आलोचनात्मक कृतियां म कबीर ग्रथावली की भूमिका, हिंदी साहित्य का इतिहास तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रयोगात्मक आलोचना क प्रमुख ग्रथ हैं। बाबू श्यामसुदर दास क अतिरिक्त शुक्ल युग क समीक्षकों तथा उनके अनुयायियो म प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र डा० जगन्नाथ शर्मा प० कृष्ण शकर शुक्ल, प० रामकृष्ण शुक्ल शिलीमुख, रामनरेश त्रिपाठी प० गिरजादत्त गिरीश मुशी प्रमचन्द डा० सत्येन्द्र आदि हैं। इनम भी प० विश्वनाथ प्रसाद का शुक्ल पद्धति के सबसे बडे प्रतिनिधि के रूप म माना जाता है। इस शली के प्रसिद्ध ग्रथो म बिहारी की वाग्विभूति 'भूषण ग्रथावली की भूमिका पदमाकर पचामृत प्रसाद जी के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन उद्धवशतक की भूमिका केशव की काव्य कला कविवर रत्नाकर तुलसीदास और उनकी कविता सुकवि समीक्षा गुप्त जी की काव्य धारा 'प्रसाद की नाटय कला आदि प्रमुख हैं। इन ग्रथो म शली के विभिन्न रूपो के दशन होते हैं तथा इनके कवि व्यक्तित्व के अध्ययन का प्रमुख स्थान मिला है।

शुक्ल युग म एक अय प्रवत्ति भी धीरे धीरे समीक्षा साहित्य के क्षेत्र म अवतीण हो रही थी जो इतिवत्तात्मकता का ही विकसित रूप था। इसे काल क्रम के अनुसार शुक्लोत्तर युग कहा जा सकता है। इस युग की समीक्षा पर गाधीवाद के प्रभाव के साथ ही माक्सवाद का भी प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसके साथ ही दो विरोधी तत्वो का समन्वित रूप भी इसी विशेष युग की देन है। द्विवेदी युग मे समीक्षकों का दृष्टिकोण यद्यपि सुधारवादी था परन्तु शुक्लोत्तर युग मे आते आते उस सुधारवादी विचारधारा म क्रान्ति का भी आह्वान होने लगा था, वे लोग प्राचीन रूढ़ियों के स्थान पर नवीन सस्कृति की प्रतिस्थापना करना चाहते थे। अतएव उनम व्यक्ति गत सामाजिक और राजनतिक स्वतत्रता के लिए विशेष उत्साह तथा वाणी मे विद्रोह की भावना परिलक्षित होती है।[1] इस प्रकार नूतन जीवन दशन तथा समीक्षा की नवीन पद्धति के साथ स्वच्छदता तथा सौष्ठव इसकी मूल प्ररणा है।

---

१ हिंदी काव्य म प्रगतिवाद' विजय शकर मल्ल, पृ० १९।

द्विवेदी जी का आलोचना साहित्य और समकालीन प्रवृत्तियां

भारत मे शताब्दियों की घोर निद्रा के उपरान्त नवीन चेतनता के फलस्वरूप बौद्धिक जागृति और पाश्चात्य अनुकरण की प्रवृत्ति का विकास हुआ और इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप आधुनिक हिन्दी साहित्य की आलोचना विधा का जन्म हुआ। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे भारतेन्दु युग से इसका सूत्रपात माना जाता है। परन्तु द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी के साहित्य मे आगमन से तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका के प्रकाशन से आलोचना का समुचित विकास हुआ और इससे समालोचना को नवीन स्फूर्ति एवं प्रोत्साहन मिला। इस युग मे आलोचना की निम्न प्रवृत्तियाँ सम्मुख आयी—परिचय प्रधान, गवेषणा प्रधान, सिद्धान्त प्रधान, शास्त्र प्रधान, प्रभाव प्रधान, तुलना प्रधान और चिन्तन प्रधान। परन्तु नवीन सांस्कृतिक उत्थान, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और भाषा मे बढ़ती हुई अभिव्यंजना शक्ति के परिणाम स्वरूप आलोचना विधा का चतुर्मुखी विकास हुआ तथा उसमे नवीनता परिलक्षित होने लगी। प्राचीनता की दृष्टि से हिन्दी साहित्य मे ऐतिहासिक आलोचना की प्रवृत्ति ही विशिष्ट मानी जाती है और इसका मुख्य कारण है कि आलोचना के क्षेत्र मे इसी का प्रयोग सबसे अधिक प्रचलित है। आधुनिक युग मे आलोचना साहित्य मे अन्य नवीन प्रवृत्तियों का भी दिग्दर्शन हो रहा है जो उसके विकासात्मक रूप का परिचायक है। आलोचना की प्रवृत्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध व्यक्ति के दृष्टिकोण पर आधारित है और दृष्टिकोण का आधार मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक, वैज्ञानिक, निर्णयात्मक, सामाजिक, वैयक्तिक आदि मे कोई भी हो सकता है। परन्तु स्थूल रूप से यह कहा जा सकता है कि साहित्य की जितनी भी विधाएं होती हैं उतने ही प्रकार की आलोचना का भी जन्म होता है और उसी के अनुरूप प्रवृत्ति का भी। आलोचना के वर्गों और उनके विभिन्न दृष्टिकोण के कारण आलोचना साहित्य के अनेक वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं। यहाँ हम उन विभिन्न वर्गों की आलोचना की प्रवृत्ति का विभाजन अलग अलग न प्रस्तुत करके आलोचना साहित्य मे प्राप्त प्रमुख प्रवृत्तियों की ही सम्यक विवेचना करेंगे जो उन वर्गों से भी घनिष्ठता रखती हैं।

[१] ऐतिहासिक आलोचना ऐतिहासिक आलोचना प्रणाली से आशय किसी कृति के व्याख्यात्मक रूप को प्रस्तुत करने के पूर्व उस कृति के रचयिता के पूर्ववर्ती तथा समकालीन इतिहास का आश्रय ग्रहण करने से होता है। इस पद्धति के व्यवहार रूप मे आलोचक का दृष्टिकोण सामाजिक होता है और वह साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब मानता है। ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग करने वाला आलोचक लेखक के काल विशेष मे उन शक्तियों को प्रतिभासित करने की चेष्टा करता है जिसकी प्रेरणा से लेखक साहित्य रचना करता है। इस प्रकार आलोचक का मुख्य ध्येय उस युग की आत्मा को कृति विशेष के माध्यम से परिलक्षित करना है। परिणामस्वरूप यह प्रणाली कुछ अवैज्ञानिक है। आधुनिक युग में इस प्रणाली के मुख्यतः दो रूप परि-

लक्षित होते हैं—साहित्यिक इतिहास में रूप म और विशिष्ट दृष्टिकोण के रूप मे। साहित्यिक ऐतिहासिक आलोचना के अन्तगत साहित्य और उसके विविध अगो का परम्परागत विवरण प्रस्तुत किया जाता है और दूसरे रूप का समावेश आलोचना की अन्य प्रवृत्तियो में परिलक्षित होता है। ऐतिहासिक आलोचना पद्धति की सवप्रमुख विशेषता विशिष्ट युग सम्मत दृष्टिकोण से युग की उपलब्धियों का लेखा जोखा प्रस्तुत करना तथा उसके भावी विकासात्मक सकेत सूत्रों का चयन करना ऐतिहासिकता की साधकता एव उसकी परिपूणता है। इसकी दूसरी विशेषता अतीत युगो क साहित्य की पारस्परिक सम्बद्धता की सूचक है। आलोचना समीक्षा की अन्य विशेषता अतीत साहित्य की उपलब्धियों का सुरक्षीकरण है। आधुनिक हिन्दी आलोचना साहित्य की ऐतिहासिक प्रवत्ति म योगदान देन वाल समीक्षको म सवप्रथम सन् १८३९ ई० म हिन्दी साहित्य का इतिहास इस्त्वार ला लितरत्यूर एन्दुई ऐन्दुस्तानी शीषक ग्रन्थ प्रस्तुत करने वाल फ्रांसीसी साहित्यकार गार्सा द तासी का नाम उल्लखनीय है। इसके उपरा त सन् १८८३ ई० म ठाकुर शिवसिंह सेंगर न हिन्दी काव्य के ऐतिहासिक विवरण को शिवसिंह सरोज शीषक सकलन म प्रस्तुत किया। सन १८८९ ई० म डा० ग्रियसन ने कवि वत्त सग्रह माडन वरनाक्यूलर लिटरेचर आफ नादन हिन्दुस्तान नाम स प्रकाशित किया परन्तु उसम ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का कोई परिष्कृत एव पुष्ट रूप लक्षित नही होता है। सन् १९०० स १९१९ के मध्य काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रस्तुत खोज रिपोर्टों म ऐतिहासिक पद्धति का निर्वाह हुआ है। मिश्रबन्धु की मिश्रबन्धु विनोद समीक्षा (१९१३), आचाय रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास' समीक्षा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक समीक्षा पद्धति का अनुकरण करने वाल अन्य समीक्षको म हिन्दी भाषा और साहित्य के लेखक डा० श्यामसुन्दर दास हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास के लेखक डा० सूयकान्त शास्त्री, हिन्दी साहित्य की भूमिका तथा हिन्दी साहित्य का आदिकाल के लेखक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास के लेखक प० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध हिन्दी साहित्य का इतिहास के लेखक डा० रामशकर शुक्ल रसाल तथा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास के लखक डा० रामकुमार वर्मा आदि भी अग्रगण्य हैं। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी अपनी आलोचनात्मक रचनाओं मे इस आलोचना प्रवत्ति का उपयोग किया है। इस आलोचना प्रणाली का रूप द्विवेदी जी लिखित ज्योति विहग जसी आलोचनात्मक रचनाओ मे अपेक्षाकृत प्रौढ़ता से युक्त दृष्टिगत होता है। इसम लेखक न आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रमुख कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य साहित्य का मूल्याकन उनकी वयारिक साहित्यिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है।

[२] सुधारपरक समीक्षा इस समीक्षा के अन्तगत समीक्षक साहित्य के

गुण दोषो के प्रत्यक्षीकरण के साथ कुछ मता एव सुझावो को भी व्यक्त करता है जिनका आधार सद्धान्तिक होता है तथा उनकी व्यावहारिक सम्भावनाएँ भी अधिक होती हैं। केवल गुण दोष के प्रत्यक्षीकरण मे आलोचक का दृष्टिकोण बहुत ही सकुचित हो जाता है, वह केवल रूढि का ही अनुगामी होता है। इस प्रकार वह लेखक और कवियो की नवीन विशेषताओ तथा अन्त प्रकृति के सूक्ष्म विश्लेपण को या तो स्वीकार नही करता अथवा उस ओर से अपनी दृष्टि ही हटा लेता है। फलत समीक्षा का क्षेत्र सकुचित-सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त आलोचक इस गुणदोषात्मक प्रणाली का अनुसरण करके लेखक या कवि क व्यक्तित्व, उसके युग और युगानुकूल पड़े हुए प्रभावा की उपेक्षा कर देता है। आलोचना साहित्य के विकासात्मक स्वरूप को देखते हुए यह स्पष्टत कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में समीक्षा का क्षेत्र द्विवेदी युग की अपक्षा अधिक सकुचित एव सीमित था। इस युग में नवीन मानदडा को स्वीकार करके रुढिवादिता का विरोध किया गया। द्विवेदी युग क सव प्रमुख समीक्षक प० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी न सुधारपरक भावना का अपनी गुणदोषात्मक समीक्षा में समावश किया। द्विवेदी जी का दष्टिकोण सुधारवादी एव परिष्कार की भावना से ओतप्रोत था। कृति अथवा कृतिकार के मूल्याकन के साथ इनकी दष्टि भाषा के विविध रूपो पर और विशेषत भाषा की व्याकरणिक शुद्धता पर विशेष रूप से केन्द्रित रहती थी। द्विवेदी जी न निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक समीक्षा के साथ तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का भी प्रयोग किया है परन्तु उनका स्थान शास्त्रीय समीक्षका में है। इनकी आलोच्य कृति की शैली कहा-कही पर अतिशय व्यग्यात्मक हो जाती है। प० महावीर प्रसाद द्विवेदी की आलोच्य कृतिया में 'रसन रजन' और आलोचनाजलि' सैद्धान्तिक समीक्षा, हिन्दी नवरत्न व्यावहारिक समीक्षा से सम्बन्धित रचनाए हैं। परन्तु 'हिन्दी कालिदास की समालोचना और कालिदास की निरकुशता अत्यधिक विवादास्पद हैं और उनमें परिचयात्मक व्याख्या की गयी है। नयी कविता और नवीन गद्य साहित्य की आलोचना से सम्बन्धित रचनाओ में श्री शांतिप्रिय द्विवदी ने इस आलोचना प्रणाली का परिचय दिया है। द्विवेदी जी का मन्तव्य है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य की विभिन्न विधाओ के क्षेत्र में अस्पष्टता आडम्बरपूर्णता, दुरूहता एव उच्छ खलता के जो तत्व विद्यमान मिलते हैं व साहित्य के विकास की भावी दिशा को प्रशस्त न करके उसकी स्वस्थ विकास की सम्भावनाओ को रुद्ध करते हैं।

[३] तुलनात्मक समीक्षा ऐतिहासिक दष्टिकोण मे तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का सूत्रपात उन्नीसवी शताब्दी स माना जाता है। इस प्रणाली का मुख्य उद्देश्य किसी रूप या शैली पर विशेष साहित्यिक प्रभावा की खोज करना है। इसके अतिरिक्त विषय विशेष म निहित तत्वा की तुलना उन्ही क समानान्तर विषया म निहित तत्वों से करके किसी निर्णय का आरोपण करना भी इस प्रणाली के अन्तर्गत रखा जा

सकता है। हिंदी साहित्य कोश मे तुलनात्मक समीक्षा को इस तरह प्रस्तुत किया गया है—तुलनात्मक आलोचना मे साहित्य अभिव्यजना का साधन मात्र ही नही मनुष्य के भावो और विचारो का प्रतिबिम्ब या प्रतीक है वह सामाजिक चेतना का दर्पण है।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक समीक्षा प्रवृत्ति का अत्यधिक महत्व है और आधुनिक युग म इसका प्रचार एव प्रसार अत्यधिक प्रचलित है। यह तुलना एक कवि की विभिन्न कृतियो पर विषय के पारस्परिक रूप म अथवा भाषा की दृष्टि म हो सकती है। वस्तुत तुलना विषय, भाव भाषा शैली आदि सभी दृष्टियो स होती है। द्विवेदी युग मे तुलनात्मक समीक्षा प्रवृत्ति से प्रभावित आलोचनाजलि म अश्वघोष कृत 'सौन्दरनन्द की तुलना कालिदास से छन्नूमल द्विवेदी का कालिदास और शेक्सपीयर द्विजेन्द्रलाल का बगला भाषा मे 'कालिदास और भवभूति' क अतिरिक्त हिदी में देव और बिहारी की तुलनात्मक विवेचना आदि है। आधुनिक समीक्षा साहित्य की तुलनात्मक प्रणाली में विशिष्ट स्थान रखने वाल लेखको एव उनकी कृतिया म जो नाम विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं उनम मिश्रबन्धुओ की हिन्दी नवरत्न प० पद्मसिंह शर्मा जी की पद्मपराग निबन्ध सग्रह तथा बिहारी सतसई की विस्तृत भूमिका, प० कृष्णबिहारी मिश्र की देव और बिहारी तथा मतिराम ग्रन्थावली' की भूमिका लाला भगवानदीन की बिहारी और देव के अतिरिक्त 'अलकार मजूषा व्यग्याथ मजूषा बिहारी बोधिनी कवितावली दीपावली, केशव कौमुदी सूरपचरत्न आदि अनेक कृतियाँ तथा शचीरानी गुटू की साहित्य दर्शन आदि अनेक हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी न छायावादी कवियो तथा अनेक उपन्यासकारो स सम्बधित रचनाओ मे इसका प्रयोग किया है। छायावाद के कवियो म प्रसाद पत निराला और महादेवी तथा गद्यकारो म प्रमचन्द रवीन्द्रनाथ शरद् तथा टाल्स्टाय आदि का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए लेखक न इस आलोचना प्रणाली का प्रयोग किया है।

[४] शास्त्रीय समीक्षा भारत मे ही क्या विश्व के साहित्य म समीक्षा के विविध रूपा म सर्वाधिक प्राचीन रूप शास्त्रीय समीक्षा का ही माना जाता है। संस्कृत साहित्य म श्रव्य काव्य दृश्य काव्य महाकाव्य खड काव्य रस निरूपण गद्य पद्य, चम्पू नायक नायिका नाट्य आदि के सम्बन्धो म जो नियम निर्धारित किये गये, उन्हीं क अनुसार साहित्य की समीक्षा की जाती है। वस्तुत जब साहित्यिक रूप म लोक रुचि का स्थायीत्व हो जाता है तभी रचनाओ का विश्लेषण करके सिद्धान्त और नियम स्थापित किए जाते हैं।[2] शास्त्रीय समीक्षा के अन्तर्गत प्राचीन शास्त्रीय और परम्परागत सिद्धान्तो के आधार पर समीक्षा प्रस्तुत की जाती है। आधुनिक हिन्दी

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, प्रधान सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ११४।
२ वही पृ० १२१।

रीति शास्त्र म संस्कृत साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तो एव मान्यताओ का अनुकरण एव अनुमोदन किया गया और उसी के आधार पर ही समीक्षा की शास्त्रीय प्रवत्ति क्रियान्वित हुई। आधुनिक हिन्दी साहित्य मे शास्त्रीय समीक्षा का प्रारम्भ रीति काल के साहित्य शास्त्र के अनुगमन से हुआ था अतएव हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाए उन्ही सैद्धान्तिक निरूपण की परम्परा स अभिहित हैं। आधुनिक हिन्दी समीक्षा साहित्य मे शास्त्रीय प्रवत्ति के अनुकरणकर्ताओ और उनकी कृतियो मे निम्नलिखित मुख्य हैं कविराजा मुरारिदान लिखित 'जसवन्त भूषण' (स० १९५०) महाराजा प्रताप नारायण सिंह का 'रस कुसुमाकर, श्री कन्हैयालाल पोद्दार के काव्य कल्पद्रुम के दो भाग—रस मजरी और अलकार मजरी', श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु के शास्त्रीय ग्रन्थ हिन्दी काव्यालकार, 'अलकार प्रश्नोत्तरी' रस रत्नाकर, नायिका भेद शब्दावली 'छन्द प्रभाकर', और काव्य प्रभाकर आदि लाला भगवानदीन का अलकार मजूषा, डा० राम शकर शुक्ल 'रसाल' का 'अलकार पीयूष' श्री सीताराम शास्त्री का साहित्य सिद्धान्त (स० १९८०), श्री अर्जुनदास केडिया का 'भारती भूषण, प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध का रस कलस' श्री बिहारीलाल भट्ट का साहित्य सागर मिश्रबन्धुओ का मिश्रबन्धु विनोद' और हिन्दी नवरत्न, डा० श्यामसुन्दर दास की कृतियाँ राधाकृष्ण ग्रन्थावली 'हिन्दी निबन्धमाला', चन्द्रावती अथवा नासिकतोपाख्यान 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी कोविद ग्रन्थ माला, रूपक रहस्य साहित्यालोचन, तथा हिन्दी भाषा और साहित्य, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षात्मक ग्रन्थो म 'चिन्तामणि (दो भाग), रस मीमासा' 'जायसी ग्रन्थावली', भ्रमरगीत सार' तथा गोस्वामी तुलसीदास', डा० गुलाब राय की शास्त्रीय आलोचनात्मक कृतिया नवरस, 'सिद्धान्त और अध्ययन, 'काव्य के रूप, हिन्दी काव्य विमर्श, तथा हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास', प० सीताराम चतुर्वेदी कृत 'समीक्षा शास्त्र', श्री लक्ष्मीनारायण सुधाशु' लिखित 'काव्य म अभिव्यजनावाद (सवत १९९३) और जीवन के तत्व तथा काव्य के सिद्धान्त' (सन् १९४२), डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी की समीक्षात्मक कृतिया मे 'सूर साहित्य' (१९३४), सूर और उनका काव्य (१९४४), हिन्दी साहित्य की भूमिका' (१९४०), कबीर (१९४१), नखदपण म हिन्दी कविता (१९४१), विचार और तक (१९४५), 'अशोक के फूल (१९४८) 'हमारी साहित्यिक समस्याए 'कल्पलता (१९५०), 'साहित्य का मम (१९५०), साहित्य का साथी (१९४) 'हिन्दी साहित्य उसका उदभव और विकास (१९५२), आधुनिक साहित्य पर विचार' (१९५५), 'मध्यकालीन धम साधना (१९५२) आदि प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र की भूषण ग्रन्थावली' कवितावली', सुदामा चरित और हमीर हठ' की भूमिका लिखकर उसका प्रकाशन तथा स्वतत्र समीक्षात्मक कृतियो म बिहारी की वाग्विभूति, वाङमय विमश (सवत १९९९), बिहारी (स० २००७), सम-

सामयिक साहित्य (स० २००८) तथा भूषण आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जहाँ तक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य म शास्त्रीय दृष्टिकोण के समावेश का सम्बन्ध है उन्होंने अधिकांशत भक्ति काव्य के मूल्यांकन के सन्दभ में ही इसका परिचय दिया है। ज्योति विहग म भी नवीन दृष्टिकोण के समावेश के साथ शास्त्रीय आधारभूमि पर श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने पन्त काव्य का मूल्यांकन किया है।

[५] छायावादी समीक्षा आधुनिक हिन्दी समीक्षा के अन्तगत छायावादी समीक्षा की प्रवत्ति प्रमुखत हिन्दी कविता में छायावादी आन्दोलन की देन है जो बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में काव्य के क्षेत्र में अपनी नवीन शलियो से आप्लावित और नवीन उपलब्धियों से युक्त है। इस आन्दोलन का प्रादुर्भाव द्विवेदी युगीन प्रवत्तियो के विरुद्ध एक प्रतिक्रियात्मक रूप में हुआ था। छायावादी काव्य साहित्य में पाश्चात्य काव्य शलियो का भी प्रभाव दष्टिगोचर होता है। छायावादी आन्दोलनकत्ता तथा इसका अनुगमन करने वाले विभिन्न विचारकों एव कवियो ने भी अपनी कुछ समीक्षात्मक रचनाए प्रस्तुत की हैं जो वस्तुत इसी प्रवत्ति के अन्तगत मानी जाती हैं। छायावादी समीक्षकों की रचनाओं में अभिहित विशिष्टताओं को उनकी कृतियों के उल्लेख के साथ ही स्पष्ट किया जा रहा है। आधुनिक छायावादी आन्दोलन के प्रवतक जयशंकर 'प्रसाद जी की समीक्षात्मक कृति काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध है। इसमें प्रसाद जी ने काव्य कला रस अलकार रहस्यवाद छायावाद और यथार्थवाद आदि विषयो पर विचारात्मक निबन्धो को सगहीत किया है। इसमें काव्य के आभ्यान्तरिक तत्व रस का सूक्ष्मता से विवेचन हुआ है तथा विविध मन्तव्यों को भी स्पष्ट किया गया है। श्री सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला जी छायावादी प्रवत्ति के चार प्रमुख स्तम्भो में से एक हैं। वे कवि के साथ ही एक जागरूक समीक्षक की दृष्टि से भी विशिष्टता रखते हैं। प्रबन्ध प्रतिभा और चाबुक कृतियो में उनके सद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचनात्मक विचारो का स्पष्टीकरण है। श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी ने अपनी अधिकांश कृतियो में भूमिका के रूप में अपनी वचारिक मान्यताओं को स्पष्ट किया है। उन्होंने काव्य की भाषा के स्वरूप छायावाद के स्वरूप और उसके असामयिक अन्त आदि विषयो पर अपने विविध विचारो का स्पष्ट किया है। श्रीमती महादेवी वमा की वचारिक उपलब्धियो के कारण छायावाद के चार प्रमुख स्तम्भों में उनका भी विशिष्ट स्थान है। उन्होंने आधुनिक कवि भाग (१) क्षणदा पथ के साथी अतीत के चल चित्र स्मति की रेखाए दीप शिखा तथा यामा आदि कृतियो में युग जीवन तथा साहित्य से सम्बन्धित अपने दृष्टिकोण को उन्मिषित किया है। अन्य छायावादी विचारकों के सदृश ही श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी में भावनात्मकता की ही प्रवत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। उनकी कृतियों में ज्योति विहग 'सामयिकी 'कवि और काव्य, 'युग और साहित्य आदि

अनेक समीक्षात्मक रचनाएं हैं जिनमें लेखक ने समकालीन काव्य प्रवृत्तियों के समी
क्षात्मक चिन्तन के अतिरिक्त काव्य तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास और साहित्य की
विविध विधाओं पर अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया है। इनकी कृतियों में समीक्षात्मक
चिन्तन के साथ कवि सुलभ भावुकता भी दृष्टिगोचर होती है। श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय
जी ने छायावादी काव्य प्रवृत्ति के विषय में अपनी समीक्षात्मक चिन्तन प्रणाली
का परिचय दिया है। छायावादी विशेषताओं को स्वीकार करने के साथ ही उनकी
समीक्षा कहीं-कहीं पर तुलनात्मक प्रवृत्ति को भी स्पर्श करने लगती है। व्यावहारिक
समीक्षा में उनके दृष्टिकोण की व्यापकता परिलक्षित होती है। इस विवेचन से
स्पष्ट है कि छायावाद के विचारकों की समीक्षात्मक उपलब्धियों में एक विशिष्ट
शैली के रूप में अभिव्यक्तिगत स्पष्टीकरण है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के आलोचना
साहित्य में छायावादी दृष्टिकोण का समावेश मुख्यतः ज्योति विहग नामक रचना
में हुआ है जो इस दृष्टि से उनकी सर्वप्रतिनिधि कृति कहा जा सकती है। पन्त
काव्य की आलोचना के सन्दर्भ में लेखक ने छायावादी विचार दृष्टि का भी विस्तृत
विश्लेषण किया है।

[६] प्रगतिवादी समीक्षा छायावाद के परवर्ती काल से, लगभग १९३० से
साहित्य में प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव माना जाता है। हिन्दी साहित्य में इसके स्वरूप
की अनेक समीक्षात्मक उपलब्धियां प्राप्त हैं। हिन्दी में प्रगतिवादी आन्दोलन का
प्रारम्भ विदेशी साहित्य के प्रभाव और यथार्थवादी प्रवृत्ति के समन्वय से हुआ तथा
इसकी विचारधारा का निर्धारण मार्क्सवादी जीवन दर्शन में ओतप्रोत है। यद्यपि
यह राजनीतिक वाद है परन्तु द्वितीय महायुद्ध के पूर्व ही यह साहित्यिक क्षेत्र में प्रवेश
कर चुका था एवं इसका विकास अत्यन्त तीव्रता से हुआ। प्रगतिवादी विचारधारा
ने साहित्य की दोनों विधाओं पद्य और गद्य को आप्लावित किया तथा विभिन्न गद्य
कारों से इसे समर्थन प्राप्त हुआ। प्रगतिवादी प्रवृत्ति के अन्तर्गत अपना प्रमुख स्थान
रखने वाले समीक्षकों में मुख्यतः निम्न हैं। इसके साथ ही यहाँ पर इनके दृष्टिकोण
का भी संक्षेप में विवेचन प्रस्तुत है। प्रगतिवादी समीक्षकों में अपना प्रमुख स्थान
रखने वालों में राहुल सांस्कृत्यायन का एक विशिष्ट स्थान है। इनकी
हिन्दी काव्य धारा दक्खिनी काव्य धारा तथा साहित्य निबन्धावली' आदि
समीक्षात्मक कृतियों के अतिरिक्त बहुत सी कृतियों की भूमिका में समीक्षात्मक
रूप दृष्टिगोचर होता है। इनकी विचारधारा राजनीति से प्रभावित है तथा साहित्य
में समाज और राजनीति की विभिन्न समस्याओं का पर्यावेक्षण प्रस्तुत किया गया
है। प्रगतिवादी आन्दोलन के समर्थकों में श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त के विचारों का स्पष्टी
करण उनके स्फुट निबन्धों में मिलता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य एक दृष्टि
तथा नया हिन्दी साहित्य एक दृष्टि समीक्षात्मक कृतियों के अन्तर्गत संघर्ष को
मानव की अनिवार्यता मानते हुए इनमें कला और साहित्य की धारणाओं को स्पष्ट

किया है। डा० रामविलास शमा ने अपने निबन्धो म मार्क्सवाद और प्राचीन साहित्य के मूल्याकन के साथ ही एक व्यापक जीवन दर्शन को प्रस्तुत किया है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने कला और साहित्य स सम्बधित अनेक समस्याओ पर गम्भीरतापूवक विचारो का विश्लेषण एव उनके निराकरण हेतु सम्भावनाओ को प्रस्तुत किया है। आपने प्रगतिवाद पर अपने विचारो का स्पष्टीकरण किया है। श्री मन्मथनाथ गुप्त जी के विचारात्मक निबन्धो का सग्रह 'प्रगतिवाद की रूपरेखा' है जिसमे उन्होने प्रगतिशीलता के विरुद्ध उठाए गए तर्कों का खडन कर उसका यथाथ मूल्याकन किया है। डा० रागेय राघव के प्रगतिशीलता स ओत प्रोत विचारो का सग्रह इनकी पुस्तक प्रगतिशील साहित्य के मानदड के निबन्धो म परिलक्षित होता है। श्री रामेश्वर शर्मा ने राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य निबन्ध सग्रह मे प्रगतिवाद के स्वरूप का विश्लेषण एव उससे सम्बधित विचारो का निरूपण प्रस्तुत किया है। परन्तु इन प्रगतिवादी विचारको एव समीक्षको के दृष्टिकोणो का अगर सूक्ष्मता स विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि उनम परस्पर वचारिक विभिन्नता है और प्रत्येक का अपना अलग स्वतत्र दृष्टिकोण है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य म प्रगतिवादी तत्वो का समावेश ज्योति विहग स्मृतियाँ और कृतियाँ तथा कवि और काव्य मे स्पष्टत विद्यमान है जिसका आधार गाधीवाद और मानव वादी विचारधारा हैं।

[७] व्यक्तिवादी समीक्षा आधुनिक हिन्दी साहित्य म काव्य के क्षेत्र म व्यक्तिवाद का पर्याय ही प्रयोगवाद है तथा इसका समावेश साहित्य की दोनो विधाओ गद्य और पद्य म हुआ। हिन्दी साहित्य की अन्य प्रवत्तियो के सदृश्य ही व्यक्ति वादी प्रवत्ति के स्वरूप को अनेक विचारको एव समीक्षको ने विश्लेषित किया तथा काव्य क्षेत्र म प्रयोगशील भावना की स्वाभाविकता की ओर सकेत किया। स्पष्टत व्यक्तिवादी प्रवत्ति प्रगतिवाद की विरोधी प्रवत्ति है तथा व्यक्तिवादी आन्दोलन प्रगतिवाद के ही विरोध मे हुआ। हिन्दी म व्यक्तिवादी समीक्षात्मक प्रवत्ति का सकेत तो बहुत पहले से मिलता है लेकिन अपने सगठित और सुनियोजित रूप मे सन १९२० इ० म यह समाविष्ट हुई। इस प्रवत्ति ने काव्य एव चिन्तन के क्षेत्र म पदार्पण कर अन्य गद्य साहित्यागो को भी आकर्षित किया। प्रयोगवादी अथवा व्यक्तिवादी प्रवत्ति साहित्य के रचनात्मक क्षेत्र मे वयक्तिक अनुभूतियो की अनुमोदिनी है। फलत प्रगतिवादी विचारधारा के विपरीत है। व्यक्तिवादी प्रवत्ति के अन्तगत आने वाले प्रमुख ग्रन्थो म श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय का 'त्रिशकु' निबन्ध सग्रह है। इसके अतिरिक्त अनेक कृतियो की भूमिकाए एव स्फुट रचनाएँ भी हैं। हिन्दी समीक्षको म इस प्रवत्ति को प्रश्रय देने वाले समीक्षको म आपका नाम अग्रगण्य है। अज्ञेय जी ने काव्य के स्वरूप एव लक्ष्य के स्पष्टीकरण में अनुभूति की व्यापकता पर ही बल दिया है। परन्तु अज्ञेय जी ने इस प्रवृत्ति का

धारा के घेरे म आवद्ध नही किया है। वह इसके विरोध मे हैं। समीक्षात्मक विचार धारा म आपने नीति तत्व को महत्ता प्रदान की है। आपके विचारानुसार प्रयोग अपने आप म कोई इष्ट नही एक साधन मात्र है। प्रयोगो का महत्व उनके द्वारा प्राप्त उपलब्धियो म है।[1] अज्ञेय जी न सामाजिक चेतना को मान्यता दी है एव साहित्य की परम्परा परिस्थिति और युग की सापक्षता के अन्तगत मूल्यांकन प्रस्तुत किया है। वह सामूहिक मन के परिवर्तित और विकसित होने म विश्वास करते हैं।[2] इसके अतिरिक्त समाजवादी दशन एव प्रगतिशील समीक्षा की शब्दा वली का भी वह यथासम्भव प्रयोग नहीं करते है। श्री गिरिजाकुमार माथुर न भी साहित्य और काव्य के विषय म अपन दष्टिकोण एव मान्यताओ का स्पष्टीकरण स्फुट निबन्धो तथा भूमिकाओ के अन्तगत किया है। आपन नया कविता की उप लब्धियो की सम्भावना पर भी अपन विचार प्रकट किय हैं। आधुनिक युग म साहित्यकार के दायित्वो और साहित्य की नयी मर्यादा पर विचार विवेचन करने वाले सचेतन साहित्यकार डा० धमवीर भारती का नाम भी प्रयोगवादी समीक्षको के अन्तगत ही उल्लिखित होता है। उनकी आलोचनात्मक मान्यताएँ वस्तुत मार्क्स वाद और फ्रायडवाद का समन्वय रूप कहा जा सकता है। वह फ्रास और इग्लैंड की प्रयोगवादी मान्यताओ से विशेष प्रभावित थे एव वहीं के कला समीक्षकों को अपना आदश रूप मानते थ। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी न अपनी समीक्षात्मक पुस्तक 'नयी कविता के प्रतिमान मे आधुनिक हिन्दी काव्य की उपलब्धियो और सम्भाव नाओं पर विचार करने के साथ ही प्रयोगशील नई कविता को एक सद्धान्तिक आधार भूमि भी प्रदान की है। वह सात्र इलियट, अज्ञेय तथा अन्य देशी विदेशी अस्तित्व वादी समीक्षका के विचारा का समथन करते थे। डा० जगदीश गुप्त जी प्रगतिवादी मान्यताओ को स्वीकार करते हैं परन्तु उन्होने अथ की लय तथा रसानुभूति और सह अनुभूति आदि निबन्धो मे प्रगतिवादी मान्यताओं से विपरीत मान्यताओ की स्थापना की है। उन्होंने नयी कविता के क्षेत्र म अपने दष्टिकोण एव मान्यताओ को स्पष्ट किया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य म व्यक्तिवादी दष्टि कोण का परिचय मुख्यत 'ज्योति विहग' म मिलता है जिसमे अन्तिम लेख 'लोकायतन' शीर्षक के अन्तगत उन्होंने वयक्तिक विचार दशन प्रधान चेतना का निरूपण करते हुए अपने मन्तव्यों की पुष्टि की है।

[८] मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा आधुनिक युग म यूरोपीय मनोविश्ले-षणवादी आन्दोलन का प्रभाव हिन्दी समीक्षा साहित्य पर अधिक विशद रूप में दष्टिगोचर होता है। यह प्रशस्त प्रभाव हिन्दी साहित्य के किसी एक अग विशेष पर

---

१ हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० ८४९ ८५०।
२ 'त्रिशकु', श्री स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय', पृ० ३४।

र पड कर गद्य और पद्य के सभी रूपों म परिव्याप्त है। हिन्दी साहित्य क अनेक कवियो एव समीक्षकों—प० रामचद्र शुक्ल, श्री जनेन्द्र, डा० नगेन्द्र श्री अज्ञेय, डा० देवराज श्री इलाचन्द जोशी आदि—ने इसके विकास मे अपना योगदान दिया। मनोविश्लेषणवादी समीक्षा को दूसरे शब्दों म फ्रायडवादी भी कहा जा सकता है। डा० फ्रायड ने चेतन और अचेतन मन की व्याख्या करते हुए उनका वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। मानव के विविध काय उसके चेतन अथवा अचेतन मन से सम्ब ही प्रभावित होते हैं। इसके अतिरिक्त डा० एल्फ्रेड एडलर तथा युग की मान्यताए भी इस समीक्षा पद्धति म दृष्टिगोचर होती हैं। एडलर के मतानुसार व्यक्ति म अपने प्रारम्भिक युग स ही शक्ति प्रदशन की भावना अन्तर्निहित है जिसे लिबिडो की आख्या दी है। मनुष्य की दूसरी मूलभूत भावना उच्चता की ग्रथि है। परन्तु युग न फ्रायड की काम भावना और एडलर की शक्ति प्रदशन का भावना के अपूव सयोग के आधार पर समन्वयवादी दृष्टिकोण को स्वीकार किया है। उपरोक्त लिखित मनोविश्लेषणात्मक समीक्षकों म प्रमुखत जनेन्द्र कुमार और इलाचन्द जोशी जी ने इस क्षेत्र मे अपना विशेष योगदान दिया है। अन्य समीक्षकों की साहित्यिक मान्यताओं म यत्र तत्र मनोविश्लेषणवाद के दशन होते हैं। मनोविश्लेषणात्मक चिन्तकों म श्री जनेन्द्र का नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। इनकी क्रियात्मक तथा समीक्षात्मक कृतियों म उनकी विचारधारा एव मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं। जनेन्द्र गांधीवादी विचारधारा स प्रभावित थे तथा उन्होंने सर्वो य की व्याख्या की है जो आध्यात्मिक प्रधानता लिए हुए है। उन्होंने जीवन की विशुद्ध मानवीय प्रवृत्तियों को स्वीकार किया है। हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक श्री इलाचन्द्र जोशी का क्रियात्मक साहित्य के अतिरिक्त मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा के क्षेत्र म महत्वपूर्ण स्थान है। उनके वचारिक सग्रहों म 'साहित्य सर्जना', 'विश्लेषण' 'विवेचना' 'साहित्य चिन्तन' तथा 'देखा परखा' आदि विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं। श्री जोशी जी न आधुनिक हिन्दी साहित्य म मनोविज्ञान के विविध तत्वों एव उनके प्रभावों के विविध रूपों का विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त आपने काव्य के क्षेत्र म छायावादी आन्दोलन एव छायावाद की प्रवत्ति पर अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। जोशी जी ने नीति और उपयोगितावाद स अलग होते हुए भी युग यथार्थ को स्वीकार किया है। जोशी जी के मनोवैज्ञानिक यथार्थ म व्यक्तिगत अहवादी असामाजिक कुत्सित भावना तथा समाज विरोधी अस्वस्थ मनोविकार का स्थान नहीं मिला है। व समाज की उन्नति के पक्ष म हैं। मार्क्सवाद और मनोविज्ञान को व एक दूसरे का पूरक मानते हैं। इन दोनों के समन्वय म ही व्यक्ति और समाज का विकास सम्भव है।[1] आधुनिक युग म हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म मनोविश्लेषणात्मक

---

१ आधुनिक हिन्दी आलोचना : एक अध्ययन' डा० मक्खनलाल शर्मा पृ० २७२।

सिद्धान्तों का समावेश अधिकाधिक बढ़ता ही जा रहा है। द्विवेदी जी के आलोचना साहित्य में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का भी समावेश मिलता है। आगे द्विवेदी जी की आलोचना कृतियों में निहित इस दृष्टिकोण का सम्यक विवेचन पृथक से प्रस्तुत किया जायगा।

[९] व्याख्यात्मक समीक्षा व्याख्यात्मक आलोचना की प्रवृत्ति का आविर्भाव जर्मनी के विचारकों के कारण हुआ जिन्होंने कला की विशेष और सूक्ष्म व्याख्या प्रस्तुत की। इस प्रवृत्ति में साहित्यिक दृष्टिकोण में वैयक्तिकता या सामाजिकता का कट्टर आग्रह नहीं होता तथा प्राचीन सिद्धांतों की मान्यता आवश्यक है। परन्तु धीरे धीरे इसमें नवीन सिद्धांतों एवं विचार प्रणालियों को मान्यता प्राप्त हुई तथा शास्त्रीय नियमों की प्रधानता को आघात पहुँचा। स्वाभाविकता की ओर लोगों का ध्यान इतना आकृष्ट होता गया कि शास्त्रीय नियमों के प्रति विचारकों एवं समीक्षकों की श्रद्धा न रह गयी। वस्तुतः व्याख्यात्मक आलोचना नियमों के बन्धनों से मुक्ति और साहित्यिक कृतियों की बन्धन रहित व्याख्या का प्रयास है।[१] व्याख्यात्मक आलोचना का मूल सिद्धान्त उसका निरपेक्ष मानदंड स्थापित करना है। आधुनिक हिन्दी समीक्षा में व्याख्यात्मक प्रवृत्ति का विकास भारतेन्दु युग से माना जाता है जो उस समय के टीका ग्रन्थों से सापेक्ष्य रखता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत लिखी पुस्तकों में विविध प्राचीन ग्रन्थों की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। परन्तु आधुनिक युग में इस प्रवृत्ति के स्वरूप में परिवर्तन हुआ और दृष्टिकोण में व्यापकता लक्षित होने लगी। इसमें नवीन सिद्धान्तों एवं विचार प्रणालियों का समावेश हुआ। व्याख्यात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति के अन्तर्गत प्रो० ललिता प्रसाद सुकुल की कृतियाँ 'काव्य चर्चा' और 'साहित्य जिज्ञासा' श्री परशुराम चतुर्वेदी की समीक्षात्मक कृतियाँ 'मीराबाई की पदावली', 'सूफी काव्य संग्रह', 'हिन्दी काव्य धारा में प्रेम भावना का विकास', 'उत्तरी भारत की सन्त परम्परा', 'सन्त काव्य', 'मध्य कालीन प्रेम साधना', 'मानस की राम कथा' तथा 'नव निबन्ध', श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की कृतियाँ 'विश्व साहित्य', 'हिन्दी साहित्य', 'विमर्श प्रदीप', 'हिन्दी कथा साहित्य' आदि डा० सत्येन्द्र की समीक्षात्मक कृतियाँ 'साहित्य की झाँकी', 'गुप्त जी की काव्य कला', 'हिन्दी एकांकी', 'प्रेमचन्द और उनकी कला', 'ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन', 'कला कल्पना और साहित्य' तथा 'हिन्दी साहित्य में आधुनिक प्रवृत्तियाँ' आदि श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' की रचनाएँ 'प्रसाद की नाट्यकला', 'आलोचना समुच्चय', शिलीमुखी 'कला और सौन्दर्य' तथा 'निबन्ध प्रबन्ध' आदि के साथ ही श्री प्रभाकर माचवे का भी नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने पं० रामचन्द्र शुक्ल के मूल्यांकन का परीक्षण एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा

---

१ 'हिन्दी साहित्य कोश', प्रधान सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ११९।

शुक्ल जी के महत्व का दिग्दर्शन किया है। हिन्दी में व्याख्यात्मक आलोचना के प्रणेता प० रामचन्द्र शुक्ल जी ने तुलसी सूर और जायसी पर इतिहास, समाज धर्म सामान्य जीवन आदि को दृष्टिगत कर आलोचनाएँ लिखीं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के साहित्य में व्याख्यात्मक आलोचना का स्वरूप कवि और काव्य हमारे साहित्य निर्माता तथा ज्योति विहग नामक कृतियों में दृष्टिगत होता है।

[१०] समन्वयात्मक समीक्षा हिन्दी साहित्य में समीक्षा की समन्वयात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत पाश्चात्य तथा भारतीय समीक्षा शास्त्र के मुख्य सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर समीक्षा का प्रस्तुतीकरण हुआ है। वस्तुत समीक्षा की इस प्रवृत्ति में प्राचीन तथा नवीन दृष्टियों से सर्वांगीण अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है। पाश्चात्य प्रभाव के परिणामस्वरूप आधुनिक हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में सद्धान्तिक एवं व्यावहारिक समीक्षा का आगमन दृष्टिगोचर होने लगा था। डा० श्याम सुन्दर दास और प० रामचन्द्र शुक्ल आदि समीक्षकों की रचनाओं में प्राचीन भारतीय संस्कृत साहित्य शास्त्र की विकसित विचार धाराओं के सद्धान्तिक विश्लेषण के साथ पाश्चात्य समीक्षा में हुए वचारिक आन्दोलनों की भी अवगति हुई। प्राय उसी समय से हिन्दी में समन्वयात्मक समीक्षा की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। समन्वयात्मक समीक्षा प्रवृत्ति के गण्यमान समीक्षकों में डा० विनय मोहन शर्मा की कृतियाँ कवि प्रसाद आसू तथा अन्य कृतियाँ, दृष्टिकोण साहित्यावलोकन तथा साहित्य शोध समीक्षा, श्री नन्द दुलारे वाजपेयी की 'आधुनिक साहित्य हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, नया साहित्य नये प्रश्न तथा 'जयशंकर प्रसाद आदि कृतियाँ, डा० नगेन्द्र की समीक्षा कृतियाँ 'सुमित्रानन्दन पन्त 'साकेत एक अध्ययन' 'आधुनिक हिन्दी नाटक 'विचार और अनुभूति, विचार और विवेचना, रीति काव्य की भूमिका देव और उनकी कविता आधुनिक कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ तथा विचार और विश्लेषण आदि डा० देवराज की समीक्षा कृतियाँ छायावाद का पतन, 'साहित्य चिन्ता आधुनिक समीक्षा कुछ समस्याएं, 'साहित्य और संस्कृति आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार से आधुनिक हिन्दी आलोचना की ऐतिहासिक सुधारपरक तुलनात्मक शास्त्रीय छायावादी, प्रगतिवादी व्यक्तिवादी, मनोविश्लेषणात्मक, व्याख्यात्मक तथा समन्वयात्मक प्रणालियों का प्रयोग श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य में मिलता है। यह तथ्य एक ओर इस विधा के क्षेत्र में द्विवेदी जी की दृष्टिकोणगत जागरूकता का द्योतक है और दूसरी ओर इसकी गम्भीरता और गहनता के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा का भी परिचायक है।

द्विवेदी जी की आलोचना पद्धति का परिचय एवं वर्गीकरण

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना साहित्य में मुख्य रूप से ऐतिहासिक शास्त्रीय, तुलनात्मक, छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना प्रवृत्तियों का समावेश

मिलता है। ऐतिहासिक आलोचना के अंतर्गत लेखक ने मुख्य रूप से आधुनिक हिंदी काव्य का उसकी विकासात्मक पृष्ठभूमि में मूल्यांकन किया है। शास्त्रीय समीक्षा के अंतर्गत लेखक ने काव्य में परम्परागत रूप से मान्य उपकरणों का अनुमोदन किया है जिनमें रस अलंकार आदि प्रमुख हैं। तुलनात्मक आलोचना में लेखक ने विशेष रूप से प्रसाद, पन्त, निराला तथा महादेवी आदि कवियों का तुलनात्मक मूल्यांकन किया है। प्रेमचन्द और शरद, शरद और महात्मा गांधी तथा रवीन्द्र आदि के विचारों की भी व्याख्यात्मक आलोचना लेखक ने तुलनात्मक दृष्टिकोण से की है। छायावादी समीक्षा पद्धति का जो स्वरूप द्विवेदी जी के साहित्य में मिलता है वह प्राय भावनापरक है और समकालीन काव्य चेतना पर भी गौरव देता है। इसी प्रकार से प्रगतिवादी आलोचना पद्धति के अंतर्गत लेखक ने यथार्थपरक दृष्टिकोण का परिचय देते हुए समकालीन साहित्य पर समीक्षात्मक विचार व्यक्त किये हैं। यहां पर संक्षेप में शांतिप्रिय द्विवेदी के साहित्य में उपलब्ध उपर्युक्त सभी समीक्षा पद्धतियों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी और ऐतिहासिक आलोचना पद्धति श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृतियों में जो विभिन्न पद्धतियाँ दृष्टिगत होती हैं उनमें ऐतिहासिक आलोचना प्रणाली भी एक है। यह आलोचना पद्धति सामान्य रूप से आलोच्य विषय का विवेचन उसकी परम्परा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में करती है। यह इस तथ्य का भी परिचय देती है कि विभिन्न युगों में जो साहित्यिक विधाएँ विकासशील रहती हैं वे अपनी समकालीन विचारधारा से भी प्रभावित होती हैं। द्विवेदी जी के साहित्य में अनेक स्थलों पर यह पद्धति स्पष्टतः लक्षित की जा सकती है। उदाहरण के लिए ज्योति विहग नामक ग्रंथ में हिंदी कविता का क्रम विकास शीर्षक के अंतर्गत उन्होंने हिंदी काव्य के स्वरूपात्मक विकास का जो विवेचन किया है वह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में ही है। इसमें लेखक ने सर्वप्रथम हिन्दी कविता की खड़ी बोली पूर्व परम्परा में ब्रजभाषा काव्य की उस धारा का संक्षिप्त परिचय दिया है जो उन्नीसवीं शताब्दी तक अखंड रूप से प्रवाहमान रही। द्विवेदी जी का यह मत है कि आधुनिक युग में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जो भाषा क्षेत्रीय रस विक्षेप हुआ है उसी की प्रतिक्रिया के रूप में खड़ी बोली का आविर्भाव और विकास हुआ है। बीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली के आविर्भाव का एक कारण ब्रजभाषा में शृंगारिक भावों का अतिरेक भी है। द्विवेदी युग में स्वयं पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती में अनेक व्यंग्यचित्र प्रस्तुत किये जिनमें ब्रजभाषा की शृंगारपरक रचनाओं की आलोचना की गयी है। लगभग इसी काल में खड़ी बोली के कतिपय प्रतिनिधि कवियों का एक संग्रह 'कविता कलाप' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था जिसमें राय देवीप्रसाद पूर्ण प० नाथूराम शर्मा शंकर प० कामता प्रसाद गुरु बाबू मैथिलीशरण गुप्त तथा प० महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाएँ संगृहीत हैं। इसकी भूमिका में द्विवेदी जी ने जो

म त य प्रस्तुत किया है वह खडी बोली का य के क्षेत्र मे एक ऐसी भविष्यवाणी थी जा कालातर म सत्य हुइ। उ होने यह भी लिखा है कि इस पुस्तक म जितनी भी *कविताएँ बोलचाल की भाषा म हैं उनम शब्दो का अग भग बहुत कम हुआ है।* इस नए ढग की कविताएँ सरस्वती म प्रकाशित होते दख बहुत लोग अब इनकी नकल अधिकता से करन लगे हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि इस तरह की भाषा और इस तरह के छ दो म लिखी गयी कविता दिन पर दिन लोगो को अधिकाधिक पस द आने लगी है अतएव बहुत सम्भव है कि किसी समय हि दी क गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो जाए। [1]

श्री शातिप्रिय द्विवेदी की ऐतिहासिक आलोचना का परिचय उन स्थलो पर विशष रूप से मिलता है जहाँ उ होने वतमान कविता के स्वरूप विकास की पष्ठ भूमि मे उसके परम्परागत रूपा का विवचन किया है। इसी स दभ म उ होने समकालीन साहित्यिक आ दोलना की ओर भी सकेत किया है जो इस रूप निर्धारण म सहायक हुए। छायावाद युगीन का य पर एतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे विचार करते हुए श्री शातिप्रिय द्विवदी ने यह मत यक्त किया है कि जहाँ एक ओर द्विवेदी युग खडी बोली का स्थापत्य युग था वहा दूसरी ओर छायावाद काल को खडी बोली का ललित युग कहा जा सकता है क्योकि इसम उसका कलात्मक विकास विशेष रूप स हुआ। ऐतिहासिक आलोचना पद्धति के दशन उनकी सचारिणी' आलोच नात्मक कृति मे भी होते हैं। सचारिणी के आलोचनात्मक लेख भक्तिकाल की अ तश्चेतना म लेखक ने भक्ति काल के का य की अ तश्चेतना को प्रशा त अथवा प्रसादान्त स ओतप्रोत माना है जो पौराणिक भारतीय सस्कृति के सत्यम शिवम सु दरम स प्रभावित है। जिस प्रकार सपूण जीवन को चार आश्रमो के मध्य बद्ध *कर दिया गया है और उसकी अ तिम झाकी परम शाति का माग दर्शाती है* उसी प्रकार का य म भी विविध रसो की योजना है जो मानव जीवन से पूणत सम्बन्धित है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने मध्यकालीन हि दी कविता को भावात्मक दृष्टिकोण के स्तर पर आकन का प्रयास किया है। मानव का विश्वसनीय स्वभाव ही का य रूप म अवतरित हो गया है। यही कारण है कि भक्ति काल का काव्य जिस वष्णव काव्य भी कहा जाता है रहस्यवा स पूण है। रहस्यवा की दो कोटियाँ हैं पार्थिव और अपार्थिव। सगुणोपासक कवि पार्थिव रहस्यवादी हैं दूसरे श दा म वे छायावादी हैं। उन्हें सष्टि क कण कण तृण-तृण स अनुराग है। इसका कारण उन्हें सष्टि म अ तश्चेतना की अनुरागिनी छाया मिलना है। अतएव सगुण रहस्यवाद म प्रेम और भक्ति है। अपार्थिव रहस्यवाद म सन्तो की वाणी है जि होंने कवल अलौकिकता को अपनाया है। उस ही वह सत्य मानत हैं तथा उ होने केवल भगव भक्ति की है। अतएव व

१ सरस्वती प० महावीर प्रसा द्विवदी २ फरवरी सन १९०९।

निर्गुण रहस्यवाद के अन्तगत आते हैं। उपरोक्त तथ्यो के फलस्वरूप सगुणोपासको का काव्य कम से प्रभावित है तथा निर्गुणोपासको का काव्य ज्ञान से। सगुणोपासक काव्य के अतगत कृष्ण काव्य मानव जीवन का भावयोग है परन्तु राम काव्य कम, ज्ञान और भाव योग का सम्मिश्रण है। ज्ञानयोग कम योग तथा भावयोग ही क्रमश सत्यम सुन्दरम के प्रतिरूप हैं।

'छायावाद का उत्कर्ष' समीक्षात्मक लेख म भी श्री द्विवदी जी के विचार ऐतिहासिक पष्ठभूमि म अवलोकित होत हैं। श्री द्विवेदी जी न प्रस्तुत लख म छायावाद के पूव के साहित्यिक वातावरण को चित्रित करत हुए छायावाद की अवधारणा पर दष्टिपात किया है। द्विवेदी युग के अनन्तर जो नवयुवक कवि हुए उन्होंने वाह्य चेतना स अधिक अन्तश्चेतना को प्रमुखता दी। 'वह अन्तश्चेतना जो कबीर, सूर तुलसी, मीरा और रसखान की सासा से हमारे साहित्य म जीवित चली आ रही थी, नवयुवको द्वारा नये काव्य साहित्य म भी प्राण प्रतिष्ठा पा गयी। अपनी अपनी अनुभूनि स अपने अपन यौवन स उन्होंने अन्तश्चेतना को मध्य युग की अपेक्षा एक भिन्न रूप और एक भिन्न ज्योति कवित्व मंडित किया।' इस प्रकार बीसवी शताब्दी के वदलते हुए समय के साथ वाह्य चेतना म भी परिवतन होन लगा। समाज के भिन्न परिवतनो के प्रभाव स्वरूप साहित्य म छायावादी कवियो की काव्य कला मे रोमान्टिक आधुनिकता है लेकिन गुप्त जी की कविताओ म क्लासिकल आधुनिकता है। छायावाद की कविता म शृगार और भक्ति के मध्य के व्यक्तित्व अनुराग के दशन होते हैं। इस छायावाद के प्रमुख दीप स्तम्भ हैं मवश्री प्रसाद, निराला माखनलाल पन्त, महादेवी आदि। प्रसाद छायावाद के प्रमुख प्रवतक हुए तथा पन्त ने उसे स्वच्छ शरीर से आभूषित किया लेकिन महादेवी की कविताओ से छायावाद को एक और विशिष्टता मिली वह थी आपेक्षित आत्मविस्मृतता। छायावाद के अधिकाश कवि इन कवियो म प्रभावित हुए है तथा उनके पथ चिन्हो पर चल हैं। व उनकी काव्य कला से प्रभावित हैं। गुप्त और निराला जहा कला के चमत्कार म फसे वही उनके काव्य कुछ विरस हो उठे हैं। छायावाद के साहित्य म गीतिकाव्य का प्राधान्य है जिसम महादवी जी गीति काव्य की त्रिपथगा (पन्त महादेवी, निराला) म गामुखी है। आज कविता का जो रूप परिलक्षित होता है उससे विदित होता है कि वह आज पुन अपनी पूव प्राचीन पार्थिवता की ओर जा रहा है।

हिन्दी गीति काव्य समीक्षात्मक लेख म श्री द्विवदी जी ने हिन्दी म गीति काव्य की रूपरेखा प्रस्तुत करत हुए उसके क्रमिक इतिहास की ओर दृष्टिपात किया है। हिन्दी गीति काव्य का इतिहास उस सरिता का इतिहास है जो भरपूर लहरा कर बीच म ही सूख गयी। शृगार काल में जो सामाजिक मग मरुस्थल मिला उसी म समा कर बीच-बीच म वह अपने पूव अस्तित्व का आद्र परिचय कवित्त और

सवयो म देती रही। आधुनिक युग म वह फिर एक स्वतत्र निरझिरी के रूप म फूट पडी, मानो अनुकूल भूमि मिल गई हो।[1] ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य म वष्णव गीति काव्य म भक्ता की साधना का परिवर्तित रूप शृगारिक कविताओ म और विशेषत गृहस्थो की प्रणय आराधना म व्यक्त हुआ। अतएव शृगारिक कवियो न गीति काव्य को विशिष्टता प्रदान नही की। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि उस समय उन लोगो का ध्यान गीति काव्य की ओर था ही नहा, प्रत्युत वे गीति काव्य की पवित्रता को दूषित नही करना चाहते थे। फलत गीति काव्य धमपरायणता का ही सकीर्तन बन कर रह गया। उस समय काव्य कला क दो रूप मिलते थ—प्रबन्ध काव्य तथा गीति काव्य। शृगारिक कवियो ने प्रबन्ध काव्य और गीति काव्य के मध्य पथ कवित्त और सवय का ही अनुगमन किया। आधुनिक युग म गीति काव्य न नाटको मे अपना प्रमुख स्थान बनाया। सामूहिक चेतना के कारण ही आधुनिक युग म गद्य को गौरव प्रदान किया गया। उसकी विभिन्न विधाओ का स्वागत किया गया। प्रसाद के नाटको मे गीति काव्य की प्रमुखता के साथ ही उसम मनोविश्लेषण का भी स्थान मिला जिसका स्वच्छ विशुद्ध उदाहरण करुणालय है। इस प्रकार प्रसाद जी नवीन हिन्दी गीति काव्य के रचयिता के रूप मे परिलक्षित होते हैं पर तु पन्त निराला और महादेवी जी उसके सगीत सृष्टा हैं। प्रसाद महादेवी की गीति शली सूर, तुलसी मीरा की गीत शली स भिन्न नहीं है लकिन पन्त और निराला के साहित्य म भिन्न सगीत कला के दशन होते हैं।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के समीक्षा साहित्य म ऐतिहासिक समीक्षा प्रणाली का समावेश ज्योति विहग और सचारिणी के अतिरिक्त उनकी समीक्षात्मक कृति कवि और काव्य' क प्राचीन हिन्दी कविता' और आधुनिक हिन्दी कविता नामक आलोचनात्मक लख म भी हुआ है। श्री द्विवेदी जी ने प्राचीन हिन्दी कविता म सोलहवी सत्रहवी शताब्दी के भक्तिकाल के इतिहास को अपनी नवीन विचारधारा से मौलिकता प्रदान की। भक्ति काल के भक्तो की भाव दृष्टि को प्रतिबिम्बित करत हुए कविता के मूल भावात्मक अथ को स्पष्ट किया है। सन्तो की दृष्टि मे कविता वह अतर्ज्योति है जिसके आलोक मे सृष्टि का आध्यात्मिक रहस्य उन्भासित होता है। सूर तुलसी के काव्य क्षेत्र म भक्ति के साथ ही सौन्दय सृष्टि का भी आभास होता है। रीतिकालीन कवियो के सदृश्य उन्होने भी सौन्दय को अलकारिकता स सजाया था लेकिन वह भावात्मकता से ओतप्रोत है। प्राचीन हिन्दी कविता क दो चरणो में भक्तिकाल और रीति काल के भावो एव उसकी भिन्नता का लेखक ने इस प्रकार दिग्दशन किया है सन्तो की वाणी जहाँ विश्व वियोगिनी के

१ सचारिणी, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० २२३।
२ कवि और काव्य' श्री शातिप्रिय द्विवदी, पृ० ३६।

रूप म दीख पडती है, वहाँ रीतिकालीन कवियो की कविता अलकारमयी अनुरागिनी बन कर अपने अनुपम रूप लावण्य स माधुय प्रेमियो का 'मन मानिक' चुराती है। यदि भक्तो का काव्य अध्यात्मिक लोक को सुख शातिमय बनान क लिए वाणीमय हुआ था तो शृगारिक कवियो की भावना इहलोक को स्वर्गोपम बनान के लिए सौन्दर्यानुकूल हुई थी।[1] स्पष्टत प्राचीन हिन्दी कविता म जहाँ एक ओर ईश्वर और उसकी विभूति के रूप म शोभा है वही दूसरी ओर पुरुष प्रकृति (नारी) के रूप मे प्रकृति विलसित मानव सुषमा परिलक्षित होती है। प्राचीन हिन्दी कविता म जिस काव्य शली का परिपोषण हुआ आगे चलकर उसका अनुकरण किया गया। इस प्राचीन काय शली पर सस्कृत और फारसी काव्यो का भी प्रभाव है जिसम कोमल रसो का अधिकाधिक उद्रेक हुआ है। १६वी और १७वी शताब्दी म अपनी पूणता पाकर प्राचीन हिन्दी कविता मे १८वी शताब्दी मे एक ठहराव आ गया और उसम उन्ही पूव भावो की ही आवृत्ति होने लगी। परन्तु १९वी शताब्दी के उत्तर काल से सम्बन्धो म विस्तार के साथ साहित्य म भी विस्तार आता गया और आधुनिक युग विशेषत भारतेन्दु युग मे खडी बोली न नवोन्मेष स तथा राष्ट्रीयता के उदय के कारण साहित्य मे भी उन्ही भावो का अकन होन लगा। द्विवेदी युग मे खडी बोली को एकछत्र साहित्यिक प्रमुखता प्राप्त हो गयी। आधुनिक हिन्दी कविता क द्विवेदी युग मे व्रज भाषा और खडी बोली दोनो म ही भावों का प्रवाहपूण गम्भीर विस्तार परिलक्षित होता है। इस युग म खडी बोली को गद्य और पद्य दोनो मे ही एक सा स्थान प्राप्त हुआ अतएव कविता की भाषा म कुछ गद्यात्मकता का भास होने लगा। द्विवेदी युग के उपरान्त आने वाले प्रमुख कवियों ने काव्यों मे अपनी प्रतिभा के नूतन रूप रग स पूण छवि के अकन क साथ विभिन्न स्वरूपो को निर्मित करने का भी सफल प्रयास किया। द्विवेदी युग के प्रबुद्ध कवियो ने अनेक नवयुवक कवियो को व्रजभाषा से हटा कर खडी बोली के प्रयोग की ओर प्रेरित किया तथा विभिन्न साहित्यानुरागियो को साहित्य सृजन की प्रेरणा भी दी। द्विवेदी युग से भिन्न काव्य प्रगति के गणमान्य प्रमुख प्रेरक कवियो म प्रसाद माखन लाल, निराला, पन्त, महादेवी आदि हैं जिनकी काव्य शलियो ने दूसरो को अपनी नवीनता एव सौन्दय से आकर्षित किया। वतमान युग मे हिन्दी कविता म मुक्तको को विशेष उत्कष मिला। विशेषत पन्त के काव्यो मे भावो का सुदीघ उत्थान पतन तथा प्रकृति सौन्दय का विपुल निरीक्षण प्रस्तुत है। अब प्रकृति उद्दीपन न रह कर आलम्बन रूप हो गयी थी। मुक्तक कविताओ के साथ ही प्रबन्ध काव्यो म भी छायावाद की शैली को स्थान मिला। छायावाद युग के बाद प्रगतिवाद का आगमन हुआ जिसमे कवित्व कम वक्तृत्व ही अधिक है। इसके बाद का युग प्रयोगवाद का है।

---

१ 'कवि और काव्य', श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४४।

द्विवेदी जी और शास्त्रीय आलोचना पद्धति श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की विविध आलोचनात्मक कृतियो म शास्त्रीय समीक्षा क उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं। शास्त्रीय समीक्षा के अन्तगत प्राचीन साहित्य का शास्त्रीय और परम्परागत सिद्धान्तो के आधार पर मूल्याकन किया जाता है। हिन्दी म शास्त्रीय समीक्षा का आधार मुख्य रूप स सस्कृत क विभिन्न सम्प्रदाय हैं जिनम रस अलकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य क आधार पर साहित्य की समीक्षा की जाती है। य सद्धान्तिक सम्प्रदाय हिन्दी के रीतिकालीन साहित्याचार्यों द्वारा भी मान्य किय गय। आधुनिक युग म कन्हैयालाल पोद्दार, जगन्नाथ प्रसाद भानु, रामचन्द्र शुक्ल रसाल, सीताराम शास्त्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध' बिहारीलाल भट्ट, श्याम सुन्दर दास गुलाब राय सीताराम चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण सुधाशु तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि न रस तथा अलकार आदि तत्वो क आधार पर एस समीक्षा पद्धति का प्रसार किया। शातिप्रिय द्विवदी की कृतियो म शास्त्रीय समीक्षात्मक दृष्टिकोण विशद रूप म कवि और काव्य तथा ज्योति विहग आदि म उपलब्ध होता है। *कवि और काव्य के लेख काव्य चिन्तन मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का* शास्त्रीय समीक्षात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। उनकी दृष्टि म कविता ने साहित्यिक सहृदयता का द्वार उन्मुक्त किया तथा इसी के माध्यम स अनुभूतियो का तादात्म्य होता है। काव्य का प्रमुख रस शृगार मानते हुए उन्होंने अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है काव्य का आदि रस है शृगार जिसकी परिपूर्णता भक्ति म है। प्राणियो के बीच एक दिन हृदय का आकर्षण ही अनेकता म एकता का बोध कराने का प्रथम साधक हुआ था, वही शृगार के माधुर्य म घनीभूत हो गया। शृगार म विरह की भाति ही जीवन म वेदना का स्थान अधिक गम्भीर है।" द्विवदी जी का विचार है कि अभावो के मध्य ही भावो का उद्रेक होता है। उसी प्रकार प्राणो के विदीर्ण होने पर जीवन म बारम्बार कुठाराघात होने पर हृदय के विरहोदगार किसी न किसी रूप मे बाहर निकल आते हैं। इसीलिए कवि के उच्छ्वसित हृदय में प्रथम कवि को ही वियोगी मान लिया जिसके अन्तर की आह म कविता का जन्म होकर वह नयनो से तरलता के रूप मे बह निकली है। शृगार और भक्ति के साथ ही मानव हृदय के अन्य कोमल रसो मे शात करुण और वात्सल्य हैं। कुछ रस मानव की कठोरता एव पशुता की भी सूचक हैं। कोमल सहज रसो से जहाँ मानव का सुन्दर रूप प्रतिभासित होता है वहीं रौद्र, भयानक, विभत्स रस मनुष्य मे विद्यमान पाशविक अश के सूचक हैं लेकिन इसकी सार्थकता मनुष्य को कोमल रसो के लिए लालायित करन म है।

काव्य कला म कला के बाह्य उपकरण शब्द और शली आदि हैं तथा कल्पना

---

१ कवि और काव्य, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० २–३।

कला का अंत पक्ष है। भाव स्वभाव से सम्बंधित है। कविता भावों को मनोरम रूप में उपस्थित करने में कला का आश्रय लेती है। भावों की उपयुक्तता के लिए एवं सही अर्थों के व्यक्तीकरण में शब्दों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जिस प्रकार बिना ताल के संगीत नीरस है उसकी कोई भी उपादयता नहीं है, उसी प्रकार बिना छन्द के काव्य भी निरर्थक है। द्विवेदी जी का मत है कि 'शब्द यदि भावों में साँस भरते हैं तो छन्द भावों को गति देते हैं। किस रस के लिए किस गति की और किस गति के लिए किस छन्द की उपयुक्तता है इसके लिए रस विदग्धता चाहिए, तभी छन्दों का रसोनुकूल निर्वाह हो सकता है। काव्य में रस का वही स्थान है जो पुष्प में गन्ध का। जिस प्रकार विभिन्न सौरभ विभिन्न पुष्पों में अपने अनुरूप आवास पाते हैं उसी प्रकार विभिन्न छन्द विभिन्न रसों के लिए पुष्प का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्द से लेकर रस तक काव्य में प्रवाह की एक लड़ी-सी बंधी रहती है। शब्द छन्द को अग्रसर करते हैं, छन्द भाव को और भाव रस को।'[1] इस प्रकार काव्य की प्रवाहमयता में शब्द, छन्द, भाव और रस चारों का महत्वपूर्ण योग है लेकिन काव्य में लोक दृश्य का भी अपना स्थान है। वही काव्य को चित्रकला के समीप ले आता है और काव्य के छन्द उसे संगीतमयता प्रदान करते हैं। इस प्रकार काव्य संगीत कला के भी अति निकट है। चित्रकला और संगीत के योग से भी काव्य की पूर्णता पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। काव्य में निरन्तर अपूर्णता का वास रहता है क्योंकि 'काव्य अपने मुक्त भावना क्षेत्र में क्षण क्षण जिन अदृश्य और अरूप अनुभूतियों में अठखेलियाँ करता है उन्हें बाँध पाना न तो चित्र की सीमा के लिए सहज है, न संगीत की स्वरलिपियों के लिए।'[2] काव्य के भाव गाम्भीर्य में अलंकार योजना का विधान भी आवश्यक है जो कवि की सहज सूझ बूझ का परिचायक है। अलंकार का महत्व अर्थ और शब्द दोनों के चमत्कार लालित्य के लिए श्रेष्ठतम है। लेकिन श्री द्विवेदी के मत में अलंकार का महत्व अर्थ चमत्कार में नहीं वरन् भाव गाम्भीर्य में है। 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।'[3]

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की शास्त्रीय समीक्षा पद्धति उनकी आलोचनात्मक कृतियों में एक समीक्षात्मक कृति संचारिणी' में भी अवलोकित होती है। इसमें आपने लिरिक कविता अथवा गीति काव्य की रसात्मकता की ओर संकेत करते हुए काव्य और संगीत की तुलना में काव्य को ही उच्च माना है। उनके विचार से

---

१ 'कवि और काव्य', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ५।
२ वही, पृ० ६।
३ वही, पृ० ६।

'सगीत जब गायन मात्र रहता है तब वह असहृय और काव्य से निबल होता है। परन्तु जब गायन को काव्य का सहयोग मिल जाता है तब वह गायन मात्र न रह कर सगीत (गीति सयुक्त या गीति काव्य) हो जाता है और उसमे काव्य से भी अधिक रसस्पर्शिता आ जाती है। निस्सदेह काव्य को सगीत से उच्च माना गया है क्योंकि काव्य मे लोक पक्ष अधिक आ जाता है। किन्तु यह लोकपक्ष जिसके द्वारा रसान्वित होता है वह हृदय पक्ष (कवि का आत्म पक्ष) सगीत मे ही एकान्तत स्फुरित दीख पडता है।'[१] इस प्रकार श्री द्विवेदी जी ने न केवल काव्य को ही श्रेष्ठ कहा है जिसमे लोक पक्ष की अधिकता होती है प्रत्युत उन्होंने सगीत को भी महत्ता दी है जिसमे कवि की आत्मा की व्यजकता का रूप परिलक्षित होता है और उसे आसानी से पहचाना जा सकता है। सगीतमय पद अथवा गीति काव्य कवि की हार्दिक रसाद्रता पर निर्भर है। गीति काव्य के विषय मे आपका विचार है कि गीतपरक कविता काव्य साधना से अधिक आत्मसाधना की अपेक्षा रखती है।'[२] इसमे मनुष्य अपनी मन की आद्रता मे लीन हो जाता है। यद्यपि गीति काव्य मे आत्म साधना अथवा आत्म निमग्नता की आवश्यकता होती है लेकिन यह नही कहा जा सकता कि जितने गीति कवि हैं उनमे आत्म साधना का भाव अन्तर्निहित ही हैं। जिस प्रकार काव्य क्षेत्र मे परम्परा द्वारा परिचालित होकर अभ्यासत मनुष्य कवि बन सकता है उसी प्रकार गीति क्षेत्र मे भी गीतिकार हो सकता है परन्तु गीतो की रस विदग्धता का परिमाण ही प्रकट कर देता है कि उनमे कितना अभ्यासत (श्रमेण) है और कितना स्वभावत (स्वयमेव) है।'[३] इस प्रकार काव्य और सगीत के सामजस्य से ही गीति काव्य का उदभव होता है। अतएव गीति और काव्य के भावात्मक सहयोग के माध्यम से ही गीति काव्य मे स्वर और भाव का सहयोग सगठित होता है। इसमे दोनो की एकान्तिकता को पूर्णता प्राप्त होती है। गीति काव्य मे सगीत काव्य का अनुवर्ती होकर भी अधिक शक्तिशाली हो जाता है मानो अमात्य होकर सम्राट से अधिक क्षमताशाली। अतएव गीति काव्य सगीत की सार्थकता का चरम सीमा है।'[४]

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की शास्त्रीय समीक्षा की प्रवृत्ति उनकी हमारे साहित्य निर्माता नामक आलोचना कृति मे भी यत्र-तत्र परिलक्षित होती है। श्री द्विवेदी जी ने सस्कृत के तत्सम शब्दो की मान्यता के साथ सस्कृत शब्दो को भी महत्व दिया है। 'सस्कृत छन्दो और शब्दो मे एक ऐसी गरिमा है जो प्राकृतिक शोभा सम्बन्धी

---

१ सचारिणी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ३१।
२ वही पृ० ३१।
३ वही पृ० ३२।
४ वही पृ० २३६।

एव भाव पूण कविताओं को गुरता प्रदान कर देती है।[1] इसके अतिरिक्त अयोध्या सिंह उपाध्याय का उक्ति चमत्कार भारतीय काव्य साहित्य की प्राचीन परम्परा के रूप म दृष्टिगोचर होता है। भारतीय काव्य साहित्य का एक बहुत बडा अश उक्ति प्रधान है। श्री द्विवेदी जी न काव्य म भाव और उक्ति से सम्बधित अपा मता का शास्त्रीय समीक्षा की दष्टि स इस प्रकार प्रतिपादन किया है हमारे यहा काव्य को एक प्रकार का वाग्विलास कहा गया है और इस वाग्विलास में हृदय के स्पदन की अपेक्षा वाणी का नपुण्य अधिक रहता है। वाणी का यह नैपुण्य ही आलकारिक विधाना क वशीभूत हाकर उक्ति बन जाता है। परन्तु जब आलकारिक विधाना के वशीभूत न होकर कवि स्वाभाविक हृदय स अपनी वाणी को उन्गीर्ण करता है तब वह भावा की ही सष्टि कर देता है न कि उक्ति की। उक्ति म मन की बूझ का परिचय मिलता है भाव म हृदय के स्पदन का। एक मे पाडित्य है ता दूसर म प्रतिभा।[2] इस रूप म द्विवदी जी न प्राचीन सस्कृत साहित्य शास्त्र तथा हिन्दी रीति शास्त्र में मान्य काव्य तत्वा को ही अपनी शास्त्रीय समीक्षा का आधार बनाया है।

द्विवेदी जी और तुलनात्मक आलोचना पद्धति श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतिया म तुलनात्मक समीक्षा पद्धति का समावेश भी मिलता है। हिन्दी आलाचना के क्षेत्र म ऐतिहासिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक समीक्षा का प्रारम्भ द्विवेदी युग म हुआ। इस युग में पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने समकालीन समीक्षात्मक दृष्टिकोण म परिष्कार की भावना से प्रेरित होकर तुलनात्मक समीक्षा का प्रारम्भ किया। सिद्धान्त तुलनात्मक समीक्षा उस पद्धति का कहते हैं जिसम अपेक्षाकृत व्यापक दृष्टिकोण स किसी आलोच्य कृति के महत्व का निदशन करते हुए उसी के समान किसी दूसरी कृति के उपलब्ध्यात्मक सूत्रा का विवेचन किया जाये। द्विवेदी युग म पडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त मिश्रबन्धु, पदमसिंह शर्मा, कृष्ण बिहारी मिश्र, तथा लाला भगवानदीन आदि आलोचकों ने देव और बिहारी की पारम्परिक श्रेष्ठता के विवाद से सम्बधित इस समीक्षा का प्रबल रूप प्रस्तुत किया है। शातिप्रिय द्विवेदी की आलोच्य कृतिया मे इसके उदाहरण 'ज्योति विहग' तथा सचारिणी नामक पुस्तकों म उपलब्ध होते हैं। श्री द्विवेदी जी की तुलनात्मक समीक्षा का उदाहरण ज्योति विहग में हिन्दी कविता के क्रमिक विकास क सन्दर्भ म छायावादी कविया क मूल्याकन म दृष्टिगत होता है। जयशकर प्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा आदि को छायावाद के प्रमुख कविया के रूप म मान्य करते हुए द्विवेदी जी न उनके काव्य के विभिन्न तत्वा का सम्यक निरूपण तुलनात्मक सकेतों के आधार पर किया है। इस सन्दम

---

१ हमारे साहित्य निर्माता, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० १५।
२ वही, पृ० १५-१६।

गुंजित उद्यान।[1] छायावाद का पूर्ण परिष्कार पंत जी ने किया। पंत जी ने अपनी तूलिका से खडी बोली की कविता की भाषा के रूप में पूर्णतः अधिष्ठित कर दिया। महादेवी और पंत की तुलनात्मक समीक्षा के रूप में उनका मत है कि महादेवी की कविता उत्सर्ग को निर्वाण को त्याग को ही लेकर चली, पंत की काव्य दिशा के अंतिम छोर पर मुग्धता और उपभोग्यता की सीमा का अतिक्रमण है। इसीलिए जब कि महादेवी के कवि को पीछे लौटने की जरूरत नहीं पडी, पंत को आगे बढ़कर मुग्धता से उपभोग्यता में आना पडा। पंत प्रवृत्ति प्रधान है, महादेवी निवृत्ति प्रधान।'[2] छायावाद के कलेवर में अन्यान्य कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यद्यपि प्रसाद इसके प्रवर्तक रहे हैं लेकिन पंत ने उसे स्वच्छ शरीर प्रदान किया और महादेवी से उसे अपेक्षित आत्मविदग्धता प्राप्त हुई। प्रसाद द्वारा नाटकों में प्रयुक्त गीति काव्य को नवीन चेतना महादेवी से मिली। इस प्रकार प्रसाद का काव्य ऐहिक है जब कि महादेवी का काव्य दार्शनिक अनुभूतियों से अधिक अनुप्राणित है। उनमें वस्तुतः भक्ति काल की मीरा की आत्मा का वास सा हो गया है जब कि प्रसाद में रीतिकालीन शृंगार की रसिकता का आभास होता है।[3]

उपर्युक्त साहित्यकारों की तुलनात्मक समीक्षा के अतिरिक्त द्विवेदी जी ने देवकीनन्दन खत्री तथा प्रेमचन्द जयशंकर प्रसाद तथा द्विजेन्द्र एवं सुश्री महादेवी वर्मा तथा सुभद्रा कुमारी चौहान आदि की भी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करते हुए अपने विचारों को प्रतिपादित किया है। देवकीनन्दन खत्री की चन्द्रकान्ता औपन्यासिक कृति की सीधी सादी उर्दूनुमा भाषा का परिमार्जित एवं साहित्यिक रूप प्रेमचन्द की औपन्यासिक कृतियों में देखा जा सकता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों के कथानक स्वर्गीय खत्री के उपन्यासों के कथानकों से भिन्न हैं। कथानक में कहानी के अतिरिक्त *भी कुछ ऐसा है जो प्रेमचन्द को खत्री जी से आगे ला देता है।* यही कारण है कि शांतिप्रिय द्विवेदी प्रेमचन्द को हिन्दी के प्रथम साहित्यिक कथाकार के रूप में स्वीकार करते हैं। प्रसाद और द्विजेन्द्र राय के नाटकों की भिन्नता को दर्शित कराते हुए द्विवेदी जी का मत है कि 'प्रसाद के नाटकों का क्षेत्र द्विजेन्द्र के मुगल काल की अपेक्षा अधिक गम्भीर और रहस्यमय है और इसी कारण उनके नाटक भी द्विजेन्द्र के नाटकों की अपेक्षा अधिक गूढ़ और गम्भीर हो गये हैं।'[5] प्रसाद के नाटकों में राजनीतिक चहल पहल के साथ ही प्रणय का घात प्रतिघात है और उससे भी गुरुतर

---

१ संचारिणी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १८९।
२ वही पृ० २०१।
३ वही पृ० २०७ २०८।
४ हमारे साहित्य निर्माता, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६१।
५ वही पृ० ११७।

है आत्मिक अन्तद्वन्द्व। इस प्रकार प्रसाद के नाटको के प्रमुख नाटकीय पात्र ससार का रणक्षेत्र रूप मे ग्रहण करते हुए भी मन को तपोभूमि के रूप मे स्वीकारते हैं।[१] परन्तु द्विजेन्द्र के नाटक घटना प्रधान होने के कारण उनमे उक्त विशेषताओं का अभाव सा है और जहाँ अन्तद्वन्द्व हैं भी वह घटनाओ के प्रस्फुटन मे ही सहायक होते हैं। प्रसाद और द्विजेन्द्र के ऐतिहासिक उपादानो मे अन्तर के साथ ही उनके कथानक शैली, भाषा, उद्देश्य आदि मे भी भिन्नता है। रंगमच की दृष्टि से द्विजेन्द्र के नाटक नेत्रो के लिए दृश्याकर्पण है तो प्रसाद के नाटक जीवन के लिए मानसिक भाजन है।[२] सुश्री महादेवी वर्मा और सुश्री सुभद्रा कुमारी चौहान के तुलना पक्ष को समक्ष रखते हुए श्री द्विवेदी का विचार है कि सुभद्रा जी प्रकृति की ओर आकृष्ट नही हो पाई हैं क्योकि उनकी कविताएँ इसी पार्थिव जगत से सम्बन्धित हैं। इसके विपरीत प्रकृति की मनोहरता की झलक महादेवी की कविताओ मे मिलती है। द्विवेदी जी के विचार से सुश्री वर्मा की कविताए यदि अन्तर्जगत की भाति सूक्ष्म हैं तो सुश्री चौहान की कविताएँ बाह्य विश्व की भाति प्रत्यक्ष। एक मे यदि आत्मा है तो दूसरे मे कलेवर। एक के लिए यदि यह शरीर लोक एक सीमापूर्ण बन्धन है तो दूसरे के लिए यह ससार भावना का मुक्त प्रांगण।[३] इस प्रकार से द्विवेदी जी ने विभिन्न साहित्यकारो की तुलनात्मक आलोचना करते समय उनके दृष्टिकोण, जीवन दर्शन, भावजगत साहित्य तथा रचनाकालीन परिस्थितियो पर भी विचार किया है।

द्विवेदी जी और छायावाद समीक्षा पद्धति आधुनिक युग मे प्रचलित समीक्षा पद्धतियो मे छायावादी दृष्टि का समावेश भी द्विवेदी जी के साहित्य मे हुआ है। छायावाद का आविर्भाव आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र मे बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में हुआ। यह काव्यान्दोलन द्विवेदी युगीन काव्य प्रवृत्तियो के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया के रूप मे जन्मा था। आरम्भ मे इसका स्वरूप सुनिश्चित नही था परन्तु कालान्तर मे इसे स्थिरीकरण और वशिष्ट्य प्राप्त हुआ। अनेक पाश्चात्य काव्य शैलियो और विचारधाराओ का भी इस पर प्रभाव पडा। छायावाद के प्रमुख कवियो तथा अनुगामियो की समीक्षात्मक रचनाओ मे इस प्रवृत्ति के सकेत उपलब्ध होते हैं। जयशंकर प्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' सुमित्रानन्दन पन्त महादेवी वर्मा गगाप्रसाद पाण्डेय तथा शांतिप्रिय द्विवेदी की आलोचनात्मक कृतियों मे यह पद्धति विकासशील मिलती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की इस समीक्षा शैली मे छायावाद के अन्य कवियो और विचारको की भाति भावनात्मकता का बाहुल्य मिलता है। उनका समीक्षात्मक चिन्तन प्राय समकालीन काव्य प्रवृत्तियो के सन्दर्भ मे महत्व

---

१ हमारे साहित्य निर्माता, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११८।
२ वही, पृ० ११९।
३ वही, पृ० २०१।

रखता है। स्वय द्विवदी जी छायावाद युग के एक विशिष्ट कवि के रूप म माय है। इसीलिए उनकी समीक्षात्मक दृष्टि म कवि के रूप मे, सुलभ भावनाओ का प्रमुख स्थान है तथा भाषा मे भी छायावादी तत्वो का समावेश हुआ है। छायावाद के विषय मे श्री द्विवदी जी ने *अपना मत इस प्रकार यक्त किया है—छायावाद* म वस्तुओ की इतिवत्तात्मकता का स्वीकार न करके उसकी जीवन स्पर्शिता को ग्रहण किया गया है। मैटर आफ फक्ट का सम्बन्ध स्थूलता से है जब कि जीवन स्पर्शिता का छाया अथवा भाव से। श्री द्विवेदी ने छायावाद और उसके आगे के रहस्यवाद को भी स्पष्ट किया है। वस्तुत दोनो म भिन्नता है। उनके विचार स जिस प्रकार मैटर आफ फक्ट के आगे की चीज छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है। छायावाद मे यदि एक जीवन क साथ दूसरे जीवन की अभि यक्ति है अथवा आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश है तो रहस्यवाद म आत्मा का परमात्मा स। एक म लौकिक अभिव्यक्ति है तो दूसरे म अलौकिक। एक पुष्प को देख कर जब हम उसे अपने ही जीवन सा सप्राण पाते हैं तो यह हमारे छायावाद की अभिव्यक्ति है परन्तु जब उसी पुष्प म हम एक किसी परम चेतन का विकास पाते हैं तो यह हमारी रहस्यानुभूति हो जाती है।'[1] श्री द्विवेदी जी न युग विश्लेपण मे रीति कालीन प्रवाह से असन्तुष्ट भारतेन्दु युग के चित्रण म अपनी छायावादी समीक्षात्मक प्रवत्ति का स्पष्ट परिचय दिया है। श्री द्विवेदी जी न युग को पुरुष का ही रूप मान कर मानवीकरण किया है रीति काल की पतझड म साहित्य और समाज के जो नवीन किसलय फूटे उनकी शिराओ मे नवचेतन का रक्त बहने लगा। यह मानो बीसवी शताब्दी की नूतन ऋतु का आगमन था। जिस प्रकार एक वद्ध अपने गत यौवन का मोह न छोडते हुए भी नवीन शशव को प्यार करता है उसी प्रकार भारतेन्दु युग ने भी रीतिकाल की पतझड को अपने अक से लगाया साथ ही नवीन चेतना को भी अपने कठ स लगा कर राष्ट्रीय और सामाजिक कविताओ को स्वर दिया।[2]

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के विचार से द्विवेदी युग ने भारतेन्दु युग की नवीन चेतना को वाणी और स्फूर्ति प्रदान की। द्विवेदी युग ने नवीन चेतना के शिशु ललाट पर मध्य युग की श्रद्धा का चन्दन लगाया और भक्ति काल की मलय सुवास को अपनी आत्मा म लीन कर लेना चाहा। बाबू मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे देश भक्ति और प्रभु भक्ति के स्वरूप का एकीकरण हुआ। इस प्रकार खडी बोली की कविता मे बाह्य और आन्तरिक चेतना अप्रसित हुई एव उनका प्रादुर्भाव हुआ।' द्विवेदी युग के नवयुवक कवियो ने बाह्य चेतना को गौण रूप म ग्रहण करके सूर कबीर

---

१ 'संचारिणी' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १७७।
२ वही, पृ० १७८।

तुलसी, मीरा, रसखान की मूल अन्तश्चेतना को प्रधानता दी तथा अपनी अनुभूति के आधार पर उन्होंने उस अन्तश्चेतना को एक भिन्न रूप और भिन्न ज्योति से कवित्व मडित किया। अतएव छायावादी कवियो ने क्लासिकल आधुनिकता एव रोमाटिक आधुनिकता दोनो को ही स्वीकार किया। इस प्रकार छायावादी कविता म शृगार और भक्ति के मध्य भाग अनुराग का अनुकरण किया गया है। परन्तु उसका सम्बन्ध लौकिक जीवन से न होकर सौन्दयमयी सूक्ष्म चेतना से है। यही कारण है कि छायावाद युग कवियो के अभिनव प्रयत्नो का युग है जिसमे स्वच्छद प्रवत्ति स्पष्ट है। इन अभिनव प्रयत्नो क अन्तगत विभिन्न क्षत्रो—भाषा, भाव बोध, छन्द, अभि व्यजना तथा जीवन दशन आदि—म छायावादी कवियो की नवीनता क प्रति रुचि एव उसके प्रति विशेष आग्रह है। न केवल छायावादी कवियो की काव्य कृतिया म ही यह नवीनता लक्षित होती है प्रत्युत उस समय के गद्य साहित्य म भी एक कान्यात्मकता का आविर्भाव हो गया था। श्री शातिप्रिय द्विवेदी वस्तुत छायावाद युग म ही आविभूत हुए थ अतएव उनके आलोचना साहित्य मे छायावादी प्रवत्ति क यत्र-तत्र दशन होते हैं। पडित इलाचन्द्र जोशी के व्यक्तित्व निणायक द्विवेदी जी न अपन मन को व्यक्त करत हुए जोशी जी को निराला और पन्त जी के मध्य का एक व्यक्तित्व माना है। जोशी जी की कविताओ म ओज और लालित्य जस काव्य गुणो का सम्मिश्रण हुआ है। 'छायावाद के विशिष्ट कविया मे निराला म प्रखर पौरुष है पत म प्रसन्न शशव तथा इनके मध्य जोशी जी में दुग्ध यौवन है।'[1] श्री द्विवेदी जी के मतानुसार जोशी जी भी प्रकृति की निसग शोभा के प्रति आकृष्ट हुए परन्तु गद्यात्मक प्रवत्ति के कारण उनके काव्य म पन्त और निराला की सी प्राजलता एव लालित्य न होन पर भी उनम छायावाद का सादगी एव मनोहरता है। गृहस्थो की तरह ही जोशी जी न जीवन मे कुछ पौराणिक विश्वास बसा लिए हैं—मृत्यु पुनजन्म, सघष का वरण और करुण चेतना की अनन्त यात्रा म एक मरणोत्तर आशावाद। गृहस्थो की तरह ही वे सुख-दुख स हर्षित विमर्षित होते हैं जीवन वन म आन वाल वसन्त और पतझड के कोमल कठिन स्पश से सृष्टि की तरह। वना निका की भाति वे उसके प्रति तटस्थ और प्रयत्नशील नहीं कारण वे गहस्थो की तरह ही जीवन का सचालक किसी मानवेतर शक्ति को पाते हैं। वे उन्हें हुलसाती है तो व हुलस पडते हैं, झुलसाती है तो झुलस पडत हैं। जहाँ वे आनन्दित होते हैं वहा वैष्णव हैं जहाँ तप्त वहाँ शव हैं। यही द्वित्व व्यक्तित्व उनके कवित्व म है।[2] इस प्रकार श्री द्विवेदी ने जहाँ विशिष्ट कवियो की आलोचना की है वहाँ उनकी भाषा एव भाव दोना में ही छायावाद की समीक्षात्मक प्रवत्ति उपलब्ध होती है।

---

१ सचारिणी' श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० २११।

२ वही, पृ० २११ २१२।

अवस्थित क्षोभ, क्रान्ति उत्पीडन और उन्वेलन आदि मानव को प्रारम्भ म विक्षुब्ध करते हैं परन्तु अन्ततोगत्वा वह उसके अन्तजगत म परिवतन का कारण बन जाता है। अतएव श्री द्विवेदा जा भी पन्त के नव निर्माण के विचार से सहमत होते हुए मानव के वाह्य जगत अथवा समाज के उत्थान एव निर्माण के विचार को ही प्रमुखता देते हैं और यही उनका प्रगतिवादी दष्टिकोण है। मानव जीवन मे निर्माण क लिए श्री द्विवेदी जी न यन्त्रोद्योगा से अधिक प्रमुखता ग्रामोद्योगा को दी है क्योंकि यन्त्रोद्योगों मे रसाद्रता नही है प्रखरता है और जीवन एव काव्य के पनपने मे सजलता और सरलता सहायक होती है। 'चाह पूजीवाद हो चाह प्रगतिवाद कोई भी यात्रिक युग आग चल नही सकता। काय और जीवन के पनपने के लिए आद्रता (तरलता, सजलता) चाहिए। यन्त्रोद्योग मे रसाद्रता नही प्रखरता है जल नही विद्युत है। नि सन्देह जीवन मे कुछ उष्णता की भी आवश्यकता है। वह ग्रामोद्योग मे शरीर के स्वाभाविक ओज (पुरुषाथ) की तरह स्वत व्याप्त है। उसे यन्त्रा के कृत्रिम आश्रय की जरूरत नही।'[1] इस प्रकार ग्रामोद्योग को प्रमुखता देते हुए द्विवेदी जी ने ग्रामोद्योगा के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की है। वस्तुत ग्रामाद्योग छायावाद के भावयोग का पार्थिव आधार हैं। आधुनिक युग म दूसरे महायुद्ध के पश्चात अधिकाश देशा के औद्योगिक विशेषज्ञ ग्रामोद्योग के महत्व को स्वीकार करते हैं और जो इसे स्वीकार नही करते उन्ह भी अन्तत इसे स्वीकार ही करना पडगा। लखक का विश्वास है कि इस प्रकार पुन छायावाद का आविर्भाव होगा।[2] श्री द्विवदी जी का मन्तव्य है कि मानव जीवन का नव निर्माण व्यक्तिगत स्तर पर न होकर सामूहिकता पर ही अवलम्बित है। यही गाधीवाद का भी सन्देश है कि साम्य योजना के माध्यम से ही मनुष्य पशुता से उठ कर, मनुष्यत्व को अपनाकर जनकल्याण कर सकता है। यही सामूहिकता गाधी जी के सर्वोदय मे अवस्थित है। आधुनिक युग मे समाज मे होने वाली उथल पुथल उस समाज के साहित्य मे भी तात्कालिक समयानुसार प्रतिबिम्बित होती है। भारतीय समाज मे राजनीति के वाद विवाद के परिणामस्वरूप साहित्य मे भी सद्धान्तिक वाद विवाद बढता ही जाता है। धीरे धीरे प्रगतिवादियो की गति विधि म अतिवादिता, निरकुशता तथा सकीणता का समावेश होता गया। इस साहित्यिक वाद विवाद का उत्साह प्रगतिवादियो म सबस अधिक है। इस अति मुखर प्रगतिवादिता के कारण उनम परस्पर ही मतभेद हो गया है और जो प्रबुद्धजन जीवन और साहित्य के नव निर्माण म सलग्न थ उनकी गणना भी अब प्रगतिवादियो म नहीं की जाती। अब प्रगतिवाद केवल सकुचित अर्थो मे ही प्रयुक्त होता है जिसका

---

१ ज्योति विहग श्री शातिप्रिय द्विवेदी प० २६८।

२ वही प० २६८।

अभिप्राय केवल दल विशेष का राजनीतिक प्रचार मात्र रह गया है।[1] इससे यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि द्विवेदी जी की प्रगतिवादी जीवन दृष्टि युग के अनुरूप तथा नवीन चेतना से आप्लावित है। ऐतिहासिक शास्त्रीय छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियाँ एक आलोचक के रूप में द्विवेदी जी को उल्लेखनीय स्थान प्रदान करती है। उनके प्रमुख आलोचनात्मक सिद्धान्तों का परिचय नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी के आलोचनात्मक सिद्धान्त

[१] काव्य मे रस तत्व श्री शातिप्रिय द्विवेदी की आलोचना दृष्टि उनकी रस ग्राहिणी शक्ति की भी परिचायक है। प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र में निरूपित काव्य के इस मूलभूत तत्व को द्विवेदी जी ने विशिष्ट महत्व प्रदान किया है। सैद्धान्तिक रूप से रस का स्वरूप निर्देश करते हुए उन्होंने लिखा है कि प्रकृति और पुरुष इस विश्व काव्य के दो तत्व हैं जिनके द्वारा उस परिभू स्वयम्भू ने लोक जीवन को नाना रूपों में विभक्त कर दिया है। मानव सुख दुख मिलन विरह को स्पर्श करता हुआ अपने पूर्व निश्चित पथ पर अग्रसर होता है। उसका मुख्य ध्येय उस अलौकिक शक्ति में विलीन हो जाना ही है। लोक जीवन के इस धरातल मे मानव हृदय में दो प्रकार के रसों का संचार होता है प्रथम कोमल रस और द्वितीय वह जो पाशविकता के द्योतक होते हैं। श्री द्विवेदी जी के मत में काव्य का आदि रस शृंगार है जिसमें हृदय का आकर्षण माधुर्य रूप मे परिणित होकर अनेकता मे एकता का बोध कराता है। मानव अभावमय जीवन में इन भावों से उद्वेलित होकर एक विरह का अनुभव करता है। उसके यही विरहोद्गार भाव ही काव्य रूप में परिलक्षित होते हैं। भक्ति रस के माध्यम से शृंगार की पूर्णता है। इन कोमल रसों के अतिरिक्त शान्त करुण और वात्सल्य रस भी इसी कोटि के अन्तर्गत आते हैं। मानव में देवत्व गुणों के साथ ही कुछ पाशव गुण भी अन्तर्निहित रहते हैं रौद्र, विभत्स और भयानक आदि मानव के इसी पाशव अंश के सूचक हैं। लेकिन द्विवेदी जी के मत में इनका महत्व भी मानव में कोमल रसों के उद्रेक में सहायक होने पर ही है। लेखक का यह मन्तव्य है कि रीतिकालीन काव्य में शृंगार रस की प्रधानता होने का एक कारण यह भी है कि इस काल के कवि इसी को रसराज मानते थे। निराला के काव्य में लेखक ने करुण रस की मर्मस्पर्शी व्यंजना का सम्यक् विश्लेषण किया है। निराला की लिखी हुई दीन भिक्षुक विधवा वह तोड़ती पत्थर तथा रास्ते के मुरझाये फूल आदि कविताओं में आधुनिक युग में वैज्ञानिक वृत्ति के विकास के समानान्तर स्वार्थपरता की वृद्धि और मानवीयता के ह्रास की अभिव्यंजना

---

१ ज्योति विहग, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ३५७ ३५८।

करुणामय कही जा सकती है। इसी प्रकार से स्वप्नस्मृति शीर्षक कविता में भी निराला जी ने करुण रस की सम्यक् व्यंजना करते हुए कवि के स्मृति लोक में मौन रुदन किया है जो अनादि युग से सूने कानन के रूप में अनन्त शून्य में विलीन होता रहा है।

[२] शब्द और छन्द योजना : काव्य और साहित्य में शब्द और शब्द योजना का भी महत्व इंगित किया है। इनके विचार से भावों की व्यक्त करने में समुचित एवं सुनियोजित शब्दों की आवश्यकता होती है। भावों की गति में छन्द सहायक होते हैं। शब्दों के रसानुकूल निर्वाह के लिए रस विभिन्नता की आवश्यकता होती है। काव्य में शब्द, छन्द और रस का वही स्थान है जो पुष्पों में विभिन्न सुगन्धों का। विभिन्न पुष्पों के विभिन्न सुगन्धों के सदृश्य काव्य में विभिन्न छन्द भी विभिन्न रसों का प्रतिनिधित्व करते हैं और इस प्रकार शब्द से सजग रस सर काव्य में प्रवाह की एक लहरी सी बनी रहती है। शब्द छन्द को अग्रसर करते हैं, छन्द भाव को और भाव रस को।[१] काव्य में राग को प्रवाह देने में छन्द का महत्वपूर्ण हाथ है। लेखक की धारणा है कि संस्कृत की भाषा संगीत शब्द प्रधान है और हिन्दी का राग प्रधान। वर्ण वृत्तों में शृंखला की एक अटूट कड़ी है जिसका एक अंशमात्र मुख से निकलने पर संपूर्ण वाक्य ही मुख से स्वयमेव निकल पड़ने को लालायित हो उठता है। श्री द्विवेदी जी ने मात्रिक छन्दों एवं वर्णवृत्तों के विषय में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है कि हिन्दी के मात्रिक छन्दों में शब्दों के अपने व्यक्तित्व तथा पदावली के सामंजस्य के साथ एक स्वतंत्र गति है। वर्णवृत्त में राजतंत्र और मात्रिक छन्द जनतंत्र। वर्णवृत्त में बंधनमय जीवन का अनुशासन है तथा मात्रिक छन्द में मुक्त हृदय का स्पंदन और भावनाओं की मुक्तावस्था। संस्कृत और हिन्दी कविता में अन्तर है और वह यह कि संस्कृत अरण्य युग की भारती है जब कि हिन्दी परवर्ती युग की नागरी।[२] दोनों के सौंदर्य बोध में भिन्नता है। समास की दृष्टि से द्विवेदी जी का मत है कि संस्कृत के वर्णवृत्तों में समास सघन तरुराज की भाँति शब्दों को संगठित करते हैं। हिन्दी के छन्दों में वे डाल के पुष्प की तरह शब्दों की बद्धता का परिष्कार करते हैं, वहाँ वे 'कची' का ही काम करते हैं।[३] द्विवेदी जी ने हिन्दी के कवित्त एवं मात्रिक की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए अपना मत प्रतिपादित किया है कि कवित्त में स्वर काव्य मुखर होता है जब कि मात्रिक में भाव मुखर। कवित्व में सार्वजनिक ओज विद्यमान है और मात्रिक में पारिवारिक माधुर्य। आगे द्विवेदी जी का मत है कि कवित्त की तरह ही संस्कृत के

१ कवि और काव्य, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ५।
२ *ज्योति विहग* : *श्री शांतिप्रिय द्विवेदी* पृ० १२२।
३ वही पृ० १२२।

वर्णवृत्त और बगला के अक्षर मात्रिक छन्द व्यजन प्रधान होने के साथ वे बन्धनमय हैं। वे स्वतन्त्रता नहीं देते।

[३] अतुकान्त और मुक्त छन्द छन्द तत्व के शास्त्रीय महत्व के स्वीकरण के साथ-साथ द्विवेदी जी ने आधुनिक काव्य विवेचन के सन्दर्भ में मुक्त छन्द के स्वरूप पर भी विचार किया है। इनकी धारणा है कि अतुकान्त से काव्य गद्य हो जाता है परन्तु उनमें उद्‌गार बधे रहते हैं। मुक्त छन्द में उदगार को स्वतन्त्रता मिली रहती है। तुक और छन्द का निबन्धन ही मुक्त काव्य है और पन्त जी ने मुक्त काव्य की सफलता हिन्दी में ह्रस्व और दीर्घ मात्रिक संगीत के लय पर ही मानी है। परन्तु निराला जी इस मत के विरोधी हैं। उन्होंने छन्दों को मुक्त न करके उसके प्रवाह को मुक्त किया है। प्रवाह से मुक्त और सामजस्य से सुसंगत राग को ही उन्होंने मुक्त छन्द माना है। अतुकान्त की उपयोगिता नाट्य शास्त्र में रगमचीय दृष्टिकोण से है। इसका महत्व प्रबन्ध काव्य में भी परिलक्षित होता है। इससे पात्रों के कथोपकथन में वार्तालाप की सी सरलता एवं स्वाभाविकता आ जाती है। मुक्त छन्द भावनाओं एवं उद्रेकों के उत्थान-पतन के विस्तार में सहायक होते हैं। मुक्त छन्द की प्रमुख विशेषता है कि उसमें भाषा का संगीत रहता है और साथ ही वार्तालाप की सी स्वाभाविकता भी रहती है तथा काव्य में नाट्य का समावेश हो जाता है। श्री द्विवेदी जी ने छायावाद में मुक्त छन्द की वास्तविक स्थिति का दिग्दर्शन करते हुए छन्द के महत्व का प्रतिपादन निम्न शब्दों में किया है छन्द के राग में मनुष्य का मनोराग भी मिला रहता है। उसके प्रवाह में मन की जो गति हृत्कम्पन की तरह अन्तर्लीन रहती है उसी को प्रत्यक्ष करने के लिए उद्‌गारों को नाट्य भंगिमा देनी पड़ती है। छन्द में सलापोचित स्वाभाविकता आ जाने से रागात्मिका वृत्ति का उद्रेक हो जाता है। मनुष्य के मनोरागों को व्यक्त करने के लिए ही मुक्त छन्द है। वह काव्य को मनोविज्ञान का सहयोग देता है। भाषा भाव और छन्द में जीवन की अन्तर्व्यजना ही छायावाद की विशेषता है। इस दृष्टि से मुक्त छन्द छायावाद का अन्तरंग छन्द है।"[1]

[४] अलकार योजना श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने बताया है कि काव्य में भावों को स्पष्ट रूप से नियोजित करने में अलकार एक साधन है और इसका महत्व भाव गाम्भीर्य में अन्तर्निहित है। श्री द्विवेदी जी की दृष्टि में भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलकार है।[2] इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी की धारणा है कि अलकारों का वास्तविक सम्बन्ध सौन्दर्यबोध से होता है। रीतिकाल तथा द्विवेदी युग में सौन्दर्यबोध का आभास था परन्तु रीतिकाल वैभव विलास की रसिकता से

---

१ 'ज्योति विहग', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १६६।

२ 'कवि और काव्य' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६।

कारण अलकार प्रधान था। छायावादी कवियो न भावो के सदृश्य ही सौ दयवाध स अलकारो को भी स्वाभाविकता प्रदान की। छायावादी कवियो की दृष्टि मे अलकार केवल वाणी की ही शोभा नही भावो की अभियक्ति म भी वह सहायक होते ह।

[५] काय म त्रिगुण, त्रिमूर्ति और त्रिवाणी द्विवदी जी क विचार स काय की सम्यक रचना म त्रिगुण और त्रिमूर्ति क साथ त्रिवाणी भी सहायक हाता है। काव्य की त्रिगुणात्मक वस्तुओ म विभूति, श्री, उज आते हैं। विभूति के अन्तगत विविध भावा का विस्तार श्री कोमल कान्त पद माधुरी तथा उज म पौरुष का ओज निहित है। इसी प्रकार अनुभूति के भी त्रिविध स्वरूप हैं जिन्ह दूसरे शब्दो मे त्रिमूर्ति की आख्या दी जाती है। ये निम्न हैं भावना चिन्तना और प्रभूति। भावना म विष्णु की मनोहरता है, चिन्तना मे शिव का ज्वलन्तता, प्रभूति म ब्रह्मा का अखिल सष्टि सन्दोह है।[१] यह प्रभूति अनुभूति का ही पुजीभूत रूप है भावना स विश्व की मनोज्ञता की अनुभूति होती है। चिन्तना द्वारा सष्टि की दुद्धरता का ज्ञान हाता है। प्रभूति मे अनुभूति के विशद रूप मे सरस और विषम विश्व क एक सवरूप की अनुभति होती है। अनुभूति क इस त्रिविध स्वरूप के अनुरूप ही त्रिवाणी सत्य शिव और सुन्दरम भी काव्य की सम्पन्नता म सहायक हाती है। सत्य दशन का शिव धम का और सुन्दर कला का विषय है। परिणामस्वरूप सुन्दरम का सम्बन्ध भावना स सत्यम का चिन्तना से तथा शिवम का प्रभूति से है। शिवम् की प्रमुखता के लिए सत्यम और सुन्दरम का सम्मिश्रण हा जाता है।

[६] भाषा और भाव द्विवदी जी का विचार है कि मानव जीवन मे भावो का आविर्भाव पहले हुआ और उसके उपरान्त उनकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का। इस प्रकार भाषा भावों की अभियक्ति का साधन है परन्तु भावो के सदृश्य ही भाषा की उतनी समृद्धि नही हो सकती। उसका मुख्य कारण यही है कि भाषा मानव निर्मित है जब कि भाव प्रकृति की सष्टि है। कवि भी अपने भावो की अभिव्यक्ति के लिए भाषा को अनेक साधना स सामर्थ्यवान बनाता है। वह कला का आश्रय लेता है। इस प्रकार द्विवेदी जी के मत मे भावो और विचारो की अभियक्ति की सुन्दरता कुशलता का ही नाम कला है। भाषा और कला के मेल से भावो और विचारों को जो मनोरम स्वरूप मिलता है उसी का साहित्य कहते हैं।[२] मानव जीवन मे दो चेतनाए काम करती हैं अन्तर्चेतना और वाह्य चतना। जिस प्रकार वाह्य चेतन स्वप्नो की सष्टि करा देती है परन्तु अन्तर्चेतना उसकी निरथकता का बोध कराती है उसी प्रकार कवि के अस्पष्ट काय मे उन अज्ञात भावो मे अतरतम की वह अज्ञात चतना परिव्याप्त होकर मानव के ममस्थल का स्पश कराती रहती

---

१ कवि और काय श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ७।

२ वही, पृ० १४०।

है। यद्यपि अर्थ उसका अस्पष्ट ही रहता है परन्तु वे भाव हृदय को मुग्ध कर लेते हैं, उनमें प्राण बोलते से दृष्टिगोचर होते हैं।

[७] चित्र भाषा और चित्र राग द्विवेदी जी ने कविता की परिपूर्णता के लिए भाषा भाव और रस की अनिवार्यता के साथ ही चित्र भाषा और चित्र राग को भी महत्वपूर्ण माना है। चित्र भाषा में शब्द अपने भावों की अपनी ही ध्वनि में नेत्रों के सम्मुख चित्रित कर देते हैं और जब चित्र भाषा में भाव के साकार रूप के साथ शब्दों में स्वर बोलने लगते हैं तो वही चित्र राग बन जाता है। इस प्रकार चित्र राग की रचना में चित्रमयता और भाव की रसमयता की आवश्यकता होनी है। चित्र भाषा भाव के लिए है। जब भाषा भाव को आकार देकर उसके अन्तस में राग का उद्रेक कर देती है तब वह चित्र भाषा न रह कर चित्र राग हो जाती है। कविता की परिपूर्णता भाव और रस में है। जहां भाव है वहीं रस भी है, जहां चित्र भाषा है वहीं चित्र राग भी है। चित्र और संगीत का पार्थक्य काव्य में दूर हो जाता है दोनों अनिवार्यतः एक हो जाते हैं। शब्दों में जैसे भाव अंतर्गर्भित रहते हैं वैसे ही भावों में रस भी, अतएव चित्र भाषा और चित्र राग दोनों में रूप और रस की तरह साहचर्य है।[२]

[८] कल्पना और अनुभूति द्विवेदी जी ने काव्य में कल्पना और अनुभूति की निहित पर भी विचार किया है। उनके मतानुसार कवि अपने मार्ग का स्वयं निर्देश करता है। अतएव वह पूर्व स्थापित स्वार्थों से ही सम्बद्ध नहीं होते प्रत्युत वे नवीन रचनात्मक दृष्टि से आगे बढ़ते हैं। कवि युग धर होता है। प्रगतिशील युग का कवि भी छायावाद के कवि के सदृश्य अपनी कल्पना को ही चेतनता का रूप दे रहा है। फ्रायडियन आलोचक के मन में कल्पनाशीलता अतृप्त वासनाओं की तृप्ति मात्र है। कल्पना एवं कला का द्विवेदी जी ने विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जहां कल्पना है वहां कला भी है। कल्पना जिस अदृश्य का ध्यान करती है कला उसे आकार देती है, भाव आकार को आत्मा देता है। निर्गुण को सगुण एवं अमूर्त को मूर्त करने के लिए कल्पना को कला की सहायता लेनी पड़ती है।[१] इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी का मत है कि काव्य में कल्पना सार्थकतापूर्ण होती है। केवल बाह्य जगत की वास्तविक अनुभूति ही सत्य नहीं है अपितु उन अनुभूतियों से निर्मित जीवन सत्य है। कवि भी अपनी अनुभूतियों के निष्कर्ष रूप में काव्य में अन्तर्गत रसोद्रेक करता है। कवि के पास उसका मनोयोग ही ऐसा यन्त्र होता है जिसकी साधना के आधार पर ही वह अनुभूति का साक्षात दर्शन करता है। कवि वास्तविक जगत के माध्यम से इस ब्रह्मांड में व्याप्त अदृश्य झांकियां, अदृश्य चेतन भावों को, जो कि अगोचर अज्ञेय और ध्येय

---

१ ज्योति विहग, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११६ १७।
२ वही, पृ० २८५।

है काव्य में रूप रंग और स्वर देकर लौकिक जीवन में चेतना का संचार करता है।

[९] वेदनानुभूति — श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने वेदनानुभूति का स्वरूप निरूपित करते हुए बताया है कि मूलतः मानव अनुभूतिमय प्राणी है। सृष्टि के कण-कण में उसे एक अलौकिक अनुभूति होती है। परन्तु इस अनुभूति से यह तात्पर्य नहीं कि वह उस अनुभूति से प्रेरित होकर उससे तादात्म्य स्थापित कर ले। वेदनानुभूति से प्रभावित होकर मानव अपने क्षुद्र अहं की भावना को विस्मृत कर राग द्वेष से अलग एक दूसरे से तादात्म्य स्थापित करता है जो कि किसी जोर जबर्दस्ती से नहीं प्रत्युत् स्वयमेव हो जाता है। मानव सुख से आत्मविस्मृत होकर उसे एकान्त भोगना चाहता है परन्तु वेदना को वह सबसे बाँटना चाहता है। सुख में मानव के मध्य ईर्ष्या उत्पन्न होती है एवं हृदय दूसरे से बहुत दूर हो जाता है किन्तु वेदना मानव की इस खाई को पार कर मानव मानव को निकट से निकटतर लाकर उनमें ममता संवेदना का प्रादुर्भाव करता है। अनादि विश्व वीणा का प्रथम स्वर ही वेदना का स्वर था और मानव अपने जीवन के प्रथम क्षणों में क्रन्दन करता हुआ माँ का आधार लेता है। वेदना ही मानव जीवन की मूल रागिनी है। मानव सुख का प्रफुल्लता से स्वागत करता है परन्तु वेदना में वह करुण सहृदय व्यथा से पीड़ित एवं अधीर हो उठता है। यही वेदना मानव को उस अलौकिक करुणामय से मिला देता है। यही कारण है कि कवि भी वेदना में ही निमग्न हो उस करुणामय की अनुभूति में प्राप्त करता है।

[१०] सौन्दर्य बोध — द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि यथार्थ जगत में बहु अनुभवों के सत्य को काव्य में अपने मन एवं हृदय के सौंदर्य से स्निग्ध करके व्यक्त करता है। अंतर्जगत की इस साधना को ही साहित्य में भाव योग कहा जाता है तथा काव्य में उसे ब्रह्मानन्द का सहोदर माना गया है। वस्तुतः कवि का यह सौंदर्य आत्मा और जड़ के मध्य एक सेतु के सदृश है। सौंदर्य भावना का चेतन है जो जड़ को भी अचेतन करता है। बाह्य जगत हमारे मन के अन्दर प्रवेश करके एक दूसरा जगत बन जाता है। उसमें केवल बाह्य जगत के रंग आकृति तथा ध्वनि इत्यादि ही नहीं होते अपितु उनके साथ हमारा अच्छा बुरा लगना हमारा भय विस्मय हमारा सुख दुख भी मिला रहता है। वह (अंतर्जगत) हमारी हृदय वृत्ति के विचित्र रस में नाना प्रकार से आभासित होता है। जिस प्रकार जगत अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है।"[1] द्विवेदी जी का विचार है कि प्राचीन युग में कवि मानवीय सौंदर्य से प्रभावित होकर ईश्वर की ओर उन्मुख हुआ था परंतु वर्तमान कवि प्रकृति के सुंदर भाव विलास से आनन्दमय होकर उस परम शोभामय अलौकिक छवि की ओर आकृष्ट हुआ। यही कारण है कि प्राचीन कवि

---

१ 'कवि और काव्य', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १० ११।

ईश्वर की परम छवि से प्रभावित है जो रूपाकार है परन्तु वर्तमान कवि प्रकृति प्रांगण म एक सुन्दरतम छवि का अवलोकन अपने भावना लोक मे करता है। राधा और कृष्ण के सदृश्य ही नर और नारी भी उस परम चेतन के ही मनोरम आवरण है। प्राचीन अथवा वर्तमान कविया म जिन्होंने युगल अथवा किसी एक का चिन्तन किया है उन सबका लक्ष्य केवल एक है उस अनन्त सौन्दय की स्तुति और प्रेम की लोकानुभूति।

[११] सांस्कृतिक चेतना आधुनिक हिन्दी साहित्य मे छायावाद का यान्दोलन के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त क काव्य क मूल्याकन के सन्दभ मे द्विवदी जी ने सास्कृतिक चेतना के स्वरूप का भी निदशन किया है। उनकी धारणा है कि पन्त कृत गुन्जन मे जो कविताएँ सगहीत हैं उनम नव चेतना का जागरण दृष्टिगत होता है। सुख-दुख के मधुर मिलन म ही मानव सवेदनशील होकर प्रकृति क कण कण स तादात्म्य स्थापित करता है। गुजन काव्य मे र शब्द की पुनरावत्ति पन्त जी की इसी सवदनशीलता की परिचायक है और मानव हृदय का स्पश करता है। इसमे पन्त की सामाजिक सवन्ना एव आत्मीयता के साथ ही उनकी सौहाद्रता एव वसुधैव कुटुम्बक्म की भावना का आभास मिलता है। यही पन्त जी की आत्म प्रेरणा है। पन्त जी के 'गुजन काव्य मे सौन्दय दशन अन्तस्पन्दन के साथ जीवन का नवीन चिन्तन भी परिलक्षित होता है। द्विवेदी जी न पन्त साहित्य म भाव और कला की दष्टि मे उनके काव्य क क्रमिक विकास के अन्तगत भावो का भी क्रमिक विश्लेषण किया है। पल्लव काव्य म आध्यात्मिक एव चिन्तन स जटिल ज्ञानपूर्ण कविताए है लेकिन 'गुजन में पन्त जी पुन भाव जगत म पदापण कर गए हैं। गुजन मे जीवन चिन्तन के रूप मे पन्त जी की अनुभूति एव अभिव्यक्ति म नवीनता है। भावो की अभिव्यक्ति म कलाभिव्यजना के दशन होते हैं। अभिव्यक्ति के लिए कलात्मक भाषा को गढा गया है। 'वसुधैव कुटुम्बक्म का भाव गुजन के अतिरिक्त पन्त के काव्य ज्योत्स्ना' म भी परिलक्षित होता है। वसुधैव कुटुम्बक्म मे भारतीय सस्कृति की विशद सौहाद्रपूर्ण भावना अन्तर्निहित है। पन्त जी न 'युगवाणी' म मानव विकास के लिए राग तत्व को प्रधानता दी है। इसी राग तत्व को उन्होने सस्कृत की मूलधातु' माना है। श्री द्विवेदी जी ने राग तत्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है राग का अभिप्राय है मनुष्य की वह रमणशील प्रवत्ति जो प्रिय वस्तुओ म उसका मन रमाती है। इसे हम आकपण वृत्ति अथवा अनुरक्त प्रवत्ति भी कह सकते हैं। मनुष्य का यही राग आनन्द के लिए अनुराग बन जाता है। काव्य मे स्वर की सगति पाकर राग सगीत बन जाता है, जीवन मे सुरुचि की सगति पाकर भाव। भाव म मनुष्य का रस बोध और सौन्दय बोध है।'[१] द्विवेदी जी न पन्त के 'ग्राम्या काव्य की आलोचना

१ ज्योति विहग, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० २८०।

करते हुए पंत की सहानुभूति को बौद्धिक मानते हैं जो मानवीय संवेदनशीलता से पूर्ण है। विचार से उद्भूत सहानुभूति मात्र दया अथवा करुणा रह जाती है। बौद्धिक सहानुभूति के लिए पंत का कथन है कि बौद्धिकता हार्दिकता ही का दूसरा रूप है वह हृदय की कृपणता से नहीं आती।[1] ग्रामीणों के साथ पंत जी की हार्दिक सहानुभूति है परन्तु उनकी सामाजिक व्याधियों से वह घृणा करते हैं। मानव की आन्तरिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान कराते तथा उनकी यंत्रणाओं के कारण एवं समाज की रूढ़ियों के कारण हुई दयनीय स्थिति से त्राण दिलाने के लिए पंत जी ने सामूहिकता पर जोर दिया है। अपने युग की प्रणाली में परिवर्तन का पक्ष मानते हैं। सामूहिक चेतना मार्क्सवाद से प्रभावित है। पंत के काव्य युगान्तर के गीतों में दिव्य चेतना का आह्वान तथा लोक चेतना का उद्बोधन है। दिव्य चेतना अथवा परमात्म चेतना केवल अन्तरतम में ही काम न करके स्वयं को लोक चेतना में भी मूर्त करती है। इस प्रकार रहस्यवाद ही लोक चेतना से अभिभूत होकर मानववाद रूप में परिणति हो जाता है।

[१२] आदर्श और यथार्थ : श्री द्विवेदी जी ने आदर्श को अत्यन्त व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया है। आदर्शवाद मानव के प्रेम, सहानुभूति, करुणा, ममता आदि मानवीय गुणों का प्रतीक है। यह मनुष्यता की तरह विस्तृत एवं आत्मा की तरह व्यापक है। द्विवेदी जी की दृष्टि में यथार्थ के बिना आदर्श गति रहित है, आदर्श के बिना यथार्थ जीवन रहित। *आदर्श यदि राजपुरुष है तो यथार्थ उसका राजमंत्री। यह राजमंत्री ही राजपुरुष को मानवता के संरक्षण के लिए मंत्रणा देता है। यथार्थ चाहे तो अपने राजा के साथ विश्वासघात कर सकता है। जब वह विश्वासघात करता है, तभी जन रव क्षुब्ध हो उठता है। यों वह अपने स्थान पर सार्थक है।*[2] साहित्य में यथार्थ के नाम पर आज अश्लीलता को महत्व दिया जा रहा है अतः श्री द्विवेदी जी के मत में वास्तविकता इस नग्नता के प्रदर्शन से हेय है क्योंकि उसमें आदर्श विलुप्त हो गया है। *कला वास्तविकता का आधार स्तम्भ है परन्तु कला का अस्तित्व आदर्श एवं मंगल का सूचक है।* इस प्रकार सुन्दरता का शरीर यथार्थ है परन्तु आदर्श उसकी मंगलमयी आत्मा है। इसी मंगलमयी आत्मा के कारण ही वह प्रशस्त है। उसी प्रकार कला की प्रशस्ति भी उसके यथार्थ शरीर की अपेक्षा मंगलमयी आदर्श आत्मा को महत्व देती है। वस्तुतः यथार्थ आदर्श का माध्यम है और उसे उचित रूप से हृदयंगम करके समाज के सम्मुख उचित रूप से रखना कलाकार की विशेषता है। आज के यथार्थ युग में मानव स्वयं यंत्र सा होता जा रहा है। वह अपने नैसर्गिक जीवन से विलग होकर प्रकृति से क्रमशः दूर होता जा रहा है। फलस्वरूप मानव में स्वार्थों की प्रधानता होती जा रही है और यही प्रगतिवाद है जहाँ मनुष्य भी यंत्रों के बनने

---

१ ग्राम्या श्री सुमित्रानन्दन पन्त (निवेदन)।
२ 'संचारिणी' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९९।

लगे हैं। लेकिन मानव जब-जब प्रकृति की शरण मे गया और उससे आत्मीयता का सम्बन्ध जोडने लगा तभी वह यत्रवाद के विपरीत मानवी चेतना का उद्रेक करके मानव म नव चेतना का सचार अपने काव्य के माध्यम से करता है।

[१३] **रहस्यवाद और छायावाद** श्री शातिप्रिय द्विवेदी की दृष्टि म रहस्यवाद की दो कोटियाँ हैं—पार्थिव और अपार्थिव। पार्थिव रहस्वाद मे सगुणोपासक कवियो की गणना की जा सकती है जो सष्टि के कण-कण म, तृण तृण मे अ तश्चेतना की अनुरागिनी छाया का आभास पाते हैं। दूसरे शब्दा म इसे ही छायावाद कहा जाता है। अपार्थिव रहस्यवाद ज्ञानियो की चीज है और स तों की वाणी है। अतएव निर्गुणोपासक कवि इस कोटि क अ तगत आते हैं। छायावाद मे प्रेम और भक्ति है इसी के आधार पर इसम लौकिकता और अलौकिकता दोनो का सम वय है पर तु रहस्यवाद मे केवल अलौकिकता और भगवद्भक्ति है। भारतीय साहित्य की रहस्वादी प्रवत्ति यद्यपि पुरातन है पर तु समयानुसार वह भी आधुनिक हो रही है। भारतीय साहित्य एव भारतीय जीवन मे समाजवाद मानव सौज य का प्रतीक है। कारण वह विदेशी है। समाजवाद उस सौज य का बाह्य अथवा राजनीतिक स्वरूप है जब कि रहस्वाद उसी मानव सौज य का आ तरिक अथवा धार्मिक स्वरूप है। धार्मिकता को विस्तृत अर्थो मे ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि वह हृदय की सद्वत्ति है। यही सामाजिक सवेदना के लिए मानव को सहृदय बनाती है। रहस्यवाद का वास्तविक महत्व हृदय एव सहानुभूतिपूण क्षणा को स्थायित्व देने म है। रहस्यवाद आ तरिकता को विश्व रूप मे विश्व सवेदना मे, विश्व याप्त चेतना म जगाता है। यदि समाज वाद के अ तराल मे रहस्यवाद (आध्यात्मिक चेतना) भी अ तर्निहित हो तो रहस्य वाद का उससे वैपरीत्य नही।[१] रहस्यवाद की पुरातन भूमि आन दमयी मनुष्यता का मच्चिदान द स्वरूप है। पर तु समय परिवतन एव सामाजिक अशाति के युग मे वही करुणाकर की करुणा की भूमि बन गयी तथा इमी के माध्यम से उस सच्चिदान द भूमि म प्रविष्ट होकर इष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुत आन द की प्राप्ति ही भारतीय सस्कृति का मुख्य एव ध्रुव ध्यय है। पर तु उस आन द की प्राप्ति म वीरता एव वीर रस को सहायक न मान कर सवेदना एव करुण रस को मा यता दी गयी है। भारतीय कविता म स्वय सेवक जैसी रक्षा एव सेवा का भाव अ तर्निहित है जो मानवी चेतना को जाग्रत कर जीवित मृतको को जीवनदान देती है। छायावाद की कविता म रीतिकालीन शृगारिकता एव भक्ति काल की भक्ति मूलक प्रवत्ति के मध्य माग अनुराग को अपनाया गया है। उसम मानव की अनुभूतियो एव अभिव्यक्तियो का सार सचय' हुआ है। इस प्रकार छायावाद ने मध्यकालीन शृगार काव्य से रसात्मकता तथा भक्तिकाल से आत्मा की त मयता लेकर आज की

---

१ सचारिणी श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० १४३।

हिन्दी कविता को सरसता प्रदान की है। छायावाद केवल काव्य कला ही नहीं है प्रत्युत दार्शनिक अनुभूतियों से सम्बधित होने के कारण वह एक प्राण एवं एक सत्य है। *अतएव छायावाद श्रेष्ठतर अभिव्यक्ति है।*

[१४] प्रगतिवाद साहित्य मे जिसे प्रगतिवाद के नाम से विभूषित किया जाता है वह वस्तुत मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद है जिसका दूसरा नाम उपयोगितावाद भी है। ऐतिहासिक भौतिकवाद का तात्पर्य मनुष्य का विकास समाज की दिशा मे तथा समाज का इतिहास की दिशा मे होना है। यद्यपि पन्त जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद को मान्यता दी है परन्तु उनके काव्य मे एक समन्वयात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनके साहित्य मे सौन्दर्यबोध की प्रवत्ति तथा आध्यात्मिकता के भी दर्शन होते हैं। लौकिक सौन्दर्य और अलौकिक आनन्द की अभिन्नता के लिए कवि भौतिक और आध्यात्मिक दर्शन को संयोजित करता है। पृथ्वी और आकाश को समन्वय के क्षितिज मे मिलाता है।[1] इस प्रकार पन्त जी ने ऐतिहासिक भौतिकवाद तथा अध्यात्म दर्शन के कल्याणकारी पक्ष को ग्रहण कर दोनो का समन्वय किया है। *द्विवेदी जी के विचार से प्रगतिवादी कविता ने समाज का ऐतिहासिक समीक्षण एवं निरीक्षण* कर अपने काव्य मे उसी रूप को प्रतिबिम्बित किया। सामन्त युग के सदृश्य आज का युग भी पूजीवाद अथवा अर्थ प्रधान है। प्रगतिवाद अर्थोन्मुख है अतएव वह आर्थिक साम्यता के आधार पर ही मानव को मुक्ति प्रदान करने मे सचेष्ट है। प्रगतिवादियो की प्रमुख विशेषता यही है कि वह अपने यथार्थ से विमुख अथवा ऊपर नही उठ पाते है।

[१५] कविता और कला श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी जी की धारणा है कि कविता मे वस्तु जगत तथा स्वप्न जगत दोनो की ही बात होती हैं। काव्य मे अपनी बातो के कहने के ढग को ही शैली कहते हैं। उसके तीन रूप मिलते हैं—अभिधा लक्षणा और व्यजना, और इस कहने के ढग पर रचना की दो कोटियाँ हो जाती हैं—भावमय तथा सूक्तिमय। कविता न केवल मानव जगत मे व्याप्त है तथा उसमे चेतनता का सचार करती रहती है प्रत्युत यह मानवेतर जगत तथा चराचर व्याप्त प्रकृति की सास है। कवि ने प्रकृति से उपमाओ का सकलन करके तथा मनुष्येतर प्रकृति से स्वय को सम्बद्ध करके अपने विश्वलोक को परिपूर्णता प्रदान की जिसमे उसने प्रकृति के नाना रूपो से मानव जीवन की एकरूपता का प्रत्यक्षीकरण किया। कविता रस सयुक्त भावो से ही अनुप्राणित होकर वास्तविक कविता कहलाती है और इसका सम्बन्ध हृदय पक्ष से अभिन्न होता है। परन्तु जब भावो को मस्तिष्क से जोडने का प्रयत्न किया जाता है तो वह भाव न रह कर सूक्ति का रूप धारण कर लेते हैं। इस अवस्था मे कविता कला की वस्तु हो जाती है जिसमे चमत्कार की प्रधानता रहती है

---

१ ज्योति विहग', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७२।

परन्तु हृदय प्रधान कविताएँ कोयल के सदृश्य मानव के अन्तजगत म निरंतर गान करती रहती हैं। हृदय-प्रधान कविताएँ अपने सौंदय का रहस्योदघाटन करती रहती हैं तथा जड एव चेतन जगत को सजीवता से सुस्पदित करके उन्हें प्राणवान बना कर नवीन रूप शोभा प्रदान करती हैं। वह कविताएँ चिरस्थायी होती हैं जो हार्दिक भावा क माध्यम से आत्मा म मधुरता घोलती रहती हैं। कवि अपने भावा को सुदरतम रूप मे व्यक्त करन के लिए कला का आश्रय लेता है। कविता म कला के वाह्य उपकरण शब्द छद और शैली आदि हैं। दूसरे शब्दो म इन्हें भावा की वाह्येन्द्रिया भी कहा जाता है परन्तु भाव स्वभाव से सम्बन्धित है। भाव का सूक्ष्म रूप कल्पना है जो कला का अन्त करण है। कल्पना मे केवल भावना की उडान ही नही उसम विदग्धता का भी समावेश आवश्यक होना है। जिस प्रकार शरीर के वाह्य परिवतन पर भी आत्मा अमर रहती है उसी प्रकार काव्यकला के वाह्य उपकरणो मे परिवर्तन होने पर भी आत्मानुभूति चिरस्थायी हाती है। इसके साथ ही वह पुरातन होते हुए भी नित्य नवीन है। श्री द्विवेदी जी की दृष्टि मे कला स्वय लक्ष्य न होकर लक्षण है, साध्य न होकर साधन है, वह अभिप्रेत नहीं प्रत्युत अभिव्यक्ति है। द्विवेदी जी के मत म साहित्य मे कला का अथ मनोहर है अत जीवन के सत्य शिव को कला ही सुदरता का आवरण देकर साहित्य के माध्यम से ससार के सम्मुख उपस्थित करती है। अतएव कला साहित्य का वाह्य रूप है जीवन उसका अन्त रूप। कला अभिव्यक्ति है जीवन अभिव्यक्त। सुदर शरीर जिस प्रकार अन्तश्चेतना का नयनाभिराम प्रकाशन करता है उसी प्रकार कला साहित्य की जीवनमयी अन्तरात्मा की मनोरम अभिव्यक्ति करती है।"[1]

[१६] गीति काव्य द्विवेदी जी न विभिन्न प्रसगा म साहित्य के विविध रूपा का भी स्वरूप निर्दिशित किया है। उनका विचार है कि गीति काव्य अथवा लिरिक कविता किसी युग का प्रतिनिधित्व नहीं करती है प्रत्युत यह कवि की हार्दिक रसाद्रता पर निभर है।"[2] गीति काव्य मे काव्य साधना की अपक्षा आत्म साधना की अधिक आवश्यकता होती है। गीति काव्य म वस्तुत मानव स्वय को विस्मृत कर आत्मलीन हो जाता है, वह रस मात्र म अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है। उसका 'कवि हृदय गुजार रूप' हो जाता है। काव्य म सगीत के सयोजन से ही गीति काव्य की सृष्टि होती है। सगीत के समावेश स काव्य अधिक रस स्पर्शी हो जाता है। काव्य म लोक पक्ष होता है परन्तु सगीत अथवा गीति मे कवि का हृदय पक्ष स्फुरित होता है इसी से काव्य रसान्वित होता है।

[१७] प्रगीत काव्य द्विवेदी जी के विचार से गीति काव्य का ही एक

---

१ सचारिणी', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ८९ ९०।

२ वही, पृ० ३९।

नवीन रूप प्रगीत काव्य है। पंत जी ने इस प्रगीत काव्य की सृष्टि गीति और दृश्य की संयोजना से की है। पंत जी की नवीन शैली का रूप उनकी वन वन उपवन विहग पिच्छा' और जीवन का उल्लास आदि कविताओं में मिलता है। गीति के आदि चरणों के अंत में पुनरावृत्ति करके एक चित्र को रूपायित कर देना तथा उनमें हृदय के राग को आलोडित कर देना प्रगीत की प्रमुख विशेषता है। श्री द्विवेदी जी के मत से गीति काव्य में पुनरावृत्ति का स्थान जीवन में स्मृति के सदृश्य है।

[१८] मुक्तक काव्य द्विवेदी जी का विचार है कि मुक्तक कविताओं में साग रूपक निबंध का ही एक आलंकारिक रूप है। उसके द्वारा एक संक्षिप्त भाव निबंध प्रस्तुत हो जाता है।' निराला जी की कविताओं में यह विशेषता स्पष्ट रूप से इंगित हुई है—विशेष रूप से उन कविताओं में जो मुक्तक हैं। उनकी तुलना में पंत की कविताओं से पृथक एक मुक्तक में एक भाव की पूर्णता है जब कि पंत के काव्य में एक मुक्तक में अनेक भावों की अभिव्यंजना विद्यमान है। इस दृष्टि से निबंधनात्मकता का गुण निराला के काव्य में विधान है जब कि पंत के काव्य में उसका अभाव है। उनके मुक्तक के आकाश में उनके भाव नक्षत्रों की भांति विकीर्ण हैं उनकी विविधता में ही उनका सौंदर्य है उनमें काव्योचित का प्रकाशन है निबंधोचित प्रतिपादन नहीं।'[२]

हिन्दी आलोचना के विकास मे द्विवेदी जी का योगदान

प्रस्तुत अध्याय में शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचनात्मक कृतियों के आधार पर इस क्षेत्र में उनकी देन का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। द्विवेदी जी का आलोचना साहित्य विभिन्न पुस्तकाकार कृतियों के अतिरिक्त अनेक स्फुट निबंधों के रूप में भी उपलब्ध है। यहाँ पर इन सभी रचनाओं को दृष्टिगत रखते हुए मूलतः हमारे साहित्य निर्माता ज्योति विहग सचारिणी, कवि और काव्य तथा स्मृतियाँ और कृतियाँ को आधार बनाया गया है। इन कृतियों में द्विवेदी जी के सैद्धांतिक चिंतन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करने वाली रचनाएं भी हैं तथा उनके व्यावहारिक समीक्षा से सम्बंधित सिद्धांतों का परिचय देने वाली रचनाएँ भी। यहाँ पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि शुक्लोत्तर युग में आत्म व्यंजना प्रधान अथवा आत्मपरक और वैयक्तिकता प्रधान आलोचना के क्षेत्र में द्विवेदी जी का योगदान विशिष्ट रूप में मान्य किया जा सकता है। जैसा कि प्रस्तुत अध्याय के आरम्भ में ही संकेत किया गया है द्विवेदी जी की आलोचना क्षेत्रीय महत्ता का स्वीकरण आधुनिक युग के डा० नगेन्द्र जैसे मूर्धन्य आलोचकों ने भी किया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने

१ 'कवि और काव्य' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ८९।
२ वही, पृ० ८९।

अपने आलोचना साहित्य में हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों का समग्र रूपात्मक मूल्यांकन करते हुए उनकी पृष्ठभूमि भी विवेचित की है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्ण दास, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला', सुमित्रानन्दन पन्त, सुभद्रा कुमारी चौहान तथा महादेवी वर्मा आदि प्रतिनिधि लेखकों और कवियों की आलोचना उन्होंने अपनी 'हमारे साहित्य निर्माता' शीर्षक कृति में करते हुए इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि हिन्दी भाषा और साहित्य के सर्वक्षेत्रीय योगदान में इन महानुभावों का अविस्मरणीय योग है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने अपने द्वितीय आलोचनात्मक ग्रन्थ 'ज्योति विहग' में आधुनिक हिन्दी काव्य के सर्वप्रमुख विचारान्दोलन छायावाद के एक प्रतिनिधि और जीवित कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य व्यक्तित्व का विस्तृत विश्लेषण किया है। इसमें हिन्दी कविता के विकास के अन्तर्गत आधुनिक युगीन कविता के विविध रूपों का परिचय है। शब्दों का व्यक्तित्व, चित्रभाषा, चित्रराग, शास्त्रीय छन्द, मुक्त छन्द, गीति काव्य तथा अलंकार आदि काव्य तत्वों के आधार पर उन्होंने पन्त काव्य का सम्यक् विश्लेषण किया है। इस प्रसंग में उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण स्थापनाएं की हैं जो आलोचना के क्षेत्र में क्रान्तिकारी कही जा सकती हैं। साथ ही सत्यम् शिवम और सुन्दरम के परंपरागत दृष्टिकोण से भी उन्होंने पन्त काव्य का दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया है। सामान्यतः श्री सुमित्रानन्दन पन्त हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में एक कवि के रूप में ही मान्यता प्राप्त हैं। परन्तु द्विवेदी जी ने अपनी इस रचना में एक कथाकार के रूप में भी पन्त के व्यक्तित्व का निरूपण किया है। पुस्तक के अन्तिम खंड में लेखक ने आदर्श और यथार्थ की निहिति के विचार से पन्त के काव्य का सम्यक विश्लेषण करते हुए उनकी उपलब्धियों की ओर संकेत किया है। 'संचारिणी' में शांतिप्रिय द्विवेदी का आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपेक्षाकृत प्रौढ़ता लिए हुए मिलता है। इसमें उन्होंने भक्तिकाल की अन्तश्चेतना, ब्रजभाषा के अन्तिम प्रतिनिधि 'शरद् साहित्य का औपन्यासिक स्तर, 'कला में जीवन की अभिव्यक्ति' कला और वस्तु जगत, 'भारतेन्दु युग के बाद की हिन्दी कविता', नवीन मानव साहित्य, छायावाद का उत्कर्ष, 'हिन्दी गीति काव्य' 'कवि का आत्म जगत' और प्रकृति का वाङ्मय व्यक्तित्व' आदि निबन्धों में हिन्दी के गद्य और पद्य साहित्य का विस्तृत सर्वेक्षण करने के साथ-साथ अन्य भाषाओं के साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस सन्दर्भ में भी उन्होंने अपनी अनेक मौलिक स्थापनाएँ की हैं जिनका परिचय ऊपर दिया जा चुका है। लेखक ने साहित्य को उन मानव मूल्यों का वास्तविक प्रसारक माना है जो जीवन के सांस्कृतिक विकास का उत्कर्ष करते हैं। 'कवि और काव्य' में द्विवेदी जी ने हिन्दी की प्राचीन और नवीन कविता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इसमें 'काव्य चिन्तन', 'नूतन और पुरातन काव्य', 'मीरा

का तन्मय सगीत', 'प्राचीन हिन्दी कविता', 'आधुनिक हिन्दी कविता' 'छायावाद', 'रहस्यवाद और दशन', 'कविता म अस्पष्टता' 'नवीन काव्य क्षत्र म महिलाए, 'ठेठ जीवन और जातीय काव्य कला, 'कवि की करुण दृष्टि' कवि का मनुष्य लोक' 'वेदना का गौरव 'काव्य की लाछिता ककेयी' और 'काव्य की उपेक्षिता उर्मिला आदि शीपकों के अन्तगत लेखक ने साहित्य के विविध विकास युगो की प्रमुख रचनाओ और समस्याओ की पृष्ठभूमि मे परम्परानुगामिता और आधुनिकता का विवेचन किया है। इनसे लेखक के व्यापक अध्ययन और जागरूक दृष्टिकोण का भी परिचय मिलता है जो एक सफल आलोचक के आवश्यक गुण हैं। 'स्मृतियाँ और कृतियाँ म एक साहित्यिक वार्तालाप 'समय और हम नई सजना अज्ञेय जी की पूर्वा, प्रम और वात्सल्य के कवि माखनलाल 'राष्ट्र कवि गुप्त जी का काव्य योग, प्रसाद का साहित्य 'कामायनी के वाद, छायावाद, माधवन जी का रचनात्मक चिन्तन तथा सामयिक कथा साहित्य आदि शीपकों के अन्तगत साहित्य के मूल्याकन के शास्त्रीय मानदडो से पृथक उनकी आधुनिक कसौटी का स्वरूप निदशन किया है। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है इन कृतियो म मुख्य रूप से ऐतिहासिक शास्त्रीय तुलनात्मक छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियो का समावेश है जो द्विवेदी जी के रचना काल की प्रमुख आलोचनात्मक प्रवत्तिया है। इन प्रवत्तियों के अन्य आलोचको से द्विवदी जी मे प्रमुख अन्तर यह है कि उनका दृष्टिकोण आत्मपरक है। इसका एक कारण यह है कि भावुक, सहृदय रसाल और प्रबुद्ध आलोचक होने के कारण द्विवेदी जी के आलोचनात्मक दष्टिकोण म वह सकुचितता नही है जो प्राय आलोचना को सीमित और दोषपूण बना देती है। उन्होने साहित्य के अन्तरग और बहिरग के सम्यक परीक्षण के साथ जहाँ एक ओर आलोच्य साहित्य म रस छन्द अलकार कल्पना, भाव और भाषा क परम्परागत उपकरणो का विश्लेषण किया है तो दूसरी ओर अनुभूत्यात्मकता सवदनशीलता बौद्धिकता, दाशनिकता एव सास्कृतिक चेतना के निदशक सूत्रो का भी परीक्षण किया है। काव्य मे रस तत्व के विषय म उन्होंने शृगार को आदि रस मानते हुए उसके माधुय गुण की ओर सकेत किया है। सजग शब्द योजना और भावा की गति के नियोजन के लिए सम्यक छन्द योजना को उन्होने सफल काव्य क लिए आवश्यक बताया है। काव्य मे छन्द तत्व के शास्त्रीय महत्व क स्वीकरण के साथ साथ द्विवेदी जी ने मुक्तक छन्दो को भी अनुमोदित किया है। उनके विचार से अलकार काव्य मे अभिव्यजित भावो के सुस्पष्ट नियोजन का एक प्रमुख साधन है जिसका वास्तविक सम्बन्ध सौन्दय बोध से है, जो केवल वाणी की ही शोभा नही वरन भावाभिव्यक्ति मे भी सहायक होते है। भाषा को उन्होन भावाभिव्यक्ति का साधन मान कर उसके विविध रूपो का विवेचन किया है। काव्य मे कल्पना और अनुभूति के सन्तुलन के सन्दभ म उन्होंने इनकी चेतन

स्थिति का निर्देश किया है। उनका मत है कि मूलत मनुष्य अनुभूतिमय प्राणी है। इसलिए काव्य म अ तर्वेदना के दशन और करुण अनुभूति का ही व्यक्तीकरण होता है। इसके साथ ही द्विवेदी जी ने छायावादी काव्या दोलन के स दभ मे सास्कृतिक चेतना का भी निरूपण किया है। आधुनिक युग की प्रमुख विचारधाराओ के विवचन के स दभ म द्विवेदी जी न आदश और यथाथ का भी विवेचन किया है। इस प्रसग म उ होंने इन शब्दा का प्रयोग व्यापक अर्थो में करते हुए आदशवाद को मानव के प्रम, सहानुभूति करुणा, ममता आदि मानवीय गुणो का प्रतीक माना है जो मनुष्यता की तरह विस्तृत और आत्मा की तरह व्यापक है। रहस्यवाद पर विचार करत हुए द्विवेदी जी न उसकी पार्थिव और अपार्थिव कोटिया का उल्लेख किया है। उनका मत है कि छायावाद मे आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश और एक जीवन की दूसरे जीवन मे अभिव्यक्ति है। प्रगतिवाद के विषय मे विचार करते हुए उ होन उस माक्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद और उपयोगितावाद का ही दूसरा रूप बताया है। कविता और कला के स दभ म उ होने काव्य का क्षेत्र वस्तु जगत और स्वप्न जगत को माना है। कला उनके विचार से साहित्य की जीवनमयी अन्तरात्मा की मनोरम अभि यक्ति है। विभि न साहित्य रूपा मे गीति काव्य और प्रगीत काव्य का उ होने एक रूपात्मक निर्दिष्ट किया है। इस प्रकार से द्विवेदी जी का आलोचनात्मक दष्टिकोण हि दी आलोचना के समकालीन रूढ और शास्त्रीय स्वरूप से पृथक है तथा अशास्त्रीय अथवा आधुनिकता वादी आलाचनात्मक दृष्टि की उच्छ खलता से भी रहित है। वस्तुत वह आत्म यजना प्रधान अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना की एक एसी दृष्टि प्रस्तुत करता है जिसमे शास्त्रीय और आधुनिक दृष्टियो का सम वय है। इस रूप मे हि दी आलोचना के क्षेत्र मे द्विवदी जी की उपलब्धियाँ विरल हैं।

शातिप्रिय द्विवेदी का निवन्ध साहित्य

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय म यह सकेत किया जा चुका है कि शातिप्रिय द्विवेदी के साहित्य मे उनकी निबन्ध कृतियो का भी विशिष्ट स्थान है। उनकी निबध कृतियां विषयगत विस्तार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वचारिक परिपक्वता की दृष्टि से समान महत्व रखती हैं। जीवन यात्रा', साहित्यकी, युग और साहित्य 'साम यकी 'धरातल 'साकल्य, पद्मनाभिका' आधान 'वत और विकास 'समवत एव 'परिक्रमा आदि निबन्ध सग्रह लेखक की रचनात्मक क्रियाशीलता का द्योतन करने के साथ साथ बहुक्षेत्रीय चिन्तन के भी परिचायक हैं। उनमे मुख्य रूप स विचारात्मक आलोचनात्मक विवरणात्मक भावात्मक सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयों पर लिखे गये निबन्ध सगृहीत हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शातिप्रिय द्विवेदी का रचना काल हिन्दी निबन्ध के इतिहास म शुक्लोत्तर युग से सम्बधित है। परिणामत उनकी निबन्धात्मक रचनाओ पर जहाँ एक ओर समकालीन वैचारिक जागरूकता लक्षित होती है वहाँ दूसरी ओर उन पर पूववर्ती प्रवत्तियो का भी प्रभाव स्पष्ट है। इस अध्याय म शातिप्रिय द्विवेदी की प्रमुख निबन्ध कृतियो के आधार पर हिन्दी निबन्ध की विकासात्मक पृष्ठभूमि मे उनकी निबध क्षेत्रीय उपलब्धियो का विश्लेषणपरक मूल्याकन प्रस्तुत किया जा रहा है।

शातिप्रिय द्विवेदी की निबन्ध कृतियो का परिचय और वर्गीकरण

[१] जीवन यात्रा आधुनिक औद्योगिक युग म मानव स्वय मशीन सदृश निर्जीव बनता जा रहा है। ऐसे युग मे शातिप्रिय द्विवेदी का निबन्ध सग्रह जीवन यात्रा मानव का उसके सघषमय जीवन म पथ प्रदशन करता है। इसमे मानव जीवन के विविध पक्षो को दृष्टि मे रख कर जीवन की सरचनात्मक एव दाशनिक विवेचना हुई है। इस रूप म यह दाशनिक और वचारिक निबन्धो का सकलन है। 'जीवन क्या है?' शीषक निबन्ध म एक डनिश कहानी को शब्द चित्र के रूप म प्रस्तुत किया गया है। जीव जिस वातावरण म रहता है और जसा भी अनुभव करता है उसी को वास्तविक जीवन मान बठता है। इस प्रकार जीव जगत म अवस्थित विभिन्न कोटियो के प्राणी जीवन को विभिन्न दृष्टियो से देखते एव उसी रूप मे उनका अकन करते हैं। यात्रा दाशनिकता स पूण निबन्ध है। इसम समस्त मानव को एक अनात लाक का वासी मानकर एक पथिक के रूप म उसकी परिकल्पना की गयी है। 'जीवन का लक्ष्य' निबन्ध म मनुष्य को अपने जीवन के कमक्षत्र मे प्रवेश करते समय लक्ष्य के निर्धारण

की आवश्यकता की ओर सकेत है। बिना लक्ष्य निर्धारण के मनुष्य अधे के सदृश इस ससार म भटकना ही रह जाता है। लक्ष्य निधारण क उपरान्त उसकी सिद्धि के लिए लगन एव मानसिक एकाग्रता की अत्यधिक आवश्यकता होती है। मृग तृष्णा' शीषक दार्शनिकता से पूण वैचारिक लेख में लेखक ने मानव की महत्वाकाक्षा की ओर निर्देश किया है जो स्वय अपने जीवन को उसकी ज्वाला म प्रज्वलित करता है। मानव के अन्दर की ये महत्वाकाक्षाएँ एव उनसे उत्पन्न अतृप्ति उसे कभी भी शात नही रख सकती। वह उसमें एक असन्तुष्टि की भावना भर देती हैं। मानव मे तृष्णाओ एव महत्वाकाक्षाओं का अन्त कभी नहीं होता। इसीलिए प्रसाद की दृष्टि म महत्वाकाक्षा का मोती निष्ठुरता के सीप मे रहता है। महत्वाकाक्षा की पूर्ति न होने पर मानव म निष्ठुरता नृशसता, जघन्यता और निममता आदि अवगुणो का वास हो जाता है। आत्म चिन्तन' शीपक दाशनिक लेख मे लेखक ने मानव को आत्म केन्द्रित होने की प्रेरणा दी है। आज मनुष्य अपने अशान्त एव असतोषपूण जीवन से त्राण पाने के लिए, ससार के वाह्य उपकरणो के आश्रय मे जाता है, लेकिन वस्तुत वह शाति क्षणिक ही होती है उसे चिर शाति नही प्राप्त होती। उसके लिए मानव अपने आन्तरिक स्थल से ही सुख शाति प्राप्त कर सकता है। प्रोत्साहन शीपक वचारिक निबन्ध मे लेखक ने मानव को स्वय अपनी क्षमता पर विश्वास करते हुए आगे बढने के लिए प्रेरित किया है। हसता जीवन' शीपक निबन्ध मे लेखक ने जीवन की सफलता के लिए हसी को महत्वपूण माना है। जीवन के कठिनतम क्षणो मे भी हसी का महत्व है। 'वशीकरण वाणी' मे लेखक न मधुर वाणी को महत्ता प्रदान की है। प्राचीन दृष्टान्तो मे महा पुरुषो के उदाहरण देकर उन्होंने कुवाक्य एव कुवाणी के प्रभाव को स्पष्ट किया है। 'नवयुवक और स्वावलम्बन' वचारिक निबन्ध मे स्वावलम्बन को पुरुषत्व का मुख्य लक्षण माना है। अपनी जीविकोपाजन तथा आत्म निभरता के लिए मानव विभिन्न माध्यमो को अपनाता है। जिसम स्वावलम्बन की यह प्रवृत्ति नही होती वह दूसरो पर आश्रित रह कर परावलम्बी बन जाते हैं। उनकी मौलिक क्षमता का ह्रास हो जाता है। वस्तुत स्वावलम्बन एक दवी गुण है जिसे ग्रहण करके ही मानव जीवन क युद्ध क्षेत्र में विजयी बन सकता है। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही मानव को स्वावलम्बन की शिक्षा के साथ उसे व्यावहारिक काय जगत में अवतरित करना है।

[२] 'साहित्यिकी' प्रस्तुत साहित्यिक निबन्ध सग्रह मे लेखक न यद्यपि वचारिक, सस्मरणात्मक भावात्मक तथा आलोचनात्मक निबन्धो का चयन किया है, परन्तु इसकी अधिकाश रचनाओ मे एक भावुक कवि हृदय ही अधिक मुखरित हुआ है। 'प्रेमपूण मानवता की पुकार' में लेखक न सहार तथा पाशविक बवरता से ग्रस्त मानव के प्रेममय साम्राज्य की कल्पना तथा कामना को प्रस्तुत किया है। 'शरद की औपन्यासिक सहृदयता' शीपक वैचारिक निबन्ध मे लखक ने शरद के उपन्यासों में उनकी सहृदयता को विवचित किया है। मानव समाज की एक समस्या—'अन्ना

शीर्षक वचारिक निबन्ध म लेखक के टाल्स्टाय के विश्व विख्यात उपन्यास की प्रधान पात्री अना के विश्लेषण के माध्यम से नारी जीवन की धार्मिक सामाजिक आदि समस्याओ को स्पष्ट किया है। ब्रजभाषा के माधुय विलास शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म ब्रजभाषा साहित्य मे सगुणोपासक भक्त कवियो के माधुर्य भाव विलास का चित्राकन है जिसके माध्यम स कवि प्रणयानन्द की प्राप्ति क साथ उस अनिवचनीय ब्रह्मानन्द की उपलब्धि भी चाहते हैं। अब पलको मे सौन्दय और प्रम' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म लेखक न सौन्दय भावना का विस्तृत विवेचन किया है। औपन्यासिकता पर एक दृष्टि शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक ने टाल्स्टाय को एक आदशवादी विचारक की भांति देखते हुए भी उनके उपन्यास पुनर्जीवन' के आधार पर उनकी वचारिक दृष्टि को प्रत्यक्ष किया है। कविता और कहानी शीर्षक वचारिक निबन्ध म लेखक ने साहित्य की इन दोनो विधाओ को सखा अथवा शशवावस्था स मित्ररूप मे माना है जो आज की साहित्यिक प्रकृति तथा मानव हृदय की स्वतन्त्र प्रवृत्ति क कारण अलग हो गयी हैं। काशी के साहित्यिक हास्य रसिक शीर्षक आलोचनात्मक लख म लेखक न आध्यात्मिक पृष्ठभूमि मे शिव के जीवन वत्त तथा उनके कृत्यो को प्रस्तुत करते हुए काशी म भग म डूबी हास्य रस की तरगो का अवलोकन किया है। यही कारण है कि काशीवासी साहित्य प्रारम्भ से अब तक उसी एक ही तरग म लहरा रहे हैं। लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास, कबीर आदि के नामो का उल्लेख करते हुए भारतेन्दु जी के युग एव उसके उपरान्त के हास्य लखको का उल्लेख करते हुए उनके दृष्टातो को प्रस्तुत किया है। 'भारतेन्दु के जीवन पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध क अन्तगत लेखक ने उनके बचपन की प्रतिभा शिक्षा शाहखर्ची की आदत, दानशीलता अनूठी व्यापारिकता, आकृति और प्रकृति, सामाजिक और राष्ट्रीय विचार, जनता और सरकार मे सम्मान भारतेन्दु की उपाधि, चन्द्र म कलक, तथा प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रहि जायेगी आदि शीर्षको के अन्तगत उनके जीवन म घटित दृष्टातों का उल्लेख करते हुए उनका परिचय दिया है। भारतेन्दु के साहित्यिक हास्य' शीर्षक लेख मे द्विवेदी जी ने भारतेन्दु की उपाधि मे हास्य रूप का दृष्टांत देत हुए उनकी परिहासिनी पुस्तक से अनेक चुटकुलो को उद्धत किया है जो सामाजिक प्रथाओ, ब्राह्मणो की धार्मिक व्यवस्था तथा पाश्चात्य सजधज आदि स विशेष रूप स सम्बद्ध है। समालोचना की प्रगति शीर्षक निबन्ध म लेखक ने आधुनिक गद्य के विकास म उसकी एक विधा समालोचना के क्रमिक विकास की ओर दृष्टिपात किया है। प्रयाग शीर्षक भावात्मक निबन्ध म लेखक ने दिल्ली में हुए साहित्य सम्मेलन म स्वय क जाने का चित्रण करते हुए रेल यात्रा का सजीव सस्मरण प्रस्तुत किया है। हमारे साहित्य का भविष्य शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म लेखक न मध्य युग के अभिसार को वतमान म दया तथा उसे चित्रित किया है। महाप्रयाण क पथिक प्रसाद शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध म लेखक ने जयशकर प्रसाद जी म स्वय के परिचय को

स्पष्ट करते हुए प्रसाद के जीवन की भावात्मक झांकी प्रस्तुत की है। 'गोदान और प्रेमचन्द' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में प्रेमचन्द के अंतिम उपन्यास 'गोदान' की औपन्यासिक कला की दृष्टि से आलोचना प्रस्तुत की गयी है। 'सांस्कृतिक कवि मैथिलीशरण' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने गुप्त जी के भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम को प्रत्यक्ष किया है। 'साकेत में उर्मिला' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने गुप्त जी के प्रबन्ध काव्य 'साकेत' की नायिका उर्मिला के चरित्र के दो रूपों—विरहिणी रमणी तथा कल्याणकारी नारी—को चित्रित किया है। 'साहित्यिक रचनाकार सियारामशरण' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में श्री मैथिलीशरण गुप्त के अनुज श्री सियारामशरण गुप्त का द्विवेदी युग के साहित्य में योगदान एवं उनकी प्रतिभा को स्पष्ट किया गया है। 'एकान्त के कवि मुकुटधर' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में प्रसाद जी के समीपवर्ती द्विवेदी युग तथा छायावाद युग के मध्यवर्ती कवि श्री मुकुटधर के काव्य विश्लेषण तथा उनके प्रकृति एवं सौन्दर्य के प्रति अनुराग को स्पष्ट किया है। 'गद्यकार निराला' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के गद्य रूपों को विश्लेषित किया है। 'प्रगतिशील कवि पन्त' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में एक कोमल, सुमधुर गीति विहग कवि पन्त के भावात्मक दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष करते हुए युग प्रभाव के कारण प्रगतिशील भावों को स्पष्ट किया है। 'नीहार में करुण अध्यात्म की कवि महादेवी' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने विराट विश्व वीणा में अपनी हृतन्त्री को मिलाने वाली कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य संग्रह 'नीहार' में उनकी करुण अध्यात्म भावना को स्पष्ट किया है। 'एक अतीत स्वप्न' शीर्षक भावात्मक निबन्ध में आधुनिक युग की विडम्बनाओं के बीच मानवता के लिए गांधीवाद और साम्यवाद की उपयोगिता को स्पष्ट किया गया है। 'कवीन्द्र—एक बाल्य झलक' शीर्षक भावात्मक निबन्ध में लेखक ने रवीन्द्रनाथ की बाल्यावस्था की कुछ रोचक घटनाओं का परिचय दिया है।

[३] युग और साहित्य श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'युग और साहित्य' में युग की विभिन्न परिस्थितियों का दिग्दर्शन करते हुए साहित्य के मूल्यांकन के दृष्टिकोण की व्याख्या की है। लेखक ने इसमें युग द्वन्द्व और तदजनित भावी सम्भावनाओं को अपने साहित्य के माध्यम से उपस्थित करने का प्रयत्न किया।'[३] इसमें लेखक ने साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनैतिक गतिविधियों का निरूपण किया है। यह पुस्तक द्वितीय विश्व युद्ध के समय में लिखी गयी थी अतएव इसमें उस समय के वास्तविक इतिहास की पृष्ठभूमि भी स्पष्ट हुई है। इस संग्रह के मध्यबिन्दु शीर्षक विचारात्मक निबन्ध में लेखक ने उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व के परिवर्तनों के क्रम को आंकने के साथ उसके मूल्यांकन के मापदण्ड को प्रस्तुत करते हुए आधुनिक युग की

३ युग और साहित्य श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ ।

शीघ्रगामी रूप से परिवर्तनशील स्थितियों का विवेचन किया है। साहित्य के विभिन्न युग शीर्षक निबन्ध में वर्तमान साहित्य के दो युगों—भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग—की विवेचना सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक वातावरण की पृष्ठभूमि में की गयी है। 'युगों का आदान' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने अतीत के विभिन्न युगों की आगे आने वाले युग को देन पर विचार किया है। प्रत्येक युग अपने विगत युग से कुछ ग्रहण करता है तो अपने भावी युग के लिए वह कुछ देकर भी जाता है। इसी आदान प्रतिदान से नये युग भविष्य की ओर बढ़ते जाते हैं। लेखक ने इन युगों का आदान प्रतिदान साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है। प्रगति की ओर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने साहित्य की पौराणिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में काव्य के अन्तर्गत खंड काव्यों तथा महाकाव्यों का उल्लेख करते हुए आधुनिक युग में मुक्तक काव्यों तथा गीति काव्य की प्रमुखता पर बल दिया है। हिन्दी कविता में उलट फेर शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में हिन्दी काव्य की विभिन्न परिवर्तनशील प्रवृत्तियों का अंकन करते हुए उसमें व्यंजित मानव जीवन के वास्तविक चित्र को विवेचित किया गया है। 'इतिहास के आलोक में शीर्षक निबन्ध में लेखक ने सन् ८० में हुए सत्याग्रह से पूर्व की साहित्यिक राजनीतिक तथा सामाजिक गति विधियों का निरूपण किया है। वर्तमान कविता का क्रम विकास' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग के कवियों और विशेषत श्रीधर पाठक जयशंकर प्रसाद तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि की रचनाओं के दृष्टान्त देते हुए उनकी मुख्य प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। छायावाद और उसके बाद' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने इस तथ्य का प्रतिपादन किया है कि सन् १९४० तक छायावाद काव्य की प्रधानता रही। उसके उपरांत छायावाद के भीतर से ही समाजवाद का आविर्भाव होने लगा। फलत इस काल के हिन्दी काव्य मे प्रगतिवाद की बोली गूंजने लगी। क्या साहित्य का जीवन पृष्ठ' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने आधुनिक युग के गद्य साहित्य के विकास की पूर्व पीठिका में सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक वातावरण के योग को चित्रित किया है। प्रसाद और कामायनी' शीर्षक निबन्ध मे जयशंकर प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी की विवेचना करने के साथ ही प्रसाद की साहित्यिक उपलब्धियों पर भी विचार किया गया है। इसी सन्दर्भ मे लेखक ने प्रसाद साहित्य पर पड़े प्रभावों एवं उनकी प्रवृत्तियों का भी मूल्यांकन किया है। प्रेमचन्द और गोदान शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रसाद और प्रेमचन्द की कला तथा उनके साहित्य मे अभिव्यंजित युगों का मूल्यांकन करते हुए उनकी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। निराला शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने 'निराला के संपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया है। पंत और महादेवी शीर्षक निबन्ध में लेखक ने पन्त और महादेवी को खड़ी बोली के सार अंश रूप मे मान्य किया है।

[४] सामयिकी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की निबन्ध पुस्तक सामयिकी मे

सस्कृति और प्रगति का समन्वित रूप मिलता है। इसम युग की सावजनिक विचार धाराओं और साहित्यिक प्रवृत्तियो का विवेचन हुआ है। 'सामयिकी' के सवप्रथम निबंध युग दर्शन' म लेखक की सामयिक निबंधो की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'रवीन्द्रनाथ' शीषक वैचारिक निबंध म 'ऐश्वय और कवि तत्व का सम्मिलन', 'जीवन निर्माण के लिए माडल', 'महात्माजी से मतभेद, 'जीवन और कला का समन्वय आदि शीषको के अतगत लखक ने कवीन्द्र रवीन्द्र के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके तथा गाधी जी के माहन मेवा गाव तथा शातिनिकेतन का स्वरूप निर्दशित किया है। 'कवि, कलाकार और सन्त शीषक वैचारिक निबंध म लेखक ने वतमान भारतीय साहित्य के त्रिदव रवीन्द्र शरद और गाधी के विचारो एव सिद्धान्ता का तुलनात्मक विवेचन किया है। 'शरच्चन्द्र शेष प्रश्न शीषक आलोच नात्मक निबंध मे लेखक न शरच्चन्द्र क उपन्यास 'शेष प्रश्न की आलोचना प्रस्तुत की है। लेखक ने इसे सरस रोचक कथा न कह कर 'जीवन का अकगणित कहा है। उनकी दृष्टि मे यह उपन्यास उच्च कोटि के बौद्धिक कलाकारो के लिए है। 'जवाहर लाल एक मध्य बिन्दु' शीषक सामयिक निबंध म लेखक ने पडित जवाहरलाल नहरू क विचारा एव सिद्धान्ता का विवेचन उनकी आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर किया है। हिन्दी कविता की पट भूमि शीषक निबंध म लेखक ने खडी बोली की कविता मे हुए अनक परिवतनों तथा सामयिक वातावरण स प्रभावित उसके विविध रूपो को स्पष्ट किया है। शुक्लजी का कृतित्व शीषक आलोचनात्मक निबंध मे लेखक ने आचाय रामचन्द्र शुक्ल का जीवन परिचय प्रस्तुत करते हुए साहित्य क क्षेत्र मे उनकी बहुमुखी प्रतिभा से युक्त व्यक्तित्व का विवेचन किया है। 'प्रगतिवादी दृष्टिकोण' शीषक वचारिक निबंध मे लखक न अपने प्रगतिवादी दृष्टिकोण क प्रति पादन के साथ अय साहित्यिकों के भी विचार प्रस्तुत किए हैं। 'छायावादी दृष्टिकोण' शीषक वचारिक निबंध म लेखक ने अपन छायावादी विचारा के प्रकटीकरण के साथ छायावाद के यथाथ व्यक्तित्व को भी अंकित किया है। हिन्दी साहित्य' शीषक वैचारिक निबंध म लखक ने द्वितीय विश्व युद्ध तथा उसक उपरान्त के अणु युग मे हिन्दी साहित्य के क्रमिक विकास को स्पष्ट करते हुए उसके विभाजन, साहित्यिका की प्रतिभा एव उनकी साहित्य म वास्तविक देन तथा साहित्य म उनक महत्व को स्पष्ट किया है। भविष्य पथ शीषक भावात्मक निबंध म चेतन प्रकाश की अमिट रखा बापू के विचारो को प्रकट किया है, जो इस भयाक्रात युग म शाति के द्योतक हैं।

[५] धरातल श्री शान्तिप्रिय द्विवदी ने अपन 'धरातल शीषक निबंध सग्रह म यह सकेत किया है कि सर्वोच्च का प्रागण धरातल में निवास करन वाला लोक जीवन है। गाधी क रामराज्य की स्थापना का आधार यही धरातल है। इस सग्रह क 'जीवन दशन' शीषक वैचारिक निबंध मे लखक न मानव जीवन के दशन

को निरूपित किया है। 'रोटी और सेक्स' शीर्षक सामयिक निबन्ध में लेखक ने आधुनिक युग की प्रमुख समस्या—रोटी और मानव की नैसर्गिक प्रवृत्ति सेक्स—का स्पष्ट करते हुए उनके ऐतिहासिक स्वरूप और कारणों पर प्रकाश डाला है। 'साइकिल, रिक्शा और एक्का' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने रिक्शा के आगमन का चित्र तथा एक्के की राह में अवरोधक रूप को स्पष्ट करते हुए समसामयिक युग में पूंजीवाद तथा उससे व्याप्त समाज एवं मानवीय क्षेत्रों में जड़ता को स्पष्ट किया है। 'किसान और मजदूर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने इन दोनों का अन्तर स्पष्ट करते हुए बताया है कि प्रकृति के सम्पर्क में, पृथ्वी की स्वाभाविक मिट्टी में ग्राम मनुज जब अपने श्रम का बीज बोता है तब वह कहलाता है किसान। वही जब हल बैल अन्न वस्त्र और लगान की कमी से नगरों में आकर अपनी श्रम शक्ति का क्रय विक्रय करता है तब हो जाता है मजदूर।[1] 'नैतिक हिंसा' शीर्षक वैचारिक लेख में लेखक ने विश्व में हुई नशेबन्दी की असफलता के कुछ कारणों पर प्रकाश डाला है। नैतिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से वस्तुतः यह उपयोगी ही था, लेकिन कानूनी नियंत्रण के होते हुए भी शराब बन्दी का यह प्रयत्न निष्फल हुआ है। 'दूसरे महायुद्ध के बाद' शीर्षक सामयिक निबन्ध में लेखक ने दूसरे महायुद्ध के बाद शीघ्रातिशीघ्र परिवर्तित होती हुई सामाजिक प्रवृत्तियों तथा अकाल बाढ़ पीड़ितों के साथ महायुद्ध से व्याप्त वीभत्स समस्याओं का उल्लेख किया है। 'प्रत्यावर्तन—श्रम धर्म की ओर' शीर्षक लेख में लेखक ने आधुनिक भारत की समसामयिक समस्या श्रम और अर्थ को स्पष्ट करते हुए आधुनिक अर्थशास्त्र प्रणाली के परिवर्तन को महत्व दिया है। 'टाल्स्टाय की श्रम साधना' शीर्षक वैचारिक निबन्ध में लेखक ने टाल्स्टाय के श्रम से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत किया है। 'साहित्यिक संस्थाओं का गन्तव्य' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने द्वितीय महायुद्ध के पश्चात भारत में हुई दो चीजों की भरमार की ओर संकेत किया है जो संस्थाएं तथा पत्र पत्रिकाएं हैं। लेखक की दृष्टि में इनका प्रादुर्भाव किसी स्वस्थ जागति के लिए नहीं प्रत्युत धन के अतिरेक से निराधार बुद्धिजीवियों के आर्थिक विस्तार के कारण हुआ है। 'जन संस्कारिता' शीर्षक सामाजिक निबन्ध में लेखक ने भारत की स्वतन्त्रता के पश्चात राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास की योजनाओं पर विचार किया है। 'भाषा' शीर्षक वैचारिक निबन्ध में लेखक ने भाषा के उद्गम एवं विकास का विश्लेषण किया है। 'साम्प्रदायिकता' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने आधुनिक युग को ब्रिटिश सरकार की देन तथा समाज पर उसके प्रभाव के साथ मानव के बौद्धिक विकास उसकी स्वार्थलोलुपता आदि की भी विवेचना की है। 'तुलसीदास का सामाजिक आदर्श' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने तुलसीदास के मानस जगत को स्पष्ट करते हुए उनके सामाजिक आदर्श को प्रस्तुत

---

१ 'धरातल' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २५।

किया है। 'सूरदास की काव्य साधना' शीर्षक आलोचनात्मक निबंध मे 'प्रकृति पुरुष, केन्द्र बिन्दु' 'ग्रामीण जीवन', 'भ्रमरगीत', 'भाव पूजा', तथा 'रस और कला' आदि शीर्षको के अन्तर्गत लेखक ने सूरदास के काव्य का मूल्यांकन किया है। 'गावो की सांस्कृतिक रचना' शीर्षक वैचारिक निबंध मे लेखक ने नगरो के विकासहीन और अवरुद्ध जीवन का विश्लेषण करते हुए गांवों की स्वाभाविकता तथा सांस्कृतिक रचना के लिए गांधी जी के सिद्धान्तों, विशेषत सर्वोदय आदि, को विशेष महत्व दिया है। 'सन ४२ के बाद की भूल' शीर्षक सामयिक निबंध मे लेखक ने स्वतंत्रता के पूर्व सन ४२ के आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत किया है। 'गांधी जी का बलिदान' शीर्षक सामयिक निबंध मे लेखक ने विभिन्न पार्टियो की दलबन्दी का परिचय दिया है। लेखक की धारणा है कि गांधी जी की मृत्यु के पीछे राजनीतिक कारण के साथ परोक्षत आर्थिक कारण भी था। इस संग्रह के अन्तिम निबंध 'वन्देमातरम्' मे लेखक ने बंकिम के राष्ट्र गीत को उद्धृत कर रवीन्द्र के 'जन मन गण अधिनायक जय हो' आदि के माध्यम से राष्ट्र घोष किया है। लेखक के विचार से राजनीति की स्थितियो की तरह समयानुकूल भारतीय राष्ट्र गीतो मे भी परिवर्तन होता गया है। बंकिम का राष्ट्र गीत वन्देमातरम् अब अतीत कालीन हो गया है। उसमे सौन्दर्य और शौर्य का मिश्रण था। उसके उपरान्त रवीन्द्र का राष्ट्र गीत भी अपनी सामयिकता का ही उद्घोष करता है।

[६] 'साकल्य' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत निबंध कृति मे उद्योग, संस्कृति साहित्य और सौन्दर्य का संयोजन बड़े ही सुनिश्चित एवं सुव्यवस्थित रूप से किया गया है। प्रस्तुत निबंध संग्रह मे लेखक की सामयिक, वैचारिक, आलोचनात्मक तथा भावात्मक निबंधो की प्रवृत्तिया परिलक्षित होती हैं। 'युग का भविष्य' शीर्षक सामयिक निबंध मे लेखक ने जीवन की प्रारम्भिक ग्रामीण वातावरण से प्राप्त प्रेरणाओ के परिणामस्वरूप स्वयं को गांधीजी के रचनात्मक कार्यों एवं विनोबा जी के भूदान आन्दोलन के प्रति निष्ठावान माना है। 'संस्कृति का आधार' शीर्षक वैचारिक निबंध मे लेखक ने आज की सांस्कृतिक समस्याओ का चित्रण करते हुए उसके निराकरण हेतु अपने सुझाव दिए हैं। लेखक के मत मे संस्कृति 'अतीत की धरोहर है, इसका अभिप्राय मनुष्य की नैसर्गिक चेतना का विकास करना है।'[१] 'समन्वय अथवा एकान्वय' शीर्षक विचार प्रधान निबंध मे लेखक ने भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय को इस युग का एक नारा कहा है तथा इसे बौद्धिक स्वेप की संज्ञा दी है। समन्वय का यह प्रयास आदर्शवादियो द्वारा परिचालित है। लेखक के मत मे समन्वयवादी अपनी असमर्थता को इसी समन्वय की ओट मे छुपा लेता है व्यावहारिक जीवन मे उसका आदर्श मौखिक और बौद्धिक मात्र ही रह

१ 'साकल्य', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १९।

जाता है। 'साहित्य का व्यवसाय शीर्षक सामयिक निबन्ध में लेखक ने यह संकेत किया है कि आधुनिक युगागत व्यापारों के इस युग संसार म सवत्र व्यापारिक मनोवृत्ति लक्षित हो रही है। यहां तक कि साहित्य भी उससे बच नहीं सका। जनता की उन्नति, जनता की रक्षा एव उसकी शुभचिन्तना करने वाला कोई भी नहीं है प्रत्युत कभी आदर्शों के प्रतिष्ठित व्यक्ति भी स्वार्थों म केन्द्रित हो साहित्य को व्यवसाय का रूप दे चुके हैं। यही कारण है कि धीरे धीरे आर्थिक सरणियों म साहित्य का स्तर दिनोदिन गिरता जा रहा है। जनक्रान्ति का आह्वान' शीर्षक सामयिक निबन्ध म सामयिक मानव की निर्जीवता का चित्र अंकित करते हुए लेखक न युग परिवतन के दो उपायो—विध्वंसात्मक तथा रचनात्मक [अथवा जन क्रांति—का निर्देश किया है। 'ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म लेखक ने ग्राम्य जीवन एव पृथ्वी के सांस्कृतिक महत्व का प्रतिपादन करते हुए काव्य साहित्य के विभिन्न युगो म काव्य म निहित ग्राम्य जीवन के सरस एव कटु चित्रो का निरूपण किया है। प्रसाद और प्रमचन्द की कृतिया शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म प्रसाद और प्रमचन्द के साहित्यिक मानदंडो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए दोनो की कृतियों के माध्यम से लेखक ने इन साहित्यिक महारथियो क विचारो एव भावधारा को निरूपित किया है। संग्रह की आगामी रचना 'वर्मा जी के उपन्यास शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध म श्री वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासो के आधार पर उनके जीवन दशन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि तथा उनके साहित्य म लोक जीवन का चित्रण आदि की दृष्टि से समीक्षा प्रस्तुत की गयी है। गुप्त बन्धु और छायावाद शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे काव्य की दृष्टि से द्विवेदी युगीन साहित्यकारो म गुप्त बन्धु मथिलीशरण गुप्त तथा सियारामशरण गुप्त के साहित्य म उनकी अनुभूति और अभिव्यक्ति के पक्षो का विवेचन किया गया है। 'पन्त का काव्य जगत' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के प्राकृतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण का अनुशीलन करते हुए प्रकृति के प्रति उनके अनुराग को विवेचित किया है। 'महादेवी की मधुर वेदना शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे छायावाद की प्रमुख कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य साहित्य मे परिव्याप्त उनके मानसिक जगत का विवेचन किया है। छायावाद के बाद' शीर्षक निबन्ध म लेखक न छायावाद म कविता के सर्वोच्च विकास का इंगित करते हुए आधुनिक युग म प्रगतिवाद की साहित्यिक देन को स्पष्ट किया है जो इस परमाणु युग म उसी यांत्रिक जडता से पूर्ण है। 'नयी हिन्दी कविता शीर्षक निबन्ध म लेखक ने छायावाद की पृष्ठभूमि एव उसकी प्रमुख प्रवृत्तियो का परोक्ष रूप म विवरण देते हुए नयी हिन्दी कविता के प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विश्लेषण किया है। दिव्या शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे प्रगतिशील उपन्यासकार यशपाल के दिव्या उपन्यास का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। साहित्य म अश्लीलता शीर्षक सामयिक निबन्ध मे समाज मे व्याप्त

दृष्यध्वनियां एवं साहित्य में निहित अश्लीलता की ओर लेखक ने संकेत किया है। 'हिंदी का आलोचना साहित्य' शीर्षक आलोचनात्मक निबंध में हिंदी आलोचना के उद्भव और विकास की ओर संकेत किया गया है। 'दिगंबर' शीर्षक निबंध में लेखक ने अपने औपन्यासिक रेखांकन 'दिगम्बर' की भावात्मक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए उसके प्रति अपने विचारों को प्रकट किया है। 'सौन्दर्य बोध' शीर्षक वैचारिक निबंध में लेखक ने चेतना के अनेक स्तरों को चित्रित किया है जिसमें चेतना का निम्न स्तर वासनामूलक दृष्टिकोण का प्रतिपादन करता है।

[७] पदमरागिनी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की पदमरागिनी नामक निबन्ध पुस्तक में लेखक के आलोचनात्मक सामयिक, वैचारिक तथा कथात्मक अथवा विवरणात्मक निबन्ध संगृहीत हैं। इसमें लेखक ने आधुनिक तथा प्राचीन सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा साहित्यिक स्थिति को स्पष्ट किया है। इस संग्रह में गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने तुलसीदास के जन्म के वातावरण को स्पष्ट करते हुए राम से अधिक 'रामनाम' की महिमा तथा उसके प्रचार की ओर संकेत किया है। नूतन पुरातन सामयिक लेख में लेखक ने प्राचीन और नवीन मानव समाज को स्पष्ट किया है। लेखक ने अतीत भविष्य तथा वर्तमान को मानव परिधि के माध्यम से व्यक्त किया है। 'संवेदना की शिराएं' शीर्षक वैचारिक निबन्ध में लेखक ने वर्तमान की विभिन्न परिस्थितियों का चित्र साहित्यिक क्षेत्र में प्रस्तुत किया है। इसमें स्वतंत्रता से पूर्व साहित्य और राजनीति का परस्पर मतभेद भारत की स्वतंत्रता के पश्चात अवसरवादियों की राजनीति के क्षेत्र में सफलता तथा तामसिक प्रवृत्ति वाले साहित्यकारों की विद्वेष भावना आदि का अंकन किया गया है। 'ग्राम गीत' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने ग्रामगीतों के माध्यम से साहित्य के सैद्धान्तिक जगत से जीवन के निर्माण जगत की ओर प्रस्थान के तथ्य को स्पष्ट किया है। पन्त जी की अतिमा शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के काव्य 'अतिमा' का काव्य विश्लेषण प्रस्तुत किया है। पन्त जी की 'अतिमा' अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। अतिमा का अभिप्राय 'अतिमानसी अथवा 'विशिष्ट चेतना' है। 'यशपाल की कला और भावना' शीर्षक आलोचनात्मक निबंध में लेखक ने क्रांतिकारी यशपाल की कहानियों एवं उपन्यासों में उनकी सांस्कृतिक एवं कलात्मक दृष्टि को उपस्थित किया है। अपने सारस्वत संस्कार के कारण यशपाल अपनी पौराणिक संस्कृति का त्याग नहीं कर सके हैं। नया कथा साहित्य शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में लेखक ने कथा साहित्य के युग परिवर्तन को स्पष्ट किया है। अतीत और वर्तमान कथा साहित्य की तुलना करते हुए लेखक ने दोनों युगों की विभिन्न समस्याओं पर अपने मन्तव्य को प्रकट किया है। इस संग्रह के अंतिम निबन्ध 'बोधिसत्व' में लेखक ने कपिलवस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ की कथा दार्शनिक पृष्ठभूमि पर आधारित करके उनके तथागत होने एवं सम्बोधि प्राप्ति का संपूर्ण

दृष्टांत कथात्मक रूप म उद्धत किया है। लेखक ने सपूण कथा को दो खडा मे विभक्त किया है। उनम भी नगर भ्रमण, मनोमन्थन 'महाभिनिष्क्रमण आदि शीपक प्रथम खड के हैं तथा द्वितीय खड म तत्वान्वेषण, नवद्व तथा सम्बोधि आदि शीपक है।

[८] 'आधान श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की 'आधान' शीपक निबन्ध पुस्तक म गाधीवाद का पर्याप्त प्रभाव लक्षित होता है। लेखक इसम उसके सद्धान्तिक पक्ष की ओर जा कर गाधीवाद के समुचित व्यावहारिक आधार को महत्व देता है। आधान शब्द का तात्पय स्थापन है अर्थात जीवन मे साहित्य कला सस्कृति की स्थापना इसका मुख्य ध्येय है। द्विवेदी जी का रचनात्मक दृष्टिकोण इस पुस्तक मे भी परिलक्षित होता है। छायावाद युग का प्राकृतिक दशन काव्य मे भावाधार रूप म अवतरित हुआ गाधीवाद म वही जीवन के प्राणाधार रूप म है। लेखक की दृष्टि में गाधीवाद का यही प्राकृतिक दशन रचनात्मक दृष्टिकोण से ग्रामीण अथशास्त्र है। इस प्रकार छायावाद का प्राकृतिक दशन ही ग्रामीण दशन मे परिणत हो गया है। लेखक का यही ग्रामीण दशन प्रस्तुत पुस्तक मे अवलोकित होता है। इस सग्रह की सवप्रथम रचना 'काव्य म भक्ति भावना' शीपक वैचारिक निबन्ध है, जिसमे लेखक ने मध्य युगीन काव्य मे भक्ति के रूप का निदशन किया है। रवीन्द्र का रूपक रहस्य' शीपक व्यावहारिक निबन्ध मे लेखक ने रवीन्द्रनाथ की काव्य प्रतिभा का उल्लेख करते हुए गद्य मे और विशेषत नाटको मे रूपको के रहस्य का उदघाटन किया है। 'प्रसाद की भाव दृष्टि शीपक व्यावहारिक निबन्ध मे जयशकर प्रसाद की काव्य साधना की ओर सकेत करके उनम निहित भावों का दिग्दशन किया गया है। आकार परिषद्, काशी के वार्षिक अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से पठित मौलिकता का प्रतिमान' शीपक वैचारिक निबन्ध म द्विवेदी जी ने मौलिकता के वास्तविक अथ का प्रतिपादन करते हुए उसकी व्यापकता की ओर दृष्टिपात किया है। स्वत प्रेरित तथा अन्त प्रस्फुटित उदभावना म जो अपनी सजीवता तथा स्वाभाविकता होती है उसे ही मौलिकता कहा जाता है। निराला जी की काव्य दृष्टि शीपक व्यावहारिक निबन्ध मे द्विवेदी जी ने पडित सूयकान्त त्रिपाठी निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षो को विवेचित किया है। निराला के साहित्यिक व्यक्तित्व म कवि रूप के साथ आलोचक तथा निबन्धकार का रूप अधिक मुखर हुआ है। निबन्ध का स्वरूप शीपक रचना म लेखक ने निबन्ध के क्रमिक विकास की ओर सकेत करते हुए निबन्ध के स्वरूप का विवेचन किया है। निबन्ध का सूत्र है अविच्छिन्नता, सयोजकता सम्बद्धता। इस दृष्टि से निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। लेख काव्य अथवा कहानी किसी म भी उसका रूप मिल सकता है। इसके अतिरिक्त अपने विस्तृत अर्थों म निबन्ध का रूप सस्मरण जीवनी आलोचना, पत्र और रिपोर्ताज, भ्रमण वत्तात आदि किसी भी रचना के विषय म व्यक्त हो सकता है। प्रभाववादी समीक्षा शीपक निबन्ध म

लेखक ने समालोचना साहित्य के शास्त्रीय रूप को विवेचित करते हुए समालोचना के प्रचलित अथवा व्यावहारिक रूप के परिवर्तन को एक चिन्तनीय समस्या के रूप में उल्लिखित किया है। आगामी निबन्ध 'विश्वविद्यालयों में साहित्य का ह्रास' शीर्षक रचना में लेखक ने समकालीन समाज पर अंग्रेजों के प्रभुत्व तथा अंग्रेजी भाषा से प्रेम को दर्शाते हुए विद्यार्थियों की हिन्दी के प्रति हेय दृष्टि का परिचय दिया है। धुरी हीनता—एक नैतिक समस्या' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने युग की साहित्यिक वस्तु स्थिति का सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार युग निरीक्षण में प्रगतिवाद का दृष्टिकोण राजनैतिक है उसी प्रकार धुरीहीनता का दृष्टिकोण नैतिक है। 'उद्योग और आत्मयोग' शीर्षक सामयिक निबन्ध में लेखक ने प्रयाग में उत्तर प्रदेशीय शिक्षा अधिकारी संघ के आठवें अधिवेशन में कहे मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द जी के विचारों को उद्धृत किया है जिनमें बालक के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एवं पारिवारिक शिक्षा की ओर विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसी क्रम में लोक कला का आधुनिकीकरण' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने बताया है कि नेहरू जी की दृष्टि में लोक कला के आधुनिकीकरण से उसकी स्वाभाविकता तथा सरलता नष्ट हो जाती है। द्विवेदीजी के अनुसार कला मानव के जीवन से उसकी स्वतः प्रेरणा से प्रस्फुटित होनी चाहिए। सांस्कृतिक चेतना शीर्षक निबन्ध में विनोबा जी के पद यात्रा करते हुए काशी आगमन तथा स्वच्छता आन्दोलन के फलस्वरूप नागरिक जीवन में व्याप्त सांस्कृतिक चेतना का उल्लेख है। रचनात्मक योजना' में नागरिकता के रूप में सामाजिक चेतना तथा संस्कारिता के आन्तरिक उद्देश्य को स्पष्ट किया है। इसमें मनुष्य पारस्परिक स्वार्थों के सामूहिक संगठन के द्वारा लोक कल्याण की ओर अग्रसर होना है। संग्रह की अन्तिम रचना दिग्दर्शन' निबन्ध में अखिल भारतीय युवक कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन के उद्घाटन में नेहरू जी के आगमन का चित्र लेखक ने बड़े ही भावपरक रूप में चित्रित किया है जिसमें जनता की पाशविक प्रवृत्तियों का अंकन है।

[९] वृन्त और विकास श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के इस निबन्ध संग्रह में साहित्य संस्कृति और कला का संयोजन उपलब्ध होता है। लेखक की प्रायः सभी रचनाओं में उनके रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक वृन्त और विकास' भी उससे पृथक नहीं है। इसमें सूत्रवत् एक विचारधारा के अन्तर्निहित होने के कारण निबन्धों में प्रकीर्णता का आभास नहीं प्रत्युत परस्पर सम्बद्धता अथवा क्रमबद्धता परिलक्षित होती है। यही कारण है कि अन्य पुस्तकों के सदृश ही इस पुस्तक का नाम भी प्रतीकात्मक है। 'वृन्त और विकास' वस्तुतः साधन और साध्य का प्रतीक है। कवि के कथनानुसार वस्तु विभव पर ही जन मन का भाव विभाव अवलम्बित है। वृन्त में वस्तु (साधन) कृषि और ग्रामोद्योग है साहित्य संस्कृति कला उसी का भाव विकास है। लेखक ने प्रकृति और संस्कृति में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध माना है, क्योंकि 'प्रकृति का ही सात्विक विकास संस्कृति में होता है। लेखक

के मत में पृथ्वी जड नही सगुण सदेह सचेतन है। धरती की ओर मानव का ध्यान आकृष्ट करने के लिए लेखक ने अपनी पुस्तकों मे प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से भाव विचार आदर्श को पार्थिव रूप मे उपस्थित किया है। नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व' शीर्षक सामयिक निबन्ध में लेखक ने नेहरू जी को एक राजनीतिक नेता से अधिक उन्हें युग विधाता के रूप में महत्ता प्रदान की है। लेखक ने उनकी आत्मकथा तथा उनके वक्तृताओं के आधार पर उनके विचारों में दुरंगी मान्यताओं व्यवहार और विचार में भिन्नता आदि का निरूपण किया है। नेहरू जी की काव्यानुभूतियां शीर्षक निबन्ध में लेखक ने नेहरू जी की आत्म कथा के मध्य प्रसगवश लिखे आग्ल काव्य उदाहरणों के माध्यम से उनके स्वगत क्षणों की प्रतिध्वनियों के श्रवण के साथ उनकी काव्यानुभूति का भी विश्लेषण किया है। उन काव्य पक्तियों में स्पन्दनशील मानव की हार्दिक सवेदनाएं हैं। लेखक के मत में केवल आग्ल कवियों की ही पक्तियाँ शायद इसीलिए उद्धत की गयी हैं कि ब्रिटिश शासक यदि भारत की आवाज नहीं सुन सकते तो अपने सजातीय कवियों की कविता से ही मानवता की आवाज सुन सके सुन सकें।[1] छायावाद शीर्षक निबन्ध में लेखक ने इतिहास के सतप्त वातावरण में मलयानिल की एक शीतल सुगंधित सांस के रूप में छायावाद के क्रमिक ऐतिहासिक विकास को प्रस्तुत किया है। पन्त की काव्य प्रगति और परिणति शीर्षक निबन्ध में लेखक ने छायावादी कुसुमकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में भावों का क्रमिक विकास तथा उनकी काव्य कला का निरूपण किया है। नयी पीढ़ी नया साहित्य शीर्षक निबन्ध में लेखक ने सपूर्ण विश्व साहित्य के नवीन रूपों पर अपने विचारों का प्रत्यक्ष किया है। इसमें नई और पुरानी पीढ़ी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लेखक ने आधुनिक युग के जीवन में राजनीति आर्थिक आदि क्षेत्रों की भिन्नता को भी विवेचित किया है। नाटक और रगमच शीर्षक निबन्ध में लेखक ने जीवन में नाटक के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए नाटक और रगमच के उद्भव एव विकास की ओर दृष्टिपात किया है। लेखक की धारणा है कि 'नाटक जीवन का कलात्मक सकलन है और रगमच ससार का सक्षिप्त क्रीडा क्षेत्र।[2] मनुष्य को अपने भारात्रान्त जीवन में नाटक और रगमच के माध्यम से ही आत्मनिरीक्षण तथा तटस्थ भाव से विश्लेषण का अवसर मिलता है। यन्त्र युग की कविता शीर्षक निबन्ध में लेखक ने छायावाद की कविता की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए उन्नीसवीं सदी तथा बीसवीं सदी में गाधीवाद छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि के माध्यम से राजनैतिक सामाजिक वातावरण का चित्र प्रस्तुत किया है। 'वीरेन्द्र की काव्य सृष्टि' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में श्री वीरेन्द्र कुमार जैन की कहानियों एव

---

१ वृन्त और विकास श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २९।
२ वही पृ० १०४।

कविताओ के द्वारा लेखक ने उनकी मानसी सृष्टि एव कला दृष्टि का परिचय दिया है। 'विश्वविद्यालयीन समीक्षा शीर्षक सामयिक निबन्ध मे लखक ने दनिक आज' के साप्ताहिक विशेपाक (११ जनवरी १९५९) में प्रकाशित हिन्दू विश्वविद्यालय के अग्रजा प्राध्यापक डा० रामअवध द्विवदी क लख 'आधुनिक हिन्दी आलोचना क प्रतिमान के आधार पर निष्पष और निदान के रूप में उनके मता का प्रतिपादन करते हुए स्वय अपन विचारों का व्यक्त किया है।'[1]

[१०] समवेत श्री शातिप्रिय द्विवदी न अपनी अन्य निबन्धात्मक कृतियो क समान ही समवेत शीर्षक निबन्ध सग्रह में भी साहित्य, सस्कृति कला तथा उद्याग क सामजस्य को सुनियोजित किया है। इस सग्रह की प्रथम रचना सौन्दय और कला' शीर्षक चिन्तनपरक निबन्ध में लखक न साहित्य सगीत और कला का विश्लपण करन के साथ मानव जीवन में इन तीना के सामजस्य का निदशन भी किया है। साहित्य, सगीत और कला में शब्दान्तर होते हुए भी एक दूसरे के साध्य हैं अथ बोधक हैं। मनुष्य की रचनात्मक कृति ही कला है जो उसके जीवन क प्रत्यक क्षण में, विभक्त रूपा में आभासित होनी रहती है। उनमें एक सामजस्य दिखाइ पडना है छायावाद का सगुण शीर्षक निबन्ध में लखक न मध्य युग के सगुण तथा आधुनिक युग के सगुण के अन्तर को स्पष्ट करते हुए छायावाद के सगुण को स्पष्ट किया है। और बताया है कि वाह्यान्तर होन हुए भी उन दोनो में आन्तरिक एकता तथा सामजस्य है। रागात्मकता की समस्या' शीर्षक निबन्ध में लेखक न पन्त जी क साहित्य और काव्य की आत्मा का स्पश किया है। उनके काव्य पल्लव में जिस रागात्मकता की भावना का उद्रक हुआ है, पल्लव' क बाद की रचनाओ में प्राय उसका अभाव होता गया ह। 'हार पन्त का रचनासूत्र' शीर्षक निबन्ध में द्विवेदी जी ने पन्त की सवप्रथम रचना हार उपन्यास का परिचय दिया है। प त जी यद्यपि इसे खिलौना कहते हैं लकिन द्विवेदी जी के मत में 'यह सरस्वती की ग्रीवा में बालहस का मुक्तामाल है।'[2] वस्तुत यह उपन्यास जीवन क अतल में मानव मन की गहराइया को स्पश करता है। द्विवेदी जी न उपन्यास कला की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास का सम्यक परिचय दिया है। इसमें पन्त जी के भाव, विचार तथा सौन्दय दशन आदि की उपलब्धि है जिनका विकसित रूप उनकी परवर्ती रचनाआ में मिलता है। उपन्यास के चरित्रा में प्रत्यक्ष मानव जगत क आभास के साथ उसमें प्रतीक व्यजना क कारण असाधारण गूढ़ता सी आ गई है। शिवपूजन जी की साहित्य साधना शीर्षक निबन्ध में शिवपूजन सहाय की साहित्य सवा का परिचय दिया गया है। हुतात्मा नवीन शीर्षक सस्मरणात्मक निबन्ध में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के जीवन

---

१ वृन्त और विकास, श्री शान्तिप्रिय द्विवदी पृ० १५५।
२ समवेत, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २५।

चरित पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही लेखक ने उसके साथ व्यतीत हुए क्षणों को भी स्मरण किया है। 'प्रगति और संस्कृति' शीर्षक निबन्ध में द्विवेदी जी ने प्रगतिवाद का महत्व स्पष्ट किया है। 'नए उपन्यास नए उपन्यासकार' शीर्षक निबंध में द्विवेदी जी ने प्रसाद और प्रेमचन्द के परवर्ती उपन्यासकारों के विचारों का अवलोकन उनकी औपन्यासिक कृतियों के माध्यम से किया है। 'विज्ञान और ग्रामोद्योग' शीर्षक सामयिक निबन्ध में द्विवेदी जी ने अपने राजनैतिक विचारों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने विनोबा जी के 'भूदान यज्ञ' में छपे मन्तव्य को स्पष्ट किया है। लेखक ने समाजवाद या सर्वोदय में आर्थिक दृष्टिकोण के साथ सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी महत्व दिया है।

[११] 'परिक्रमा' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत पुस्तक में इसकी 'विज्ञप्ति' के अनुसार आर्यभारती की परिक्रमा की गई है। काव्य कला की दृष्टि से लेखक ने इसमें कालिदास, रवीन्द्रनाथ, कवि पन्त, महादेवी के साहित्य की परिक्रमा की है। भारतीय संस्कृति का सर्वोत्तम रूप इन कवियों में प्रस्फुटित हुआ है। 'कालिदास की कला सृष्टि' शीर्षक निबन्ध में द्विवेदी जी ने कालिदास के महत्व एवं उनकी साहित्य में पठ का चित्रण करते हुए कालिदास के काव्य तथा नाटकों की विवेचना प्रस्तुत की है। कालिदास के नाटकों में श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने कालिदास के मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय, तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् की आलोचना प्रस्तुत की है। 'समष्टि के स्वर साधक रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध में द्विवेदी जी ने रवीन्द्र के जीवन का परिचय देते हुए उनके सिद्धान्तों, मान्यताओं एवं सन्देशों को उद्धृत किया है जो वह समय समय पर देशवासियों को एवं विदेशों में देते थे अथवा विदेशों से भारत वासियों और शांतिनिकेतन के छात्रों के लिए भेजते थे। वे आरण्यक थे तथा तपोवन के वास्तविक महत्व को समझते थे। शांतिनिकेतन की स्थापना के पीछे उनका यही ध्येय था कि वह प्रकृति के सान्निध्य से जीवन को साधना चाहते थे। लेखक ने रवीन्द्रनाथ तथा गांधी जी की तुलना भी प्रस्तुत की है। 'व्यक्तित्व और कला' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने रवीन्द्र के दिव्य व्यक्तित्व को अंकित करते हुए उनकी काव्य कला को स्पष्ट किया है। 'कुसुमकुमार कवि पन्त' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त के जीवन तथा उसके विपर्यय में साहित्य एवं काव्य में उनकी वास्तविक मनःस्थिति का विवेचन किया है। शैशवावस्था में मातृ स्नेह से वंचित कवि का प्रमुख स्वर 'वीणा' में एक बालिका के रूप में अवतरित हुआ। 'पल्लव' में भी उसी का व्यक्तित्व एक स्मृतिमात्र रूप में है। पन्त की काव्य सृष्टि में प्रकृति अपने बाह्य भौतिक रूप को त्याग कर मनोरम नैसर्गिक रूप में एक अलौकिक रूप धारण कर लेती है। कवि प्रकृति के मानवी रूप को काव्य के माध्यम से प्रत्यक्ष करता है। 'शून्य मन्दिर की प्रतिमा' शीर्षक संस्मरणात्मक निबंध में लेखक ने छायावाद की रहस्यमयी कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा से स्वयं के परिचय का उल्लेख करते हुए उनकी आन्तरिक विक-

ता का प्रतिपादन किया है जिसमे वह अपनी स्वर्गीय बहिन कल्पवती का रूप अनुभव रते थे। महादेवी जी से परिचय उनके छात्राकाल म ही हो गया था। लेकिन उस मय का उनका परिचय केवल नीरव मात्र रह गया, उनकी श्रवण शक्ति की असमर्थता के कारण। लेखक न पन्त, निराला और महादवी का स्वय पर प्रभाव स्वीकार किया है। वह अदश्य चेतना' शीर्षक भावात्मक निबन्ध म लखक न अपने जीवन म बहिन कल्पवती के अभाव को प्रत्यक्ष किया है। उस स्नेह वत्सल बहिन ने लेखक के जीवन म राग का सचार किया था। वही अब इस ससार से अलग एक अदश्य चेतना के रूप म लखक के हृदयाकाश को आलोकित करती तथा वही उनके जीवन की प्रेरणा थी। लेखक न उसकी तुलना मीरा स करके उनम सन्ध्यता स्थापित की है। प्रस्तुत निबन्ध म उसके सपूण जीवन की झाकी अकित है। इस प्रकार स, श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विविध निबन्ध मग्रह जहा एक ओर उनकी विचारधारा और जीवन दशन की सुस्पष्टता के द्योतक हैं वहा दूसरी ओर उनसे उनके चिन्तन क्षत्र की व्यापकता और विषयगत वैविध्य का भी परिचय मिलता है।

निबन्धकार द्विवेदी जी और हिन्दी निबन्ध की पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक दष्टिकोण से आधुनिक युग की प्राय सभी गद्यात्मक विधाओ का आविर्भाव भारतन्दु युग से माना जाता है। उपलब्ध विवरण के आधार पर इस तथ्य की अवगति भी होती है कि भारतेन्दु के पूव भी कुछ ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की गयी जिन्हें निबन्ध साहित्य के अन्तगत उल्लिखित किया जाना है। आधुनिक युग मे मुद्रण यन्त्रा के आविर्भाव से पत्र पत्रिकाओ के प्रकाशन मे यथेष्ठ योगदान मिला और निबन्ध के विकास म भी पत्र पत्रिकाओ की सुलभता न सहयोग दिया। इन पत्र पत्रिकाओ म 'कविवचन सुधा (सन १८६८), 'हरिश्चन्द्र मैगजीन (सन १८७३), मित्र विलास' (१८७७), हिन्दी प्रदीप (सन १८७७) 'मोहन चन्द्रिका' (सन १८८०) तथा ब्राह्मण' (सन १८८३) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय रही हैं। इसके अतिरिक्त अन्य पत्रिकाओ मे विहारबन्धु सदादश काशी पत्रिका भारत बन्धु भारत मित्र, आदि-दपण, सार सुधा निधि उचित वक्ता सज्जन, कीर्ति सुधाकर, क्षत्रिय पत्रिका, देश हितपी धम दिवाकर, दिनकर प्रकाश शुभचिन्तक सदाचार मातड प्रयाग समाचार, कविकुल कज दिवाकर पीयूष प्रवाह, भारते दु धम प्रचारक हिन्दुस्तान भारतोदय, आय सिद्धान्त अग्रवालोपकारक तथा नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि का नाम भी निबन्ध विकास के क्षेत्र म उल्लिखित किय जा सकते हैं।

[१] पूव भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य म भारतेन्दु युग स पूव सन १८५० ई० से ही निबन्ध का अविकसित रूप प्रस्तुत होन लगा था। इस समय राजा शिव प्रसाद 'सितारे हिन्द', राजा लक्ष्मण सिंह स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा प० श्रद्धाराम फुल्लौरी आदि न भाषा का ढालने के प्रयोग म अपना महत्वपूण योग

दान दिया। राजा शिव प्रसाद न हिन्दी के उद्‌भव काल म ही भाषा म। तीन शलिया का परिचय दिया जिसम बोलचाल की भाषा, सस्कृत तत्सम शब्दो स ओत प्रोत भाषा तथा फारसी अरबी स प्रभावित भाषा शली। इन्होने राजा भोज का सपना' तथा इतिहास तिमिर नाशक रचनाओ म कथात्मक तथा वणनात्मक निबन्ध शली का परिचय दिया। राजा लक्ष्मण सिंह ठेठ हिन्दी के प्रतिपादक थे अतएव इन्होन अपनी भाषा म अरबी फारसी और सस्कृत को स्थान न दकर स्वाभाविक प्राकृत तथा अप भ्रश स उदभूत देशी भाषा का स्थान दिया। शकुन्तला और मघदूत का इन्होन अनु वाद किया। शकुन्तला म भाषा का शुद्ध रूप आभासित होता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती न अपनी निजी भाषा रूप म व्याख्यान शैली क आधार पर सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनो को अपना विषय बना कर रचना क्षत्र म उपस्थित हुए। महर्षि दयानन्द की सत्याथ प्रकाश रचना मे तात्कालिक हिन्दी का परिष्कृत रूप उपल ध होता है। इन्होने आय समाज की स्थापना की। यह आय समाज आय भाषा (हिन्दी) का भी पोषक रहा तथा इससे हिन्दी भाषा को विशष शक्ति प्राप्त हुई। हिन्दी गद्य प्रचार और शली निर्माण की दष्टि स स्वामी जी चिरस्मरणीय रहेगे।[१] श्रद्धाराम फुल्लौरी न धार्मिक तथा साम्प्रदायिक दष्टि से रचनाए की। इनकी रचनाएँ प्राय खडन मडन से ओतप्रोत होती थी। पूव भारतेन्दु युग के इन निबन्धकारो के अतिरिक्त कुछ अन्य विद्वानो की रचनाओ म निबन्ध का आभास मिलने लगा था। इनमे रामेश्वरी दत्त कमला प्रसाद बिहारी चौबे गोकुलचन्द शम्भु प्रसाद छोटूलाल मिश्र नन्दलाल विष्णु लाल पाडया आदि हैं। इन्होने अनक प्रकार के निबन्धो की रचना की है।

हिन्दी निबन्ध के इतिहास के पूव भारतेन्दु युग को छोड कर इस चार भागो मे विभक्त किया जा सकता है (१) हिन्दी निबन्ध का अभ्युत्थान या भारतेन्दु युग (२) हिन्दी निबन्ध का परिमाजन या द्विवेदी युग (३) हिन्दी निबन्ध का उत्कष या शुक्ल युग और (४) हिन्दी निबन्ध का प्रसारण या शुक्लोत्तर अथवा अद्यतन युग।

[२] भारतेन्दु युग हिन्दी निबन्ध के विकास के इस प्रथम उत्थान काल मे हिन्दी निबन्ध के जन्मदाता क मत मे अनक मतमतान्तर हैं तथा यह एक विवादास्पद विषय है। डा० धीरेन्द्र वर्मा न सपादक मडल द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य कोश मे बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी निबन्ध का जनक माना है।[२] इसी प्रकार डा० लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय[३] डा० श्रीकृष्ण लाल[४] ने भी बालकृष्ण भट्ट को ही हिन्दी निबन्ध

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, डा० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय, पृ० १७२।
[२] हिन्दी साहित्य कोष डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ४१०।
३ हिन्दी निबन्ध का विकास डा० ओकार नाथ शर्मा पृ०६५।
४ आधुनिक हिन्दी साहित्य डा० लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय पृ० १ ३।

का सर्वप्रथम लेखक स्वीकार किया है। हिन्दी निबन्ध के जनकदाता में श्री सदासुख लाल का नाम आगे करने में श्री शिवनाथ[1] का हाथ है। लाला भगवानदीन तथा श्री रामदास गौड के प्रमाण पर ही उन्होंने सदासुख लाल को निबन्ध का प्रारम्भकर्ता माना है। लेकिन डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा,[2] श्री विजय शंकर मल्ल[3], डा० रामरतन भटनागर[4] डा० ब्रह्मदत्त शर्मा[5], डा० उदय नारायण तिवारी[6], डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' तथा डा० ओंकार नाथ शर्मा[8], आदि ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी को ही हिन्दी निबन्ध का जनक एवं युग प्रवर्तक माना है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य में निबन्ध विधा की विशेषताओं का सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण भारतेन्दु की निबंध रचनाओं में ही होता है तथा समीक्षकों का बहुमत भी उन्हीं के पक्ष में है। भारतेन्दु युग का अभ्युत्थान काल १८७३ से १९०० तक सीमित है। इसके प्रमुख प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हैं। इनके अतिरिक्त इस युग के अन्य निबन्धकारों में पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, बालमुकुन्द गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन तथा पं० अम्बिका दत्त व्यास आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमें भी पं० बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र तथा बाबू बालमुकुन्द गुप्त को बृहत्त्रयी के रूप में इस काल के निबन्ध लेखकों का प्रतिनिधि माना गया है। ये तीनों ही अपने समय के प्रतिभाशाली साहित्यकार थे। भारतेन्दु युग में निबन्ध की सफलता का प्रमुख श्रेय इन्हीं बृहत्त्रयी को है। इस युग के प्रतिनिधि लेखकों ने ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आदि विषयों पर विचारात्मक, आलोचनात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक कोटि के निबन्धों की रचना की। इसके लिए उन्होंने प्रायः सभी शैलियों—हास्य व्यंग्यात्मक, विवेचनात्मक, कथात्मक, विनोदात्मक, व्याख्यानात्मक, प्रतीकात्मक तथा आत्म चरितात्मक आदि को अपनाया। भारतेन्दु युगीन लेखकों ने निबन्ध में वैयक्तिकता को प्रधानता दी और कहीं कहीं तो वैयक्तिकता का आधिक्य भी हो गया है। वस्तुतः वैयक्तिकता को निबन्ध की आत्मा रूप में स्वीकार किया गया है।

[३] द्विवेदी युग : हिन्दी निबन्ध का द्वितीय उत्थान काल सन १९०० ई० में

---

१ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास : डा० कृष्णलाल पृ० ३४८।
२ हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा पृ० ३७।
३ हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियां, विजय शंकर मल्ल पृ० ७८।
४ सचयन (भूमिका), डा० रामरतन भटनागर पृ० २।
५ हिन्दी साहित्य में निबन्ध, डा० ब्रह्मदत्त शर्मा पृ० ३५।
६ 'हिन्दी भाषा तथा साहित्य', डा० उदयनारायण तिवारी, पृ० ११४।
७ हिन्दी गद्य काव्य : डा० पद्मसिंह शर्मा, पृ० ४३।
८ 'हिन्दी निबन्ध का विकास', डा० ओंकार नाथ शर्मा पृ० ६५।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका तथा सरस्वती के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। वस्तुतः यह हिन्दी निबन्ध के परिमार्जन का युग था, बढ़ती हुई राष्ट्रीय जागृति विकासशील सामाजिक चेतना और गौरव सांस्कृतिक पुनरुत्थान के साथ भाषा के परिष्कार का युग था। इस युग प्रवर्तकों में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी अग्रगणी हैं। भारतेन्दु युग में प्रचारात्मकता, विचार शक्ति की वृद्धि और जनरुचि की प्रेरणा तथा भाषा को एक व्यवस्थित रूप देने के लिए भाषा का रूप स्थिर करना बाकी था। इसके अतिरिक्त द्विवेदी युग में यद्यपि प्रचार की भावना काम कर रही थी परन्तु उसमें भाषा को समृद्ध और सशक्त बनाने की कामना थी। सरस्वती के सम्पादन से जहाँ एक ओर भाषा समृद्ध सशक्त एवं परिमार्जित हुई थी वहीं निबन्ध की संख्या बढ़ने में विविधता का रूप भी परिलक्षित होने लगा। द्विवेदी युग की प्रधान चेष्टा संस्कार और रुचि का परिमार्जन करना तथा हिन्दी के भंडार को भरपूर बनाना था, यह सरस्वती के द्वारा सम्पन्न हुआ।[1] सरस्वती का कार्यभार सम्भालते हुए महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक लेखकों की भाषा को सम्मार्जित एवं परिमार्जित करने का सफल प्रयास किया। इसके लिए उन्होंने तत्कालीन लेखकों की व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियों की आलोचना प्रस्तुत की। इस युग में अंग्रेजी के 'बेकन' के निबन्धों का अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से प्रस्तुत हुआ जिससे अनेक लेखकों को निबन्ध लिखने की प्रेरणा मिली। इस युग के निबन्ध प्रमुखतः साप्ताहिक पाक्षिक मासिक समाचार पत्रों के तथा प्रचारक पत्रों आदि में प्रस्तुत हो रहे थे। इस युग के निबन्धों में विषयों की विविधता विचारों की गम्भीरता, भाषा की सशक्त स्वच्छता जीवन की गहराई से देखने पर हास्य की भावना में कमी आदि स्पष्ट लक्षित होते हैं।[2] वस्तुतः यह युग संघर्षों का युग था—व्यक्ति और समाज का संघर्ष प्राच्य और पाश्चात्य का संघर्ष नवीन और प्राचीन का संघर्ष हिन्दी अंग्रेजी का संघर्ष आस्तिक नास्तिक का संघर्ष। इसके साथ ही राजनीतिक संघर्ष भी जागरूक हो रहे थे। अतएव लेखकों पर राजनीति का भी प्रभाव पड़ने लगा। इस युग में आलोचनात्मक संस्मरणात्मक चरितात्मक एवं पुरातत्व सम्बन्धी निबन्ध लिखे गये। द्विवेदी युग के प्रवर्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। इनके अतिरिक्त माधव प्रसाद मिश्र गोविन्द नारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा, गुलेरी गोपालराम गहमरी अध्यापक पूर्णसिंह गणेश शंकर विद्यार्थी, सियारामशरण गुप्त, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी यशोदानन्दन अखौरी केशव प्रसाद सिंह पार्वती नन्दन आदि अनेक निबन्धकारों ने इस युग को अपना योगदान प्रदान किया।

[४] शुक्ल युग　शुक्ल युग हिन्दी निबन्ध के उत्कर्ष का युग है। इस युग के प्रारम्भिक चरणों में ही साहित्य, कला दर्शन, जीवन और राजनीति आदि सभी के

१　हिन्दी निबन्ध का विकास　डा० ओंकार नाथ शर्मा, पृ० १३७।

२　हिन्दी साहित्य कोश　डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा संपादित, पृ० ४१०।

दृष्टिकोण मे क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। उसी समय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य जगत म अवतीर्ण हुए। यद्यपि उन्होंने द्विवेदी युग मे ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था परन्तु ऊर्जितावस्था द्विवेदी युग के बाद ही प्रकट हुई। इस युग के निबन्धो की विचारधारा द्विवेदी युग के निबन्धो स भिन्न थी। विचारधारा के साथ ही निबन्धो की प्रवृत्तियो मे भी कुछ परिवर्तन हुआ और इन सबका श्रेय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी को है। इस युग की प्रमुख देन है विचारो की प्रौढता सूक्ष्म निरीक्षण एव गूढ अध्ययन। शुक्ल युग के इस परिवर्तन मे द्विवेदी युग की आस्तिकता का लोप नही हुआ प्रत्युत वह अपने उसी रूप मे बनी रही और साथ ही कुछ प्रौढता लिए हुई आई। वस्तुत यह बौद्धिकता का युग था। अत प्रत्येक मान्यता को बौद्धिक धरातल पर ही ग्रहण किया जाता था। इस युग मे विभिन्न साहित्य रूपो का समुचित विकास एव प्रसार हुआ। इस विकास का प्रभाव निबन्ध साहित्य के विकास पर भी पडा। निबन्ध मे अनेक साहित्य रूपो का समन्वित रूप से प्रभाव पडा। अत इस काल के निबन्धो म जीवन की वास्तविकता, कहानी की सवेदना और जिज्ञासा, नाटक की नाटकीयता उपन्यास की चारु-कल्पना, गद्यकाव्य की भावातिशयता, महाकाव्य की गरिमा विचारो की उत्कृष्टता आदि का मिश्रित रूप परिलक्षित होता है। इस काल के निबन्ध प्राय समाचार पत्रो के लेख गद्यगीत पत्र, भाषण सस्मरण, प्रचार प्रपत्रो पुस्तकों की भूमिकाओ तथा पुस्तकों आदि के रूप म उपलब्ध होते हैं।

[५] शुक्लोत्तर युग शुक्लोत्तर युग हिन्दी निबन्ध के प्रसरण एव समृद्धि का युग है। इस युग मे भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग तथा शुक्ल युग मे प्रचलित हिन्दी निबन्ध की विविध प्रवृत्तियो का सम्यक विकास तथा प्रचार हुआ। निबन्ध के क्षेत्र म विषय तथा शैली की दृष्टि से विशेष उत्कर्ष हुआ। शुक्ल युग की यथार्थवादी जीवन दृष्टि तथा भौतिकवादी मनोवृत्ति के विकास से उस युग की मान्यताए कही पर शिथिल तथा कही ध्वस्त हो रही थी। आधुनिक शिक्षा तथा इस पाश्चात्य प्रभाव के कारण निबन्ध म गम्भीरता को स्थान न मिला, फलत ललित साहित्य के रूप मे स्वीकृत हुआ तथा मनोरजन का विषय माना जाने लगा। अतएव इसमे सलापात्मक वैयक्तिक निबन्धो का प्रणयन होने लगा। डा० ओंकार नाथ शर्मा ने वैयक्तिक निबन्धो के विषय में लिखा है अद्यतन युग निबन्ध समृद्धि का युग है। इस समय निबन्धकारो ने, विषय तथा शैली की दृष्टि से, इनको उत्कर्ष प्रदान किया है। वैयक्तिक निबन्धो मे विषय तथा व्यक्तित्व का अपूर्व समाहार इस युग की विशिष्टता है। विचारो तथा भावो को कलात्मक ढग स व्यक्त किया जा रहा है निबन्ध की धारा का निर्बन्ध और समुल्लसित प्रवाह विस्तार पा रहा है। इन निबन्धो पर विदेशी निबन्ध का प्रभाव भी पडा। वस्तुत ये स्वच्छन्द रचना व्यापार है।[1]

१ हिन्दी निबन्ध का विकास डा० ओंकार नाथ शर्मा, पृ० २४०।

व्यक्तित्व निबंधों के अतिरिक्त प्राचीन परम्परा से चली आ रही निबंध की विभिन्न प्रवृत्तियों में विचारात्मक, भावात्मक, विवरणात्मक, संस्मरणात्मक तथा आलोचनात्मक आदि प्रवृत्तियों का भी विकास हुआ तथा साहित्य सृजन हुआ। इस युग में आलोचनात्मक निबंधों की बहुलता है। शुक्ल युग में लिखे गवेषणात्मक निबंधों की प्रवृत्ति का भी इस युग में विकास हुआ। मुक्त परिवर्तन देश की परिवर्तनशील सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के कारण निबंध के क्षेत्र में हुआ। इस युग के निबंधकारों ने राजनैतिक सामाजिक तथा बौद्धिक समस्याओं पर निबंधों की रचना की। इसके साथ ही अनेक प्रचलित देशी विदेशी विचारधाराओं एवं विचार आन्दोलनों को भी निबंध साहित्य में स्थान मिला। हिन्दी निबंध साहित्य के इस युग में विषय वैविध्य के साथ भाषा की प्रौढ़ता पर भी विशेष ध्यान दिया गया। धर्म दर्शन अध्यात्मिक आदि विषयों पर निबंध लिखे गए। निबंध साहित्य पर पाश्चात्य मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण अद्यतन निबंध सामाजिक यथार्थवाद से सम्बन्धित हो गये एवं निबंध साहित्य में भी प्रगतिवाद का बोलबाला हो गया। वस्तुतः अद्यतन युग क्रांति का युग है और युग अनुशीलन के लिए उसी युग के साहित्य का आश्रय लिया जाता है। डा० ओंकार नाथ शर्मा ने इस युग की तीन भावधाराओं को स्पष्ट किया है (१) समाजवादी दृष्टिकोण (२) नए समाज दर्शन को भारतीय समन्वयात्मक दृष्टि से ग्रहण करना तथा (३) ऐसे निबंध लेखक जो श्रेष्ठ और सुंदर के संकलन से रचना को नवीन अर्थ दीप्ति, नई भाव भंगिमा तथा नव्य रूप सौष्ठव प्रदान करते हैं।[1] लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी निबंध और निबंधकार' की भूमिका में स्पष्ट किया है जनतंत्र का जमाना है छापे की मशीनों की भरमार है। कह सकने की योग्यता रखने वाले हर भले मानस को किसी न किसी विषय पर कुछ न कुछ कहना है, हर छापे की मशीन को अपना पेट भरने के लिए कुछ न कुछ छापना है। सो राज्य भर के विषयों पर निबंध लिखे जा रहे हैं। कहां तक कोई सबका लेखा जोखा मिलाए। सभी विचार किसी न किसी निबंध शैली में लिखे जाते हैं।[2] निबंध में विविध विषयों अनेक नवीन शैलियों तथा नवीन विचारधाराओं के कारण नवीनतम निबंध साहित्य में कुछ दूषित प्रवृत्तियों का भी विकास हो रहा है, एक ओर तो अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए कुछ निबंधकार पाश्चात्य लेखकों से उधार लिए विचारों को बिना समझे ही उगलते जा रहे हैं जिससे उनकी भाषा में न तो प्रवाह मिलता है और न ही कला का सौंदर्य।[3] आजकल साहित्यिक निबंधों को संगृहीत कराने की प्रवृत्ति अधिक परिलक्षित होती

१ हिन्दी निबंध का विकास, डा० ओंकार नाथ शर्मा, पृ० २४३।
२ हिन्दी निबंध और निबंधकार' (भूमिका), ठाकुर प्रसाद सिंह पृ० ३।
३ 'साहित्यिक निबंध, डा० गणपति चन्द्र गुप्त पृ० २२३।

है। समग्र रूप से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि इस युग में यथार्थवादी प्रगतिवादी साम्यवादी तथा समाजवादी दृष्टिकोण से विभिन्न निबन्ध लेखकों ने निबन्ध रचना की। विचारात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत संस्कृति और दार्शनिक पृष्ठभूमि, आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत भाषा साहित्य और साहित्य सिद्धान्तों को, भावात्मक के अन्तर्गत गद्य काव्यात्मक रचना को, वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत यात्रा साहित्य, जीवनी तथा साहित्यकारों के इंटरव्यू आदि को निबन्ध का आधार बनाया गया।[1] इस प्रकार से, हिन्दी निबन्ध के विकास के शुक्ल युग में श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित द्विवेदी जी के निबन्ध इसी काल में उपलब्ध होते हैं। परन्तु विभिन्न स्वतन्त्र पुस्तकों के रूप में इन निबन्धों का प्रकाशन शुक्लोत्तर युग में हुआ था। रचना काल के इसी युग विभिन्नता के कारण इनके निबन्ध साहित्य में जहां एक ओर विशद अध्ययन और स्वतन्त्र चिन्तन दृष्टिगत होता है, वहां दूसरी ओर आलोचनात्मक, भावात्मक संस्मरणात्मक, विवरणात्मक, व्यावहारिक तथा सैद्धान्तिक विषयों पर लिखे गये निबन्धों में सामाजिक प्रवृत्तियों का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है।

द्विवेदी जी के निबन्ध और समकालीन प्रवृत्तियां

विगत शताब्दी से एक नवीन साहित्यांग के रूप में हिन्दी निबन्ध के आविर्भाव और विकास की ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। लगभग एक शताब्दी के विकास काल में जहां एक ओर हिन्दी निबन्ध का बहुरूपी विकास हुआ है वहां दूसरी ओर उसके कलात्मक महत्व की भी अभिवृद्धि हुई है। इसकी पृष्ठभूमि में एक विशिष्ट कारण यह है कि विकास की इस अल्पकालीन अवधि में ही निबन्ध के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृत्तियों का प्रारम्भ और सम्यक विकास हुआ। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है शान्तिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव शुक्ल युग में हुआ था और कलात्मक परिपक्वता और वैचारिक प्रौढ़ता की दृष्टि से उनके शुक्लोत्तर युग में लिखे गये निबन्ध विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी का आधुनिक निबन्ध साहित्य विषय के अनुसार विभिन्न रूपों को अपने में समाहित किये हुए है। यह युग निबन्ध के प्रसरण का युग है जो अपनी पूर्ण परिपक्वता में अनेक निबन्ध कोटियों के साथ नवीन रचनात्मक दृष्टि से नयी शैलियों का प्रयोग कर रहा है। समकालीन निबन्ध की प्रवृत्तियां में मुख्य रूप से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

[१] विचारात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति जिस युग में शान्तिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ उसमें हिन्दी निबन्ध की प्रायः सभी प्रतिनिधि प्रवृत्तियां विकासशील मिलती हैं। इनमें सर्वप्रथम विचारात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। इस

---

१ विचार और निष्कर्ष, वासुदेव पृ० १४।

कोटि के निबंधों को चिंतन प्रधान निबंध भी कहते हैं। इस प्रकार चिंतन प्रधान निबंधों में बौद्धिकता की प्रधानता के साथ तर्क को भी स्थान मिला है। लेकिन कहीं कहीं बौद्धिकता के साथ भावना का समन्वय भी हो जाता है वहां तक नहीं रहता। विचारात्मक निबंध वस्तुतः गम्भीर तथा प्रयोजनीय विषयों पर होते हैं। ऐसे निबंधों में विषयों की अनेकरूपता—दर्शन, संस्कृति, परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान, आदर्श उपदेश समाज राजनीति, शास्त्र या साहित्य, जीवन या प्रकृति आदि—प्रतिबिम्बित होती है। इसके अतिरिक्त इसमें लेखक विषयों का स्वतंत्र तथा वैयक्तिक चयन भी कर सकता है। विचारात्मक निबंधों की सरसता एवं सुगमता के लिए समास तथा व्यास शैली का प्रयोग होता है। भारतेन्दु युगीन निबंध साहित्य में विचारात्मक निबंधों की प्रवृत्ति बहुत कम लक्षित होती है। लेकिन द्विवेदी युग में बेकन निबंध के हिन्दी अनुवाद से अनेक लेखकों को निबंध लेखन की प्रेरणा मिली। शुक्ल युग में इन निबंधों का उत्कर्ष हुआ तथा शुक्लोत्तर युग में प्रसरण के साथ निबंध की इस कोटि को समृद्धता प्राप्त हुई। इस कोटि के निबंध बहुधा बुद्धि को उत्तेजित करने वाले तत्वों से परिपूर्ण हैं। अद्यतन युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी श्री जैनेन्द्र और श्री शांतिप्रिय द्विवेदी आदि का प्रमुख तथा अन्यतम स्थान है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनेक विचारात्मक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। अशोक के फूल, विचार और वितर्क 'गतिशील चिन्तन विचार प्रवाह' आदि में उनके गम्भीर चिन्तन का प्रवाह परिलक्षित होता है। श्री जैनेन्द्र के विचारात्मक निबंध संग्रहों में 'जैनेन्द्र के विचार', जड़ की बात, पूर्वोदय, मंथन सोच विचार 'साहित्य का श्रेय और प्रेय, राही समाज आदि उल्लेखनीय हैं। मंथन इनके दार्शनिक निबंधों का संग्रह है। इसी प्रकार श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के 'जीवन यात्रा' निबंध संग्रह में दार्शनिक निबंधों का आकलन हुआ है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के विभिन्न निबंध संग्रहों में जीवन यात्रा, साहित्यिकी युग और साहित्य सामयिकी, धरातल, 'साकल्य, पदमनाभिका, आधान, वृत्त और विकास' 'समवेत' तथा 'परिक्रमा' में संगृहीत कुछ निबंधों में चिन्तन प्रधान निबंधों की प्रवृत्ति लक्षित होती है। जीवन यात्रा उनके प्रारम्भिक निबंध संग्रहों में है। इसमें लेखक ने दार्शनिक तथा व्यावहारिक निबंधों को संगृहीत किया है। संग्रह की सर्वप्रथम रचना 'जीवन क्या है' शीर्षक निबंध है जिसे लेखक ने एक डेनिश कहानी के आधार पर लिखा है।[1] इस निबंध में लेखक ने मानव जीवन से सम्बन्धित विभिन्न धारणाएँ व्यक्त की हैं जो जीवन की बहुरूपता की द्योतक है। 'यात्री' शीर्षक निबंध भी विचार प्रधान है जिसमें लेखक ने विभिन्न कोटियों के मनुष्यों को लोक यात्री बताया है और उसकी सार्थकता इंगित की है। 'जीवन का उद्देश्य'

---

१ जीवन यात्रा, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २।

शीर्षक निबन्ध में यह बताया है कि सामान्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के विभिन्न लक्ष्य होते हुए भी मानव जीवन मात्र का उद्देश्य एक ही है। इस दृष्टि से चिरन्तन सुख शान्ति के नियामक आनन्द की प्राप्ति 'निखिल ससृति का अन्तिम निष्कर्ष है।'[1] मृग तृष्णा शीर्षक निबन्ध में लेखक ने यह बताया है कि आज संसार में जीवन की कृत्रिम महत्वाकांक्षाओं ने मनुष्य को त्रस्त कर रखा है। वह भ्रमवश उन उपकरणों को अनिवार्य समझ बैठा है जो मात्र कृत्रिम हैं और जिनका कोई अन्त नहीं।[2] 'आत्म चिन्तन' शीर्षक निबन्ध में यह संकेत है कि पार्थिव संसार के क्षुब्ध एवं अशांत वातावरण की प्रतिक्रिया स्वरूप मानव हृदय में शांति की नैसर्गिक आकांक्षा उत्पन्न होती है। इससे मुक्ति का एकमात्र उपाय आत्मबोध है। लेखक के मन से इस आत्म विश्व में एक ऐसी शुभ्र शीतल ज्योति जगमगाती रहती है जो प्रत्येक क्षण हमारे मोहाच्छन्न अनाना प्रकार को हटा कर हमारी सुख शांति में कर्तव्य का बोध कराने में तत्पर है।[3] 'आत्म विश्वास शीर्षक निबन्ध में लेखक ने इस महान् सत्य का निरूपण किया है कि आत्म विश्वास आत्मा का प्रकाश है। वशीकरण वाणी इस संग्रह का इस वर्ग के अन्तर्गत अन्तिम उल्लेखनीय निबन्ध है जिसमें लेखक ने बताया है कि यद्यपि ईश्वर ने वाणी की शक्ति सभी को दी है परन्तु इसे मुखरित न बना कर मौन साधना से संयम और तपस्या द्वारा अमृत वाणी के रूप में परिणत करना ही इसका सफल स्वरूप है।

विचारात्मक निबन्धों का स्वरूप द्विवेदी जी की दूसरी निबन्ध रचना 'साहित्यिकी' में भी उपलब्ध होता है। साहित्यिकी के सर्वप्रथम विचारात्मक निबन्ध 'प्रेमपूर्ण मानवता की पुकार' में लेखक ने विश्व कल्याण एवं मानव कल्याण के लिए विश्व में व्याप्त अति रूपी स्वार्थ की भावना को त्यागने का सन्देश दिया है। 'शरद की औपन्यासिक सहृदयता' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने शरद के उपन्यासों तथा कहानियों में निहित मानवता की पुकार के रूप में पीड़ित तथा उपेक्षित मानव के प्रति अपने सुहृद विचारों को आरोपित किया है। मानव समाज की एक समस्या—अन्ना' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने टालस्टाय के 'अन्ना' उपन्यास के माध्यम से विश्व के नारी जीवन की एक समस्या बेमेल विवाह और उससे उत्पन्न नारी जीवन की विभिन्न समसामयिक समस्याओं को उदघाटित किया है। कविता और कहानी वैचारिक निबन्ध में जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, लेखक ने कविता और कहानी के मूल उदगमों को उदघन करते हुए आधुनिक युग में दोनों की भिन्नता के कारण को स्पष्ट किया है तथा चित्रकार से कहानीकार और कवि की रचनाओं का आत्मिक स्पर्श एवं भिन्नता प्रस्तुत

१ जीवन यात्रा, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० १६।
२ वही, पृ० ३९।
३ वही, पृ० ५१।

तियो आदि का निदर्शन कराती है तथा मनुष्य की अन्तरात्मा के रूप मे स्थापित हुई है।[1] भाषा का राजनीति के क्षेत्र से परिष्कार तथा आर्थिक विषमता को दूर करके ही उसकी संस्कृति का संरक्षण किया जा सकता है। 'गाँवों की सांस्कृतिक रचना' शीर्षक निबन्ध भी विचारात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इसमे लेखक ने नैसर्गिक विशेषता, स्वाभाविक साधन संगीत मधुर श्रम, शिक्षा, संस्कृति और कला आदि के माध्यम से गावो की सांस्कृतिक संरचना का प्रयत्न किया है। इसी से मानव जीवन का स्वाभाविक विकास तथा उत्थान सम्भव है।

साकल्य नामक संग्रह मे 'संस्कृति का आधार' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने प्रकृति की नैसर्गिक एकता तथा मनुष्य की आध्यात्मिक एकता को सांस्कृतिक का आधार माना है। लेकिन आधुनिक जगत मे इस एकता का संपूर्ण अभाव-सा है। इसका मुख्य कारण विज्ञान की प्रगति के साथ मानव की स्वार्थलिप्सा की भावना का उदय है। विज्ञान से मनुष्य की कार्यक्षमता और दक्षता बढ़ गयी है लेकिन वह कर्मशील नही कार्यवाह बन गया है। उनकी क्रियाशीलता मे आंतरिकता संवेदनशीलता, आस्था तथा तन्मयता का अभाव है।[2] 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप मे विश्व मैत्री का एकमात्र आधार संस्कृति है। 'समन्वय अथवा एकान्वय' शीर्षक निबन्ध मे भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के समन्वय को लेखक ने एक स्लोगन माना है।[3] जिसमे मानव व्यावहारिक जीवन के आदर्शों का निर्वाह न कर सकने की असमर्थता को उस समन्वय की ओट मे कर स्वयं बौद्धिक बन जाता है। अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का स्वर पाश्चात्य देशो से ही मुखरित हुआ है। लेखक की दृष्टि मे यांत्रिक साधना एवं औद्योगिक माध्यमो से मानव मे सजीवता एवं चेतना का उद्रेक नही किया जा सकता है। समन्वय की बात अवसरवादियो के द्वारा उठाई हुई है। मानव को समन्वय नही एकान्वय की आवश्यकता है। 'सौंदर्य बोध' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने चेतना के रूप या स्तर माने हैं। अपने निम्नतम स्तर पर चेतना वासनात्मक हो जाती है। उच्चतर स्तर पर वही चेतना सौंदर्यमयी कलात्मक एवं सांस्कृतिक हो जाती है। सौंदर्य हार्दिक सुषमा और गरिमा से आप्लावित हो जाती है। 'पदमनाभिका' निबन्ध संग्रह मे 'संवेदना की शिराएँ' शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने आधुनिक युग मे स्वार्थों की सजगता एवं दूसरो के प्रति सशंकता पर आधारित व्यवहार कुशलता तथा संवेदनात्मक भावना के अभाव की ओर संकेत किया है। 'ग्रामगीत' निबन्ध मे ग्रामगीतो मे मानव के निर्माण का जगत अभिहित होता है। ग्रामगीतो में जीवन के प्रत्येक क्षण

---

१ धरातल श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७२।
२ साकल्य, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी प० १०।
३ वही प० २१।
४ वही प० २८२।

को सजीव करके ग्रामीण समाज ने उसे अविनश्वर रूप दे दिया है। प्रस्तुत विचारात्मक निबन्ध मे लेखक ने त्रिपाठी जी के ग्राम साहित्य' से कुछ गीत एव उनके अर्थों को सकलित करके[1] ग्रामगीतो के प्रति अपने विचारो को प्रत्यक्ष किया है। 'छायावाद और प्रकृति शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने छायावाद म प्रकृति के सूक्ष्म रूप के चित्रण के साथ आचार्य शुक्ल जी की प्रवृत्ति के प्रति स्थूल अथवा वस्तु रूप का प्रकट करते हुए भी उनके रागात्मक वत्ति से सम्बन्धित विचारो को उद्धत किया है।

आधान' शीर्षक निबन्ध सग्रह के प्रथम विचारात्मक निबन्ध 'काव्य में भक्ति भावना' मे मानव की आन्तरिक श्रद्धा एव भक्ति की भावना की अभिव्यक्ति नत्य एव सगीत के अतिरिक्त काव्य म भी समाहित हो गयी है। लेखक ने भारतीय हिन्दी काव्य साहित्य के भक्तिकाल का विश्लेषण करते हुए उस युग में व्याप्त भक्ति के विभिन्न दार्शनिक रूपो का निरूपण किया है। 'मौलिकता के प्रतिमान शीर्षक निबन्ध म लेखक ने मौलिकता के वास्तविक अर्थ को प्रकट करते हुए उसके प्रतिमानो के प्रति अपने विचार प्रकट किए है। लेखक ने मौलिकता को 'एक अभाव सजीवता'[2] माना है जो चेतना के सदश ही अन्तर्व्याप्त सूक्ष्म सत्ता के रूप में मानव में अन्तर्हित होती है। मौलिकता के प्रतिमानो को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने मानव को सज नात्मक प्रतिभा के विभिन्न रूपो को स्पष्ट किया है। दिग्दर्शन शीर्षक निबन्ध मे लखक ने नेहरू जी की विभिन्न विदेश यात्राओ म दिये उनके वक्तव्य को स्पष्ट करते एव उनके सन्देशो को उद्धत करते हुए भारत के लिए उनके सन्देशो की उपयुक्तता अनुपयुक्तता का विश्लेषण किया है। वत्त और विकास नामक निबन्ध सग्रह म नयी पीढी नया साहित्य' शीर्षक विचारात्मक निबन्ध लेखक के स्वाध्याय, मननशीलता आदि का द्योतक है। लेखक न इसम नयी पीढी और नये साहित्य के रूप मे केवल भारत की ही नहीं सपूर्ण विश्व की नयी पीढी की ओर सकेत किया है। इस प्रकार नयी पीढी के नये साहित्य के प्रति विचारो के प्रतिपादन म लेखक की व्यापक दष्टि का परिचय मिलता है। लेखक ने विदेशो म साहित्य की प्रचलित धाराओ को स्पष्ट किया है—सघर्षात्मक साहित्य की धारा, निर्माणात्मक साहित्य की धारा जो समाजवाद की ओर उन्मुख है, तथा दमवशाली किन्तु ह्रासोन्मुख साहित्य की धारा। यह धारा समाजवादी साहित्य स प्रतिस्पर्द्धा के रूप म लक्षित होती है।[3] लेखक के मत म नई और पुरानी पीढी म आदर्श और यथार्थ, सस्कृति और विकृति का अन्तर है। नये साहित्य में फ्रायड का यौन विज्ञान, मार्क्स का समाजविज्ञान और मानवतावादी लेखको का रूढि और मतविशेष से मुक्त और स्वतन्त्र मनोविज्ञान निहित है।[4]

---

१ पद्मनाभिका, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २६।
२ वही, पृ० ५०।
३ वृत्त और विकास, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९३।
४ वही, पृ० ९४।

'समवेत' शीर्षक निबन्ध संग्रह के 'सौन्दर्य और कला' नामक निबन्ध में अन्तर्गत लेखक ने साहित्य, संगीत और कला के रूपों को स्पष्ट करते हुए कला के क्षेत्र को विस्तृत माना है। 'कला केवल मनुष्यों की ही चित्तवृत्ति नहीं है यह तो चेतन मात्र की सद्वृत्ति है।'[१] लेखक ने सौन्दर्य की रचनात्मक वृत्ति को आचरण की दृष्टि से संस्कृति का रूप माना है और इसी संस्कृति से कला की उत्पत्ति मानी है।[२] 'छायावाद का सगुण' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने मध्य युग तथा आधुनिक युग के सगुण के अन्तर को स्पष्ट करते हुए छायावादी कवियों के काव्यों के माध्यम से उनकी आत्मा को पहचानने का प्रयास किया है। छायावाद में प्रकृति के कोमल और कठोर रूपों का चित्रण हुआ है। सभी प्रवृत्तियों में रूप के सदृश ही कोमल और कठोर रूप में भी एक सौन्दर्य अन्तर्निहित रहता है। छायावाद में सौन्दर्य अन्तःकरण का सजीव संगठन है।[३] रागात्मकता की समस्या शीर्षक निबन्ध में लेखक ने पन्त जी के राग वृत्ति के प्रति दृष्टिकोण को प्रत्यक्ष करते हुए अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। पन्त जी की दृष्टि में आज राग अपनी पूर्व भावना का आधार छोड़ कर बौद्धिक प्रणाली से संतरण कर रही है और इस नयी रागात्मकता में नई कला का उद्रेक होगा। लेखक ने राग की उत्पत्ति संवेदना से मानी है। बिना संवेदना के मानव स्वार्थी हो जायगा और मानवीय अस्तित्व का बोध ही नष्ट हो जायेगा क्योंकि मानव का सहअस्तित्व अन्य प्राणियों के सहयोग पर निर्भर है, निखिल प्रकृति से समरस होकर ही मनुष्य जी सकता है। प्रकृति के सान्निध्य से ही मनुष्य की दृष्टि में विशदता और व्यापकता आ जाती है।[४] 'प्रगति और संस्कृति' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने प्रगतिवाद के प्रति अन्य प्रबुद्ध जनों के विचारों को उनकी कविताओं के माध्यम से व्यक्त करते हुए अपने विचारों का निरूपण किया है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद से प्रभावित है। लेखक की दृष्टि में वह देहवाद है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सभी इसकी अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। लेकिन पन्त जी ने प्रगतिवाद की ओर आकृष्ट होते हुए भी संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति व्यंग्यात्मक विचारों को प्रकट किया है। आज जीवन में राग का अभाव है। स्वार्थ में मनुष्य ममता और संवेदना शून्य हो गया है। उसमें गति रस राग नहीं रहा। वह यन्त्र बनता जा रहा है। प्रगति से ही संस्कृति प्रादुर्भूत होती है। बिना संवेदना के मानव गतिहीन है। गति प्राप्त होने पर ही मानव प्रगति कर जीवन्तता को प्राप्त कर सकता है।

---

१ समवेत श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४।
२ वही पृ० ५।
३ वही पृ० ११ १२।
४ वही पृ० १५।
५ वही पृ० २२।

परिक्रमा' शीर्षक निबन्ध सग्रह के 'समष्टि के साधक रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध के अन्तगत युग पुरुष में लेखक ने रवीन्द्रनाथ जी के जीवन परिचय में उन्हे युग पुरुष के रूप में अवलोकित करते हुए उनके विचारो को प्रकट किया है। रवीन्द्र जी की रचनात्मक प्रवत्तिया एव मान्यताओं तथा गाधी जी की रचनात्मक प्रवत्तियो एव मान्यताओ में सादृश्यता है। कुटीर शिल्प और उसी जसी देशी भाषा अछूतोद्धार, हिन्दू मुस्लिम एकता, विश्व मानवता, अहिंसा, सभी बातें रवीन्द्र के मुख से ऐसी जान पडती हैं मानो कमवीर गाधी ही कवि हो गये हो।"[1] इन दोनो की अन्तश्चेतना एक होते हुए भी सावजनिक मतभेद है। रवीन्द्र चर्खे, खादी, सत्याग्रह तथा असहयोग को नही चाहते लेकिन उनमें लोकसेवा की भावना अर्न्तनिहित थी तभी उन्होने आध्यात्मिक आनद के लिए शातिनिकेतन को महत्व दिया है। यह आनद ही विश्वात्मा है और शान्तिनिकेतन विश्वभारती। कवि का विश्व प्रम और विश्व बधुत्व ही उसका युग प्रयास है।[2] वह जीवन में प्रकृति को महत्व देते थे। कुसुमकुमार कवि पत शीर्षक निबध में अन्तर्निमाण के अन्तगत लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पत जी के काव्य विकास में उनके भावो में परिवतन एव अतर्निर्माण की दृष्टि स अपने विचारो का प्रकटीकरण किया है। पत जी की 'युगान्त' से पूव की रचनाओ में कवि का प्रकृति प्रेम जपने विविध रूप को लेकर भी एकात्म रूप म प्रकट हुआ है। युगान्त मे कवि का भावात्मक रूप न रहकर पथ्वी के पार्थिव धरातल का आह्वान है। 'युगवाणी' म सास्कृतिक क्रान्ति एव नवनिर्माण है। 'ग्राम्या' म ग्रामीण वातावरण का यथाथ चित्रण है, लकिन 'स्वणकिरण' म पुन कवि की अन्तश्चेतना विद्यमान है। स्वणकिरण के उपरान्त की रचनाओ में भी कवि की सवेदना एव अन्तश्चेतना ही नि शरीर है, अन्य भविष्य की स्वप्न सष्टि है।[3] इस प्रकार से हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र म द्विवेदी जी के रचना काल मे वचारिक निबन्धो की जो प्रवत्ति लक्षित होती है वह अपने सपूण वविध्य क साथ श्री शातिप्रिय द्विवेदी के 'जीवन यात्रा, साहित्यिकी', 'सामयिकी', 'धरातल' 'साकल्य, पदमनाभिका 'आधान', वन्त और विकास', समवेत तथा 'परिक्रमा आदि ग्रन्थों मे सगृहीत अनक निबन्धो म उपलब्ध होती है।

[२] विवरणात्मक निबन्धों की प्रवत्ति विवरणात्मक निबन्धो के अन्तगत कथात्मक तथा आख्यानात्मक निबन्धो को परिगणित किया जाता है। इस प्रवत्ति मे विशद विषय का विस्तत वणन तथा निरूपण होता है एव वणनात्मक निबन्धो के सदृश ही इसम भी कल्पना तत्व की प्रधानता रहती है। इसक साथ ही इसम वयक्तिकता की छाप भी विद्यमान रहती है। इस कोटि म निबन्ध वणनात्मक निबन्धो की

---

१ परिक्रमा, श्री शातिप्रिय द्विवदी प० ११७।
२ वही, प० ११९।
३ वही, प० १६२।

अपेक्षा अधिक चतयमान होते हैं। वर्णनात्मक और विवरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति म एक मुख्य भिन्नता यह है कि वर्णनात्मक निबन्धों मे वस्तु को स्थिर रूप म देखकर वर्णन किया जाता है इसका सम्बन्ध अधिकतर देश से है। विवरणात्मक का सम्बन्ध अधिकाश मे काल से है इसम वस्तु को उसके गतिशील रूप म देखा जाता है।" वस्तुत विवरणात्मक निबन्ध दर्शक के सम्मुख चारु चल चित्र स गतिशील रहते हैं।[1] इनके अन्तगत जीवनी, कथाएँ, घटनाएँ पुरातत्व अन्वेषण, आखेट आदि विषयो का निरूपण किया जा सकता है। इस प्रवत्ति म अधिकाशत व्यास शली का प्रयोग किया जाता है। आधुनिक युग म विवरणात्मक निबन्धो की प्रवत्ति का धीरे धीरे ह्रास हो गया है। भारतेन्दु युग तथा द्विवेदी युग मे इस प्रवृत्ति का विकास अपनी चरम सीमा पर था लकिन शुक्ल युग म यह प्रवत्ति गौण हो गयी और अद्यतन युग मे यत्र तत्र ही इसका रूप परिलक्षित होता है। इस प्रवृत्ति के अन्तगत देवेन्द्र सत्यार्थी के कुछ यात्रा सम्बन्धी निबन्ध परिगणित किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्री ब्रजलाल वियाणी का कल्पना कानन डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कुछ कलाकारो की जीवनिया श्री इलाचन्द्र जोशी की महापुरुषो की प्रेम कथाए तथा श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन के कुछ निबन्ध आदि भी इसी प्रवृत्ति के अन्तगत उल्लिखित किय जा सकत हैं।[2]

आधुनिक युग म विवरणात्मक निबन्धो की प्रवत्ति कम परिलक्षित होती है। स्फुट निबन्धो मे ही इसका रूप दृष्टिगोचर होता है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे इस प्रवृत्ति का रूप बहुत कम लक्षित होता है। केवल पदमनाभिका' निबन्ध सग्रह का बोधिसत्व शीर्षक निबन्ध ही इस कोटि म परिगणित किया जा सकता है। इसमे लेखक ने गौतम बुद्ध के जीवन की लौकिक तथा अलौकिक कथात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उनके दार्शनिक मतो का प्रतिपादन किया है। प्रस्तुत कथात्मक निबन्ध का ही विस्तृत रूप लेखक की औपन्यासिक कृति 'चारिका' म उपलब्ध होता है। जसा कि अभी उल्लेख किया गया है इसकी कथा का सम्बन्ध गौतम बुद्ध के जीवन से है। निबन्ध का प्रारम्भ लेखक ने गौतम बुद्ध के परिचयात्मक रूप से किया है। उन्होंने लिखा है वह कपिलवस्तु का राजकुमार था। उन अनेक योनियो अथवा जन्म जन्मान्तरो की परम्परा स तथागत होकर जिनका जीवन वत्त जातक कथाओ म इगित है वह राजकुल म नवबुद्ध होकर उत्पन्न हुआ था। इस नये जन्म म भी उसने अपनी दनिक और मानसिक स्थिति के अनुसार अनेक जन्म लिये—राजस तामस बोधिसत्व।[3] इस प्रकार लेखक ने कथा के प्रारम्भ म गौतम बुद्ध के जीवन को

---

१ काव्य के रूप डा० गुलाबराय पृ० २२२।
२ हिन्दी निबन्ध का विकास' डा० ओकार नाथ शर्मा पृ० ७६।
३ पद्मनाभिका श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ९९।

तीन भागों म विभक्त कर उनके प्रत्येक भाग का वास्तविक निरूपण प्रस्तुत किया है। गौतम बुद्ध का प्रारम्भ का नाम सिद्धार्थ था। उनका जन्म राजा शुद्धोधन के राज प्रसाद म हुआ था। बचपन में ही भविष्यवक्ताओ ने यह घोषणा कर दी थी कि यह बालक या तो दिग्विजयी सम्राट बनेगा अथवा ऋषियों का मार्ग अपना कर चक्रवर्ती सम्राटों को भी निस्व बना देगा। अतएव अपने बालक के वीतरागियों के से लक्षणों को प्रारम्भ म ही देखकर राजा शुद्धोधन उसे अपने साथ रख कर राज्य भ्रमण कराने लगे। प्रकृति के मनोहर सुरम्य वातावरण मे भी सिद्धार्थ का ध्यान जीवों के प्रति दयार्द्रता से पूर्ण होता। वह उनकी हिंसा एवं दयनीयता को देखकर त्रस्त हो उठते। वह एकान्त में किसी भी वृक्ष की छाया म बैठ घंटों आत्मचिन्तन म लीन हो संसार से अग-जग हो जाते। सिद्धार्थ की तरुणावस्था म राजा ने उनके लिए ऋतुओं के अनुसार सवसुख सम्पन्न विभिन्न महलों का निर्माण करवाया। उनके लिए विभिन्न मनोरंजन के साधनों को एकत्र करने तथा उनका मनोरंजन करने के उपायों में सलग्न हो गये। इसके अतिरिक्त उन्होंने राजकुमारी यशोधरा से उनका विवाह करा दिया तथा उनके लिए प्रणय महल का निर्माण करवाया। लेकिन राजकुमार का मन वहां भी अधिक दिनों तक न रम पाया। वह व्यथा उच्छवास आदि का अवलोकन करने हेतु नगर भ्रमण को निकल कर राज्य का निरीक्षण करने लगे। राजा के मनक रहते तथा कठोर अनुशासन पर भी उस श्री सुषमा समृद्धता में कुमार वृद्धावस्था, निर्धनता, काल, मृत्यु, रुग्णावस्था आदि महाव्याधियों को देखकर अत्यन्त ही क्षुब्ध हो उठे। उन्हें अपनी सुख सम्पन्नता शून्य-सी आभासित हुई। उनका मन उन महाव्याधियों से प्राणियों की मुक्ति के लिए लालायित हो उठा। राजकुमार ने अपनी परिणीता पत्नी यशोधरा को अपने मन्तव्य से परिचित करा दिया। लेकिन यशोधरा ने कुमार के मार्ग में अवरोधक न बनते हुए भी नवजात शिशु को आशीर्वाद हेतु कुमार को रोक लिया। नवजात शिशु में उन्हें अपना रूप मिला। वह चित्र और संगीत के सदृश अपनी प्रतिछवि और प्रतिध्वनि शिशु राहुल के वात्सल्य में कुछ दिनों के लिए रुक गये लेकिन अधिक समय तक नहीं। वह पुनः उन्हीं व्याधियों से त्राण के लिए मानव-मात्र को मातृत्व भाव वात्सल्य प्रदान करने उनके कल्याण के लिए तथा शाश्वत सत्य का अनुसंधान एवं अनुशीलन करने के लिए चिन्तित रहने लगे। बालक राहुल का सजीव वात्सल्य बंधन भी राजकुमार को अपने पास न बांध सका और वह एक रात्रि को वहां से चल दिये। कुमार की विद्वत्ता से प्रभावित कुछ परिव्राजकों ने उन्हें अपने आश्रम में स्थान दिया। कुमार ने भी घर से बाहर परिव्राजक का परिधान ग्रहण कर लिया था। उस आश्रम में रह कर उन्होंने वहां की दिनचर्या तथा परलोक के सुख की प्राप्ति हेतु लगे अन्य संन्यासियों को देखा। यहां कुमार का जीवन उन्हीं लोगों की तपश्चर्या सा होने पर भी उनका मन आत्मलीन न हो सांसारिक आवागमन से मुक्ति के मार्ग-स्थान का प्रयास एवं अन्वेषण करता रहा। उस आश्रम

किंतु शीर्षक निबन्ध में लेखक ने नेहरू जी की आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर उनके विचारों को प्रस्तुत किया है। लेखक ने समाज में व्याप्त गांधीवाद, समाजवाद, प्रगतिवाद आदि के मध्य नेहरू जी के आत्मनिरीक्षण एवं उनके विचारों की भिन्नता की ओर भी संकेत किया है। नेहरू जी बौद्धिक उदारता के कारण व बुद्ध के व्यक्तित्व के प्रति मुग्ध हो जाते हैं और गांधी के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धानु।[1] 'प्रकृति पुरुष के उत्तराधिकार' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने बापू जी के प्राणविसर्जन का कारण एक व्यक्ति विशेष को न मान कर समग्र कलुषित युग एवं दूषित समाज को माना है।

धरातल नामक संग्रह के 'रोटी और सेक्स' शीर्षक निबन्ध में आधुनिक युग में मानव की नैसर्गिक आवश्यकताओं का उल्लेख करते हुए उनके अभाव की ओर संकेत किया है। आज सर्वत्र मानव-समाज में रोटी और सेक्स रूप में अर्थ और काम की समस्या मुखर होती जा रही है। मानवीय स्वार्थ की भावना बढ़ने के कारण श्रम सहयोग एवं सद्भावना का लोप हो रहा है वस्तुतः समाज से धर्म नाम के वास्तविक अर्थ का लोप हो गया है। 'मनुष्य और यन्त्र' शीर्षक निबन्ध में श्रम के अर्थ और महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लेखक ने मनुष्य की निष्क्रियता एवं यांत्रिक युग को स्पष्ट किया है। 'साइकिल रिक्शा और एक्का' में वैज्ञानिक युग की देन का स्पष्ट करते हुए उसकी असंवेदनात्मक प्रवृत्ति को स्पष्ट किया है। आज की पूंजीवादी तथा यांत्रिक सभ्यता ने विश्व में जड़ता का आरोपण कर दिया है मनुष्यों का स्थान पशुओं को और पशुओं का स्थान आज यन्त्रों को मिल गया है कारण आज टकसाली सिक्का की सभ्यता का प्रादुर्भाव हो चुका है। 'किसान और मजदूर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने ग्रामीण और नागरिक जीवन में श्रम की मौलिकता को स्पष्ट कर नगरों और ग्रामों में श्रम की भिन्नता को प्रकट किया है और इस ओर संकेत किया है कि 'प्रकृति के संपर्क में, पृथ्वी की स्वाभाविक मिट्टी में ग्राम मनुज जब अपने श्रम का बीज बोता है तब वह कहलाता है किसान। वही जब हल बैल, अन्न वस्त्र और लगान की कमी से नगरों में आकर अपनी श्रम शक्ति का क्रय विक्रय करता है तब हो जाता है मजदूर।'[2] 'तीसरे महायुद्ध के बाद' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने आधुनिक युग में बर्बरता की एवं विभिन्न मानवीय प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हुए अद्यतन युग के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत किया है। 'प्रत्यावर्तन : श्रम धर्म की ओर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने आधुनिक सिक्कों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए श्रम को ही जड़ धातुओं का सिक्का माना है। यही आधुनिक युग की देन है। 'साहित्यिक संस्थाओं का मन्तव्य' शीर्षक निबन्ध में आधुनिक युग में पत्र-पत्रिकाओं तथा संस्थाओं की बहुलता के

---

१ सामयिकी : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७६।

२ 'धरातल' : श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २५।

कारण को स्पष्ट करते हुए साहित्यकार के वास्तविक कार्यों का मूल्यांकन प्रस्तुत किया है।

'साकल्य' नामक संग्रह के 'युग का भविष्य' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने पृथ्वी पुत्र विनोबा के भूदान यज्ञ एवं गांधी के रचनात्मक कार्यों के प्रति निष्ठा व्यक्त करते हुए राजनीति की प्रवंचना का उल्लेख किया है। मानव अपने स्वार्थ में लिप्त होकर भविष्य की भीषणता का आभास नहीं पाता है। मुद्रागत अर्थ शास्त्र से देश को स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। उसकी उपलब्धि के लिए रचनात्मक एवं सहकार्यों जैसे सजीव माध्यम की आवश्यकता है। विनोबा जी अपने भूदान यज्ञ की सजीव चेतना से पुनः मानव को कृत्रिम यन्त्र युग से प्रकृति की ओर अग्रसित करना चाहते हैं। 'साहित्य का व्यवसाय' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने इस व्यापारिक युग में साहित्य समाज और राजनीति की स्वार्थ सजग शक्तियों की ओर संकेत किया है जो अपनी परिपुष्टता के लिए सतत प्रतिस्पर्द्धा में लीन हैं। साहित्य में स्वार्थपरता के कारण भ्रष्टाचार फैल रहा है। 'हिन्दी का आन्दोलन' शीर्षक निबन्ध में हिन्दी आन्दोलन को साम्प्रदायिकता से ऊपर माना गया है। यद्यपि 'राष्ट्रभाषा' की आवश्यकता एकता और सुबोधता के लिए है। सुबोधता की दृष्टि से हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि भारत के लिए ही नहीं विश्व के लिए भी स्पृहणीय है। उसके पीछे जनता का तन मन और जीवन है। उसी के द्वारा भाषा और लिपि का स्वरूप बना है।[1] परन्तु भाषा सम्बन्धी द्वन्द्व राजनीतिक नेताओं के द्वारा उठाया हुआ है जिसमें वे निरीह जनता का नेतृत्व करते हुए अपनी मनोकामना के लिए उनका शोषण करते हैं। 'जनक्रान्ति का आह्वान' शीर्षक निबन्ध में मानवजीवन के इतिहास के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करते हुए युग का भावात्मक रूप चित्रित किया है। 'छायावाद के बाद' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने हिन्दी कविता के पतन की ओर संकेत किया है। छायावाद के उपरान्त प्रगतिवाद ने साहित्य को काव्य से गद्य की ओर उन्मुख कर लिया। प्रयोगवाद में प्रगतिवाद की वास्तविकता तथा छायावाद की सरलता किन्हीं अंशों तक विद्यमान रही लेकिन लेखक की दृष्टि में मुक्त छन्दों के रूप में हुई दुर्दशा असह्य और अक्षम्य है।[2] 'साहित्य में अश्लीलता' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने समाज में फैली अश्लीलता का प्रतिरोपण साहित्य में किया है। समाज में व्याप्त अश्लीलता ही आज साहित्य में आकर उसे दूषित किए हुए है। 'पद्मनाभिका' नामक संग्रह में 'नूतन पुरातन' शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने अतीत और भविष्य की आँख मिचौनी का उल्लेख करते हुए अतीत की अदृश्यता का आभास भविष्य में प्रतिबिम्बित किया है। वस्तुतः वाह्यावरण बदलने पर भी दोनों का अन्तःकरण एक ही है। आज

---

१ साकल्य श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ४७।
२ वही, पृ० १६२।

विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है लेकिन उसकी गत्यात्मकता तथा स्पन्दन यह नष्ट नहीं कर सका है नहीं ले सका है।

आधान शीर्षक निबन्ध संग्रह की विश्वविद्यालयों में साहित्य का ह्रास, 'धुरीहीनता एवं नैतिक समस्या' उद्योग और आत्मयोग लोककला का आधुनिकीकरण सांस्कृतिक चेतना तथा रचनात्मक योजना आदि रचनाओं में भी लेखक ने सामयिक समस्याओं का चिन्तन किया है। 'विश्वविद्यालयों में साहित्य का ह्रास' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने हिन्दी साहित्य के पठन पाठन का प्रारम्भ विश्वविद्यालयों की उच्चतर कक्षाओं में होने पर भी विश्वविद्यालयों की शिक्षा प्रणाली एवं वहाँ पर व्याप्त व्यापारिक मनोवृत्ति का चित्रण किया है। वस्तुतः आज विश्वविद्यालय शिक्षा के केन्द्र तो नाम मात्र ही रह गये हैं वह तो व्यापारिक एवं राजनीतिक अखाड़े बन गए हैं जहाँ छात्रों के मानसिक विकास की ओर ध्यान न देकर अपने स्वार्थों में निरत अध्यापकों एवं छात्रों में निरंतर संघर्ष होते रहते हैं। धुरीहीनता एवं नैतिक समस्या में लेखक ने धुरीहीन समाज के चित्र को प्रस्तुत कर आधुनिक युग में नैतिक समस्या का उल्लेख किया है। एक ऐसे युग में जबकि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ प्रधान हो गया है, सबकी ऐतिहासिक परिणति एक सी है धुरीहीन होती जा रही है तब नैतिक दृष्टिकोण के द्वारा धुरीहीनता के दुष्परिणाम का भी सजग किया जा रहा है।[1] उद्योग और आत्मयोग शीर्षक निबन्ध में लेखक ने आर्थिक परवशता, मानसिक परवशता, नैतिक अराजकता, अनुशासनहीनता, शिक्षा प्रणाली में असंस्कारिता आदि के माध्यम से वर्तमान युग की औद्योगिक देन को स्पष्ट करते हुए मानव को मुक्ति एवं शांति के लिए पुनः प्रकृति की ओर आकृष्ट किया है, तथा गांधी जी के रचनात्मक कार्यों के माध्यम से आत्मयोग को प्रधान माना है। लोक कला का आधुनिकीकरण शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत लेखक ने लोक कला के आधुनिकीकरण के प्रति नेहरू जी के विचारों को प्रकट किया है। उनका मत है कि इससे लोक कला की स्वाभाविकता और सरलता नष्ट हो जायगी। नेहरू जी के मत में कला को जनता के जीवन से, उसकी स्वतः प्रेरणा से प्रस्फुटित होना चाहिए किसी प्रचार या प्रभाव से नहीं।[2] सांस्कृतिक चेतना शीर्षक निबन्ध में विनोबा जी द्वारा काशी में हुए स्वच्छता आन्दोलन से नागरिकों में सोई हुई सांस्कृतिक चेतना पुनः जाग्रत हो गई लेकिन कुछ क्षण मात्र के लिए ही। मानव में शारीरिक रुग्णता के सदृश्य ही देश में सांस्कृतिक रुग्णता भी परिव्याप्त है। रचनात्मक योजना में लेखक ने आधुनिक मानव की अन्तश्चेतना एवं संस्कारिकता के अभाव की ओर दृष्टिपात करते हुए मनुष्य के नैसर्गिक विकास के रूप में शुचिता, शिष्टता, सहृदयता, सेवा, सुव्यवस्था आदि के रचनात्मक कार्यों की

---

१ आधान : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०५।
२ वही, पृ० १२५।

ओर सक्त किया है। लेखक न इस निबन्ध मे जन सस्कृति को सजीव बनाने में अपने सुझावो को प्रस्तुत किया है।

'वृत्त और विकास सग्रह के नेहरू जी विचार और व्यक्तित्व' शीर्षक निबन्ध मे नेहरू जी के व्यक्तित्व को प्रकट करते हुए उनके विचारो का आरोपण किया गया है। नेहरू जी वे साधन और साध्य म भिन्नता थी। वह गाधीवाद को स्वीकार करते हुए भी अस्वीकार करते है, उसी प्रकार सस्कृति को शिरोधार्य करके भी वे उस अगीकार नही कर सके।[1] नेहरू जी की काव्यानुभूति' शीर्षक निबन्ध म भी लेखक ने नेहरू जी की आत्मकथा 'मेरी कहानी' के आधार पर नेहरू जी की काव्य प्रशसा एव प्रकृति के प्रति अनुराग आदि को प्रकट किया है। लेखक न केवल भाव पक्ष के माध्यम से ही उनके सामयिक विचारों का प्रतिपादन किया है। यन्त्र युग की कविता शीर्षक निबन्ध मे लेखक न वातावरण और सचरण के अन्तर्गत काव्य साहित्य म विभिन्न प्रभावो को स्पष्ट करते हुए उनके जीवन मूल्यो मे आर्थिक और कृत्रिम आदर्शों का निरूपण किया है। लेखक ने इसमे राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक आदि परिस्थितियो के साथ ससार म व्याप्त साम्यवाद और पूजीवाद की यान्त्रिकता का उल्लेख किया है। आज साहित्य मे राजनीति और शिक्षा दोनो का ही प्रभुत्व हो गया है। विश्वविद्यालयीन समीक्षा सामयिक निबन्ध म लखक ने 'आज साप्ताहिक विशेषाक म प्रकाशित हिन्दू विश्वविद्यालय काशी के अग्रेजी प्राध्यापक डा० रामअवध द्विवेदी के एक लेख आधुनिक हिन्दी आलोचना के प्रतिमान के आधार पर लेखक ने आलोचना साहित्य के सर्वेक्षण का प्रस्तुत करते हुए रामअवध जी के विचारो को उद्धृत किया है लेकिन निष्कर्ष और निदान रूप म लेखक ने स्वय के विचारो का निरूपण करते हुए विश्वविद्यालयीन वातावरण एव वहा की समीक्षा प्रवृत्ति का उदघाटन किया है। लेखक न विश्वविद्यालयीन समीक्षा को अकादमिक समीक्षक के सदृश्य ही अनुतिमकन माना है जिसम मौलिकता का अभाव है। 'युगाभास शीर्षक निबन्ध म लेखक ने समसामयिक परिस्थितियो की विभिन्न समस्याओ म से बेकारी और अनुशासनहीनता की समस्याओ के कारणो का उदघाटन करते हुए उसके निदान रूप म सुधार के लिए अपने सुझावो को व्यक्त किया है। लेखक गाधी जी के विचारो एव उनके रचनात्मक कार्यो के अधिक सन्निकट है। वह उसी के माध्यम से इन समस्याओ का निराकरण करना चाहता है। समवत सग्रह के विज्ञान और ग्रामोद्योग' 'प्रकृति और सहअस्तित्व तथा साधन और माध्यम शीर्षक निबन्धो के अन्तर्गत लेखक न विज्ञान की प्रगति एव उसके प्रभावो को प्रत्यक्ष करते हुए गाधी जी के ग्रामोद्योग, सर्वोदय सहअस्तित्व, प्रकृति के प्रति अनुराग तथा अपने प्राचीन उद्योग धन्धो की प्रगति आदि को निरूपित किया है और इस प्रकार से समकालीन समस्याओ के प्रति अपने वैचारिक चिन्तन को जागरूकता का परिचय दिया है।

---

१ वृन्त और विकास, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११-।

[४] आलोचनात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति : हिन्दी साहित्य में आलोचनात्मक निबन्धों की प्रवृत्ति का रूप भारतेन्दु युग से ही परिलक्षित होने लगा था। निबन्धों की इस प्रवृत्ति में आलोचना के साथ विचारात्मकता का भी समावेश होता है लेकिन आलोचना का सम्बन्ध वस्तु के निरीक्षण तथा मूल्यांकन से रहता है जबकि विचारात्मकता का सम्बन्ध साधारण और व्यापक वृत्ति से है। कुछ विचारकों ने तो निबन्ध के इतिहास में इसी प्रवृत्ति को निबन्ध की सर्वप्रथम प्रवृत्ति मानी है। आलोचना का जो चलन हिन्दी साहित्य में चला, उसमें आलोचनात्मक निबन्ध का ही रूप सर्व प्रथम प्रतिष्ठित हुआ। साहित्यिक आलोचना का सूत्रपात प्रेमघन जी ने हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम किया।[१] डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने भी प्रेमघन को आलोचनात्मक निबंध का सर्वप्रथम प्रणेता माना है। उन्होंने पं० बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन के विषय में लिखा है 'कभी-कभी अवसर पड़ने पर उन्होंने आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं। इन्हीं लेखों से हम आलोचनात्मक साहित्य का एक प्रकार से आरम्भ कर सकते हैं।'[२] आलोचनात्मक निबन्धों के विकास की दृष्टि से द्विवेदी युग में भी इस क्षेत्र में प्रचुर सामग्री उपलब्ध हुई। इस युग के आलोचनात्मक निबन्ध प्रायः साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक होते थे। इसके अतिरिक्त काव्यशास्त्र से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर भी इस युग में आलोचनात्मक लेख लिखे गये। द्विवेदी युग के उपरान्त शुक्लयुग में भी काव्य शास्त्र के आलोचनात्मक निबन्धों के अतिरिक्त पुस्तकों की भूमिका तथा प्रस्तावना के रूप में भी आलोचनात्मक निबन्ध लिखे गये। शुक्ल युग में इस प्रवृत्ति के निबन्धों का वास्तविक प्रसार हुआ तथा उच्च कोटि के आलोचनात्मक निबन्ध लिखे गये। शुक्लोत्तर युग में इस पद्धति का सम्यक विकास हुआ और निबन्धों में इसी प्रवृत्ति को प्राथमिकता प्रदान की गई। डा० ओंकारनाथ शर्मा ने तो इस युग को आलोचनात्मक निबन्ध युग ही मान लिया है।[३] वह लिखते हैं कि 'अद्यतन युग तो वास्तव में आलोचनात्मक निबन्धकारों का ही युग है। यदि इसे आलोचनात्मक निबन्ध युग कहें तो भी कोई अनौचित्य नहीं।'[४] आलोचना प्रवृत्ति की प्रमुखता का उद्घोष करते हुए डा० रामरतन भटनागर का भी यही कथन है कि 'विचारात्मक निबन्ध के क्षेत्र का प्रसार अधिक है और उसमें साहित्यिक तथा समीक्षात्मक निबन्धों को भीषता मिली है।'[५] अद्यतन युग के आलोचनात्मक निबन्धों में प्रमुखता साहित्यिक, व्यावहारिक, पुस्तक परिचयात्मक

---

१ 'प्रेमघन सर्वस्व' (द्वितीय भाग) पृ० १५ (भूमिका)।
२ हिन्दी की गद्य शैली का विकास : डा० जगन्नाथ शर्मा, पृ० ५४।
३ 'हिन्दी निबन्ध का विकास' : डा० ओंकार नाथ शर्मा, पृ० २४६।
४ वही पृ० ७१।
५ 'अध्ययन और आलोचना' : डा० रामरतन भटनागर, पृ० ३४२।

काव्यशास्त्र से सम्बन्धित विषयों, भाषा विषयक समस्या तथा शोधपरक समस्याओं पर विविध आलोचनात्मक लेख प्रस्तुत किए गए। डा० गुलाबराय के मत में तो 'आज का हिन्दी निबन्ध साहित्य अधिकांश में आलोचना की ओर दौड़ रहा है।'[1] निबन्ध की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री चन्द्रबली पाण्डेय, डा० नगेन्द्र डा० सत्येन्द्र डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० भगीरथ मिश्र डा० विनयमोहन शर्मा डा० रामविलास शर्मा, डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' डा० रांगेय राघव, डा० देवराज, श्री शिवदान सिंह चौहान श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त श्री अमृतराय, श्री यशपाल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी जी के प्राय समस्त निबन्ध संग्रहों में आलोचनात्मक निबन्ध उपलब्ध होते हैं। इन आलोचनात्मक निबन्धों में साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त काव्य शास्त्र से सम्बन्धित विषय, विभिन्न लेखकों एवं कवियों की भाव एवं कला दृष्टि के आधार पर आलोचना के अतिरिक्त व्यावहारिक सैद्धान्तिक तथा पुस्तक परिचयात्मक आलोचना प्रवृत्ति में ओतप्रोत निबन्धों का रूप परिलक्षित होता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी' 'धरातल', साकल्य', पदमनाभिका, आधान 'वृन्त और विकास', 'समवेत, तथा 'परिक्रमा निबन्धात्मक रचनाओं में लेखक की आलोचनात्मक मनोवृत्ति का परिचय उपलब्ध होता है। साहित्यिकी निबन्ध संग्रह के व्रजभाषा का माधुर्य विलास शीर्षक निबन्ध में लेखक ने युगों पूर्व व्रजभाषा साहित्य में शृंगार का माधुर्य विलास स्पष्ट किया है जिसमें उस साध्य पुरुष रास विहारी की प्रणय क्रीडा का हृत्कम्पन है नारी रूप निखिल प्रकृति का विरह क्रन्दन है। लेखक ने व्रजभाषा के अनेक कवियों का दृष्टान्त देते हुए यह सिद्ध किया है कि भक्तों की कविता में अन्तर्चेतना की निगूढ गाम है शृंगारिकों की कविता में बहिर्चेतना का प्रणयाकुल श्वासोच्छवास।[2] 'नव पत्रकों में सौंदर्य और प्रेम शीर्षक निबन्ध में लेखक ने सौंदर्य और प्रेम का विश्लेषण किया है। सांसारिक मनुष्यों की दृष्टि में सौंदर्य वासनात्मक प्रेम के उद्रेक का द्योतक है। परन्तु इसके विपरीत सौंदर्य एक मनोहर नीरव प्रश्न है, वह दृश्य वस्तु नही कल्याणमयी चेतना है।[3] 'औपन्यासिकता पर एक दृष्टि' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने टाल्सटाय के उपन्यास पुनर्जीवन के आधार पर उपन्यास कला का स्पष्ट करते हुए टाल्सटाय की कला की ओर दृष्टिपात किया है। लेखक ने कलाकार और विचारक, यथार्थवाद और आदर्शवाद के आधार पर पाश्चात्य लेखक टालस्टाय तथा तुर्गनेव की तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की है। काशी के साहित्यिक हास्य रसिक' शीर्षक निबन्ध

---

१ मेरे निबन्ध डा० गुलाब राय।

२ साहित्यिकी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २९।

३ वही पृ० ३२।

म लखक न दशनशास्त्र का स्पश करते हुए वाणी के साहित्यिक हास्य रसिका म गोस्वामी तुलसीदास, कबीरदास आदि का उल्लेख करते हुए आधुनिक युग म भार तेन्दु हरिश्चन्द्र, प० प्रतापनारायण मिश्र प० बदरीनारायण चौधरी आदि तथा भारतेन्दु के उत्तरकालीन कवियो म प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर लाला भगवान दीन, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल श्री प्रेमचन्द, प्रसाद बाबू अन्नपूर्णानन्द पाण्डेय बचन शर्मा उग्र बाबू कृष्णदेव प्रसाद गौड 'बेढब' आदि के साहित्य म व्याप्त हास्य रस को स्पष्ट किया है। भारतेन्दु के जीवन पर एक दृष्टि शीषक निबन्ध मे लेखक ने भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व एव कृतित्व के माध्यम स उनकी साहित्यिक प्रतिमा को प्रतिबिम्बित किया है। भारतेन्दु जी का साहित्यिक हास्य शीषक निबन्ध म भारतेन्दु क साहित्यिक उद्देश्य भारतीयता के उत्थान को प्रकट करते हुए भारतेन्दु जी के साहित्य म हास्य व्यग्यात्मकता का उदाहरण देते हुए उनकी चिन्तन एव कीतन प्रधान कविताओ एव प्रहसनो म व्याप्त हास्य को इगित किया है। इसके साथ ही उनक हसमुख स्वभाव क उदाहरण प्रस्तुत किय हैं। लखक न उनक कुछ चुटकुलो को प्रस्तुत किया है। समालोचना की प्रगति शीषक निबन्ध म लखक ने समालोचना साहित्य के क्रमिक विकासात्मक इतिहास को प्रत्यक्ष करते हुए प्रत्यक युग म समीक्षा की आत्मा को स्पश किया है। नयी समालोचनाओ क सम्बध म लखक का मत है कि नयी समालोचनाओ म न तो पद्मसिंह जी की चुलबुलाहट है न मिश्रबन्धुओ का आफिशियल रिमाक न द्विवेदी जी का ऐहिक कवि परिचय न शुक्ल जी का गुरु गहन शास्त्रीय विश्लेषण है केवल हृदय सन्तरण या रस सचरण। सरलता ही इनका गुण है तरल अभिव्यक्ति इनकी शली है। ये ठस नहीं आद्र हैं।'[1] हमार साहित्य का भविष्य' शीषक निबन्ध म लेखक न मध्य युग को दष्टि म रखते हुए वतमान काल के उत्पीडित जगत क साहित्य की अन्तिम परिणति का उल्लख किया है। इसके अतिरिक्त श्री शातिप्रिय द्विवेदी के इस निबन्ध सग्रह म अन्य आलो चनात्मक निबन्धो म गोदान और प्रमचन्द' सास्कृतिक कवि मैथिलीशरण, साकेत मे उर्मिला सहज सुषमा के कवि गोपालशरण' गाहस्थिक रचनाकार सियारामशरण एकान्त के कवि मुकुटधर' गद्यकार निराला प्रगतिशील कवि पन्त, नीहार म करुण अध्यात्म की कवि महादेवी तथा जनेन्द्र के विचार' शीषक निबन्ध सगहीत हैं। जनेन्द्र के विचार शीषक निबन्ध मे लेखक ने जैनेन्द्र की कृति जनेन्द्र के विचार क आधार पर उनकी वचारिकता सहानुभूति, मनोवज्ञानिकता आदि के आधार पर उनके साहित्य म व्याप्त उन्ही विचारो को प्रकट किया है जो जनेन्द्र ने केवल एक कृति म ही सगहीत कर दिये है। जनेन्द्र का साहित्यिक व्यक्तित्व लेखक मनोवज्ञा निक तथा कवि के रूप मे प्रस्फुटित हुआ। उसी रचना के आधार पर लेखक ने

---

१ साहित्यकी श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ११८।

विचारो के साथ उनकी भाषा शैली तथा कहानी-कला की विशेषताओ की ओर भी इंगित किया है। इसके अनन्तर उन्होंने जैनेन्द्र और प्रेमचन्द की भिन्नता को उनकी कहानी कला एवं साहित्यिक भिन्नता की दृष्टि से स्पष्ट किया है।

युग और साहित्य नामक निबन्ध संग्रह के साहित्य के विभिन्न युग शीर्षक निबन्ध को लेखक न पाच भागो मे विभाजित करते हुए हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु युग द्विवेदी युग छायावाद युग, प्रगति युग तथा प्रयोग युग आदि का विश्लेषण करते हुए समसामयिक वातावरण की सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो की आर सकेत किया है। इससे पूर्व लेखक न भारतीय हिन्दी साहित्य के पूर्व इतिहास को विवेचित किया है। युगो का आदान' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे लेखक न इस परिवर्तनशील काल म प्राचीन युगो का नवीन युग के आदान रूप मे अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। *प्रत्येक युग अपने पूर्व युग अथवा युगो स प्रभावित अवश्य होता है।* विभिन्न युगो न जीवन को विभिन्न चीजें जैसे भक्ति काल म साहित्य और जीवन को दार्शनिक जागरूकता, शृगार काल न रसात्मकता तथा छायावाद न भाव विस्तीर्णता"[1] प्रदान की। 'प्रगति की ओर शीर्षक निबन्ध म लेखक ने भारतीय हिन्दी साहित्य की विभिन्न क्षेत्रीय प्रगति की ओर सकेत किया है। हिन्दी कविता म उलट फेर शीर्षक निबन्ध मे लेखक ने मध्यकाल की कविता लता क आधुनिक युग म परिवर्तित रूप को स्पष्ट किया है। इतिहास के आलोक मे शीर्षक निबन्ध वस्तुत प्रस्तुत कृति के समस्त निबन्धो का केन्द्र बिन्दु है। इसम लेखक न सन ४० के सत्याग्रह स पूर्व तक की साहित्यिक, राजनीतिक तथा सामाजिक गतिविधियो का निरूपण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत विस्तृत निबन्ध को लेखक न सत्ताइस खडो म विभक्त किया है जिसमे समयानुसार मानव की परिवर्तित मनोवृत्तियो का भी चित्रण है। इसके लिए लेखक न पाश्चात्य साहित्य का भी यत्र-तत्र विश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'वर्तमान कविता का क्रम विकास शीर्षक निबन्ध म लेखक न छायावाद की पृष्ठभूमि के रूप म, भारतेन्दु और द्विवेदी युग के उन्नायक कवियो के रचना क्रम के अवलोकन की दृष्टि से श्रीधर पाठक, जयशकर 'प्रसाद' तथा मैथिलीशरण गुप्त को अपने निबन्ध का आधार बनाया है। 'छायावाद और उसके बाद' शीर्षक निबन्ध म लेखक ने सन १४ स सन १७ के महायुद्ध के परिणाम स्वरूप क्रान्ति एव शान्ति का चित्रण काव्य जगत के विशिष्ट युगो के माध्यम स चित्रित किया है जिसमे उस युग के वादो का उल्लेख भी है तथा भावनाओ का चित्रण भी। छायावाद और उसके बाद के समाजवाद, प्रगतिवाद आदि का चित्र अंकित करने मे लेखक न अपनी लेखनी का आश्रय लिया है। लेखक ने प्रगतिशील साहित्य की कल्पना शुक्ला वक्षस्तिष्ठत्यग्ने' रूप मे की है लेकिन कविता की युग-युग मे विकास एव प्रसार रूप म कल्पना की है।

१ युग और साहित्य', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० २१।

कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ शीर्षक निबन्ध में मनुष्य के आध्यात्मिक मनोविकास जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय आदि का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक युग में राजनीतिक अभिव्यक्ति की भाषा में लेखक ने इन्हें जागरण, सुधार और क्रान्ति रूप में चित्रित किया है। साहित्य में यही राजनीतिक अभिव्यक्तियाँ अपने विभिन्न रूपों में समाविष्ट हुई हैं। प्रारम्भिक आधुनिक काल जागरण काल है द्विवेदी युग से गांधी युग तक जागृति और सुधार का काल रहा है और प्रगतिशील युग उन सुधारों की सीमा पार करके क्रान्ति के लिए लालायित है। प्रगतिशील युग में पूर्व की ही सामाजिक और साहित्यिक प्रवृत्तियाँ हैं उसका कोई प्रगतिशील सम्भार नहीं है। इन निबन्धों के अतिरिक्त लेखक ने प्रस्तुत कृति में विभिन्न साहित्यकारों की कृतियों में भाव एवं कला की दृष्टि से अनुभूति तथा अभिव्यक्ति को प्रस्तुत किया है तथा उसमें युग स्पर्श को भी रूपायित किया है। इन निबन्धों के शीर्षक क्रमशः प्रसाद और कामायनी प्रेमचन्द और गोदान निराला तथा पन्त और महादेवी आदि हैं।

सामयिकी में संगृहीत शरच्चन्द्र शेष प्रश्न शीर्षक निबन्ध में लेखक ने शरतचन्द्र के शेष प्रश्न उपन्यास की अरोचकता की ओर संकेत करते हुए इस उपन्यास ने मान कर जीवन का अवगणित माना है।[1] शेष प्रश्न में शरतचन्द्र घोर यथार्थवादी, जटिल और रुक्ष हैं। इसमें यथार्थवाद प्रत्यक्ष न होकर उलटे हुए रूप में अप्रत्यक्ष है। कलात्मक गूढ़ता के अन्तर्गत लेखक ने शेष प्रश्न को विश्लेषणात्मक उपन्यास मानते हुए औपन्यासिक कला की दृष्टि से उसकी आलोचना प्रस्तुत की है। आधुनिक हिन्दी कविता के मार्ग चिह्न शीर्षक निबन्ध में लेखक ने राष्ट्रीयता संस्कृति और कला की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता में पाँच कालों का प्रतिनिधित्व करने वाली पाँच कविता पुस्तकों— भारत भारती कामायनी प्रिय प्रवास पल्लव तथा मिट्टी के फूल —*का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उपादान के अन्तर्गत लेखक ने* साहित्य निर्माण के मुख्य उपादानों—राजनीति संस्कृति शक्ति और कला—की ओर संकेत किया है। शुक्ल जी का कृतित्व शीर्षक आलोचनात्मक लेख को चार खण्डों में विभक्त करते हुए लेखक ने उसमें भी अन्य उप शीर्षकों के द्वारा शुक्ल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रतिपादित करते हुए साहित्य के क्षेत्र में उनके विचारों को स्पष्ट किया है। लेखक की दृष्टि में 'शुक्ल जी तत्त्वविद और रासायनिक साहित्यकार थे उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के अंगों में निबन्धकार समीक्षक अनुवादक, कोशकार तथा कवि रूप परिलक्षित होते हैं। यद्यपि उनकी लोकप्रियता निबन्धकार और समीक्षक रूप में प्रतिष्ठित हुई है लेकिन लेखक ने उन्हें मूलतः कवि रूप में ही अधिक माना है।

---

१ सामयिकी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६०।

'धरातल' नामक निबन्ध संग्रह में 'तुलसीदास का सामाजिक आदर्श' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने तुलसीदास कृत रामचरितमानस के मानस जगत अथवा मनोजगत को स्पष्ट किया है जो सियाराममय है तथा रामराज्य में ही उनका अहर्निश निवास है।[1] तुलसीदास जी का रामराज्य विश्व व्यापी स्नेह का साम्राज्य है। लेखक ने समाज के मूलाधार वर्णाश्रम, और, धर्म, प्रतिस्पर्द्धा नारी का व्यक्तित्व युग विकृति, रामराज्य आदि शीर्षकों के अन्तर्गत रामराज्य युग का विश्लेषण किया है जिसमें अधिकारों की होड़ नहीं प्रत्युत् कर्तव्यों की होड़ थी तथा वह 'योग कर्मसु कौशलम' का युग था।[2] 'सूरदास की काव्य साधना' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने प्रकृति पुरुष केन्द्र बिन्दु ग्रामीण जीवन, भ्रमरगीत, भाव पूजा, रस और कला आदि के अन्तर्गत सूरदास के काव्य साहित्य के भाव एवं कला पक्ष को स्पष्ट किया है। सूरदास की तात्कालिक परिस्थितियों का भी लेखक ने चित्रण किया है। सूरदास पुष्टिमार्गी कवि हैं तथा प्रकृति पुरुष की रस साधना ही उनकी काव्य साधना है।[3] सूर काव्य का आलम्बन कला पुरुष है जो स्वयं काव्यमय है तथा उनका विहार स्थल ग्रामीण क्षेत्र है। भ्रमर गीत प्रकृति का पुरुष के प्रति मधुर रसाग्रह है। वह भाव में निहित है, अन्त में भाव की ही विजय होती है।[4] सूर शृंगार रस के उत्कृष्ट कवि हैं लेकिन उनका वात्सल्य रस में भी बेजोड़ है। सूरदास ने शृंगार रस के अन्तर्गत अपने गीत काव्यों में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का उद्घाटन किया है। उनके गीतों में आत्म-साधना है।

'साकल्य' नामक निबन्ध संग्रह के 'ग्राम्य जीवन के काव्यचित्र' शीर्षक के अन्तर्गत लेखक ने काव्य में निहित ग्राम्य जीवन के चित्रों को प्रस्तुत किया है। ब्रज-भाषा में ग्रामगीतों की बहुलता थी। आधुनिक युग में भी विशुद्ध ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित कविताएँ लिखी गयीं लेकिन इस युग में छायावाद में प्रकृति का रूप भिन्न था। 'प्रसाद और प्रेमचन्द की कृतियाँ' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने दोनों को सम-कालीन घोषित करते हुए भी उनमें निहित भिन्न युगों की ओर संकेत किया है। 'वर्मा जी के उपन्यास' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने बाबू वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास 'प्रत्यागत' की समीक्षा को प्रस्तुत करते हुए उसे एक सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना है। 'गुप्त बन्धु और छायावाद' शीर्षक निबन्ध में बाबू मैथिलीशरण गुप्त तथा बाबू सियारामशरण गुप्त जी के काव्य साहित्य के क्रमिक विकास एवं उस पर पड़े छायावाद

१ धरातल, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ९८।
२ वही पृ० १०० १०१।
३ वही, पृ० ११०।
४ वही, पृ० १११।

के प्रभाव को स्पष्ट किया है। 'पत का काव्य जगत' शीर्षक निबंध में प्रकृति की उपासना, वीणा से युगात तक, युगवाणी और ग्राम्या, नयी रचनाएँ आदि के अन्तर्गत श्री सुमित्रानन्दन पत जी के काव्य साहित्य के कला एवं भाव पक्ष को प्रकट करने के साथ उनकी विचारधारा के क्रमिक विकास की ओर भी दृष्टिपात किया है। पंत प्रकृति के उपासक थे तथा उन्होंने ही हिन्दी कविता में प्रकृति की प्रतिष्ठापना की है।[1] पंत के 'प्राकृतिक दर्शन में उनकी स्वतंत्र दार्शनिक विचारधारा अन्तर्निहित है। महादेवी की मधुर वेदना' शीर्षक निबंध में लेखक ने फ्रायडियन दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए विराट पुरुष का प्रेयसी हृदयोल्लास करुणा का मांगल्य, अभिव्यक्ति और अनुभूति वेदना और आराधना, साधना का स्वरूप आदि के अन्तर्गत महादेवी वर्मा की काव्यसाधना में उनकी विरहानुभूति को प्रकट किया है। नयी हिन्दी कविता' शीर्षक निबंध में लेखक ने छायावाद के पश्चात की धारा प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'छायावाद आधुनिक औद्योगिक युग के पूर्व के भाव जगत का न प्रतम काव्योत्कर्ष था प्रगतिवाद और प्रयोगवाद हमारे साहित्य में यत्र युग के काव्यारम्भ हैं।'[2] नयी कविता के पाच रूप' शीर्षक निबंध में प्रगतिवाद प्रयोगवाद छायावाद से निःसृत गीत के अतिरिक्त नयी कविता के अन्य और दो रूप—ग्राम्य बोली के आंचलिक गीत तथा ग्राम्य बोली की स्वाभाविकता से प्रभावित सहज सरल गीत—का विश्लेषण गीतों के माध्यम से किया है। 'दिव्या' शीर्षक आलोचनात्मक निबंध में लेखक ने प्रगतिशील कहानी तथा उपन्यासकार यशपाल जी के बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास 'दिव्या' की आलोचना औपन्यासिक तत्वों के आधार पर कथानक और कथा शिल्प के अन्तर्गत विवेचित की है। 'हिन्दी का आलोचना साहित्य' शीर्षक लेख में रीतिकाल से आलोचना साहित्य का प्रारम्भ लेखक ने माना है। बीसवीं सदी में तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव हुआ। द्विवेदी युग में आचार्य श्यामसुन्दर दास जी ने सैद्धान्तिक समीक्षा का प्रवर्तन किया तथा शुक्ल जी ने साहित्यिक सिद्धान्तों को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया। लेखक ने स्वयं काव्य में एक नवीन शैली भावात्मक आलोचना में अन्तर्निहित की जिसकी प्रारम्भ में उपेक्षा हुई लेकिन अन्तत उसे प्रामाणिक समालोचना में स्थान मिल गया।

पद्मनाभिका नामक निबंध संग्रह में सर्वप्रथम निबंध गोस्वामी तुलसीदास की भगवद्भक्ति में लेखक ने तुलसीदास जी की समसामयिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए उनके जन्म तथा दृष्टिकोण का उल्लेख किया है। तुलसीदास जी का राम चरित मानस यद्यपि स्वान्तः सुखाय है लेकिन वह साम्प्रदायिक विद्वेषों से अलग

१ सावरूय, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० १२४।
२ वही पृ० १६३।

है। लेखक ने उनके निर्विकार, आध्यात्मिक तथा आत्मोज्ज्वल स्वान्त सुख को इसमें स्पष्ट किया है। 'पन्त जी की प्रतिमा' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी की मुक्तक कविताओं का संग्रह 'प्रतिमा' का विश्लेषण उनके अन्य काव्य ग्रन्थों को विश्लेषित करते हुए किया है। प्रतिमा' में अरविन्द दर्शन का प्रभाव है जिसका केन्द्र मानव में आत्मानुभूति का उद्रेक है। अरविन्द दर्शन में आत्मचेतना के विभिन्न स्तरों में से प्रतिमा' में उसका अन्तिम स्तर परिलक्षित होता है। लेखक ने उनके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है। यशपाल की कला और भावना' शीर्षक निबन्ध में यशपाल के क्रान्तिकारी रूप का परिचय तथा उनका कलात्मक व्यक्तित्व अन्तर्निहित है। वस्तुतः उन्होंने 'कवि का भाव जगत और कहानीकार का वस्तुजगत लेकर अपनी लेखनी को अग्रसर किया। चट्टान जैसे ठोस यथार्थ के भीतर निर्झर की तरह उनका भावुक हृदय अन्तर्हित है।'[1] प्रगतिशील युग में यशपाल की कहानियों और उपन्यासों में प्रेमचन्द जी के बाद की युग चेतना मिलती है। 'नया कथा साहित्य' शीर्षक निबन्ध में कथा साहित्य में कला और जीवन की दृष्टि से युग परिवर्तन का विश्लेषण करते हुए अतीत और वर्तमान, सामयिक समस्याएँ सांस्कृतिक पुनरुत्थान, सोवियत क्रान्ति, साहित्यिक गतिविधि प्रेमचन्द जी के बाद कला और जीवन पाश्चात्य उपन्यास तथा हिन्दी के नये कथा लेखक आदि के अन्तर्गत लेखक ने हिन्दी के नये कथा साहित्य पर अतीत और वर्तमान की भिन्नता एवं विभिन्न पाश्चात्य तथा अतीत के प्रभावों को स्पष्ट किया है।

वृन्त और विकास नामक निबन्ध संग्रह के 'छायावाद' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने छायावाद के पूर्व की परिस्थितियों को स्पष्ट करते हुए उसके प्रादुर्भाव की ओर संकेत किया है। इसके अतिरिक्त भारतीय संस्कृति से निःसृत मध्य युग का भी स्पष्टीकरण लेखक ने इसमें किया है। कला की दृष्टि से छायावाद ने प्रकृति के बाह्य रूप को अपनाया किन्तु भाव की दृष्टि से प्रकृति को आन्तरिक रूप से प्राणवन्त किया। इस प्रकार छायावाद की विशेषता प्रकृति के सचेतन व्यक्तित्व की प्रतिस्थापना है।[2] छायावाद में नारी का अभिषेक करते हुए उसे सम्मान प्रदान किया गया तथा नारी के विविध रूपों में प्रकृति अपने सगुण रूप में विद्यमान हो गई। इस युग में लोकपरक काव्यों का प्रणयन हुआ। लेखक ने छायावाद के प्रति विभिन्न साहित्यकारों के मतों को भी प्रस्तुत किया है। 'पन्त की काव्य प्रगति और परिणति' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने क्रम विकास, समन्वय और अभिव्यक्ति तथा कला और रागात्मकता शीर्षक के अन्तर्गत श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी के साहित्य के क्रम विकास को प्रस्तुत करते हुए उनके विचारों के क्रमिक विकास का भी आलेखन किया है। इसके अतिरिक्त लेखक

---

१ पद्मनाभिका, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५९।
२ 'वृन्त और विकास, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४६।

त पन्त के काव्य साहित्य की कलात्मकता तथा भाव भिन्नता की दृष्टि से उनकी रागात्मक वृत्ति के प्रति दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने श्री जैनेन्द्र कुमार जी के कहानी संग्रह 'आत्म [illegible]' के आधार पर जैनेन्द्र जी की भावात्मक दृष्टि का परिचय दिया है। लेखक ने इस प्रकार स्पष्ट किया है 'इनमें अभीष्ट नारी चरित्र को पुनः कल्पनाओं के साथ और सौन्दर्य में साकार कर अलौकिक रूप से प्यार किया था, यही था उनका अपना परिणय।'[1] कहानियों में नारी का प्रादुर्भाव समाज के विषम धरातल पर बड़ी स्वाभाविकता से किया है। कारण के मानस की स्खलित दृष्टि कहानियों के अतिरिक्त उनकी कविताओं में भी परिलक्षित होती है। प्रसाद की 'आँसू' उनकी कविताओं का संग्रह है जिसमें उनकी सृष्टि और दृष्टि की अभिव्यंजना सूचित होती है।'[2] लेखक ने भाव एवं कला की दृष्टि से जैनेन्द्र जी के साहित्य की समीक्षा प्रस्तुत किया है।

'समवेत' नामक निबन्ध संग्रह में 'नवीन जी की कविताएँ' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओं का विवेचन लेखक ने भाव एवं कला की दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इनकी अधिकांश कविताएँ जेल में लिखी हुई हैं जो अनुभूति प्रधान हैं। उनमें कल्पना का चमत्कार तथा शिल्प सूक्ष्मता का अभाव है। लेखक ने उनके 'कारावास में लिखे प्रेम गीतों' के स्पष्टीकरण में लिखा है 'शरीर की जड़ता में जिसका पतन रूप तरल है उसके लिए क्या कारावास क्या नन्दन निकुंज। नल के भीतर कवि हृदय की तरह, पौधे के भीतर लालित्य की तरह, शरीर के भीतर माधुर्य की तरह नवीन का प्रेम निखर उठा है।'[3] कला की दृष्टि से उनकी भाषा में हिन्दी, संस्कृत और ग्रामीण शब्दों के साथ उर्दू का भी सहयोग है। उनकी भाषा स्वच्छन्द है।

'परिक्रमा' निबन्ध संग्रह के 'कालिदास की कला सृष्टि' शीर्षक विस्तृत निबन्ध का लेखक ने काव्य और नाटक खण्डों में विभक्त करते हुए उनका भी विभाजन प्रस्तुत किया है। काव्य में दिग्दर्शन, ऋतु संहार और कुमारसम्भव, मेघदूत, रघुवंश की आलोचना तथा नाटक में पटोद्घाटन, अभिज्ञान शाकुन्तलम् शीर्षक में समस्त नाटक साहित्य के उल्लेख के साथ अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक की विवेचना प्रस्तुत की है। वस्तुतः इसमें लेखक की शास्त्रीय एवं सैद्धान्तिक आलोचना की प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। कालिदास गुप्त काल के स्वर्णिम युग में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राजाश्रित कवि थे। लेखक की दृष्टि में वह कालातीत रोमान्टिक, चिर नूतन तथा चिर पौराणिक

---

१ वृन्त और विकास, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० १४३।

२ वही पृ० १४३।

३ 'समवेत', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४८।

कवि थे।" कुछ समीक्षकों ने कालिदास को प्रकृति में नागरिक जीवन के कवि रूप में माना है लेकिन उनका नागरिक तथा प्राकृतिक युग भिन्न नहीं समझते थे। उनमें हार्दिक स्वाभाविकता थी। लेखक ने कालिदास के प्रति अरविन्द के विचारों को प्रकट किया है प्रकृति में प्राप्य ऐन्द्रिय जीवन का सजीव एवं सशक्त अनुभवन तथा सौन्दर्य की महत्ता सम्पूर्ण मानव जीवन के तत्वों को ऐन्द्रिय आलोक से प्रेषित कर उन्हें रसस्निग्ध पदावली में अभिव्यक्ति प्रदान करना, यही कालिदास की प्रथम और अन्तिम रचना की महत्ता रही है।[1] संस्कृति साहित्य के समस्त कवियों की विशेषता उनकी कलाभिव्यक्ति की विभिन्नता है। लेखक ने माघ और कालिदास की कला की तुलना करते हुए लिखा है कहा जाता है उनके (माघ) महाकाव्य में कालिदास की उपमा, भारवि के अर्थ गौरव और दण्डी के पद लालित्य का समावेश है। किन्तु वे वैयाकरण थे, अतएव स्वभावतः उनके काव्य में पांडित्य और वदग्ध्य अधिक है। कालिदास भी शब्दशिल्पी हैं किन्तु उनके काव्य शब्द प्रयोगों के लिए नहीं शब्द काव्य के लिए है। वे सरस सूक्तियाँ के उद्भावक हैं। शब्द चित्रों के अप्रतिम चित्रकार महाकवि बाण, कालिदास की सूक्तियाँ पर मुग्ध थे।[2] लेखक ने रस और भाव की दृष्टि से कालिदास के साहित्य की विवेचना की है। समष्टि के स्वर साधक रवीन्द्रनाथ शीर्षक निबन्ध में व्यक्तित्व और कला शीर्षक में भी लेखक की आलोचनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। लेखक ने रवीन्द्रनाथ के दिव्य व्यक्ति व को स्पष्ट करते हुए उनकी कला का उद्घोष करते हुए लिखा है स्वर्ग है रवीन्द्रनाथ का आध्यात्मिक ध्येय अथवा सांस्कृतिक विकास धरा है संस्कृति की लोकभूमि अथवा स्वर्ग की धारणा भूमि, आधार पीठिका। उनकी कला स्वर्ग और धरा के बीच एक सतरंगी इन्द्रधनुषी सेतु है। रवीन्द्र जी पृथ्वी के सौन्दर्य और आनन्द को ही महत्व देते थे क्योंकि उनमें सौहार्द तथा संवेदना है लेकिन स्वर्ग में इसका अभाव है। रवीन्द्रनाथ रोमान्टिक होते हुए भी क्लासिक हैं। इसी प्रकार लेखक ने 'कुसुमकुमार कवि पन्त शीर्षक निबन्ध के अन्तर्गत कवि पन्त की काव्यानुभूति तथा काव्य कला को स्पष्ट किया है। लेखक ने उनकी विभिन्न काव्य कृतियों के माध्यम से उनकी कला के क्रमिक विकास की ओर भी इंगित किया है।

व्यावहारिक आलोचनात्मक प्रवृत्ति का परिचय लेखक के 'आधान निबन्ध संग्रह में मिलता है। 'रवीन्द्रनाथ का रूपक रहस्य' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने रवीन्द्रनाथ जी की भावुकता एवं गूढ़ सांकेतिक अभिव्यंजना को प्रकट किया है जो उनके

---

१ 'परिक्रमा', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ७।

२ वही पृ० ७।

३ वही पृ० ११ १२।

४ वही पृ० १२५।

काव्य के साथ ही स्वर में भी दृष्टिगोचर होता है। लेखक की दृष्टि में काव्य आत्म-ज्योति के प्रकाशन का एक सुन्दर साधन है।[1] रवीन्द्र जी की कवि प्रतिभा ने ही उनकी अन्तर्दृष्टि को जागरूक रखा था। यही आदर्श उनके संपूर्ण साहित्य में विद्यमान है। उनका स्वर के प्रति अधिक आकर्षण था और यही स्वर सांस्कृतिक स्वरूप के रूप में उनके नाटकों और निबंधों में प्रस्फुटित मिलता है। कवि निबंधों में उनका रहस्यवादी अन्तर्द्वन्द्व भी प्रकट करता है। इनके छोटे-छोटे नाटकों में छोटे-छोटे गद्य काव्यों में भी विशुद्ध रहस्य विद्यमान रहता है।[2] प्रसाद का भाव-सृष्टि शीर्षक निबंध में प्रसाद का काव्यारम्भ ब्रजभाषा से माना हुआ है। बाद में छायावाद की सूक्ष्म व्यंजना को स्वीकार किया है जो प्रसाद के प्रारम्भिक काव्य में ही परिलक्षित हो गया था। छायावाद की यह प्रेरणा प्रसाद जी की अपनी अन्तःप्रेरणा थी। इसके अतिरिक्त जीवन तथा स्वाध्याय से भी यह अन्तःप्रेरणा मिलती है। प्रसाद ने भी जीवन और स्वाध्याय से इसे ग्रहण किया था। लेखक ने प्रसाद साहित्य में विभिन्न प्रभावों को दर्शित करते हुए अनुभूति पक्ष तथा कला पक्ष का उल्लेख किया है। प्रसाद में अनुभूति पक्ष की प्रधानता है। लेखक ने प्रसाद, महादेवी तथा पंत में भाव विलास का 'आध्यात्मिक आँख मिचौनी'[3] माना है। प्रसाद और महादेवी की करुणा तथा पंत जी की बौद्धिक सहानुभूति सभी अपने अपने क्षेत्र में निष्फल हो गये हैं। 'निराला जी की काव्य दृष्टि' शीर्षक निबंध में लेखक ने पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को कवि तथा आलोचक रूप में प्रदर्शित करते हुए उनके काव्य सम्बन्धी विचारों का निदर्शित किया है। निराला जी की दृष्टि कविमय है जिसकी एक अपनी भाव मुद्रा तथा कलात्मकता है।[4] लेकिन जहाँ उनकी आलोचनात्मक 'हास्य वक्र दृष्टि' हुई वह अपने असंतोष से पाठकों में भी एक असंतोष की भावना का उद्रेक करने लगते हैं। लेखक ने निराला जी के पंत जी और पल्लव विस्तृत लेख में अपने व्यंग्य विद्रूप किये हैं। लेखक ने उनकी व्यंग्य विद्रूप दृष्टि के उदाहरण देते हुए उनके प्रकृति प्रेम तथा भाव एवं छायावादी कला पक्ष का निरूपित किया है। निराला जी ने दो तरह के मुक्त काव्य की रचना की है—मुक्त छन्द और मुक्त गीत।[5]

'आधान' निबन्ध संग्रह में भी लेखक की सैद्धान्तिक आलोचनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन 'निबन्ध का स्वरूप' शीर्षक निबंध में होते हैं। इसमें लेखक निबंध शब्द के

---

१ आधान श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०।
२ वही पृ० २०।
३ वही पृ० ४८।
४ वही, पृ० ४८।
५ वही, पृ० ५६।

प्राचीन प्रयोगों को स्पष्ट करते हुए उसके वास्तविक अर्थ का तथा उसी के माध्यम से उसके स्वरूप को स्पष्ट किया है। लेखक ने निबन्ध के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है निबन्ध से किसी रचना का सगठित रूप व्यक्त होता है। वह एक ऐसा लेखन शिल्प है जिससे रचना का रूप विन्यास होता है। वह ऐसा वन्धान या आंतरिक छन्द है जिससे रचना सन्तुलित हो जाती है। शिल्प वैशिष्ट्य से निबन्ध के सगठित रूप में वैविध्य हो सकता है किन्तु उसका सूत्र है अविच्छिन्नता सयोजकता सम्बद्धता।[1] निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वह लेख, काव्य तथा कहानी सभी गद्य विधाओं को स्पर्श करता है। वस्तुत निबन्ध का रूप रचना के किसी भी विषय में अभिव्यक्ति पा सकता है। लेखक ने निबन्ध के विषय और शैली को विचारों की दृष्टि से तथा कला की दृष्टि से विभाजित किया है। कला की दृष्टि से लाक्षणिक व्यंजनात्मक ध्वन्यात्मक तथा व्यग्यात्मक आदि शैली हो सकती है तथा विचारों की दृष्टि से वर्णनात्मक, आलोचनात्मक दृश्यात्मक, विवेचनात्मक तथा स्वानुभूत्यात्मक आदि। प्रभाववादी समीक्षा शीर्षक निबन्ध में भारतीय हिन्दी परिषद के चतुर्दश वार्षिक अधिवेशन (काशी) की साहित्य गोष्ठी के विषय 'साहित्य शास्त्र और व्यावहारिक समालोचना' के अन्तर्गत उठायी गयी शका कि समीक्षा में परिवर्तन से साहित्य की शास्त्रीय मर्यादा के लिए सकट उत्पन्न हो सकता है का समाधान करते हुए लेखक ने प्रभाववादी समीक्षा के अन्तर्गत शास्त्रीय एव व्यावहारिक समीक्षा की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने रचना को शास्त्रीय प्रतिबन्धों से मुक्त माना है। इसी आधार पर श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी का मत है कि जब रचना शास्त्रीय नहीं है तो उसकी समीक्षा भी शास्त्रीय नहीं प्रत्युत रचना के सदृश्य ही मौलिक होती है। प्रभाववादी समीक्षा में रचना के साथ आत्मीयता की तद्रूपता रहती है। आत्मीयता की स्थापना के लिए समीक्षा में अनुभूति अपेक्षित है। अनुभूति से ही रस बोध राग-बोध भाव-बोध सौंदर्य बोध आदि होता है तथा कलाबोध भी अनुभूति के आधार पर ही होता है।[2] रचना का अनुभूति पक्ष प्रभाववादी समीक्षा में परोक्ष अनुभूति अथवा सहानुभूति के रूप में प्रत्यक्ष हुआ है। भाव के अनुरूप ही शृगार के सयोजन में कला का भी परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त 'रचना के अनुरूप शृगार की स्वाभाविकता अस्वाभाविकता अथवा सगति असगति को परखने में समीक्षा अपनी कलाविज्ञता का परिचय देती है।' अत प्रभाववादी समीक्षा में भावुकता के साथ शिल्प प्रवीणता एव कला ममज्ञता भी विद्यमान है। लेखक ने तत्कालीन साहित्य समालोचना की पद्धतियों

---

1 आधान, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० 81।
2 वही पृ० 88 89।
3 वही पृ० 90।

को स्पष्ट करते हुए उनके विषय में अपने मतों का प्रतिपादन किया है।

'आधान' के अतिरिक्त सद्धान्तिक आलोचना की प्रवृत्ति लेखक के 'वृन्त और विकास' निबन्ध संग्रह के 'नाटक और रंगमंच' शीर्षक निबन्ध में भी परिलक्षित होती है। लेखक ने नाटक को 'जीवन का कलात्मक संस्करण' माना है तथा रंगमंच को संसार का संक्षिप्त क्रीड़ा-स्थल।[1] लेखक ने जीवन के सरस संगम में इनके महत्व का प्रतिपादन किया है। नाटक और रंगमंच आदि साधनों से ही मनुष्य का मनोरंजक रंगाङ्क तथा रागोन्मेष हो सकता है। लेखक की दृष्टि में सिनेमा से यह सुलभ नहीं है और यही सुप्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर का भी मत है।[2] लेखक ने नाटक और रंगमंच के उद्भव और विकास का उल्लेख करते हुए यथास्थिति युग में जबकि साहित्य भी यांत्रिक हो रहा है, नाटक के सजीवकरण के सुनिश्चित के लिए रंगमंच को प्रोत्साहित किया है। विदेशों में भी नाटक, रंगमंच तथा मूक अभिनय को ही प्रोत्साहन देने के लिए अनेक कम्पनियों की स्थापना हो रही है। सचिन सिनेमा के इस युग में नाटक और रंगमंच आज भी दुर्लभ प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र में जगदीश चन्द्र माथुर जो स्वयं सिद्ध नाट्य प्रणेता और अभिनेता हैं अधिक प्रयत्नशील हैं। लेखक की दृष्टि में मानव के नैसर्गिक जीवन में अथवा युवाकाल में जीवन सुलभ होने पर ही नाटक और रंगमंच का पुनर्जागरण एवं विस्तार सम्भव है।

आलोचनात्मक निबन्ध प्रवृत्ति का एक अन्य रूप पुस्तक परिचयात्मक निबन्धों के रूप में भी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के 'समवेत' निबन्ध संग्रह में देखा जा सकता है। प्रस्तुत निबन्ध संग्रह में 'हार' पन्त का रचना-सूत्र तथा 'झूठा सच' एक युग निरीक्षण इसी कोटि के अन्तर्गत परिगणित किए जा सकते हैं। प्रथम निबन्ध में लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पन्त की सर्वप्रथम रचना 'हार' उपन्यास का वास्तविक परिचय दिया है जिसे पन्त जी ने केवल एक 'खिलौना' कहा है। किन्तु लेखक की दृष्टि में यह उनके बचपन का खिलौना नहीं है, यह तो सरस्वती की ग्रीवा में बालहंस का मुक्तामाल है। यह ऊपर ही ऊपर भावों के फेन को चीर कर कागज की नाव की तरह आर पार नहीं चला गया है बल्कि जीवन के अतल में मानव मन की गहराइयों में पैठ कर अपना अभीष्ट पा गया है।[3] यद्यपि उपन्यास अल्पवयस्कता में कुछ अस्फुट भावनाओं को केन्द्रित करते हुए लिखा गया है लेकिन पन्त जी की साहित्यिक प्रतिभा का अंकुर उसी में परिलक्षित होता है। 'हार' उपन्यास भाषा, भाव, कथानक, शैली तथा विचार की दृष्टि से अत्यन्त प्राजल एवं गरिमामंडित है। 'हार' में पन्त जी विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत हैं तथा प्रेम को मानव सांसा

---

१ वृन्त और विकास : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०४।
२ वही, पृ० १०५।
३ समवेत : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

गिक वासना म केन्द्रित करके अपने भावों के अनुरूप उसे विस्तार दिया है। इसके साथ लेखक ने पन्त जी की 'ग्रन्थि' की भी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। 'हार शब्द म पत जी के श्लिष्ट शब्द का आभास होता है। 'हार' श्लिष्ट पद है जिसका अर्थ पराजय तथा माला दोनों ही है। लेखक की दृष्टि म कथानक का अत चकि प्रशांत प्रसादान्त मन स्थिति मे हुआ है अत अन्य अन्तर्गर्भित नामकरण भी हो सकता है।'[1] झूठा सच एक युग निरीक्षण शीर्षक निबन्ध म लेखक ने निबन्ध की एक नवीन शैली पत्रोत्तर का प्रयोग करते हुए यशपाल जी के लोकप्रिय उपन्यास झूठा सच का परिचयात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए अपने मनोभावों को व्यक्त किया है। इसम समसामयिक वातावरण का रूप भी स्पष्ट लक्षित होता है जो उपन्यास के वातावरण का भी स्पष्टीकरण करता है। 'साकल्य निबन्ध सग्रह के 'दिव्या शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध मे भी लेखक की पुस्तक परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति के अन्तगत समवत निबन्ध सग्रह के 'नये उपन्यास नये उपन्यासकार शीर्षक निबन्ध म भी लेखक ने विभिन्न नवीन उपन्यासकारों तथा उपन्यासों का परिचय दिया है। लेखक ने प्रसाद जी के ककाल तथा प्रेमचन्द के 'गोदान का उल्लेख करते हुए जैनेन्द्र और अज्ञेय के उपन्यास साहित्य मे स्थान को निर्धारित किया है। इसी सन्दर्भ मे उन्होंने वृन्दावन लाल वर्मा के 'प्रत्यागत, 'लगन सियारामशरण गुप्त के गोद' 'अन्तिम आकाक्षा नारी, फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आचल 'परती परिकथा, बलभद्र ठाकुर के 'आदित्यनाथ नेपाल की वो बेटी, 'देवताओ के देश मे, यशपाल का झूठा सच सिंहावलोकन राजेन्द्र यादव का उखडे हुए लोग आदि उपन्यासों की परिचयात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति के अन्तगत 'शिवपूजन जी की साहित्य साधना शीर्षक निबन्ध म लेखक ने पद्मभूषण बाबू शिवपूजन सहाय का परिचय प्रस्तुत करने के साथ ही उनकी विविध साहित्यिक प्रतिभा की ओर सकेत किया है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कई रूपों म परिलक्षित होता है कहानीकार उपन्यासकार पत्रकार, निबन्धकार तथा हास्य लेखक। लेखक ने उनकी साहित्य साधना म उनकी कृतियों का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार से श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के आलोचनात्मक निबन्धों मे व्यावहारिक समीक्षा, सद्धान्तिक समीक्षा तथा पुस्तक परिचयात्मक समीक्षा की प्रवत्तियों का परिचय मिलता है।

[५] भावात्मक निबन्धों की प्रवत्ति सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से भावात्मक निबन्ध विचारात्मक निबन्धों की कोटि के विपरीत रागात्मकता प्रधान होते है। ये बुद्धि प्रधान निबन्धों से पृथक हृदय की भावनाओं पर प्रत्यक्षत आधारित होते हैं इसीलिए इसम आत्मानुभूति की सफल व्यजना होती है। स्थूलत इसके अन्तगत ग

१ समवेत श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७।

गीति की कोटि की निबन्धात्मक रचनाएँ परिगणित की जा सकती हैं। इनका स्वरूप गद्य काव्य से पर्याप्त तात्विक साम्य रखता है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में इस कोटि के निबन्ध प्रायः भारतेन्दु काल से ही उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गोविन्द नारायण मिश्र तथा बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन ने इस कोटि के निबन्ध प्रथम विकास काल में प्रस्तुत किए थे। परवर्ती काल में रायकृष्णदास[1] वियोगी हरि[2] चतुरसेन शास्त्री[3] माखन लाल चतुर्वेदी[4] तथा दिनेश नन्दिनी डालमिया[5] आदि ने इस कोटि की अनेक कृतियाँ प्रस्तुत कीं। भावात्मक प्रवृत्ति के अन्तर्गत विश्वम्भर मानव का गान में पहन, सत्यनारायण शर्मा का जीवन यात्रा, तारा पाण्डेय की रजाए तथा सियारामशरण की झूठ नहीं आदि भी उल्लेखनीय हैं।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य में साहित्यिकी, सामयिकी साकल्य तथा 'परिक्रमा आदि संग्रहों में संगृहीत कुछ रचनाओं में भावात्मक प्रवृत्ति विद्यमान है। भावात्मक निबन्धों में लेखक ने भाव प्रधान शैली के द्वारा ही अपने विचारों को प्रकट किया है। यह बौद्धिक होते हुए भी हार्दिक प्रधानता को ही अपनाते हैं। साहित्यिकी निबन्ध संग्रह में संगृहीत भावात्मक निबन्धों में प्रवास एवं अतीत स्वप्न तथा रवीन्द्र एवं बाल्य झलक निबन्ध इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लेखनीय हैं। प्रवास में लेखक ने दिल्ली में हुए साहित्य सम्मेलन में जाने के मोह की ओर संकेत करते हुए रेलगाडी का अत्यन्त ही भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है तथा दिल्ली जंक्शन की तुलना लखनऊ के विशाल जंक्शन, कलकत्ते के हावडा प्लेन तथा बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस आदि से की है। दिल्ली के प्लेटफार्म के समक्ष यह सब आलीशान होते हुए भी शान शौकत से परे हैं। प्राचीन दिल्ली और आधुनिक दिल्ली में अत्यधिक अन्तर आ गया है। लेखक ने दिल्ली का मानवीकरण रूप प्रस्तुत करते हुए उस पर पडे कठोर प्रहारों की ओर संकेत किया है जो आज भी अपने वैभवपूर्ण बीते क्षणों की याद में बिसूर रही है। सडक के दोनों ओर यह बिजली जल रही है या दिल्ली के जले हृदय की ज्वाला। कैसी अभागिनी है यह कंगालिनी बुढिया। ऐश्वर्य के दिनों में किस प्रकार इसके हृदय का हास शाही मणि दीपों में दमक रहा था कितने नृपतियों ने अपने अतुल स्नेह से इसके यौवन को प्रदीप्त किया था और आज भी यह कंगालिनी लुटी सी ठगी-सी खोई सी अपने फटे हुए अंचल को फैलाये हुए मलिन मुख झुकी हुई कमर से खडी खडी काल की निष्ठुरता की रोगी

१ 'साधना छायापथ तथा प्रवाल आदि कृतियाँ।
२ तरंगिणी अन्तर्नाद, भावना, 'प्रार्थना' तथा 'श्रद्धाकार आदि।
३ 'अन्तस्तल आदि रचनाएँ।
४ साहित्य देवता आदि कृतियाँ।
५ दुपहरिया के फूल, शबनम शारदीया, उन्मन, स्पन्दन' तथा वशीरव।

आँखों स स्वागत कर रही है। कहती है हा दिगोडे 'बस एक ठेस और'। अति रूप स सीता हरी गयी, अति रूप स दिल्ली हरी गयी। कितनी बार द्रौपदी की तरह इस सुकेसिनी के केश खीचे गये, कितनी बार इस लाजवन्ती के चीर खीच खीच कर इसकी लज्जा उघार दी गई। कौन नहीं जानता ? इसके स्वामी पाडवो की तरह एकटक ताकते ही रह गये, यह तो द्रौपदी से भी अधिक अनाथिनी है। एक भी द्वारकानाथ इसकी पुकार पर दौड कर इसकी उघरती लाज को बचाने नही आया, नही आया।"[1] एक अतीत स्वप्न शीर्षक निबन्ध म लेखक ने पौराणिक, ऐतिहासिक एव वर्तमान की क्रमश परिवर्तनशीलता का उल्लेख करते हुए आधुनिक साहित्य म विभिन्न साहित्य सुधारको की देन को अत्यन्त भावात्मक रूप मे प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त श्री सियारामशरण गुप्त के उपन्यास 'नारी' के माध्यम से उन्होंने पौराणिक युग की चेतना की महत्ता की ओर सकेत किया है जो आज भी समया तर के उपरान्त अपनी लौ मे आध्यात्मिक क्षेत्र म जगमगा रही है। लेखक ने स्वय को 'पुरातन ग्रामीण' कह कर पुरातन का आराधक माना है। उपन्यास म वस्तुत वह उसी पौराणिक दर्शन का आवर्तन चाहते है। कालान्तर की परिवर्तनशीलता एव आधुनिक युग की पौराणिक ज्योति का उल्लेख लेखक ने इस प्रकार किया है ता पुराण गया, इतिहास आया इतिहास गया, विज्ञान आया। प्रगति नगरो म ही दीख पडती है गावो म न इतिहास है न विज्ञान है पुरखो के मुख से सुने हुए पौराणिक विश्वास—न जाने किस अखड ज्योति से वे आज भी प्रकाशित हैं घर के दीपक की भाँति। उनके द्वारा आज भी जो मौलिक भारतीय जीवन ज्योति है, उसे ही लेकर ठेठ जीवन के उपन्यास हैं।[2] 'रवीन्द्र एक बाल्य झलक' शीर्षक निबन्ध म लेखक ने रवीन्द्र रवीन्द्र बाबू के बाल्य जीवन के कुछ चित्र भावपरक स्तर पर अभिव्यक्त किये है। रवि बाबू को स्कूल का वातावरण, स्कूल का जीवन एव उसकी कद आदि रुचिकर न थी। वह एकान्त में शान्त प्रकृति के नैसर्गिक प्रागण म बैठ चिन्तन करने मे ही आत्मलीन रहते थ। लेखक ने उनके बाल्य जीवन के पारिवारिक वातावरण का चित्रण किया है जहाँ सदैव वह नौकरो के अनुशासन मे रहे। यह नौकरो का शासन काल विशेष आनन्द का न था, उन्हे स्वतन्त्रता नाम मात्र भी न थी। यहा तक कि घर म भी वह स्वच्छदतापूर्वक नही घूम सकते थे। इस प्रकार घर और स्कूल दोनो ही स्थानो का वातावरण रवि बाबू के लिए एक सा ही था—नीरस निष्ठुर।

सामयिकी' निबन्ध सग्रह म सगहीत 'भविष्य पथ' शीर्षक निबन्ध म चलन प्रकाश की अमिट रेखा बापू के जीवन दर्शन को भाव प्रधान भाषा म अभिव्यक्त किया गया है। बापू वस्तुत पुरुष होते हुए भी विश्व रूप हैं। सपूर्ण विश्व ही उनम

---

१ साहित्यिकी, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १२४ १२५।

२ वही, पृ० २४४।

समाविष्ट हो गया है। बापू को प्राप्त करने के लिए विश्व कल्याण में योग देने के पथ पर चलना होगा। विश्व शांति के लिए अन्तःकरण की मानवता पीड़ित वसुधा के लिए सवेदना के आँसू भूखे प्यासों के लिए जीवन दान' ही बापू का मुख्य उद्देश्य है। यही बापू को स्वीकार है। यह चिन्तापूजा के विरोधी है। गांधीवाद बापू की आत्मा का ही राजनीतिक अनुवाद है। उसकी आत्मा की मौलिकता है योग्येण म सर्वोत्म म अनासक्त योग म। गांधी म वाद' नही योग है उपान नहीं उत्थ है सत्ता नही सेवा है।' गांधी का जीवन-दर्शन आत्मा के यातायात को सम्बोधित करता है उसकी प्राण सचारिणी अभिव्यक्तियाँ आभ्यन्तरिक अनुभूतियों से परिव्याप्त है। वस्तुत 'वह आत्मा का कवि है। सत्य उसकी वीणा है विश्व वन्दना उसकी रागनी अहिंसा उसकी टेक और करुणा उसका रस है। सस्कृति उसकी स्वर लिपि है। प्रभु उसका आलम्बन या अवलम्बन है जनता उसका उपादान है विश्व उसका काव्य है कम उसके अक्षर हैं सयम नियम उसके छन्द। ज्ञान और भाव को लेकर वह अपने व्यक्तित्व में कवीमनीषी है—उसमे कवित्व और ऋषित्व का समन्वय है। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व लोकयात्रा में भक्ति काव्य को लेकर चल रहा है। उसका प्रत्येक पग काव्य का ही पद विन्यास है। समाज निर्माण द्वारा काव्य को वह शब्दों में नहीं, प्राणियों के जीवन में मूर्त करता है।'

साकल्य निबन्ध सग्रह के दिगम्बर' शीर्षक निबन्ध में लेखक ने अपने उपन्यास 'दिगम्बर की रचना प्रेरणा एव उसके सूक्ष्म रूप को भावात्मक स्तर पर चित्रित किया है। लेखक ने दिगम्बर शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया है। जैन साधुओं के एक सम्प्रदाय का नाम दिगम्बर है जो वस्त्र धारण नही करते। लेकिन लेखक की दृष्टि में यह उसका सकुचित अर्थ है। वह इसे स्वीकार नही करते। वह लिखते हैं दिगम्बर का अभिप्राय है ऐसा आडम्बर शून्य सरल निश्छल निर्मल चेतन अन्तःकरण जिसका परिवेश सीमित नही दिगचल तक फैला हुआ है। आज की भाषा में जिस श्रमिक सर्वहारा कहते हैं वह स्वार्थ का सघर्ष करता है किन्तु दिगम्बर तो ऐसा श्रमण सर्वहारा है जो वसुधैव कुटुम्बकम के लिए स्वेच्छा से नि स्व हो जाता है।' दिगम्बर के नायक विमल में वस्तुत लेखक का स्वय का अन्तःकरण विद्यमान है जो बाल्यकाल में प्रकृति के नैसर्गिक उदबोधन से प्रेरित होता हुआ भी जीवन के यथार्थ धरातल को स्पर्श करता है। उसमे भी शारीरिक एव मानसिक भूख प्यास है। दिगम्बर' की प्रवृत्ति सजीव सदेह सचेतन है। यही कारण है कि उसमें स्नेह श्रद्धा, सस्कृति का

---

१ सामयिकी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २५९।

२ वही।

३ सामयिकी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २६०।

४ साकल्य, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २४५।

अ तर्विकास हुआ है।[1] प्रयोग काल की यह रचना अपने शिल्प वि यास म लेखक का एक नवीनतम प्रयास है। इसमे लेखक न सस्मरण, पसनल एस, व्यक्तित्व निरूपण रिपार्ताज रेखाचित्र आदि को स्पश करते हुए उप यास का रूप वि यास किया है। इसकी विशेषताएँ व्यक्तित्व निरूपण, श द शिल्प तथा कथानक के क्रम नियोजन म निहित है।

परिक्रमा निब ध सग्रह के 'वह अदृश्य चेतना शीषक निब ध के अ तगत लखक न अपनी बहिन कल्पवती की स्मरण रेखा को प्रस्तुत किया है। दिवगत होन पर भी बहिन सूक्ष्म चेतना के रूप मे स्मृति पट एव हृदय पट पर अ त तक अवस्थित रही। यही कारण है कि स्मृति को चिरकाल जीवित सष्टि कहा गया है। वह बाल विधवा बहिन 'क्षर शरीर म जो कभी सदेह थी वह देहातीत चेतना बन कर मानस म सूक्ष्म अनुभूति हो गयी है। ओ अदृश्य चेतना ! तुम ओझल होकर भी निष्प्राण नही, अहर्निश मेरी सासो मे प्राणोदित हो—

तुम फिर फिर सुधि सी सोच्छवास।
जी उठती हो बिना प्रयास॥'[2]

उसी बहिन कल्पवती न लेखक के जीवन म राग का सचार किया था। लेखक न बहिन के जीवन का चित्र उसके सामाजिक एव आर्थिक वातावरण मे भावात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया है। बहिन विविध निषेधो के रूग्णग्रस्त युग मे होते हुए भी निर्जीव घम को अगीकार नही कर सकी थी। वह प्रगतिशील युग की नारी न होत हुए भी सचेतन थी वह स्वय अपनी प्रज्ञा से श्रेय प्रेय का निणय लती थी। वह विधवा के रूप म भी कलाभिरुचि मे चिरकुमारिका थी।[3] लेखक न मीरा तथा कलावती म सादृश्यता स्थापित की है। दोनो को ही इश्वराय सौदय और ऐश्वय अभीष्ट था। वस्तुत वह सासारिक प्रलोभनो स परे थी। वह समस्त दुखो को पृथ्वी की तरह सह लती थी लेकिन कुरूपता और मलिनता उसकी रुचि के बाहर की वस्तु थी। वह करुणा-कोमल होकर भी तेजस्वनी थी। उसम तपस्या की प्रखरता थी साच की आँच थी। कुरुचि कुरूपता और अ याय के प्रति दुर्गा की तरह प्रचड थी। इस रूप मे द्विवदी जी के भावात्मक निब ध उनके कवि हृदय की कोमल अनुभूतियो की मार्मिक अभि यजना प्रस्तुत करते हैं।

[६] सस्मरणात्मक निब धों की प्रवत्ति सस्मरणात्मक निब धो की प्रवत्ति के अ तगत सस्मरण निब ध को व्यक्ति प्रधान, आत्मपरक व्यक्तित्व प्रधान लघु ललित परसनल एस आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि वयक्तिक

---

१ साकल्य श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २४६।
२ परिक्रमा, श्री शांतिप्रिय द्विवदी पृ० २०७।
३ वही पृ० २०९ २१०।

निबन्धा तथा सस्मरणात्मक निबन्धा का पर्याय माना जाता है लकिन इन दोना क दृष्टिकोण म मौलिक अ तर होता है। वयक्तिक अथवा आत्मपरक निबन्ध म लखक का उद्देश्य अपनी जीवन कथा का वणन करना होता है जब कि सस्मरण म लखक अपने समय क इतिहास का भी स्पश करता है। लेकिन वह इतिहासकार स भी भिन्नता रखता है। वस्तुत सस्मरण लखक अपन अनुभवा अनुभूतिया एव सवदनाओ का ही सस्मरणात्मक शली म वणन करता है। वह अपन चतुर्दिक जीवन का सकूल भावनाओ और जीवन क साथ सजन करता है।[1] उपयुक्त भिन्नता क होते हुए भी वयक्तिक और सस्मरण निबन्ध म अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। डा० गुलाबराय सस्मरण को रेखा चित्र के समकक्ष रखत हुए उस व्यक्ति म सम्बन्धित मानत हैं।[2] पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी वयक्तिक निबन्ध परसनल एस तथा रेखाचित्र स्कच को पर्यायवादी मानते हैं।[3] वयक्तिक निबन्ध तथा सस्मरणात्मक निबन्ध अद्यतन युग की देन है यद्यपि इसस पूव भी कुछ निबन्धकार इस शली म निबन्धा का सजन कर रह थ। पाश्चात्य साहित्य म निबन्धा की इस प्रवत्ति की प्रधानता है तथा इस आधुनिक आविष्कार के रूप म मान्यता मिली है। इंग्लिश साहित्य म वयक्तिक निबन्धा की प्रवत्ति इतनी अधिक मान्य हुई कि व्यक्तित्व प्रधान निबन्ध ही साधारण निबन्ध का प्रतिनिधित्व करने लगे। वस्तुत आधुनिक युग म निबन्ध की प्रवत्ति इतनी अधिक विस्तृत है कि उसम विभिन्न शलिया का भी प्रादुर्भाव हो रहा है। सस्मरणात्मक निबन्धा की वयक्तिक रेखाचित्र आत्म कथन जीवनी आदि आत्माभिव्यजना को नई नई शलियाँ हैं। वयक्तिक शली म लिखे सस्मरणात्मक निबन्धो म आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी के अशोक के फूल वसन्त आ गया नाखून क्यो बढ़ते है आम फिर बौरा गये शिरीष के फूल आदि श्री लक्ष्मीकान्त झा का निबन्ध खोयी चीज की खोज डा० प्रभाकर माचवे के गला मुह गाडी रुक गई छाता बिल्ली, मकान आदि तथा श्री विद्यानिवास मिश्र के सस्मरणात्मक निबन्ध उल्लेखनीय हैं। सस्मरणात्मक शैली मे लिखे निबन्धो म श्री जनेन्द्र कुमार के ये और वे, श्री रामवक्ष बेनीपुरी का गेहूँ और गुलाब डा० प्रभाकर माचवे के खरगोश के सीग म सगृहीत कुछ निबन्ध, श्री भदन्त आनन्द कौसल्यायन का जो मैं न भूल सका, जो मुझे लिखना पडा रेल का टिकट मे सगृहीत निबन्ध डा० कलाशनाथ काटजू का मैं भूल नही सकता' डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश का मैं इनसे मिला आदि इसी कोटि के अन्तगत उल्लिखित हैं।

---

१ हिन्दी साहित्य कोश स० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ८०३।
२ 'काव्य के रूप डा० गुलाबराय पृ० २५०।
३ 'हिन्दी निबन्ध और निबन्धकार ठाकुर प्रसाद सिंह पृ० १५३।
४ वही पृ० १४२।

ाचीन प्रयोगों को स्पष्ट करते हुए उनके वास्तविक अर्थ को तथा उसी के माध्यम न्सर स्वरूप को स्पष्ट किया है। लेखक ने निबन्ध के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए तथा है निबन्ध से किसी रचना का सगठित रूप व्यक्त होता है। वह एक ऐसा थन शिल्प है जिससे रचना का रूप विन्यास होता है। वह ऐसा बन्धान या आत रक छन्द है जिससे रचना सन्तुलित हो जाती है। शिल्प वशिष्ट्य से निबन्ध के गठित रूप मे वविध्य हो सकता है किन्तु उसका सूत्र है अविच्छिन्नता सयोजकता मवद्धता।[1] निबन्ध का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। वह लेख, काव्य तथा कहानी सभी द्य विधाओं को स्पर्श करता है। वस्तुत निबन्ध का रूप रचना के किसी भी विषय न अभिव्यक्ति पा सकता है। लेखक ने निबन्ध के विषय और शैली को विचारों की दृष्टि से तथा कला की दृष्टि से विभाजित किया है। कला की दृष्टि से लाक्षणिक व्यजनात्मक छन्दात्मक तथा व्यग्यात्मक आदि शैली हो सकती है तथा विचारों की दृष्टि से वर्णनात्मक आलोचनात्मक दृश्यात्मक, विवेचनात्मक तथा स्वानुभूत्यात्मक आदि। 'प्रभाववादी समीक्षा' शीर्षक निबन्ध म भारतीय हिन्दी परिषद के चतुर्दश वार्षिक अधिवेशन (काशी) की साहित्य गोष्ठी के विषय साहित्य शास्त्र और व्याव हारिक समालोचना' के अन्तर्गत उठायी गयी शका कि समीक्षा मे परिवर्तन से साहित्य की शास्त्रीय मर्यादा के लिए सकट उत्पन्न हो सकता है का समाधान करते हुए लेखक ने प्रभाववादी समीक्षा के अन्तर्गत शास्त्रीय एव व्यावहारिक समीक्षा की स्थिति पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने रचना को शास्त्रीय प्रतिबन्धों से मुक्त माना है। इसी आधार पर श्री शातिप्रिय द्विवेदी जी का मत है कि जब रचना शास्त्रीय नहीं है तो उसकी समीक्षा भी शास्त्रीय नही प्रत्युत रचना के सदृश्य ही मौलिक होती है। प्रभाववादी समीक्षा मे रचना के साथ आत्मीयता की तद्रुपता रहती है। आत्मीयता की स्थापना के लिए समीक्षा म अनुभूति अपेक्षित है। अनुभूति से ही रस-बोध राग बोध, भाव-बोध, सौन्दर्य बोध आदि होता है तथा कलाबोध भी अनुभूति के आधार पर ही होता है।[2] रचना का अनुभूति पक्ष प्रभाववदी समीक्षा म परोक्ष अनुभूति अथवा सहानुभूति के रूप म प्रत्यक्ष हुआ है। भाव के अनुरूप ही शृगार के सयोजन म कला का भी परिचय मिलता है। इनके अतिरिक्त रचना के अनुरूप शृगार की स्वाभाविकता अस्वाभाविकता अथवा सगति असगति को परखने म समीक्षा अपनी कलाविज्ञता का परिचय देती है।[3] अत प्रभाववादी समीक्षा म भावुकता के साथ शिल्प प्रवीणता एव कला ममज्ञता भी विद्यमान है। लेखक ने तत्कालीन साहित्य समालोचना की पद्धतिया

---

१ आधान श्री शातिप्रिय द्विवदी पृ० ८१।
२ वही पृ० ८८ ८९।
३ वही पृ० ९०।

को स्पष्ट करते हुए उनके विषय म अपने मतों का प्रतिपादन किया है।

'आधान' के अतिरिक्त सद्धांतिक आलोचना की प्रवृत्ति लेखक के 'वृन्त और विकास' निबन्ध संग्रह के नाटक और रंगमंच शीर्षक निबन्ध म भी परिलक्षित होती है। लेखक ने नाटक को 'जीवन का कलात्मक संस्करण' माना है तथा रंगमंच को संसार का संक्षिप्त क्रीड़ा स्थल।[1] लेखक ने जीवन के सरस संगम म इसके महत्व का प्रतिपादन किया है। नाटक और रंगमंच आदि माध्यमों से ही मनुष्य का मर्मोद्घाटन, रसोद्रेक तथा रागोद्रेक हो सकता है। लेखक की दृष्टि म सिनेमा से यह सुलभ नहीं है और यही सुप्रसिद्ध अभिनेता पृथ्वीराज कपूर का भी मत है।[2] लेखक ने नाटक और रंगमंच के उद्भव और विकास का उल्लेख करते हुए वर्तमान युग म जबकि साहित्य भी यान्त्रिक हो रहा है नाटक के यन्त्रीकरण से मुक्ति के लिए रंगमंच को प्रोत्साहित किया है। विदेशों म भी नाटक, रंगमंच तथा मूक अभिनय को ही प्रोत्साहन देने के लिए अनेक कम्पनियों की स्थापना हो रही है। लेकिन सिनेमा के इस युग म नाटक और रंगमंच आज भी दुर्लभ प्रतीत होते हैं। इस क्षेत्र म जगदीश चन्द्र माथुर जो स्वयं रस सिद्ध नाटय प्रणेता और अभिनेता हैं अधिक प्रयत्नशील हैं। लेखक की दृष्टि म मानव के नैसर्गिक जीवन म अथवा युवाकाल म जीवन सुलभ होने पर ही नाटक और रंगमंच का पुनर्जागरण एवं विस्तार सम्भव है।

आलोचनात्मक निबन्ध प्रवृत्ति का एक अन्य रूप पुस्तक परिचयात्मक निबन्धों के रूप म भी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के 'समवेत' निबन्ध संग्रह म देखा जा सकता है। प्रस्तुत निबन्ध संग्रह के 'हार' पन्त की रचना-सूत्र तथा 'झूठा सच' एक युग निरीक्षण इसी कोटि के अन्तर्गत परिगणित किए जा सकते हैं। प्रथम निबन्ध म लेखक ने श्री सुमित्रानन्दन पंत की सर्वप्रथम रचना 'हार' उपन्यास का वास्तविक परिचय दिया है जिसे पंत जी ने केवल एक 'खिलौना' कहा है। किन्तु लेखक की दृष्टि म यह उनके बचपन का खिलौना नहीं है यह तो सरस्वती की ग्रीवा म बालहंस का मुक्तामाल है। यह ऊपर ही ऊपर भावों के फेन को चीर कर कागज की नाव की तरह आर पार नहीं चला गया है बल्कि जीवन के अतल मे मानव मन की गहराइयों म पैठ कर अपना अभीष्ट पा गया है।[3] यद्यपि उपन्यास अल्पवयस्कता मे कुछ अस्फुट भावनाओं को केन्द्रित करते हुए लिखा गया है लेकिन पंत जी की साहित्यिक प्रतिभा का अंकुर उसी मे परिलक्षित होता है। हार उपन्यास भाषा, भाव, कथानक शैली तथा विचार की दृष्टि से अत्यन्त प्रांजल एवं गरिमामंडित है। हार' मे पंत जी विश्व बन्धुत्व की भावना से ओतप्रोत हैं तथा प्रेम को मात्र सांसा

---

१ वृन्त और विकास श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १०४।

२ वही पृ० १०५।

३ 'समवेत' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५।

रिक वासना म केन्द्रित करके अपने भावो के अनुरूप उसे विस्तार दिया है। इसके साथ लेखक ने पन्त जी की 'ग्रन्थि' की भी तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की है। 'हार शब्द म पत जी के श्लिष्ट शब्द का आभास होता है। हार श्लिष्ट पद है जिसका अथ पराजय तथा माला दोनो ही है। लेखक की दृष्टि म कथानक का अत चूंकि प्रशान, प्रसादान्त मन स्थिति म हुआ है अत अथ अन्तर्गभित नामकरण भी हो सकता है।'[1] 'झूठा सच एक युग निरीक्षण' शीषक निबन्ध म लेखक ने निबन्ध की एक नवीन शली प्रश्नोत्तर का प्रयोग करते हुए यशपाल जी के लोकप्रिय उपन्यास 'झूठा सच' का परिचयात्मक रूप प्रस्तुत करते हुए अपने मनोभावो को व्यक्त किया है। इसम समसामयिक वातावरण का रूप भी स्पष्ट लक्षित होता है जो उपन्यास के वातावरण का भी स्पष्टीकरण करता है। 'साकल्य' निबन्ध सग्रह के न्यिा शीषक आलोचनात्मक निबन्ध म भी लेखक की पुस्तक परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति समवत निबन्ध सग्रह के नये उपन्यास नये उपन्यासकार शीषक निबन्ध म भी लेखक ने विभिन्न नवीन उपन्यासकारो तथा उपन्यासो का परिचय दिया है। लेखक ने प्रसाद जी के कंकाल तथा प्रेमचन्द के 'गोदान' का उल्लेख करते हुए जैनेन्द्र और अनय के उपन्यास साहित्य म स्थान को निर्धारित किया है। इसी सन्दभ म उन्होने वृन्दावन लाल वर्मा के प्रत्यागत, 'लगन सियारामशरण गुप्त के गोद 'अन्तिम आकाक्षा नारी फणीश्वरनाथ रेणु का 'मैला आचल', परती परिकथा बलभद्र ठाकुर के आदित्यनाथ नेपाल की वो बेटी' देवताओ के देश में, यशपाल का झूठा सच' सिंहावलोकन, राजेन्द्र यादव का उखडे हुए लोग आदि उपन्यासो की परिचयात्मक आलोचना प्रस्तुत की है। परिचयात्मक आलोचना की प्रवत्ति के अन्तगत शिवपूजन जी की साहित्य साधना शीषक निबन्ध म लेखक ने पदमाभूषण बाबू शिवपूजन सहाय का परिचय प्रस्तुत करने के साथ ही उनकी विविध साहित्यिक प्रतिभा की ओर सकेत किया है। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व कई रूपो म परिलक्षित होता है कहानीकार उपन्यासकार पत्रकार निबन्धकार तथा हास्य लेखक। लेखक ने उनकी साहित्य साधना मे उनकी कृतियो का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार से श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचनात्मक निबन्धो म व्यावहारिक समीक्षा सद्धान्तिक समीक्षा तथा पुस्तक परिचयात्मक समीक्षा की प्रवत्तियो का परिचय मिलता है।

[५] भावात्मक निबन्धों की प्रवत्ति सद्धान्तिक दृष्टिकोण से भावात्मक निबन्ध विचारात्मक निबन्धो की कोटि के विपरीत रागात्मकता प्रधान होते हैं। यह बुद्धि प्रधान निबन्धो से पृथक हृदय की भावनाओ पर प्रत्यक्षत आधारित होते हैं। इसीलिए इसम आत्मानुभूति की सफल व्यजना होती है। स्थूलत इसके अन्तगत गद्य

१ समवेत', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २७।

समाविष्ट हो गया है। बापू को प्राप्त करने के लिए विश्व कल्याण म योग देने के पथ पर चलना होगा। 'विश्व शान्ति के लिए अन्त करण की मानवता पीड़ित वसुधा के लिए सवेदना के आँसू भूख प्यासों के लिए जीवन दान' ही बापू का मुख्य उद्देश्य है। यही बापू को स्वीकार है। वह चित्रपूजा के विरोधी हैं। गांधीवाद बापू की आत्मा का ही राजनीतिक अनुवाद है। 'उसकी आत्मा की मौलिकता है वाह्यारम्भ म सर्वोदय म अनासक्त योग म। गांधी म वाद नहीं योग है, उफान नहीं उदय है सत्ता नहीं सेवा है।'[1] गांधी का जीवन दर्शन आत्मा के वातायन को सम्बोधित करता है उसकी प्राण सचारिणी अभिव्यक्तियाँ आभ्यन्तरिक अनुभूतियों म परिव्याप्त है। वस्तुत 'वह आत्मा का कवि है। सत्य उसकी वीणा है विश्व वन्दना उसकी रागनी अहिंसा उसकी टेक और करुणा उसका रस है। सस्कृति उसकी स्वर लिपि है। प्रभु उसका आलम्बन या अवलम्बन है जनता उसका उपकरण है विश्व उसका काव्य है कर्म उसके अक्षर हैं, सयम नियम उसके छन्द। ज्ञान और भाव को लेकर वह अपने व्यक्तित्व म कवीमनीषी है—उसम कवित्व और ऋषित्व का समन्वय है। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व लोकयात्रा म भक्ति काव्य को लेकर चल रहा है। उसका प्रत्येक पग काव्य का ही पद विन्यास है। समाज निर्माण द्वारा काव्य को वह शब्दों म नहीं प्राणियों के जीवन म मूर्त करता है।'

साकल्य निबन्ध सग्रह में दिगम्बर शीर्षक निबन्ध म लेखक ने अपने उपन्यास 'दिगम्बर' की रचना प्रेरणा एव उसके सूक्ष्म रूप को भावात्मक स्तर पर चित्रित किया है। लेखक ने दिगम्बर शब्द के अर्थ को स्पष्ट किया है। जैन साधुओं के एक सम्प्रदाय का नाम दिगम्बर है जो वस्त्र धारण नहीं करते। लेकिन लेखक की दृष्टि म यह उसका सकुचित अर्थ है। वह इसे स्वीकार नहीं करते। वह लिखते हैं दिगम्बर का अभिप्राय है ऐसा आडम्बर शून्य सरल निश्छल निर्मल चेतन *अन्त करण जिसका* परिवेश सीमित नहीं दिगचल तक फैला हुआ है। आज की भाषा म जिसे श्रमिक सर्वहारा कहते हैं वह स्वार्थ का सघर्ष करता है, किन्तु दिगम्बर तो ऐसा श्रमण सर्वहारा है जो वसुधैव कुटुम्बकम के लिए स्वच्छा से नि स्व हो जाता है। दिगम्बर के नायक विमल म वस्तुत लेखक का स्वय का अन्त करण विद्यमान है जो बाल्यकाल म प्रकृति के नैसर्गिक उद्बोधन से प्रेरित होता हुआ भी जीवन के यथार्थ धरातल को *स्पर्श करता है।* उसम भी शारीरिक एव मानसिक भूख प्यास है। दिगम्बर की प्रवृत्ति सजीव सदेह सचेतन है। यही कारण है कि उसमे स्नेह श्रद्धा सस्कृति का

१ 'सामयिकी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २५९।

२ वही।

३ सामयिकी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २६०।

४ 'साकल्य, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० २४५।

अन्तर्विकास हुआ है।[1] प्रयोग काल की यह रचना अपने शिल्प विन्यास में लेखक का एक नवीनतम प्रयास है। इसमें लेखक ने संस्मरण पर्सनल एसे, व्यक्तित्व निरूपण रिपोर्ताज, रेखाचित्र आदि का स्पर्श करते हुए उपन्यास का रूप विन्यास किया है। इसकी विशेषताएँ व्यक्तित्व निरूपण, शब्द शिल्प तथा कथानक के क्रम नियोजन में निहित है।

परिक्रमा निबंध संग्रह के 'वह अन्त्य चेतना' शीर्षक निबंध के अन्तर्गत लेखक ने अपनी बहिन कल्पवती की स्मरण रेखा को प्रस्तुत किया है। दिवंगत होने पर भी बहिन सूक्ष्म चेतना के रूप में स्मृति पट एवं हृदय पट पर अन्त तक अवस्थित रही। यही कारण है कि स्मृति को चिरकाल जीवित सृष्टि कहा गया है। वह बाल विधवा बहिन 'क्षर शरीर में जो कभी सदेह थी वह देहातीत चेतना बन कर मानस में सूक्ष्म अनुभूति हो गयी है। ओ अदृश्य चेतना ! तुम ओझल होकर भी निष्प्राण नहीं, अहर्निश मेरी सांसों में प्राणोदित हो—

तुम फिर फिर सुधि सी सोच्छवास।
जी उठती हो बिना प्रयास।।'[2]

उसी बहिन कल्पवती ने लेखक के जीवन में राग का संचार किया था। लेखक ने बहिन के जीवन का चित्र उसके सामाजिक एवं आर्थिक वातावरण में भावात्मक स्तर पर प्रस्तुत किया है। बहिन विविध निषेधों के रूढ़िग्रस्त युग में होते हुए भी निर्जीव धर्म को अंगीकार नहीं कर सकी थी। वह प्रगतिशील युग की नारी न होते हुए भी सचेतन थी, वह स्वयं अपनी प्रज्ञा से श्रेय प्रेय का निर्णय लेती थी। वह विधवा के रूप में भी कलाभिरुचि में चिरकुमारिका थी।[1] लेखक ने मीरा तथा कलावती में साम्यता स्थापित की है। दोनों को ही ईश्वरीय सौंदर्य और ऐश्वर्य अभीष्ट था। वस्तुतः वह सांसारिक प्रलोभनों से परे थी। वह समस्त दुखों को पृथ्वी की तरह सह लेती थी लेकिन कुरूपता और मलिनता उसकी रुचि के बाहर की वस्तु थी। वह करुणा-कोमल होकर भी तेजस्वनी थी। उसमें तपस्या की प्रखरता थी, सांच की आँच थी। कुरुचि कुरूपता और अन्याय के प्रति दुर्गा की तरह प्रचंड थी। इस रूप में द्विवेदी जी के भावात्मक निबंध उनके कवि हृदय की कोमल अनुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना प्रस्तुत करते हैं।

[६] संस्मरणात्मक निबंधों की प्रवृत्ति संस्मरणात्मक निबंधों की प्रवृत्ति के अन्तर्गत संस्मरण निबंध को व्यक्ति प्रधान, आत्मपरक व्यक्तित्व प्रधान लघु ललित परसनल एसे आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। यद्यपि वैयक्तिक

---

१ साकल्य श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २४६।
२ परिक्रमा, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०७।
३ वही, पृ० २०९ २१०।

निब धा तथा सस्मरणात्मक निब धो को पर्याय माना जाता है लेकिन इन दोनो व दृष्टिकोण म मौलिक अ तर होता है। वैयक्तिक अथवा आत्मचरित निब ध म लेखक का उद्देश्य अपनी जीवन कथा का वणन करना होता है जब कि सस्मरण म लेखक अपने समय के इतिहास को भी स्पश करता है। लेकिन वह इतिहासकार से भी भिन्नता रखता है। वस्तुत सस्मरण लेखक अपने अनुभवो अनुभूतियो एव सवदनाओ को ही सस्मरणात्मक शली म वणन करता है। वह अपने चतुर्दिक जीवन का सपूण भावनाओ और जीवन के साथ सजन करता है।[1] उपयुक्त भिन्नता के होते हुए भी वयक्तिक और सस्मरण निब ध म अ यो याश्रित सम्ब ध है। डा० गुलाबराय सस्मरण को रेखा चित्र के समकक्ष रखते हुए उसे व्यक्ति से सम्ब धित मानते हैं।[2] पडित बनारसीदास चतुर्वेदी वयक्तिक निब ध परसनल एसे तथा रेखाचित्र 'स्केच' का पर्यायवादी मानते हैं।[3] वैयक्तिक निब ध तथा सस्मरणात्मक निब ध अद्यतन युग की देन है यद्यपि इससे पूव भी कुछ निब धकार इस शली म निब धो का सजन कर रहे थ। पाश्चात्य साहित्य मे निब धो की इस प्रवत्ति की प्रधानता है तथा इसे आधुनिक आविष्कार के रूप म मा यता मिली है। इग्लिश साहित्य म वयक्तिक निब धो की प्रवत्ति इतनी अधिक मा य हुई कि व्यक्तित्व प्रधान निब ध ही साधारण निब ध का प्रतिनिधित्व करने लगे।[4] वस्तुत आधुनिक युग मे निब ध की प्रवत्ति इतनी अधिक विस्तत है कि उसम विभिन्न शलियो का भी प्रादुर्भाव हो रहा है। सस्मरणात्मक निब धो की वयक्तिक रेखाचित्र आत्म कथन जीवनी आदि आत्मा भि यजना की नई नई शैलियाँ हैं। वयक्तिक शली म लिखे सस्मरणात्मक निब धो म आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'अशोक के फूल 'वसन्त आ गया नाखून क्यो बढते है आम फिर बौरा गये 'शिरीष के फूल आदि श्री लक्ष्मीका त झा का निब ध खोयी चीज की खोज डा० प्रभाकर माचवे के गला मुह, 'गाडी रुक गई छाता, बिल्ली, मकान आदि तथा श्री विद्यानिवास मिश्र के सस्मरणात्मक निब ध उल्लेखनीय हैं। सस्मरणात्मक शैली म लिखे निब धो म श्री जन द्र कुमार के य और वे', श्री रामवक्ष बनीपुरी का गेहूँ और गुलाब डा० प्रभाकर माचवे क खरगोश के सीग मे सगृहीत कुछ निब ध श्री भन्त आन द कौसल्यायन का जो मैं न भूल सका जो मुझे लिखना पडा रेम का टिकट म सगहीत निब ध डा० कलाशनाथ काटजू का मैं भूल नही सकता डा० पद्मसिंह शर्मा कमलेश' का 'मैं इनसे मिला आदि इसी कोटि के अ तगत उल्लिखित हैं।

---

१ ि दी साहित्य कोश स० धीरे द्र वर्मा पृ० ८०३।
२ काव्य क रूप डा० गुलाबराय पृ० २५०।
३ हि दी निब ध और निब धकार ठाकुर प्रसाद सिंह पृ० १५३।
४ वही पृ० १५२।

रखाचित्र शैली म लिखे सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवृत्ति के अन्तगत आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी के रेखा चित्र के अतिरिक्त श्री वेदव बनारसी का 'उपहार', श्री जनेन्द्र कुमार की 'दो चिडिया', श्री रामवक्ष बनीपुरी की 'माटी की मूरतें', श्री रामनाथ 'सुमन' का विस्तल अध्ययन', श्री प्रकाशचन्द गुप्त का रेखाचित्र और पुरानी स्मृति, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का 'एक युग एक प्रतीक, रेखाएँ बोल उठी, 'क्या गोरी क्या सावरी', 'कला के हस्ताक्षर', श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का जि दगी मुस्कुराइ', श्री गुरुदयाल मलिक की दिल की बात, श्री सत्यवती मल्लिक का 'कदी' आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त डा० रागेय राघव, श्री लक्ष्मीकात भटट, श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय' श्री रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी के मुझे आपसे कुछ कहना है 'क्या मैं अन्दर आ सकता हू' आदि भी सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवत्ति मे अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

श्री शातिप्रिय द्विवदी के निबन्ध साहित्य मे सस्मरणात्मक निबन्धो की प्रवत्ति उनकी निबन्ध कृतिया, 'साहित्यिकी', समवत तथा 'परिक्रमा', म सगृहीत निबन्धो म यत्र-तत्र ही विद्यमान है। 'साहित्यिकी का निबन्ध 'महापथ के पथिक प्रसाद' शीर्षक निबन्ध म लेखक न प्रसाद जी द्वारा प्राप्त उनके साहचय को सस्मरण रूप म परिवष्ठित कर लिया है। इसके अतिरिक्त लेखक न अपन वैयक्तिक जीवन का भी इसम परिचय दिया है। प्रसाद जी के परिचय के समय का अपनी किशोरावस्था का लेखक ने इस प्रकार चित्र प्रस्तुत किया है 'मन के भीतर नये-नये कुतूहल और नये नये स्वप्न थे। मानव जीवन के स्वप्नो की झाकी उतारन वाल कलाकारो के लिए मेरे मन म एक उदग्रीव सम्मान था। सौन्दय और कला के अनुराग ने मेरे भीतर एक ओर साहित्यिक लेखन की प्रेरणा उत्पन्न कर दी थी दूसरी ओर अपनी घोरतम असहाय अकिंचन स्थिति क प्रति विस्मृति भी दे दी थी। सौ-सौ अभावो मे भूखे प्यासे रहन पर भी मेरा नया-नया नन्हा सा जीवन सब तरह से भरा-पूरा और स्वर्गीय जान पडता था। पृथ्वी मुझे चारो ओर न जान कितनी आकषक और पुलकित मालूम पडती थी। नवीन वय की अनजानता म जीवन की कठोरतम वास्तविकताओ से अनात रहकर ही मैं अपन चारो ओर आनन्द ही आनन्द बिखरा हुआ देख सका था।'[1] लेखक ने प्रसाद जी के रहन-सहन एव मकान की स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है। लेखक न प्रसाद जी के भावुक किशोर हृदय को स्पष्ट करते हुए लिखा है 'प्रौढता को पार कर जाने पर भी व आजीवन सोलह सत्रह अठारह वष के नटवर भावुक किशोर थे, जिसके प्रसन्न माध्यम से इन्होंने रूखे-सूखे लौकिक जीवन म प्रवेश किया था और अपन सपूण जीवन का मनोहर बना लिया था।'[2] लेखक न प्रस्तुत

१ साहित्यिकी, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० १३३।
२ वही पृ० १३७।

पत जी अपने अन्तजगत म ही आत्मलीन होते होते यहाँ से भी अन्तर्धान हो जाते थे। गिरिजा कुमार माथुर ने यद्यपि पन्त जी को रोमानी लेकिन गम्भीर और जटिल माना है, लेकिन लेखक की दृष्टि म बाह्य वातावरण म रोमानी न होकर वह अन्त अतर म रोमानी हैं लेकिन चितन म वह गम्भीर भी हैं।' पत जी सत्य शिव सुदरम के कवि हैं। सत्य शिव सुन्दरम् परस्पर भिन्न नही प्रत्युत् भाष्य हैं उनमे पार्थक्य नही है। 'शून्य मदिर की प्रतिमा' शीर्षक निबन्ध म काव्यदेवी महादेवी के जन्म की प्रसन्नता म भी करुणा का अवसाद प्रदर्शित करते हुए लेखक ने कवयित्री की शून्य मदिर म बनूगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी' पक्ति के आधार पर कल्पना म अपनी भावात्मक मूर्ति से तद्रूपता को इगित कर उनके वभवपूर्ण जीवन म भी साहित्य की भावात्मकता की ओर दृष्टिपात किया है। महादेवी जी का व्यक्तित्व उनके साहित्य मे प्रतिबिम्बित नही होता। 'यद्यपि उनकी कविता म उनका जीवन स्वग का नीरव उच्छ्वास' था तथापि वह देव वीणा का टूटा तार था जो इस पृथ्वी पर आ गया था।' वस्तुत वह अत्यधिक मिलनसार तथा हसमुख स्वभाव की हैं। लेखक का प्रथम परिचय नीरव ही रह गया लेकिन साहित्य म प्रौढ़ता प्राप्त करने के साथ उनका सम्बन्ध भी बढा। लेखक अपनी सवेदना म निराला पत और महादेवी स तादात्म्य का अनुभव करता है। उनकी स्नेहिल बहिन कलावती ही लेखक की अ तरात्मा म निवास करती वही उनकी अन्तश्चेतना थी।' पत और महादेवी की भाषा भाव और शली मे भिन्नता होते हुए भी उनका अ तजगत एक ही है। महादेवी की कविता म लेखक को बहिन का ही अन्तजगत आभासित होता। लेखक ने उनसे मिलन के क्षणो का चित्र इस प्रकार चित्रित किया है वे मुझसे ऐसे मिलती थीं जस अपने अन्तजगत के किसी पारिवारिक प्राणी से मिलती हो। वार्तालाप के स्वगत क्षणो म ऐसा जान पडता वे श्रान्त क्लान्त भाराक्रान्त हैं।' महादेवी की कविताओ मे जो अन्तर्वेदना व्यक्त हुई है वह लौकिक न होकर अलौकिक है। इसे उन्होंने स्वय 'रश्मि' की अपनी बात मे स्पष्ट कर दिया है। वह बुद्ध की अनुरागिनी तथा उनके दुखवाद से प्रभावित थीं। लेकिन कृष्ण काव्य के प्रभाव स उनके दुखवाद म भी वेदना का मधुर हास है। महादेवी को 'आधुनिक मीरा' भी कहा जाता है। महादेवी जी कविताओ म तो अपनी अन्तरात्मा का आसव घोलती थीं लेकिन सामाजिक विषमताओ एव नारी जागरण तथा उनकी समस्याओ स सम्बन्धित लेखो को प्रत्यक्ष किया।

---

१ 'परिक्रमा' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १९५।
२ वही पृ० १९९।
३ वही पृ० १९९।
४ वही पृ० २०१।

द्विवेदी जी के निबन्धों का सैद्धान्तिक विश्लेषण

हिन्दी निबन्ध के सैद्धान्तिक स्वरूप का उसके विकास की पृष्ठभूमि में अध्ययन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि संस्कृत भाषा में इस शब्द के उद्गम काल से लेकर आधुनिक काल तक इसके अर्थ और धारणा में व्यापक परिवर्तन हुआ है। श्री आप्टे के कोश के अनुसार निबन्ध के कई अर्थ हैं जिनमें विचार सूत्र के ग्रन्थ में लेकर वैचारिक शृंखला के संग्रह तथा औषधि तक का उल्लेख है।[३] कालान्तर में निबन्ध शब्द का प्रयोग प्रबन्ध, सन्दर्भ, रचना लेख आदि के अर्थ में किया जाने लगा। आधुनिक विचारकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्ध को गद्य की कसौटी माना।[४] निबन्ध विषयक इस धारणा के अनुसार यदि द्विवेदी जी के निबन्धों का विश्लेषण किया जाये तो वह एक उत्कृष्ट गद्य लेखक सिद्ध होते हैं। 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य' 'सामयिकी', 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'ममवन' तथा 'परिक्रमा' आदि निबन्ध संग्रहों में उनकी विचार शैली का समुचित विकास स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है। समकालीन साहित्य के गद्य और पद्य रूपों से सम्बन्धित जो आन्दोलन वैचारिक स्तर पर द्विवेदी जी के काल में हुए उनमें रहस्यवाद छायावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद तथा आदर्शवाद आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी जी ने जहां एक ओर इन समकालीन विचारान्दोलनों से व्यापक प्रेरणा ग्रहण की है वहां दूसरी ओर इनके क्षेत्र में अपनी मौलिक रचनात्मकता का भी परिचय दिया है। निबन्ध के क्षेत्र में भी उन्होंने वैयक्तिक और भावात्मक शैलियों का दार्शनिकता और आध्यात्मिकता से जो समन्वय किया है वह उनके साहित्य के कलात्मक स्तर के साथ-साथ चिन्तन की प्रौढ़ता से भी युक्त है।

[१] निबन्धकार द्विवेदी जी का व्यक्तित्व इस अध्याय के आरम्भ में यह संकेत किया जा चुका है कि शान्तिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हिन्दी निबन्ध के इतिहास के जिस युग में हुआ उसमें विचारात्मक आलोचनात्मक, विवरणात्मक भावात्मक, संस्मरणात्मक तथा सामयिक निबन्ध क्षेत्रीय विविध प्रवृत्तियां विद्यमान थीं। द्विवेदी जी के एक निबन्धकार के रूप में जिस व्यक्तित्व का परिचय पाठक को मिलता है वह एक ओर उनकी भाषा शैली की प्रौढ़ता का द्योतन करता है और दूसरी ओर उनके व्यक्तित्व की जागरूकता और चेतन सम्पन्नता का भी आभास देता है। 'जीवन यात्रा', 'साहित्यिकी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी' 'धरातल', 'साकल्य', 'पद्मनाभिका', 'आधान', 'वृन्त और विकास', 'ममवन' तथा 'परिक्रमा' आदि निबन्ध संग्रहों में विषयगत वैविध्य और अभिव्यक्तिगत मौलिकता का जो समन्वय मिलता है वह

---

३ प्रेक्टिकल संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, वामन शिवराम आप्टे पृ० ९०१।

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ५०५।

द्विवेदी जी को अपने युग मे अन्य निबन्धकारो की तुलना मे सहज ही एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देता है। उनके सहज चिंतन की जो अभिव्यजना विविध विषयक निबन्धो मे मिलती है वह सामान्यत इस युग के अन्य निबन्धकारो की रचनाओ मे दुलभ है, विशेष रूप स दाशनिक और आध्यात्मिक विषयो पर लिखे गय। उनके निबन्धो मे मानवीय जीवन की परस्पर विरोधी वत्तियो का जो निरूपण मिलता है वह उनके एक निबन्धकार के रूप मे व्यक्तित्व की आत्म केन्द्रता का परिचायक है। यह इस कारण है क्योकि द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की निर्मित का आधार ही आत्मचिन्तन और आत्मविश्वास है। वास्तव म द्विवेदी जी ने मनुष्य को स्वय अपनी क्षमता पर विश्वास करने की प्रेरणा दी है और इस प्रकार उसे प्रगति के पथ पर अग्रसारित होन का सकेत किया है। इस प्रकार का दृष्टिकोण लखक के साहित्यिक यक्तित्व की सरलता, आदशमयता आध्यात्मिकता और स्वावलम्बनप्रियता आदि का परिचायक है।

[२] द्विवेदी जी के निबन्धों का विषय वविध्य श्री शातिप्रिय द्विवेदी क निब ध साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता उसका विषय वैविध्य है। उन्होन विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र म जो रचनाए प्रस्तुत की हैं वे दशन, सस्कृति परम्परा आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान, समाजशास्त्र राजनीति, साहित्य और जीवन मूल्यो स सम्बधित हैं। इनम लेखक का गम्भीर चिन्तन प्रवाह परिलक्षित होता है। विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र मे द्विवेदी जी का दष्टिकोण मुख्यत समन्वयवादी है। इसके अन्तगत उन्होने विश्व कल्याण साहित्यिक उपलब्धियो साहित्य सिद्धान्तो साहित्यकारो के व्यक्तित्व विश्लेपण, कवियो कलाकारा सन्तो तथा आधुनिक भौतिकवादी जीवन से सम्बधित विचार प्रस्तुत किये हैं। अपने विवरणात्मक निबन्धो मे उन्होन मुख्य रूप स बोधिसत्व के रूप मे गौतम बुद्ध जसी महान् विभूतियो के शाश्वत सन्देशो को काव्यात्मक भाषा और कथात्मक शली मे उनकी समस्त दाशनिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है। इनके साथ ही सामयिक निबन्धो के अन्तगत उन्होंने समकालीन जीवन के विभिन्न क्षत्रो मे व्याप्त गम्भीर समस्याओं पर अपने निष्कर्षात्मक विचार प्रस्तुत किये हैं। इन निबन्धो मे लेखक न आधुनिक काल मे जीवन का लक्ष्य, लौकिक योग्यता, कृषक और शिक्षित युवको का जीवन कृत्रिम और स्वाभाविक जीवन, नवयुवक और स्वावलम्बन, स्वदेश प्रेम तथा युद्ध की विभीपिका आदि के साथ साथ यान्त्रिकता रोटी की समस्या, काम भावना साहित्य का व्यवसाय विश्व विद्यालयीन शिक्षा सास्कृतिक शिक्षा, उद्योग और आत्मयोग, लोक कला का आधुनिकीकरण आदि पर जागरूक चिन्तन प्रस्तुत किया है। अपने आलोचनात्मक निबन्धा म द्विवेदी जी ने मुख्य रूप से व्रज भाषा का माधुय विलास उपन्यास कला और उपन्यासकार, हिन्दी साहित्य का भविष्य सास्कृतिक और प्रगतिशील कवि, वतमान कविता का क्रम विकास तुलसीदास का सामाजिक आदश, सूरदास की काव्य साधना

ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र, आधुनिक साहित्य के विविध वाद आदि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके अतिरिक्त अपने भावात्मक निबन्धों में द्विवेदी जी ने बुद्धि प्रधान निबन्धों से पृथक भावमयी आत्मानुभूति की सफल व्यंजना की है। यह निबन्ध लेखक के प्रतिनिधि निबन्ध हैं।

[३] द्विवेदी जी का वाद विवेचन श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपने निबन्ध साहित्य में विभिन्न साहित्यिक एवं राजनैतिक वादों का विश्लेषण करते हुए अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी साहित्य के वर्तमान युग में द्विवेदी जी के आविर्भाव का समय छायावाद और उसका परवर्ती काल है। उनके विचार से छायावाद में सगुण रोमान्टिकता की भावना उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार से भक्तियुग में सगुण पौराणिकता की भावना थी। इन दोनों में ही सगुण रूप में सम्पूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता अथवा ईश्वरता और आत्मानुभूति की विशदता अथवा विश्व व्यापकता है। इतना अन्तर अवश्य है कि भक्ति युगीन सगुण भावना धार्मिक थी जब कि छायावाद युगीन सगुण भावना नैसर्गिक है। साथ हो भक्ति युगीन सगुण में परमात्म भाव का आलम्बन या माध्यम नर रूप नारायण पुरुष है जब कि छायावाद का आलम्बन नारी रूप नारायणी प्रकृति है। इस दृष्टि से छायावाद में प्रकृति स्वयं अपने में पूर्ण और सन्तुष्ट है। वह योगमाया है, जिसकी साधना ही राग साधना है। अन्तर इतना है कि यह राग केवल इन्द्रिय व्यापार के माध्यम से व्यक्त होने वाला मनोविकार ही नहीं है वरन् मानवीय चेतना का अतीन्द्रिय मर्मोद्रेक भी है। द्विवेदी जी के विचार से छायावाद का प्रादुर्भाव भारतीय साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा के माध्यम से हुआ था। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है मध्य युगीन भक्ति काव्य की भांति छायावाद युगीन काव्य में मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता है। इस दृष्टि से उसे कृष्ण काव्य का ऐसा पुनरुत्थान कहा जा सकता है जिसमें रागानुरक्ति अथवा माहासक्ति रूपी कलानुरंजन मिलता है। छायावाद का कवि प्रकृति के सचेतन व्यक्तित्व की स्थापना करता है। इस दृष्टि से उसे आधुनिक युग में नीति युगीन काव्य की पृष्ठभूमि में रोमान्टिक पुनरुत्थान कहा जा सकता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से छायावाद का स्पष्ट भेद है। यह भेद मुख्यतः आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिकोणगत विरोध के कारण है। द्विवेदी जी की धारणा है कि भाषा विश्लेषणवाद और मार्क्सवाद के प्रचार के बाद मानवतावादी रचनाओं का ही आधिक्य था जिसके प्रतिनिधि प्रेमचन्द और प्रसाद थे। इनके मानवतावादी दृष्टिकोण में यथार्थ की जड़ता न होकर आदर्श की चेतना और जागरूकता थी जो स्वस्थ साहित्य के निर्माण का आधार थी। चूंकि मानवतावाद का उद्भव सांस्कृतिक आभ्यान्तरिकता से हुआ था इसलिए उसमें हार्दिक सरलता थी। इसके विपरीत मार्क्सवाद का साहित्य में प्रवेश राजनीति के अभ्यन्तर से होने के कारण उसमें बौद्धिकता? विचारप्राधान्य और रसहीनता है। कलात्मकता के स्थान

द्विवेदी जी को अपने युग के अन्य निबन्धकारों की तुलना मे सहज ही एक विशिष्ट स्थान का अधिकारी बना देता है। उनके सहज चिंतन की जो अभिव्यजना विविध विषयक निबन्धो मे मिलती है वह सामान्यत इस युग के अन्य निबन्धकारो की रचनाओं म दुलभ है, विशेष रूप से दाशनिक और आध्यात्मिक विषयो पर लिखे गय। उनके निबन्धो म मानवीय जीवन की परस्पर विरोधी वत्तियो का जो निरूपण मिलता है वह उनके एक निबन्धकार के रूप म व्यक्तित्व की आत्म केन्द्रता का परिचायक है। यह इस कारण है क्योकि द्विवेदी जी के व्यक्तित्व की निर्मिति का आधार ही आत्मचिन्तन और आत्मविश्वास है। वास्तव म द्विवेदी जी ने मनुष्य को स्वय अपनी क्षमता पर विश्वास करने की प्रेरणा दी है और इस प्रकार उसे प्रगति के पथ पर अग्रसारित होने का सकेत किया है। इस प्रकार का दृष्टिकोण लखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की सरलता, आदशमयता आध्यात्मिकता और स्वावलम्वनप्रियता आदि का परिचायक है।

[२] द्विवेदी जी के निबधों का विषय वविध्य श्री शातिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता उसका विषय वविध्य है। उन्होने विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र म जो रचनाए प्रस्तुत की हैं वे दशन सस्कृति परम्परा, आधुनिकता, ज्ञान विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, साहित्य और जीवन मूल्यो स सम्बधित हैं। इनमे लेखक का गम्भीर चिन्तन प्रवाह परिलक्षित होता है। विचारात्मक निबन्धो के क्षेत्र म द्विवेदी जी का दष्टिकोण मुख्यत समन्वयवादी है। इसके अन्तगत उन्होने विश्व कल्याण, साहित्यिक उपलब्धियो साहित्य सिद्धान्तो साहित्यकारो के व्यक्तित्व विश्लेषण कवियो कलाकारो सन्तो तथा आधुनिक भौतिकवादी जीवन से सम्बधित विचार प्रस्तुत किये हैं। अपने विवरणात्मक निबन्धो मे उन्होंने मुख्य रूप से बोधिसत्व के रूप मे गौतम बुद्ध जसी महान विभूतियो के शाश्वत सन्देशो को काव्यात्मक भाषा और कथात्मक शैली मे उनकी समस्त दाशनिक गरिमा के साथ प्रस्तुत किया है। इनके साथ ही सामयिक निबन्धा के अन्तगत उन्होंने समकालीन जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे व्याप्त गम्भीर समस्याओ पर अपने निष्कर्षात्मक विचार प्रस्तुत किये हैं। इन निबन्धो मे लेखक ने आधुनिक काल मे जीवन का लक्ष्य लौकिक योग्यता कृषक और शिक्षित युवको का जीवन कृत्रिम और स्वाभाविक जीवन, नवयुवक और स्वावलम्बन, स्वदेश प्रेम तथा युद्ध की विभीषिका आदि के साथ साथ यान्त्रिकता रोटी की समस्या, काम भावना साहित्य का व्यवसाय विश्व विद्यालयीन शिक्षा, सास्कृतिक शिक्षा, उद्योग और आत्मयोग, लोक कला का आधुनिकीकरण आदि पर जागरूक चिन्तन प्रस्तुत किया है। अपने आलोचनात्मक निबन्धा म द्विवेदी जी ने मुख्य रूप से व्रज भाषा का माधुय विलास उपन्यास कला और उपन्यासकार हिन्दी साहित्य का भविष्य, सास्कृतिक और प्रगतिशील कवि, वतमान कविता का क्रम विकास, तुलसीदास का सामाजिक आदश, सूरदास की काव्य-साधना

ग्राम्य जीवन के काव्य चित्र आधुनिक साहित्य के विविध वाद आदि सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आलोचना से सम्बन्धित विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके अतिरिक्त अपने भावात्मक निबन्धों में द्विवेदी जी ने बुद्धि प्रधान निबन्धों से पृथक भावमयी आत्मानुभूति की सफल व्यंजना की है। यह निबन्ध लेखक के प्रतिनिधि निबन्ध हैं।

[३] द्विवेदी जी का वाद विवेचन श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपने निबन्ध साहित्य में विभिन्न साहित्यिक एवं राजनैतिक वादों का विश्लेषण करते हुए अपने मन्तव्य प्रस्तुत किये हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी साहित्य के वर्तमान युग में द्विवेदी जी के आविर्भाव का समय छायावाद और उसका परवर्ती काल है। उनके विचार से छायावाद में सगुण रोमांटिकता की भावना उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार से भक्तियुग में सगुण पौराणिकता की भावना थी। इन दोनों में ही सगुण रूप में सम्पूर्ण सृष्टि के साथ एकात्मता अथवा ईश्वरता और आत्मानुभूति की विशदता अथवा विश्व व्यापकता है। इतना अन्तर अवश्य है कि भक्ति युगीन सगुण भावना धार्मिक थी जब कि छायावाद युगीन सगुण भावना नैसर्गिक है। साथ ही भक्ति युगीन सगुण में परमात्म भाव का आलम्बन या माध्यम नर रूप नारायण पुरुष है जब कि छायावाद का आलम्बन नारी रूप नारायणी प्रकृति है। इस दृष्टि में छायावाद में प्रकृति स्वयं अपने में पूर्ण और सन्तुष्ट है। वह योगमाया है जिसकी साधना ही राग साधना है। अन्तर इतना है कि यह राग केवल इन्द्रिय व्यापार के माध्यम से व्यक्त होने वाला मनोविकार ही नहीं है वरन मानवीय चेतना का अतीन्द्रिय मर्मोद्रेक भी है। द्विवेदी जी के विचार से छायावाद का प्रादुर्भाव भारतीय साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्र की काव्य प्रतिभा के माध्यम से हुआ था। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है मध्य युगीन भक्ति काव्य की भांति छायावाद युगीन काव्य में मनुष्य की वैयक्तिक अनुभूतियों की प्रधानता है। इस दृष्टि से उसे कृष्ण काव्य का ऐसा पुनरुत्थान कहा जा सकता है जिसमें रागानुरक्ति अथवा माहासक्ति रूपी कलानुरंजन मिलता है। छायावाद का कवि प्रकृति के सचेतन व्यक्तित्व की स्थापना करता है। इस दृष्टि से उसे आधुनिक युग में रीति युगीन काव्य की पृष्ठभूमि में रोमांटिक पुनरुत्थान कहा जा सकता है। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से छायावाद का स्पष्ट भेद है। यह भेद मुख्यतः आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिकोणगत विरोध के कारण है। द्विवेदी जी की धारणा है कि भाषा विश्लेषणवाद और मार्क्सवाद के प्रचार के बाद मानवतावादी रचनाओं का ही आधिक्य था जिसके प्रतिनिधि प्रेमचन्द और प्रसाद थे। इनके मानवतावादी दृष्टिकोण में यथार्थ की जड़ता न होकर आदर्श की चेतना और जागरूकता थी जो स्वस्थ साहित्य के निर्माण का आधार थी। चूंकि मानवतावाद का उद्भव सांस्कृतिक आभ्यान्तरिकता से हुआ था इसलिए उसमें हार्दिक सरलता थी। इसके विपरीत मार्क्सवाद का साहित्य में प्रवेश राजनीति के अभ्यन्तर से होने के कारण उसमें बौद्धिकता? विचार प्राधान्य और रसहीनता है। कलात्मकता के स्थान

पर उसमे प्रचारात्मकता की प्रधानता है। द्विवेदी जी ने फ्रायडवाद का विरोध करते हुए साहित्य मे मानवीय विकृतियो का निषेध किया है। इसी सन्दर्भ म द्विवेदी जी ने प्रभाववादी समीक्षा से सम्बन्धित विचार भी उल्लेखनीय है जिसे उन्होने ऐसी समीक्षा कहा है जो रोमांटिक, भावात्मक और कलात्मक है। इस आधार पर उन्होंने प्रगतिवादी समीक्षा को सवेदना शून्य और मात्र समाजशास्त्रीय निर्दिष्ट किया है।

आधुनिक राजनैतिक जीवन दर्शन स प्रभावित मतवादों म श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने गांधीवाद और समाजवाद आदि पर भी विस्तार से विचार व्यक्त किये है। उन्होंने सर्वोदय अथवा समाजवाद म आर्थिक दृष्टिकोण के साथ साथ सास्कृतिक दृष्टिकोण पर भी बल दिया है। उनका विचार है कि व्यवहारत आर्थिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण एक रूपात्मकता रखते है। यह इस कारण है क्योकि इनमे साधन केवल जड वस्तु मात्र नही है और इस दृष्टि स पार्थक्य भी नही है। उनकी धारणा है कि गांधीवाद क अन्तर्गत खादी प्रयोग पर ग्रामोद्योग के प्रचार प्रसार पर जो बल दिया गया है वह इन साधनो की स्वाभाविकता के साथ साथ प्रत्येक व्यक्ति के श्रमगत स्वावलम्बन का उन्मेष भी करता है। द्विवेदी जी का विचार है कि किसी भी समाज मे विविध वर्गों के श्रमिको का श्रम मूलत स्वावलम्बी होता है। उसमे कोई असामाजिक विघटन नही होता है और अन्योन्याश्रयता होती है। दूसरे शब्दो म यह कहा जा सकता है कि अनेक वर्गो के श्रमिको के सहयोग के स्वावलम्बन से ही समाज की सरचना हुई। इसलिए विशुद्ध समाजवाद वह नही है जहा आर्थिक विकेन्द्रीकरण है वरन् वह है जहा साधन की स्वाभाविकता प्राथमिक है जिसके अनुरूप ही साध्य बनता है और जिससे सस्कृति का उदभव होता है। द्विवेदी जी का विचार है कि समाजवाद का विकास जीवशास्त्र और अर्थशास्त्र का आधार ग्रहण करके हुआ है, उनम आधुनिक मानव की सबसे बडी विकृति अर्थात अहकार के कीर्ति और शक्ति रूपी प्रच्छन्न प्रतीको की निहिति है। यही विकार न्यूनाधिक रूप मे किंचित परिवर्तन के साथ व्यक्तिवाद और पूजीवाद म विद्यमान है। इससे मुक्ति तभी मिल सकती है जब आत्म चेतना के परिनिष्ठित स्वरूप पर बल देने वाले गांधीवाद को अपनाया जाए।

[४] द्विवेदी जी के निबन्धो की भाषा श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य का अवलोकन करने पर इस तथ्य की अवगति होती है कि उनकी भाषा प्राय समकालीन प्रभावो को अपने मे समाविष्ट किए है। जैसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है उनका रचना काल छायावाद और उसका परवर्ती युग रहा है। इस दृष्टि से उनकी भाषा पर भी छायावाद और उसके परवर्ती साहित्यिक आन्दोलना का प्रभाव है। द्विवेदी जी के लिखे हुए विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक भावात्मक, सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयो से सम्बन्धित निबन्ध भाषागत वैविध्य रखते हैं जो मुख्यत रचना काल और विषय वस्तु क अनुरूप ही है। यहा पर सक्षेप

म द्विवेदी जी के निबन्धो म प्रयुक्त भाषा के विविध रूपो की ओर सकेत किया जा रहा है।

सस्कृत निष्ठ भाषा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे भाषा के जो रूप उपलब्ध होते हैं उनम सवप्रथम सस्कृत निष्ठ भाषा का उल्लेख किया जा सकता है। यह भाषा मुख्य रूप से उन स्तरो पर प्रयुक्त हुई है जहा लेखक ने भावनात्मक प्राबल्य स मुक्त विचार विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए परिक्रमा पुस्तक के कुसुमकुमार कवि पन्त' निबन्ध मे अन्तर्निर्माण शीर्षक के अन्तगत यह उदाहरण दृष्टव्य है 'जन्म के दिन ही जिस जन्मजात कवि का शिशु हृदय मात वचित हो गया उस नव प्राण कुडमल का अवतरण कितने करुण वातावरण म हुआ। क्या यह मनोवैज्ञानिक विरोधाभास नही है कि विषादपूर्ण वातावरण म उत्पन्न होकर भी वह अवसन्नता का नही श्रद्धा, सौन्दय और उल्लास का कवि हो गया। जीवन म इतना अमृतत्व इतना माधुय उस कहा स मिल गया? अग जग स अलिप्त अपने अतीन्द्रिय अन्त करण म सम्पुटित वह शिशु शतदल की भाति मुकुलित होकर सत्य शिव सुन्दरम् का प्रतिनिधि हो गया।'[1]

क्लिष्ट अथवा दुरूह भाषा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य म प्रयुक्त भाषा का दूसरा रूप क्लिष्टता अथवा दुरूहता है। इस प्रकार की भाषा म भी शब्दावली सस्कृत प्रधान ही है। इस दृष्टि स यह भाषा रूप भी सस्कृत निष्ठ भाषा स पर्याप्त साम्य रखती है। अन्तर केवल इतना है कि इसम ऐस शब्द गम्भीर भाव व्यक्त करते हुए भी किंचित क्लिष्ट प्रतीत होते हैं यद्यपि इसस निबन्ध प्रवाह म कोई बाधा नही आती। इसके उदाहरण मुख्यत गम्भीर विषयात्मक निबन्धो म उपलब्ध होते हैं। द्विवेदी जी लिखित 'पदमनाभिका' पुस्तक मे सगहीत 'बोधिसत्व' शीर्षक निबन्ध से इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है—अरुणोदय की बेला म राजकुमार देवविमान के सदृश सर्वोत्तम रथ पर बैठकर नगर की ओर चला, रथ म पारद की तरह चचल और कपूर की तरह उज्ज्वल तुरग जुते हुए थ। सूय के प्रकाश स रथ का मडप झलमला रहा था। मडप के स्वण केतु को दूर स फहराते देखकर पुरवासी प्रमुदित हो उठे। समीप आन पर उन्होंने उल्ल सित कठ स जयघोष किया। पुष्पो की वर्षा से राजपथ कुसुमित हो गया। वाद्य वृन्द बज उठे देवलोक की पूजा ध्वनि की तरह शखरव वातावरण को अभिमन्त्रित करने लगा। फूलो की मालाओ से कुमार की ग्रीवा मानो स्नेह और सम्मान के आलिगन से आपूर्ण हो गई। द्वार पर खडी कुलवधुओ ने दधि दुर्वा और गोरोचन से राज-कुमार का स्वस्त्ययन किया।[2]

---

१ परिक्रमा, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० १५१।
२ 'पद्मनाभिका' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११० १११।

मिश्रित भाषा — श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य में अनुपात की दृष्टि से बहुत बड़ी संख्या ऐसी रचनाओं की है जिसमें मिश्रित भाषा का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार की भाषा में उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के उन शब्दों का प्रयोग किया है जो भाषा के रूप में हिन्दी में अंगीकृत कर लिए गए हैं। विषय के अनुसार विभिन्न प्रसंगों में संस्कृत, उर्दू अथवा अंग्रेजी के शब्दों का भावानुसारी प्रयोग न्यूनाधिक हो गया है। अनावश्यक विस्तार के भय से यहाँ पर उक्त सभी भाषा रूपों के पृथक् पृथक् उदाहरण न देकर केवल एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें मिश्रित भाषा का प्रतिनिधि स्वरूप दृष्टिगत होता है — 'बम्बई में छोटे हाल वाले भद्र पुरुष की बात पर आप विचार कीजिए। वह अपने कार्यालय में बैठा अभी काम में व्यस्त है। एकाएक उसके फोन की टनटन सुनाई देती है। कौन-सी बात? टेलीफोन की थी। वह शायद घर टेलीफोन के पास पहुँचता है परन्तु सन्देश सुनते ही समय उसका कलेजा धड़कने लगता है। पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। टेलीग्राम। यहाँ दुखदायी समाचार रहा होगा। बेचारा सिसकियाँ सन्न कर बताता रहा है उसकी सुध-बुध जाती रही। चेहरे का रंग उड़ गया। पीला मुर्दनी छाया हुआ मुँह लेकर वह अपने आसन पर आया, कोट पहना तथा टोपी ली और कार्यालय से चल दिया — मानो उसे बन्दूक की सी गोली लग गयी हो। उसने अपने प्रधान से अनुमति भी नहीं ली। अपनी चौकी पर फैले हुए कागज पत्रों को भी समेटकर बन्द नहीं किया। उसका सारा ध्यान गया जाता रहा और सीधा कार्यालय से चल दिया। *उसके साथी चकित रह गये।'*[1]

[५] द्विवेदी जी के निबन्धों की शैली — श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के विविध विषयक निबन्धों में रागात्मक, रूपात्मक, संश्लिष्ट आलंकारिक, भावात्मक, विचारात्मक, आलोचनात्मक, व्याख्यात्मक, निर्णयात्मक, उद्बोधनात्मक, वर्णनात्मक और हास्य व्यंग्यात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। ये शैलियाँ विभिन्न विषयों और प्रसंगों के अनुरूप परिवर्तित होती रहीं। इनके उदाहरण द्विवेदी जी के जीवन यात्रा, साहित्यिकी, युग और साहित्य, सामयिकी, धरातल, सांकल्य, पद्मनाभिका, आधान, वृन्त और विकास, समवेत, एवं परिक्रमा आदि सभी निबन्ध संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर इनमें से प्रत्येक शैली का एक प्रतिनिधि उदाहरण परिचय के लिए उद्धृत किया जा रहा है।

रागात्मक शैली — द्विवेदी जी के निबन्धों में रागात्मक शैली का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह मुख्यतः उन निबन्धों में प्रयुक्त हुआ है जिनमें आध्यात्मिकता और भौतिकता के साथ रागात्मकता का समन्वय हुआ है। यह शैली उनके कवि हृदय की कोमल राग वृत्ति की ही परिचायक है। द्विवेदी जी के लिखे हुए परिक्रमा नामक

---

१ जीवन यात्रा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० २०-२१।

निबन्ध सग्रह की 'वह अदश्य चेतना' शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है 'उस चिन्मयी का अमृत पावन नाम कल्पवती था। इस जन्म मे वह मेरी बाल विधवा बहिन थी। मेरे दुधमुहे शैशव मे ही जब मा का आचल सदा के लिए ओझल हो गया तब मस्तक पर उसी का कोमल कर पल्लव वात्सल्य का आचल बन गया। उसी ने मेरे जीवन मे राग का सचार किया। वह चिन्मयी पृथ्वी पर वाड्मयी होकर अवतरित हुई थी। पचभूतो से ही उसके शरीर का भी निर्माण हुआ था किन्तु शरीर भी उसकी आत्मा की तरह ही सूक्ष्म था, आत्मा ही अपने अनुरूप सदेह हो गयी थी जैसे सगीत वीणा के पतले तारो मे। चित्र की भाषा मे वह तन्वगी पदिमनी थी।''[1]

रूपात्मक शैली श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो मे प्रयुक्त विभिन्न शैलियो मे दूसरी प्रमुख शैली रूपात्मक है। इस शैली के उदाहरण 'परिक्रमा' तथा 'जीवन यात्रा' शीर्षक निबन्ध सग्रहो की अनेक रचनाओ मे उपलब्ध होते हैं। यह शैली विशेष रूप से उन स्थलो पर मिलती है जहा लेखक ने किसी वस्तु स्थिति का विशिष्ट कथात्मक चित्रण प्रस्तुत किया है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की 'जीवन यात्रा' नामक निबन्ध पुस्तक मे सगहीत निबन्ध 'मृग तृष्णा' शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहा प्रस्तुत है 'हम लोगो ने अपने जीवन के चारो ओर एक भीषण ज्वाला धधका रखी है। यद्यपि हम उसे देख नही पाते तथापि हम सब उसमे भस्म हुए जा रहे हैं। ससार का कोना-कोना उस ज्वाला से जल रहा है। हम त्राहि-त्राहि कर रहे हैं हाहाकार से आकाश का हृदय कपा रहे हैं किन्तु यह समझने की चेष्टा नही करते कि यह ज्वाला कहा है और कहा धधक रही है? जितनी आसानी से हम घर मे लगी हुई आग को बुझा सकते हैं उससे भी अधिक सुगमता से हम इस अदश्य ज्वाला को शात कर सकते हैं।'[2]

सश्लिष्ट शैली श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य मे उपलब्ध विभिन्न शैलियो मे तीसरी उल्लेखनीय शैली सश्लिष्ट शैली है। इसके उदाहरण 'युग और साहित्य' तथा 'सामयिकी' शीर्षक निबन्ध पुस्तको मे सगहीत अनेक रचनाओ मे उपलब्ध होते हैं। यह शैली लेखक के साहित्यिक व्यक्तित्व की गम्भीरता, शब्द चयन की सतर्कता और तत्व निरूपण की सम्यकता की द्योतक है। 'सामयिकी' मे सगहीत 'रवीन्द्रनाथ' शीर्षक निबन्ध से इसका एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है 'जब हम कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ ने कलात्मक सत्य दिया बापू ने कला रहित सत्य तब इसके माने यह कि रवीन्द्र का सत्य सकल्पात्मक है, बापू का सत्य निर्विकल्प। किन्तु सत्य जब विकल्पात्मक हो जाता है तब उसमे तामसिक कुरूपता आ जाती है

---

१ परिक्रमा, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० २०७।
२ 'जीवन यात्रा, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ३५।

रियलिज्म के नाम पर साहित्य में प्राय ऐसी सामयिकता मात्र बन जाती है। इस का कलाकार का सत्यात्मक गद्य साहित्य का गद्य का निर्विकल्प गद्य। और इस गांधीवाद का विरोध सादगी मात्र के प्रति होता था न कि कलाकार के कलात्मक सौन्दर्य-प्रेम के प्रति। कलात्मक गद्य जैसे ताज का राजयोग है।'

आलंकारिक शैली : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी जी की निबन्ध शैलियों में चौथी प्रमुख शैली आलंकारिक है जिसका उल्लेख यहाँ किया जा सकता है। यह शैली 'वृन्त और विकास' तथा 'परिक्रमा' नामक निबन्ध संग्रहों में बहुतायत से प्रयुक्त हुई है। विविध आलंकारिक प्रयोगों के माध्यम से उत्पन्न सौन्दर्य ही इनकी प्रमुख विशेषता है। 'परिक्रमा' शीर्षक निबन्ध की यह अद्भुत धारणा शीर्षक रचना से इसका एक उदाहरण यहाँ उद्धृत किया जा रहा है : 'निर्गुण कबीर की झीनी झीनी बीनी चदरिया बहुत सादी थी। उस महात्मा का जीवन निर्गुण की छाया की चदरिया की तरह ही झीना था किन्तु सगुण के रूप रंग रस से सुन्दर सुरभ और सरस था। बाल्यावस्था में ही धर्म्य से जो वनवास की कमी हो गयी थी उस बाल विरक्ति में वसन्त का यह भाव वयस बस आ गया। सांसारिक उपाधियों को छोड़कर उसमें उसका शैशव ही अक्षुण्ण हो गया था, काल उसकी अन्तरात्मा को उन्मीलित नहीं कर सका था। निर्लिप्त होकर भी वह अपनी शिशु सुलभ रागात्मिका दृष्टि से जिस मनोज्ञ सृष्टि का दर्शी थी उसे अपनी चेतना से आत्मसात कर नैसर्गिक सुषमा बना देती थी। उसके वृन्त विकास में सूर्यमुखी की तरह उसकी ज्योतिष्मती चेतना ही ज्योतिर्मय की ओर विकासोन्मुख होती जाती थी।'[2]

भावात्मक शैली : श्री द्विवेदी जी के निबन्ध साहित्य में प्रयुक्त शैलियों में पाँचवीं शैली भावात्मक है। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के विविध विषयक निबन्धों में उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के कवि हृदय की भी अभिव्यंजना हुई है। यह शैली उनके काव्यात्मक उद्गारों से परिपूर्ण है जो विचार तत्व के समन्वय से विशेष प्रभावयुक्त बन गयी है। इसका एक उदाहरण द्विवेदी जी के 'पद्मनाभिका' नामक निबन्ध संग्रह की 'नूतन पुरातन' रचना से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है : 'समय का प्रवाह बहता जा रहा है। जीवन के क्षण बुदबुदों की तरह विलीन होते जा रहे हैं। उन्हें क्या अक्षरों में बाँध लूँ? किसलिए? किसके लिए? विधाता तो सर्वान्तर्यामी है, वह तो बिना बोले, बिना लिखे, सबका सब कुछ सुनता, देखता समझता है, फिर भी मनुष्य बोलता है, किसलिए? किसके लिए? वह साँस लेता है, सभी जीवन साँस लेते हैं। जीने के लिए, जीवन देने के लिए। इसी तरह तो संसार चलता है, इसी तरह तो समय का प्रवाह बहता है। क्या हर्ज है यदि मनुष्य

---

१ सामयिकी : श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २७।

२ परिक्रमा, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २०९।

बुदबुदों की तरह अपनी क्षणभंगुर साँसों को स्मृतियों में पिरो ले।[१]

विचारात्मक शैली श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की निबन्धात्मक रचनाओं में प्रयुक्त शैलियों में विचारात्मक शैली भी यहाँ पर उल्लेखनीय है। इस शैली के विविध प्रसंगानुकूल रूप द्विवेदी जी के 'जीवन यात्रा', 'सामयिकी', 'साहित्यिकी' तथा 'युग और साहित्य' आदि निबन्ध संग्रहों में उपलब्ध होते हैं। यह शैली मुख्यतः विचार प्रधान है जिसकी मुख्य विशेषता चिन्तनात्मक प्रवाहशीलता है। इसका एक प्रतिनिधि उदाहरण यहाँ द्विवेदी जी लिखित 'जीवन यात्रा' नामक पुस्तक के 'जीवन का उद्देश्य' शीर्षक निबन्ध से प्रस्तुत किया जा रहा है 'संसार के पूजा-पाठ, जप तप दान तब तक हम कुछ भी शान्ति नहीं दे सकते जब तक कि वे हमारे संकुचित स्वार्थ के घेरे में हैं। ये धार्मिक कृत्य लोक-कल्याण के लिए है। जीवन संग्राम में लगे रहने के बाद ये पुण्य कृत्य हमारे सामने इसीलिए रखे गये हैं कि हमारा आन्तरिक ध्यान एक बार व्यष्टि से समष्टि की ओर जाय और हम बोध हो कि ईश्वर की कितनी विशाल सृष्टि के साथ हमें अपने सच्चे कर्मों या का तादात्म्य बनाना है। जो मैं जब हम इन कृत्यों द्वारा परार्थ की ओर बढ़ते हैं तो मन स्वस्थ होकर शान्ति का अनुभव करने लगता है और हम फिर किसी दूरस्थ स्वर्ग की कल्पना नहीं करनी पड़ती, क्योंकि तब वह स्वर्ग आत्मा में ही विद्यमान दीख पड़ता है। हम अपने और दूसरों के कृत्रिम दुख द्वन्द्व और हाहाकार को जितना ही कम कर सकें उतना ही चिर आनन्द के अपने जीवनादर्श के निकट पहुँचेंगे।[२]

आलोचनात्मक शैली श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य में आलोचनात्मक शैली का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वही उनके आलोचनात्मक साहित्य में भी विद्यमान है। अतएव यहाँ पर केवल संकेत रूप में इसका एक उद्धरण प्रस्तुत किया जा रहा है जो लेखक की आलोचनात्मक दृष्टि की सर्वांग संपूर्णता का आभास देने में समर्थ है देश द्रोही में जीवन के सभी अवयव संगठित हो गये हैं—व्यक्ति समाज राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र। इन्हीं के अनुरूप इसमें चरित्रों और समस्याओं की विविधता भी है—स्त्रियाँ भी हैं पुरुष भी पूँजीपति भी हैं मजदूर भी साथ ही राजनीतिक क्षेत्र के विभिन्न कार्यकर्ता भी। सामाजिक रूप में विवाह या प्रेम समस्या है राजनीतिक रूप में महायुद्ध अथवा जीवन मरण की समस्या। अन्त में सामाजिक और राजनीतिक उलझनों में उलझी हुई समस्या हृदय या प्रेम की है। मनुष्य अपनी हार्दिक समस्या में समूह का एक विवश अंग है। सामूहिक समस्या के सुलझे बिना वैयक्तिक समस्या भी सुलझ नहीं सकती इसलिए लेखक समष्टिवाद (कम्यूनिज्म) की ओर है। आज की विचारधाराओं का मतभेद सामूहिक समस्या के अस्तित्व में नहीं उनके

१ पद्मनाभिका श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ८।
२ जीवन यात्रा', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ३४।

स्वरूप में है—राजनीतिक या सास्कृतिक, बौद्धिक या हार्दिक। लेखक ने समस्याओं को सुलझाने के बजाय उन्हें प्रगतिशील दृष्टिकोण से समझने का साधन उपस्थित किया है।"[1]

व्याख्यात्मक शैली श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के अनेक निबन्धों में व्याख्यात्मक शैली भी अधिकता से प्रयुक्त हुई मिलती है। इस शैली का प्राचुर्य उन स्थलों पर विशेष रूप से हो गया है जहा पर उन्होंने किसी विशिष्ट तत्व के समुचित तथ्य के स्पष्टीकरण का प्रयत्न किया है। द्विवेदी जी के लिखे हुए आधान' नामक निबन्ध सग्रह में काव्य में भक्ति भावना शीर्षक से इस शैली का एक उदाहरण यहा उद्धृत किया जा रहा है भक्ति ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए नृत्य और सगीत के अतिरिक्त काव्य की भी सहायता ली। नृत्य गीत और वाद्य के सहयोग से भक्ति की भावना लहरीली हो गयी किन्तु उस गहराई और सुस्थिरता काव्य से ही मिली। काव्य में भक्ति की वे नीरव भावनाएं भी अभिव्यक्ति हुई जो समाधि में मूक थी। हमारे देश में भक्ति की दो काव्य धाराए प्रवाहित हुई है। एक धारा को हम निर्गुण काव्य कहते हैं, दूसरी धारा को सगुण काव्य। सुव्यवस्थित रूप में ये दोनों धाराए हिन्दी में ही देखी जा सकती हैं विश्व के किसी अन्य साहित्य में नहीं संस्कृत में भी नहीं।[2]

निर्णयात्मक शैली श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के निबन्ध साहित्य में एक अन्य शैली का भी प्रयोग हुआ है जिसे निर्णयात्मक शैली कहा जा सकता है। यह शैली वस्तुत उनके चिंतन प्रधान निबन्धों में निष्कर्षात्मक मन्तव्यों की अभिव्यंजना में प्रयुक्त हुई। द्विवेदी जी के धरातल नामक कृति के मनुष्य और यन्त्र शीर्षक निबन्ध से इसका एक उद्धरण दृष्टव्य है ' अतएव अहिंसा को चाहे पुरानी भाषा में जीव धर्म कहे अथवा छायावाद की भाषा में हृदयवाद कहे मानवोचित सद्वृत्तियों को रोपने के लिए वही उर्वर सुकोमल मनोभूमि है। कठोर धरती में कोई भी बीज नहीं जम सकता। वर्तमान प्रचलित अर्थ में प्रयुक्त मानववाद में गांधीवाद को सम्मिलित करना उसे सकुचित करना है। यद्यपि वह किसी वाद के अन्तर्गत नहीं है तथापि यदि इसके बिना काम न चलता हो तो हम कहेंगे उसे प्राणवाद हर स्थिति में वह यन्त्रवाद से भिन्न है।"[3]

उद्बोधनात्मक शैली श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के निबन्धों में जो रचनाए जीवन में निहित सद्गुण का पुष्टीकरण करती हैं इनमें प्रयुक्त शैली का एक रूप उद्बोधनात्मक भी है। इसमें मुख्य रूप से पाठकों को सम्बोधित करते हुए उन्हें उदात्त

१ सामयिकी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २४५।
२ आधान श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १२।
३ धरातल, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २२।

जीवन के अगीकरण की प्ररणा दी गयी है। इसका एक उदाहरण 'जीवन यात्रा नामक पुस्तक में सगृहीत 'प्रोत्साहन शीर्षक निबन्ध स यहा प्रस्तुत किया जा रहा है "हृदय में सदा आशा और विश्वास रखो—अपनी सफलता के लिए, क्याकि विजयी वही होते हैं जिन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास होता है। विश्वास और आशा का कभी त्याग न करना चाहिए क्याकि जिसके हृदय में दोना रहते हैं वह सदा धीर और प्रसन्न रहता है कठिनाइया और विपत्तिया का उस पर कोई प्रभाव नही पड सकता। यदि निराशा के दिन *आयें भी तो गम्भीर होकर विचारो। तुम देखोगे कि तुम्हारी* निराशा तुम्हारी गलती थी। जहा तुम निराश होते हो वही दूसरे पर्दे म आशा भी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है। सिफ तुम्ह पहचानने भर की देर है कि वह जीवन किस दिशा म है।"[1]

वणनात्मक शली श्री शातिप्रिय द्विवदी के निबन्ध साहित्य म वणनात्मक शली का रूप मुख्यता कथात्मक रचनाओ म उपलब्ध होता है। सामान्य रूप स यह शैली बोधिसत्व जसी कथात्मक एव विवरण प्रधान रचनाओ म विद्यमान मिलती है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है "वह आश्रम दिगन्त व्याप्त प्रकृति का एक स्वग द्वार था। उसके चारो ओर नद नदी, पवत निझर और हरित भरित वनराजि का शोभा प्रसार था पशु पक्षिया की क्रीडन कूजन जीवन का सचार कर रहा था। अनुरागिनी उषा अपन आलोक स उस निसग लोक का पटोद्घाटन करती विरागिनी सन्ध्या अपने शिथिल करा म पट परिवतन कर जाती। इसके बाद ससार अज्ञान की तरह अन्धकाराच्छन्न हो जाता। शन शन माया का सघन आवरण भेद कर चिन्मयी ज्योति की तरह चन्द्र ज्योत्स्ना छिटक पडती। क्रमश वह भी क्षीण होकर अपना उत्तराधिकार उषा को दे जाती।'[2]

व्यग्यात्मक शली श्री शातिप्रिय द्विवदी के निबन्ध साहित्य म प्रयुक्त शलिया म एक रूप *व्यग्यात्मक* भी है। इस शैली का प्रयोग मुख्यत उन स्थला पर हुआ ह जहा लेखक न जीवन के किसी क्षेत्र विशष स सम्बन्धित विडम्बना के प्रति व्यग्योक्ति की है। इसका एक उदाहरण उनकी आधान' शीषक कृति स यहा प्रस्तुत किया जा रहा है 'क्या खादी और हिन्दी का प्रचार व्यापार के लिए किया गया था? व्यापार बन कर टाना ही नही चल सकते। व्यापार म स्वार्थान्धता है खादी और हिन्दी मे प्राणि चेतना है सामाजिक सवन्ना है। जैसे गौ के व्यापार से गौ रक्षा नहा हो सकती, वसे ही खादी और हिन्दी की भी रक्षा नही हो सकती। भारत भी क्या भक्षक ही बना रहगा सामाजिक प्राणा नही? यदि पुराकाल मे ही भाषा और साहित्य व्यापार बन गया होता तो वद उपनिषद पुराण रामायण महाभारत सरस्वती के

---

१ जीवन यात्रा, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ८२ ८३।
२ पद्मनाभिका, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० १२६।

मंदिर के दीप स्तम्भ बन कर सष्टि को आलोक कसे प्रदान करते।'' इस प्रकार से श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के निबन्धो म विभिन्न शलियो का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह विविधता, कलात्मकता तथा प्रौढ़ता स युक्त है।

निबन्ध के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की उपलब्धिया

प्रस्तुत अध्याय म श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के निब ध साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह हि दी निबन्ध की विकासात्मक पृष्ठभूमि म उनकी उपलब्धियो का परिचय देने म समथ है। 'जीवन यात्रा, 'साहित्यिकी, युग और साहित्य' सामयिकी धरातल साकल्य पदमनाभिका 'आधान व ग और विकास समवेत एव परिक्रमा आदि निबन्ध सग्रह इस क्षेत्र म लखक की रचनात्मक प्रतिभा के द्योतक हैं। इन कृतिया मे सगहीत विचारात्मक, आलोचनात्मक, विवरणात्मक भावात्मक सस्मरणात्मक तथा सामयिक विषयो पर लिखे गये निबन्ध लखक की वचारिक जागरूकता के द्योतक है। अनेक समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए लेखक ने वतमान जीवन और उसके विविध पक्षो का विवेचन विभिन्न दष्टियो स किया है। एक ओर इनम लखक ने प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन पर बल दिया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन म सतुलन की आवश्यकता बतलाई है। 'जीवन यात्रा' मे सगहीत निबन्ध स्वावलम्बन त्याग, बलिदान सदाचार आत्मविश्वास आदि सदगुणो की प्रतिष्ठा करते हैं और इस विषय पर लिखे गये अ य निब धो स सहज ही पृथक किये जा सकते हैं। साहित्यिकी' म सगहीत निबन्ध वैचारिक सस्मरणात्मक भावात्मक तथा आलोचनात्मक कोटि के हैं। इनम लेखक ने यदि एक ओर विश्व स्तर पर टाल्स्टाय जसे मनुष्यो की रचनाओ का उदात्तपरक विवेचन किया है तो दूसरी ओर ब्रजभाषा के माधुय विलास जसी रचनाओ मे सौ दय शास्त्रीय दष्टिकोण का परिचय दिया है। प्रवास जसे निब ध लेखक की भावात्मक दष्टि और अभियजनात्मक परिचय दन म समथ हैं। युग और साहित्य' शीषक निबन्ध कृति मे लखक न साहित्यिक सामाजिक और राजनीतिक गति विधियो पर अपन विचार प्रकट किये हैं। द्वितीय विश्व युद्धकालीन रची गयी इस पुस्तक म समकालीन विचारान्दोलनो का भी विवेचन है। लखक का मन्तव्य है कि गाधीवाद तथा छायावाद का तुलना म समाजवाद एक नवीन आर्थिक दष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो तार्किक पुष्टता से भी युक्त है। लखक की यह भी धारणा है कि स्वतन्त्रता सग्राम के समय राष्ट्रीय भावना का विरोध करन वालो के मध्य आर्थिक स्वाथ की भावना प्रबल थी। आधुनिक हिन्दी कविता क विषय म लखक ने अपने इस मन्तव्य का प्रतिपादन किया कि सन १९४० के उपरान्त छाया

१ आधान श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ९७ ९८।

वाद के अभ्यन्तर से ही समाजवाद का उदभव हुआ। 'कथा साहित्य का जीवन पृष्ठ जस निबन्धा म लेखक ने आधुनिक युग के गद्य साहित्य क विकास की पूव पीठिका म सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक वातावरण का योग स्पष्ट किया है। साम यिकी म सगहीत निबन्धा म सस्कृति और प्रगति का समन्वित रूप प्रस्तुत करते हैं। इन निबन्धा म समग्र भारतीय साहित्य की आत्मा का निदशन है। धरातल म सगहीत निबन्धात्मक रचनाए गाधीवाद के मूलभूत तत्वा सेवा, सत्याग्रह अहिंसा और सर्वोदय के जीवनदशन की व्यावहारिक गरिमा पर बल दती हैं। लेखक की धारणा है कि आधुनिक यान्त्रिक जीवन की अधिकाश समस्या का निदान गाधीवाद म है। साकल्य म सगहीत निबन्ध मुख्यत साहित्य समाज और सस्कृति स सम्बधित है। इनम लखक ने भाषा समस्या पर भी विचार व्यक्त किये हैं। पद्मनाभिका म सगहीत निबन्धा म भी व्यापक दष्टिकोण स लेखक ने प्राचीनता और नवीनता के समन्वय का निरूपण करने के साथ साथ साहित्य क्षत्रीय विविध विषया का विवचन किया है। 'आधान के निबन्धा म जीवन म साहित्य कला और सस्कृति की स्थापना का दष्टिकोण है। वन्त और विकास म साहित्य सस्कृति और कला की विकासात्मक पृष्ठभूमि म विभिन्न रचनाए सगहीत की गयी हैं। समवत म इन विषया के साथ साथ आधुनिक जीवन की एक प्रमुख आवश्यकता अर्थात औद्योगिकता के सामजस्य पर भी बल दिया गया है। इस रूप म यह निबन्ध कृतिया जहा एक ओर श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी की विचारधारा और जीवन दशन की सुस्पष्टता का द्योतन करती है वहा दूसरी ओर उनके चिन्तन क्षत्र की व्यापकता और विषयगत विविधता का भी परिचय देने म समथ है। जहा तक निबन्ध के सैद्धान्तिक स्वरूप और तात्विक कला-पूर्णता का सम्बन्ध है द्विवेदी जी के निबन्ध उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की प्रखरता का ही आभास देते हैं। अपने अनेक निबन्धा म द्विवेदी जी ने विभिन्न सद्धान्तिक तथा व्यावहारिक समीक्षा सिद्धान्तो पर भी अपना मत व्यक्त किया है जिसका उल्लेख द्वितीय अध्याय म किया जा चुका है। उन्होन विचारात्मक आलोचनात्मक विवरणात्मक भावात्मक सस्मरणात्मक तथा सामयिक निबन्धो की समकालीन प्रवत्तिया क विकास म भी योगदान दिया है। सद्धान्तिक तत्वो क सम्यक निर्वाह के साथ द्विवेदी जी के निबन्धा म अभिव्यक्तिगत मौलिकता का जो समन्वय मिलता है वह इस क्षत्र मे उनकी विशिष्ट उपलब्धि का परिचायक है। जसा कि पीछे सकेत किया गया है दशन सस्कृति परम्परानुगामिता आधुनिकता ज्ञान विज्ञान, समाज शास्त्र राजनीति, साहित्य जीवन मूल्य आदि का विविध पक्षीय विवेचन उन्होन किया है। साहित्यिक और राजनतिक विचारान्दोलना पर भी उन्होन जो निबन्ध लिख ह व परिनिष्ठित अभिव्यजना तत्वा स युक्त है। द्विवेदी जी के निबन्धा की भाषा समकालीन प्रभावो स युक्त है और विषयानुरूप परिवर्तित होती रही है। रागात्मक रूपात्मक सश्लिष्ट आलकारिक, भावात्मक, विचारात्मक आलोचनात्मक निणयात्मक उदबो

धनात्मक, वणनात्मक और व्यग्यात्मक शैलियो का प्रयोग विविधता, कलात्मकता एव शलीगत प्रौढता का निदशक है। सक्षेप मे इस अध्याय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी की विभिन्न निबन्ध कृतियो के आधार पर उनकी रचनाओ का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक हिन्दी निबन्ध साहित्य के विकास मे विभिन्न प्रवत्तियो के रूप म उन्होने जो योग दिया है वह साहित्य की इस विधा के क्षेत्र म उनकी देन और उपलब्धियो का परिचय देने म समथ है।

शांतिप्रिय द्विवेदी का उपन्यास साहित्य

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के आलोचना तथा निबन्ध साहित्य का विश्लेषण इस प्रबन्ध के द्वितीय तथा तृतीय अध्याय मे किया जा चुका है। प्रस्तुत अध्याय म उनकी औपन्यासिक कृतियो का विवेचन किया जा रहा है। हिन्दी उपन्यास के इतिहास तथा समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे यदि द्विवेदी जी के उपन्यासो का मूल्याकन किया जाय तो इस तथ्य की अवगति होगी कि द्विवेदी जी की तथाकथित औपन्यासिक कृतिया उपन्यास के प्रचलित स्वरूप और अर्थ से पर्याप्त भिन्नता रखती हैं। इन दोनो मे ही सिद्धान्त उपन्यास के तत्व अत्यन्त क्षीण रूप म मिलते है। इसलिए इन्हें उपन्यास कहने का औचित्य लेखक के इनके सम्बन्ध मे दिये गये वक्तव्यो से ही अधिक सिद्ध होता है। शास्त्रीयता की दृष्टि से दिगम्बर', चारिका तथा चित्र और चिन्तन तीनो मे ही उपन्यास का जो स्वरूप उपलब्ध होता है वह मात्र एक औपन्यासिक रेखाकन ही है। इन तीनो उपन्यासो के आधार पर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र म द्विवेदी जी की देन का मूल्याकन करने के पूर्व हिन्दी उपन्यास के विकास एव समकालीन प्रवृत्तियों का भी यहाँ पर सक्षिप्त परिचय देना असगत न होगा क्योकि उनकी पृष्ठभूमि म इन उपन्यासो का प्रयोगात्मक महत्व भी आपेक्षिक रूप म स्पष्ट हो सकेगा।

शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

[१] 'दिगम्बर' हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र म 'दिगम्बर द्विवेदी जी की प्रथम एव प्रमुख रचना है। लेखक न इसे उपन्यास न मान कर केवल उसका रेखाकन मात्र माना है।[१] दिगम्बर उपन्यास २९ अध्यायो मे विभक्त है। यह औपन्यासिक कृति आत्मकथात्मक शैली मे लिखी गयी है। दिगम्बर का नायक विमल है। उसे ही केन्द्र मान कर कथा का निर्माण किया गया है। कथानक की पृष्ठभूमि आधुनिक समाज की परिवर्तित और सघर्षपूर्ण परिस्थितियो पर आधारित है। कथा का प्रारम्भ नायक विमल के पडोस मे हुए एक अनमेल विवाह से होता है। एक ऐसी लडकी का विवाह जिसका गरीबी के कारण बचपन न खिल सका और न किशोरावस्था का ही ठीक से प्रस्फुटन हो सका एक धनवान व्यक्ति से ही

१ दिगम्बर, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, 'प्राक्कथन, पृ० २।

जाता है। वधू विवाह के उपरान्त और भी श्रीहीन हो जाती है। विमल को अपने संयुक्त परिवार म केवल अपनी वृद्धा दादी का ही स्नेह एव संरक्षण प्राप्त था अन्यथा वह भूखा प्यासा ही रह जाता था। सिद्धि श्री काशी मे एक स्वस्तिमती बाल विधवा तपस्विनी तीर्थवास करती थी। वह वैष्णवी थी। हिंसा से उसे घृणा थी। वह तपस्विनी शिल्पिनी थी। उषा और संध्या की स्वर्णाभा म वह साडी के किनार पर टाके जाने वाले गोट की बुनाई कर के स्वावलम्बिनी बन गई थी, जिसन उसे निर्भय बना दिया था। एक दिन विमल भी उसके आश्रम मे पहुच कर दीदी कह कर पुकार उठा जिसमे ममता का विकल कठ था। उसने विमल को भी आत्मसात कर लिया। अब विमल को अपनी वात्सल्यमयी मा मिल गई थी जो उस बालक के साथ लाड दुलार कर अपना सूनापन हर लेना चाहती थी। धीरे धीरे विमल न पढना शुरू किया। वह मेधावी छात्र था लेकिन शरीर से निर्बल। वह किशोरावस्था तक पहुँच भी न पाया था कि उसने पठन से अवकाश ग्रहण कर लिया। और एक दिन वह वैष्णवी को भी त्याग कर उसे मर्माहत कर घर से चला गया। अब विमल इधर उधर निरुद्देश्य घूमने लगा। लेकिन यह परावलम्बी जीवन भी उसे अधिक पसन्द नही आया। अपनी थोडी सी विद्या के कारण वह सभ्य और पढे लिखे समाज के ससर्ग म भी आने लगा परन्तु किसी से भी उसे परामर्श एव अपने मन का समाधान न मिला। इधर कुछ समय से विमल को साहित्य से प्रेम हो गया था। विमल एक दिन एक विलायत से बैरिस्टरी पास हुए प्रतिष्ठित व्यक्ति से मिला जो लडको सा सरल और भीतर से गुरु गम्भीर नागरिक थे। और इस प्रकार विमल अपने बाल्य सस्कारो म प्रकृति की स्वाभाविकता, रसाल की सरसता पिता की परिव्राजकता, वैष्णवी की सात्विकता लेकर अनिश्चित भविष्य की ओर चलता गया।

इधर उधर भटकने के पश्चात् विमल एक वैद्य के यहाँ रहने लगा और उसके बदले मे वह उनका छोटा मोटा काम कर दिया करता। लेकिन एक दिन कुछ देर से घर लौटने पर वह मार खा गया और घर से निकाल दिया गया। विमल ने अपना नाम राष्ट्रीय विद्यालय म लिखा लिया और चर्खा कर्घा चलाना सीखन लगा, परन्तु वहा भी उसका चित्त न रम सका। अब विमल किशोरावस्था को पार कर रहा था। उसे अपने से छोटी लडकिया आकर्षित करतीं, उसम भी काम चेतना जाग्रत हो रही थी। एक दिन एक धनाढ्य बाल्यावस्था को पार करती हुई लडकी के साथ उसका ससर्ग हुआ एव अपनी अबोधता क कारण उसके पिता से उसे बहुत ही प्रताडना मिली। शहर म वह छापेखान स भी परिचित हो गया परन्तु उसकी बुद्धि व्यवसायी न थी। फिर वह रोजी क लिए एक शहर से दूसरे शहर म घूमने लगा। अब वह एक महाशय क यहा पर जम गया, जो प्रौढावस्था को पार कर रहे थे और कला के पारखी थ। यहाँ वह कभी-कभी बीमार रहन लगा। इसी बीच नगर के एक अन्य साहित्यकार से भी विमल का परिचय हुआ, जो बहुत मिलनसार थ और हमेशा अपनी धाक

बनाए रखते थे और जिन्होंने विमल को भग और देसी शराब का स्वाद करा दिया था। कभी कभी वह बन्धन से मुक्त होकर भ्रमण के लिए भी चल देता था। ऐसे ही विचरण करते हुए उसका परिचय कलाविद से हो गया, जो सुरुचि और सौन्दय का साकार स्वरूप था। उसका नाम इन्दुमोहन था। विमल को अब तक चारों ओर से उपेक्षा ही मिली थी, लेकिन यमुना उससे सहानुभूति रखती थी। यमुना मे मानवीय सवदना थी। यमुना के सगीत मे उसे एक और व्यथित कठ सुनाई देने लगता और वह वष्णवी के लिए तडप उठा। गगा तट पर श्रावणी मेले के दिन उसने अपनी वष्णवी दीदी, मा को ढूढ लिया और उसके चरणो मे गिर पडा। विमल अब तन मन से वैष्णवी के समीप रह कर भी उससे उतनी ही दूर था। उसे अपने तन वदन, असन वसन की सुध न रह गयी। वह अपनी भावनाओ, विचारो और कल्पनाओ म समाधिस्थ होकर लिखता ही रहता। दोनो का जीवन अभावो से जजरित हो चुका था। इसके अतिरिक्त जप-तप, पूजा पाठ और निराहार व्रत ने वैष्णवी को और भी अधिक कोमल कृश शरीर कर दिया था। एक दिन वह यज्ञ की ज्वाला सी धधक कर शान्त हो गयी। वष्णवी का वियोग अब विमल का चिरन्तन क्रन्दन हो गया। अब वष्णवी की स्मृति ही विमल की जीवन शक्ति बन गयी। विमल मे कवि वेदना तो थी ही, अब वष्णवी की विश्व वेदना से वह और अधिक सवेदनशील हो गया। वह चाहता था कि पुन इधन-उधर स्वच्छद घूमा करे परन्तु वष्णवी ने उसमे पारिवारिक सस्कार जगा दिया था वही उसके लिए लोक-बन्धन हो गया। अब वह एक अन्य परिवार म रहने लगा। अपनी रुचि स्वभाव और भाव के अनुरूप वातावरण न मिलने पर भी प्रतिकूल परिस्थितियो म विमल साहित्य ज्योति की साधना आराधना करने लगा। अब विमल सौन्दय को देख कर आत्म विस्मृत नही होता, क्योकि जिस सौन्दय म आत्मा होगी वह अनायास ही आत्मसात हो जायगा। यद्यपि कभी कभी उसे अकेलापन सा महसूस होता, उसे भी प्रेरणा के लिए किसी रागवती की आवश्यकता महसूस होती। लेकिन वह केवल कल्पना लोक मे ही विचरण करता। अपने सस्कार के वशीभूत हो वह एक दिन देहात की ओर गगास्नान करने गया और वहा स देहात के रास्ते ही अपन आवास की दिशा मे चल पडा। इस प्रकार दिगम्बर' उपन्यास मे विमल और वैष्णवी का सघषपूण जीवन, उनकी दयनीयता और चारित्रिक परिणति का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है।

[२] 'चारिका' औपन्यासिक रचना के क्रम म दूसरी कडी के रूप म श्री शांतिप्रिय द्विवेदी लिखित 'चारिका' शीषक रचना का उल्लेख किया जा सकता है। यह उपन्यास भगवान बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा पर आधारित है। लखक ने इसे आख्यानिका नाम दिया है, जो प्राचीन भारतीय कथात्मक विधा है जिसका स्वरूप आधुनिक उपन्यास से पर्याप्त साम्य रखता है। समस्त कथा का विभाजन सोलह अध्यायो म हुआ है। धम चक्र प्रवत्तन, युग दशन, अन्तर्निवेश अनुसन्धान, प्रबोधन पथ निर्देश

समर्पण साधना, बोधिसत्व परितोष अभिनिष्क्रमण तथा लोकमाता हृदय परिवर्तन विसर्जन तथा धर्मचक्र प्रवर्तन शीर्षकों के अन्तर्गत इस रचना का कथा विकास हुआ है। कथा का प्रारम्भ भगवान बुद्ध के गयाशीर्ष शान्ति से होता है। इसके बाद भगवान बुद्ध एकान्त समाधि में पूर्ण ज्ञान की सिद्धि प्राप्त कर लोक शान्ति के लिए लोक भूमि में आते हैं। अपने भ्रमणकाल में वे अपने उन पाँच साथियों को देखते हैं जो बुद्ध से रूठकर गमन कर ध्यान रहे थे। तथागत भगवान बुद्ध अपने धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए पुनः उनसे मिलने के हेतु सारनाथ की ओर जाते हैं। भगवान बुद्ध के दर्शन कर तथा उनके सार के पश्चात् भी वे मन की शंकाओं का पूर्ण निराकरण करके मन भी अन्तर्जीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेते हैं। कालान्तर में यही पंचवर्गीय भिक्षु कौण्डिन्य महानाम भद्रक वाष्प और अश्वजित् के नाम से विख्यात होते हैं।

पुण्य दर्शन में तथागत को समस्त सृष्टि में करुणा का आभास मिलता है। समस्त सृष्टि में मनुष्य देवगण पृथ्वी आकाश समस्त चराचर एक प्राण एक स्वर और एक हृदय है। सबमें एक अलौकिक शक्ति विद्यमान है। अपने वर्तमान समय में तथागत ने जिस धर्म चक्र का प्रवर्तन किया वह चाहते थे कि तब ही शान्ति में रह समस्त निखिल जगत् भी उसे शिरोधार्य करें। यही उनकी आशा थी। यह कैसे सम्भव हो यही उनके चिन्तन मनन का विषय था। कौण्डिन्य और तथागत वार्तालाप करते हुए अपने आवास में पहुँच जाते हैं तभी एक आकुल व्याकुल पथिक उनकी शरण में आकर चरणों में गिर पड़ता है। तथागत उस नवयुवक तरुण की विभिन्न आशंकाओं एवं जिज्ञासाओं का शान्तिपूर्वक वार्तालाप द्वारा पूर्ण निराकरण करके उसे भी भिक्षु बना लेते हैं। इधर तरुण युवक यश के अपने महल से चले जाने पर वहाँ उसकी माता एवं कुलवधू क्रन्दन करने लगती हैं। नगर के बाहर उनके स्वर्ण पादुका के चिह्न के आधार पर महाश्रेष्ठि अकेले ही उन पद चिह्नों का अनुसरण करते हुए सारनाथ की ओर बढ़ने लगे। तथागत के शांतिनिवास में पहुँच कर उनके सन्तप्त चित्त को कुछ शांति मिलती है। यहाँ तथागत की कृपा से महाश्रेष्ठि का भी रूपान्तर हो जाता है। महाश्रेष्ठि मायामोह से आसक्ति दृष्टि से उन लोगों में यश को सशरीर बैठे देखता है परन्तु अब उसकी दृष्टियाँ ज्योतिमयी हो जाती हैं। अन्त में श्रेष्ठि भी परिव्राजक के चरणों में प्रणत होकर उन्हीं की शरण में आ जाता है। इसके साथ ही उन्हें दूसरे दिन अपने यहाँ भोजन पर आमन्त्रित करता है। दूसरे दिन तथागत एवं उनके शरणागत महाश्रेष्ठि के महल में पधारते हैं जहाँ तथागत ने मा और कुल-वधू को धर्म चक्षु दिए वास्तविक धर्म से अवगत कराया। इसके उपरान्त उन्हें समझाया कि स्वार्थ से अलग होकर प्राणी मात्र में अपने पराये का भेद भाव नहीं रह जाता और यही आत्मबोध जीवनबोध हो जाता है।

तथागत ने सोचा कि चैतन्य को हमेशा गतिशील होना चाहिए नहीं तो वह एकान्त स्वार्थ से जड़ हो जायेगा। अतः तथागत ने प्रत्येक को अलग-अलग दिशा में

अन्य दुखी सांसारिक मनुष्यों की मुक्ति के लिए बहुजन हिताय, मनुष्यों और देवताओं के कल्याण के लिए विचरण करने की आज्ञा दी। इस प्रकार उन्मुक्त चित्त से शास्त्र आदेश निर्देश कर एवं स्वयंसेवकों को विविध दिशाओं में भेज कर स्वयं बुद्ध भी गया की ओर चले गये। उरुवेला जा कर परिव्राजक ने वरिष्ठ तपस्वियों और आश्रमवासियों को अपना बोधित्व प्रदान किया। उरुवेल काश्यप और मगधराज बिम्बसार भी महाश्रमण के चरणों में उपस्थित होकर सम्बोधि का सार ग्रहण कर उनके उपासक हो जाते हैं। तथागत के आयुष्मान शिष्य अश्वजित को देख कर महन्त संजय के दो प्रमुख शिष्य सारिपुत्र और मोदगल्यायन भी तथागत के अनुयायी हो जाते हैं। 'सांत्वना' में सिद्धार्थ के प्रत्यागमन पर यशोधरा का विलाप एवं उसकी गति यति का चित्रण है। यशोधरा अपने अतीत में विचरण करती हुई मधुर सुखद क्षणों को स्मरण करती है। 'वात्सल्य' में राहुल अपने क्रीडा कौतुक के द्वारा अपनी माता यशोधरा के साथ ही अपने पितामह और महाप्रजावती को भी प्रसन्नता प्रदान करता है जो सिद्धार्थ गमन से अत्यन्त ही विक्षुब्ध हैं। 'परितोष' में यशोधरा उड़ते पक्षियों से अपने प्रिय के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त करते हुए अपना सन्देश उस तक पहुँचाने का अनुनय करती है। इतने में खिड़की से कपोत आकर बोल उठता है और उसका वाम नेत्र भी फड़क उठता है अर्थात् शुभ लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। उसी समय दासी आकर यह शुभ सम्वाद देती है कि त्रपुष और मल्लिक नामक दो बड़े व्यापारियों ने आर्यपुत्र सिद्धार्थ को देखा है। वे बोधिसत्व लाभ प्राप्त कर बुद्ध हो गये हैं और परिभ्रमण करते हुए सबको मंगल प्रसाद दे रहे हैं। राजा शुद्धोधन ने अपना पत्र दे कर नव तरुण सामन्तों को सिद्धार्थ के पास भेजा जिसमें उन्हें कपिलवस्तु में आगमन के लिए लिखा था। वे सामन्त वेणुवन में पहुंच कर एवं तथागत के प्रवचन को सुनकर आत्मविस्मृत हो गये और प्रव्रज्यित होकर संघ में सम्मिलित हो गये। इसी प्रकार जितने भी सन्देश वाहकों को राजा ने भेजा वह सभी तथागत के संघ में सम्मिलित हो गये। अब राजा ने सिद्धार्थ के समवयस्क सचिव कालउदायी को सन्देशवाहक के रूप में भेजा। वह भी तथागत के प्रवचन से प्रभावित होकर प्रव्रज्यित हो गया। परन्तु उसे अपना कार्य याद था अतः उचित अवसर पा कर यात्रा के लिए तथागत को उत्साहित किया, और अन्त में निवेदन किया कि राजा शुद्धोधन तथागत के दर्शनों के लिए अत्यन्त व्याकुल हैं। अतः तथागत ने अपने भिक्षु संघ से यात्रा के लिए प्रस्तुत होने का आदेश दिया। तथागत राजप्रसाद में गए जहाँ उनकी शंख नाद एवं पुष्पों से अभ्यर्थना की गई। तथागत ने वहाँ पर अपने माता पिता के संशयों का निराकरण करके यशोधरा के सन्तप्त हृदय को शान्ति प्रदान किया। राजप्रासाद से चलते समय राहुल तथा अन्य कुमारों को भी तथागत ने यशोधरा के अनुरोध पर प्रव्रज्या प्रदान किया।

कपिलवस्तु में तथागत पुनः राजगृह में आए। श्रावस्ती का गृहपति अनाथ

पिडक भी इन्ही दिनो वही पर था। वह तथागत से मिलने गया। पिडक के बहुत पर तथागत ने उसका कर्तव्य का उसे बोध कराया कि लोक कल्याण के लिए तू मुक्त हस्त से दान कर, दान देना निर्वाण को निर्मित करना है धन देना ही दान नही है, मैत्री करुणा तथा श्रद्धा आदि भी हार्दिक दान है। इस उपदेश का ग्रहण करके अनाथ पिडक ने उन्हे श्रावस्ती मे पधारने के लिए आमंत्रित किया जिसे उन्होने मौन वाणी से स्वीकार किया। श्रावस्ती मे कौशल नरेश प्रसेनजित् और राजकुमार जतकुमार भी तथागत के आदेश उपदेश एव प्रवचन से अनुगृहीत हुए।

हृदय परिवर्तन' मे श्रावस्ती के वनप्रान्त मे निवास करने वाले नरपशु अगुलिमाल के हृदय परिवर्तन की कथा है। अपनी किशोरावस्था मे वह तक्षशिला के गुरुकुल का सुशील छात्र था। उसका नाम मानवक था। वह आचारवान आज्ञाकारी प्रियभाषी एव प्रतिभाशाली युवक था जिससे अन्य सहपाठी उससे ईर्ष्या करते थे। आचार्य एव आचार्यपत्नी दोनो ही उसे पुत्र सदृश स्नेह करते थे लेकिन आचार्य के अन्य समस्त शिष्यो ने मिल कर आचार्य के मन मे सन्देह का बीज बो दिया। आचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप मे सहस्र नर-नारियो को मार कर साहस का परिचय देने की आज्ञा दी। फलत वह अब नर पशु बन गया था जो तथागत के दर्शन लाभ प्राप्त करके पुन अपने सरल एव सुशील रूप मे आ गया था।

'विसर्जन मे वशाली की जनपद कल्याणी आम्रपाली की जय कथा के साथ ही उसके प्रौढ़ावस्था मे तथागत से उपसम्पदा एव प्रव्रज्या ग्रहण करने की कथा है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के ऐतिहासिक उपन्यास वशाली की नगर वधू का साराश 'विसर्जन मे दिया गया है परन्तु कथावस्तु मे कही कही भिन्नता अवश्य है। 'प्रस्थान' मे तथागत के कुशी नगर मे महाप्रयाण की कथा है। वशाली से प्रस्थान करते हुए बुद्ध अत्यन्त स्मृति विह्वल हो गये थे। उन्हें विदित हो गया था कि अब वह निर्वाण की ओर अग्रसर हो रहे है। उनका मन अपने अरण्य आवासो को स्मरण कर अभिभूत हो गया था। महापरिनिर्वाण के पथ पर चलने से पूर्व उन्होंने भिक्षुओ को सन्देश दिये। कथा का अन्त इन्ही सन्देशो से हो जाता है। इस प्रकार से, प्रस्तुत औपन्यासिक कृति को न केवल शिल्प की दृष्टि से वरन वस्तु तत्व की दृष्टि से भी विशिष्ट कोटि मे रखा जाना चाहिए क्योकि जहा एक ओर शिल्प रूप की नवीनता की दृष्टि से यह एक विलक्षण कृति है वहाँ दूसरी ओर दार्शनिक आध्यात्मिक तत्वो से बोझिल कथावस्तु के कारण भी यह कृति महत्वपूर्ण है। इसी अध्याय मे आगे चल कर शास्त्रीय उपकरणो तथा अन्य तत्वो के आधार पर इस उपन्यास का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जायेगा।

[३] चित्र और चिन्तन' औपन्यासिक रचना क्रम मे तृतीय एव अन्तिम कडी के रूप मे श्री शांतिप्रिय द्विवेदी लिखित चित्र और चिन्तन शीर्षक कृति उल्लेखनीय है। यह रचना लेखक ने लोक निरीक्षण और युग विश्लेषण के रूप मे

लिखी है। इसीलिए इसके विभिन्न अध्याय यद्यपि औपन्यासिक अध्यायों से भिन्न निबंधात्मक स्वरूप के द्योतक हैं परन्तु उनका आयोजन एव गठन इस कृति म उपन्यास के ही रूप म किया गया है। दूसरे शब्दो म, यह कहा जा सकता है कि इस कृति म विभिन्न शब्द चित्र औपन्यासिक आवरण म प्रस्तुत किये गये हैं। यह चित्र मुख्यत जीवन के दैनिक अनुभवो एव सामयिक परिस्थितियो तथा समस्याओ से सम्बंधित चिन्तन के रूप म प्रस्तुत किये गये हैं। इनमे लेखक ने समाज के नव निर्माण की योजना पर विचार किया है। इनकी सर्वप्रमुख विशेषता इनमे निहित वह सप्राणता है जो इस कृति के औपन्यासिक स्वरूप का बोध कराती है। लेखक की पूर्व उल्लिखित औपन्यासिक रचना 'दिगम्बर' से इस उपन्यास का रचना विन्यास पर्याप्त साम्य रखता है। पुस्तक म 'दो शब्द' के अन्तर्गत लेखक ने स्वय इस तथ्य की ओर सकेत किया है "उपन्यास न होते हुए भी निबंधो के रूप म पुस्तक का क्रम विन्यास उपन्यास जैसा है। इसमे व्यक्ति, उसका परिवेश, उसका युग, उसका रचनात्मक चिन्तन है। 'दिगम्बर' मे लेखक का अन्तरग विमल था इस पुस्तक म कमल है। दोनो एक ही हैं। आशा है पुस्तक पाठको को अपनी रुचिरता से रुचेगी और अपने मूलभूत विचारो से युग-युग के जीवन के देखने समझने के लिए एक अदृश स्वाभाविक दृष्टि प्रदान करेगी।"[1]

आधुनिक युग म बुद्धिवादी संस्कृति का जो विकास हो रहा है, उसके फल-स्वरूप जीवन म अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गयी हैं। व्यक्तिवाद और समाजवाद का सघर्ष ही मुख्यत शेष रह गया है। पूर्व युगीन साम्राज्यवादी विचार धाराएँ अब पूर्ण रूपेण समाप्त हो चुकी हैं। भारत ऐसे जन-संख्या प्रधान देश मे यान्त्रिक आधार पर औद्योगिक उन्नति की तुलना मे खादी तथा अन्य हस्त कलाओं के विकास को लेखक ने न केवल एक नैसर्गिक साधना के रूप म मान्यता दी है वरन् एक सार्वभौम समस्या के रूप म भी उसे स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ म यह उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि लेखक ने गाधीवादी जीवन दर्शन का सैद्धान्तिक समर्थन करते हुए उसका व्यावहारिक आरोपण भी अपनी इस कृति म किया है और अहिंसा तथा नि शस्त्रीकरण की भाति खादी आन्दोलन को भी सामाजिक स्वावलम्बन की दिशा मे एक राष्ट्रीय साधना के रूप मे मान्य किया है। 'चित्र और चिन्तन' एक ऐसी औपन्यासिक रचना है जिसम लेखक ने लोक जीवन का निरीक्षण कर उसे एक चित्र के रूप म अकित किया है। इसके साथ ही अपने युग का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए मानव जीवन की समस्याओ एव उनकी परिस्थितियो का चिंतनपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अत इसम व्यक्ति उसका परिवेश उसका युग एव उसका रचनात्मक चिन्तन है। सम्पूर्ण कथा का

---

१ चित्र और चिन्तन श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, 'दो शब्द', पृ० १।

विभाजन अट्ठारह अध्यायो म हुआ है। धूप और हूव, काफी हाउस की बातचीत, व्यवधान, विडम्बना, अर्तमिलन, निलिप्त, वातावरण, तीव स्मृति, पश्चाताप, विरूप व्यक्ति और युग, शेष चिह्न, खादी एव सावभौम समस्या, खादी एव नसगिक साधना, लक्ष्मी की प्रतिष्ठापना, विज्ञान और अध्यात्म, युग और जीवन तथा भविष्य की चिंता शीषको के अन्तगत इस औपन्यासिक कथा का पूण विकास हुआ है।

इस औपन्यासिक कृति का नायक कमल है जो गाव की शस्यश्यामला भूमि पर उत्पन्न हुआ था। जीवन म चारो ओर हरियाली ही हरियाली थी। वह भी एक परिवार का सदस्य था लेकिन नियति के क्रूर कठोर हाथो ने एक एक करक सबको बुला लिया। अब कमल बेचारा नितात अकेला रह गया। वह इतना आत्म लीन था कि बाह्य ससार का विपाक्त वह अनुभव ही न कर सका। मन के स्वप्नो को पृथ्वी पर देखने के लिए ज्यो ही उसने दृष्टि उठाई वह अवाक रह गया। स्वाथ म मनुष्य सवदनशील न होकर उससे शून्य हो गया है। लोग रूढिवादिता म अधे बन गये हैं। ससार केवल बाजार बन गया है और जीवन का भी मोल ताल होता है। कमल कलाकार था वह अपनी कला म इतना समाधिस्थ हो गया कि उसे अग जग का कुछ भी ध्यान न रहा। परन्तु उसका शारीरिक अस्तित्व तो था, उस भी भूख लगती थी प्यास लगती थी। मानसिक तृप्ति तो कला स हो जाती थी परन्तु शारीरिक तृप्ति के लिए किसी साधन की आवश्यकता थी। सासारिक दष्टि से मन्द बुद्धि कमल किस प्रकार अपनी शारीरिक भूख को मिटा सकता ? कला के सदृश ही उसे कहाँ ससार म सुरुचि पूण वातावरण मिलता ? अत कमल भोजन म स्वास्थ्य एव सस्कृति का सौष्ठव पाने के लिए इधर उधर भटकता रहता है। किसी प्रकार भोजन का प्रबन्ध हो जाने पर भी उसके हृदय की हूक रति क लिए किसी रसवन्ती का अभाव उसे अब भी अखरता। काफी हाउस जहाँ विविध वग के मनुष्य अपनी विभिन्न विचारधाराओ को स्पष्ट करते हैं और कवल अपना ही मत स्वीकार करते हैं दूसरो के विचारो की वह परवाह भी नही करते। सब आपस मे फूहड हसी मजाक करते। काफी हाउस मे सामाजिक, राजनतिक, आर्थिक सभी समस्याओ पर वार्तालाप होता है और यह वार्तालाप अथवा वाद विवाद राजनतिक स्तर से धीरे धीरे खिसक कर सौन्दय कला पर और उसके बाद अश्लील सौन्दय पर आ जाता है। लोग दूसरो के विचारो को सुन कर उसकी हसी उडाते है। कमल भी किसी कमलिनी से एकाकार हो जाना चाहता था लेकिन उसके पास केवल सूक्ष्म प्रतिभा थी सासारिक स्थूल सम्पदा नही। उसके माग मे हमेशा साम्य वाद पूजीवाद या रूढ़िवाद के कुटिल और जटिल अवरोध उपस्थित हो जाते थे। किसी रागिनी के न मिलने से वह अकेला नि सहाय वीतराग हो गया। अभावग्रस्त मनुष्य जिधर भी जरा सी सहानुभूति पाता है, आत्मीयता अनुभव करता है वह उधर ही झुक जाता है ललक पडता है उसे आत्मसात करने के लिए। यही हाल

कमल का भी था, जो उसे प्रिय होता उसे ही वह अपना लेना चाहता। एक बालिका कुमुदिनी से भी उसका परिचय किसी प्रकार हो गया। वह अपनी मौसी के साथ रहती थी। उन लोगो के पानी की समस्या तो कमल न अपन यहाँ के नल से दूर कर दी थी परन्तु अब घर की समस्या उठ खडी हुई थी। किराये का मामला अदालत म गया और जमानत के लिए कुमुदिनी को दाव पर लगा दिया गया। कमल का उससे फिर साक्षातकार न हो सका। राह म आते-जाते उसका परिचय एक स्पेनिश युवती स हो गया। वह युवती होते हुए भी बालिका सी जान पडती थी। विदेशिनी होते हुए भी आकार प्रकार, रूप रग म वह भारतीय बालिका लगती थी। भाषा की अड-चन के कारण बातचीत न होने पर भी हृदय की मौन भाषा म सभी भावात्मक प्राणिया का तादात्म्य हो जाता है। क्षण भर मे सवेदना स आत्मैक्य हो जाता है।

आज ससार की घनी आबादी म प्रत्येक व्यक्ति अकेला पड गया है। व्यक्ति का पशुत्व ही सब कुछ हो गया है। जीवन म आनन्द न मिलन पर लोग आत्महत्या कर लेते हैं अथवा नशा करना आरम्भ कर देते हैं। आज मनुष्य अपने ही स्वार्थों मे लिप्त है। जब तक अथशास्त्र टकसाली सिक्को स आकी जायेगी शासन से ही बाजार भाव निश्चित होगा तब तक मनुष्य सवेदनशील नही हो सकता। वह अपन स्वाथ से अलग नही जा सकता। लेकिन कमल इन से अलग था—वह अतप्त तो था लेकिन अयक्षुब्ध नहीं। कमल निद्रावस्था मे अपने अतीत म विचरने लगता। उसकी वे ही बाल्य प्रवत्तिया जीवन की सुषमा सजलना, ज्योति बन कर कालान्तर म कला और सस्कृति में जीवन्त हो जाती। प्रकृति म नव परिवतन देख कर जब कमल ससार क वातावरण पर दष्टि डालता तो उस वस्तु जगत मे कही भी परिवतन नही होता वह अपने विकृत रूप में ही ससार मे विद्यमान रहता। कमल गली से लगी एक कुटिया मे रहता था। वह देवी दवताओ और मन्दिरो की श्रद्धा भक्ति से भी अनजान था। मा का सबल जब उसके लिए न रहा तो कमल की अग्रजा ने अपने पुण्य स्पश से कमल के बाल्यसस्कारो को प्रस्फुटित किया। वह बाल विधवा आजन्म एकाकिनी कुमारी थी जो घर को भी मन्दिर बना देती थी। मन्दिरो को दख कर कमल को उसी की याद आ जाती। वह मन्दिरो के सामने प्रणत हो कर उसी को प्रणाम करता जो अब इस लोक म नही थी। कमल ने अपनी डायरी मे जीवन की सबसे बडी भूल को स्वीकार किया है और उसके लिए वह पश्चाताप की अग्नि मे झुलस भी रहा है। वह भूल उसने बहन के साथ की थी। बहन की रुग्णावस्था म वह उसे देहात से शहर मे ले आया। यहा भी सेवा शुश्रुषा और चिकित्सा का अभाव सा ही था। बहन के मना करने पर भी वह उसे अस्पताल मे भर्ती करा आया जहा उन्होंने दूसरे दिन ब्रह्ममुहूत मे नश्वर काया को त्याग दिया। बहन की मृत्यु से पूव वह ससार की विद्रूपता स परिचित न था। अब अपनी चीजें चोरी चल जाने पर भी कमल को ससार का अविश्वास नही था, वह सभी को दुष्ट प्रकृति का नही मानता

था। लेकिन अन्त म उसका यह विश्वास भी टूट जाता है। संसार के कटु अनुभव होने पर भी वह अपने सहज सरस स्वभाव को नष्ट नहीं पाता है।

कमल आज आधुनिक युग म विचरण कर रहा है जो किसी नवनिर्माण के अभाव म अव्यवस्थित और अशान्त बवंडर की तरह चल रहा है। दूसरे महायुद्ध और औद्योगिक क्रांति के पश्चात् अब पूंजीवाद भी पंगु हो गया है उसे पग-पग पर साम्यवाद का सामना करना पडता है। भारत की परतन्त्रता म गांधी युग स्थूल रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ ही सूक्ष्म चेतना लेकर अग्रसर हुआ था। स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् आज मनुष्यों का यह नैतिक पतन उस परतन्त्रता का ही दुष्परिणाम है जिसने अपनी दमन नीति से पराधीन पीडित मनुष्य के पशुत्व को भी दबा लिया था। वही अब पुन उभर आई है। कमल की धारणा है कि अणुबम और संसार के समस्त अस्त्र शस्त्र नष्ट कर दिये जाने पर भी युद्ध होगा। इसका कारण जड अर्थशास्त्र है जिसने मनुष्य के विवेक को कुण्ठित कर दिया है। आज चारों ओर अत्रास और अभावों का ही साम्राज्य है जो केवल स्थायी उपायों से दूर हो सकता है, और स्थायित्व के लिए अर्थशास्त्र को टकसाली सिक्कों से और श्रम को पशुता से मुक्त करना चाहिए। खादी के सूत्र म गांधी जी का भी यही कर्म निर्देश था। एक युग के पश्चात् जब पुन कमल की स्वयं पर दृष्टि गई तो उसने अनुभव किया कि अग्रजा का वात्सल्य अब केवल स्मृति म ही रह गया है, जीवन म उस स्नेह का अभाव है। अब वह सर्वथा बेसहारा है। अभी भी उसे किसी की माया ममता और आत्मीयता की आवश्यकता है। उसे अपने भविष्य की चिन्ता है कि अन्तिम क्षणों म कौन उसका सहारा बनेगा, किसका हाथ उसके मस्तक पर होगा। इस प्रकार से 'दिगम्बर' 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' नामक उपन्यासो म श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने मध्यवर्गीय भारतीय सामाजिक जीवन का ग्रामीण और नागरिक पृष्ठभूमि मे भावात्मक परन्तु यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत किया है।

उपन्यासकार द्विवेदी जी और हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि

आधुनिक हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं की भांति ही उपन्यास का आविर्भाव भी उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश म हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास श्रद्धाराम फुल्लौरी लिखित 'भाग्यवती' माना जाता है। कतिपय साहित्यिक इतिहासकारों का यह भी मत है कि लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास है। इसमे से प्रथम की रचना संवत १९३४ म हुई थी। इसके पूर्व कथा साहित्य के क्षेत्र म आधुनिक हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक स्वरूप का निदर्शन करने वाली एकमात्र रचना इशाअल्ला खां लिखित 'रानी केतकी की कहानी' शीर्षक से उपलब्ध होती है। लगभग एक शताब्दी मे विकसित होने वाली उपन्यास साहित्य की परम्परा को ऐतिहासिक क्रम से पांच भागों मे

विभाजित किया जा सकता है। इनमे से प्रथम विकास काल को भारतेन्दु युग, द्वितीय विकास काल को द्विवेदी युग, ततीय विकास काल को प्रेमचन्द युग, चतुथ विकास काल को प्रेमचन्दोत्तर युग तथा पचम विकास काल को स्वातन्त्र्योत्तर काल के रूप म माना जा सकता है। इन विविध युगो म विकसित होने वाली प्रमुख औपन्यासिक प्रवत्तिया की सक्षिप्त रूपरेखा यहा पर पृष्ठभूमि के रूप म प्रस्तुत की जा रही है।

[१] भारतेन्दु युग भारतेन्दु युग हिन्दी उपन्यास के इतिहास का प्रथम युग है। जसा कि ऊपर सकेत किया गया है इस युग मे सवप्रथम भाग्यवती' तथा परीक्षा गुरु' शीषक उपन्यास समाज सुधार की प्रवत्ति के द्योतक हैं। पूण प्रकाश और चन्द्रप्रभा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की एकमात्र औपन्यासिक रचना है। इसका प्रकाशन सन १८८९ म हुआ था। यह मराठी भाषा की एक रचना के आधार पर समकालीन कुरीतियो को ध्यान म रख कर लिखी गयी थी। इसके लेखक ने उन कुरीतिया का विरोध कर स्त्री शिक्षा का समथन किया है। बाल कृष्ण भट्ट की उपन्यास साहित्य के क्षेत्र मे दो कृतिया नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान उपलब्ध होती हैं। भारतेन्दु मडली के एक अन्य सदस्य जगमोहन सिंह की एक मात्र औपन्यासिक रचना श्यामा स्वप्न' है। इस उपन्यास की भाषा शली की मुख्य विशेषता काव्यात्मकता और भावात्मकता है। हिन्दी के इस प्रथम विकास युगीन उपन्यास काल मे सवप्रसिद्ध उपन्यास लेखक बाबू देवकीनन्दन खत्री हैं। रामचन्द्र शुक्ल न इन्हें हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यासकार माना है।[१] 'नरेन्द्र मोहनी (दो भाग) 'कुसुम कुमारी (चार भाग), 'काजर की कोठरी', वीरेन्द्र वीर, चन्द्रकान्ता' और चन्द्रकान्ता सन्तति आदि इनके प्रमुख उपन्यास हैं। इनके उपन्यास मुख्यत ऐय्यारी और तिलिस्म से सम्बन्धित विषया पर आधारित हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी के सम्बन्धी श्री राधाकृष्ण दास न निस्सहाय हिन्दू शीषक एक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास मे प्रथम बार एक महत्व पूण सामाजिक समस्या को उठाया गया है। दो विभिन्न धर्मानुयायियो का एक पवित्र उद्देश्य के लिए अपने प्राणा का उत्सग कर के साम्प्रदायिक वमनस्य में भी एकता पर बल दिया गया है जो एक सवथा नवीन दृष्टिकोण और भावना का परिचायक है। इनके अतिरिक्त हरिनारायण टडन लिखित चाचा का खून, गोकुलानन्द प्रसाद लिखित 'कमला चुन्नीलाल खत्री लिखित जबदस्त की लाठी राधाचरण गोस्वामी लिखित विधवा विपत्ति, रतननाथ शर्मा लिखित बिछुडी हुई दुलहिन' महावीर प्रसाद लिखित 'जयती', विश्वेश्वर प्रसाद वर्मा लिखित 'चन्द्रिका अम्बिकादत्त व्यास लिखित 'आश्चय वतान्त, शिवनाथ शर्मा लिखित 'चडूलदास, देवदत्त लिखित सच्चा मित्र जनेन्द्र किशोर लिखित कमलिनी सत्यदेव लिखित 'आश्चय कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित जया, शिवशकर झा लिखित 'चन्द्रकला जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचाय रामचन्द्र शुक्ल।

लिखित वसत मालती', तथा शिवनाथ शर्मा लिखित गदर का फूल या रूपवती, सरस्वती गुप्त लिखित राजकुमार' आदि उपन्यास हिन्दी साहित्य के प्रथम विकास युग के अतगत रख जा सकते हैं। ये उपन्यास मुख्यत सामाजिक, तिलिस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक धार्मिक तथा पौराणिक कथा प्रवृत्तिया का प्रतिनिधित्व करते हैं।

[२] द्विवेदी युग हिन्दी उपन्यास का आविर्भाव और प्रारम्भिक विकास उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चतुर्थांश म हुआ। बीसवी शताब्दी के प्रथम दो दशको को हम नवीन उत्थान अथवा द्वितीय विकास युग के अन्तर्गत परिगणित कर सकते हैं। इस नवीन उत्थान काल मे भी प्रथम विकास काल की औपन्यासिक प्रवत्तियो का प्रसार हुआ अन्तर केवल इतना हुआ कि पहले के कल्पनात्मक तत्वो के स्थान पर यथार्थात्मक तत्वो का अधिक समावेश हुआ एव सामाजिकता की प्रवत्ति म भी विस्तार हुआ। तिलिस्मी और जासूसी प्रवत्तिया भी इस युग म यथाथ की पृष्ठभूमि पर आधारित मिलती हैं। इस युग के सवप्रमुख उपन्यासकार श्री गोपालराम गहमरी हैं। इनकी प्रारम्भिक कृतियो मे प्रमुखता चतुर चचला' 'भानुमती 'नये बाबू आदि हैं। इनके अतिरिक्त घटना घटाटोप खूनी कौन है ? जमुना का खून', 'जासूस की भूल, 'देवरानी जिठानी की कहानी 'जासूस की चोरी तथा दो बहिने आदि भी उल्लेख्य हैं। इनके रहस्य विप्लव जासूस की बुद्धि 'भयकर भेद हसा देवी' तथा 'गुमनाम चिटठी आदि जासूसी उपन्यास विशेष रूप से लोकप्रिय हुए। श्री गोपालराम गहमरी ने उपन्यासो मे रोचकता के आधिक्य को दृष्टि मे रख कर तिलिस्मी तत्वो का समावेश किया। इसके साथ ही उनका दष्टिकोण सुधारवादी आदर्शात्मक था। इनके सामाजिक उपन्यासा मे आदशवाद का आग्रह अधिक है। सामाजिक उपन्यासो मे समाज एव परिवार की विभिन्न समस्याओ का स्पश किया है। यह उनकी यथाथवादी दृष्टि के परिचायक हैं तथा मनोवैज्ञानिक आधार पर लेखक ने सामाजिक समस्याओ का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। सभी उपन्यासो की भाषा ग्रामीण शब्दो से युक्त मुहावरेदार एव अपनी स्वाभाविकता और अथपूणता से युक्त सामान्य वग की है। इनके अतिरिक्त हिन्दी उपन्यास के इस द्वितीय उत्थान काल म उमराव सिंह गुप्त लिखित आदश बहू प० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध लिखित ठेठ हिन्दी का ठाठ और 'अधखिला फूल मेहता लज्जाराम शर्मा लिखित धूत रसिक लाल, कपटी मित्र हिन्दू गृहस्थ 'आदश दम्पति तथा 'आदश हिन्दू (तीन भाग), केशरनाथ शर्मा लिखित 'तारामती गया प्रसाद लिखित दुनिया, देवकीनन्दन सिंह लिखित कौशल किशोर गौरीदत्त लिखित गिरिजा भगवानदास लिखित उदू बगम गगाप्रसाद गुप्त लिखित वीर पत्नी 'कुमार सिंह सेनापति पूना मे हलचल हम्मीर कुवरसिंह 'कृष्ण कान्ता देवराज लिखित ककणा साम आदि उपन्यास विशेष रूप स उल्लखनीय हैं। इस युग के दूसरे प्रमुख उपन्यास कार प० किशोरी लाल गोस्वामी की मौलिक औपन्यासिक कृतिया म प्रममयी

'तारा'(तीन भाग), 'चपला (चार भाग), 'कटे मूड की दो-दो बातें या तिलिस्मी शीशमहल', तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी', 'इन्दुमती या वन विहगिनी, 'पुनर्जन्म या सौतिया डाह, 'रजिया बेगम', 'लीलावती', 'राजकुमारी, लवगलता', 'हृदय हारिणी', 'हीरा बाई', 'लखनऊ की कब्र, कनक कुसुम', 'मल्लिका देवी', 'स्वर्गीय कुसुम', याकूती तख्ती, लावण्यमयी, 'जिन्दे की लाश' तथा मदन मोहन या माधवी माधव' आदि मुख्य रूप से उल्लखनीय हैं। इनक उपन्यासो मे एक साथ ही प्रेम, सुधार वादी दृष्टिकोण घटना वैचित्र्य आदशवाद, कल्पनाशीलता, ऐतिहासिकता, जासूसी आदि मिलता है। इसके अतिरिक्त इस युग की विभिन्न औपन्यासिक कृतियो म अमृत लाल चक्रवर्ती का सामाजिक उपन्यास 'सती सुखदेवी', रक्षापाली का समस्यापरक मनोवैज्ञानिक उपन्यास 'त्रियाचरित्र जयन्ती प्रसाद उपाध्याय का एतिहासिक उपन्यास 'पृथ्वीराज चौहान', मथुराप्रसाद शर्मा का एतिहासिक उपन्यास 'नूरजहा बगम वा जहागीर, लोच प्रसाद पाडेय की जासूसी औपन्यासिक कृति 'दो मित्र अम्बिका प्रसाद गुप्त का रहस्यात्मक और रामावक उपन्यास सच्चा मित्र या जिन्दे की लाश, लाल जी सिंह का ऐतिहासिक उपन्यास 'वीर बाला आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भावनाप्रधान उपन्यासकारों म ब्रजनन्दन सहाय का नाम उल्लखनीय है, जिनकी मौलिक औपन्यासिक कृतिया म 'राजेन्द्र मालती, अद्भुत प्रायश्चित' सौन्दर्योपासक', 'राधाकान, लाल चीन विस्मृत सम्राट 'विश्व दशन तथा अरण्यबाला' आदि हैं। इनके साथ ही इस युग के अन्य उपन्यासो म जगमोहन विकसित लिखित 'मनुष्य बलिदान', रामप्रसाद सत्यपाल लिखित प्रेमलता, केदार नाथ लिखित तारामती बलभद्र सिंह लिखित सौन्दय कुसुम, गोस्वामी व्रजनाथ शर्मा लिखित 'असभ्य रमणी, व्रजमोहन लाल लिखित चन्द्रवती शकरलाल गुप्त लिखित 'प्रेम का फल', रामप्रसाद शर्मा लिखित 'चन्द्रमुखी ब्रह्मदत्त लिखित किशोरी नरेन्द्र शालिग्राम गुप्त लिखित 'आदश रमणी रामनरेश त्रिपाठी लिखित मारवाडी और पिशाचनी सूरजभान वश्य लिखित 'कटा हुआ सिर, द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी लिखित सावित्री सत्यवान, जगन्नाथ मिश्र लिखित मधुप लतिका वा इश्क की आग राधिका प्रसाद सिंह अखौरी लिखित मोहिनी दुर्गा प्रसाद खत्री लिखित रक्त मडल', अवधनारायण लिखित विमाता, किशोरी लाल गुप्त लिखित 'राधा', मन्नन द्विवेदी गजपुरी लिखित 'रामलाल मगलदत्त शर्मा बहुगुणा लिखित 'राजनतिक षडयन्त्र शिवसहाय चतुर्वेदी लिखित बलून बिहारी, और रामचरित उपाध्याय लिखित देवी द्रौपदी आदि उपन्यास इस द्वितीय विकास युग अथवा नवीन उत्थान के अन्तगत विभिन्न प्रवत्तिया का प्रतिनिधित्व करते हैं। हिन्दी उपन्यास के द्वितीय विकास युग म मौलिक उपन्यासो के साथ ही अनूदित साहित्य के क्षेत्र म भी गतिशीलता आइ।

[३] प्रेमचन्द युग हिन्दी उपन्यास साहित्य के ततीय विकास युग म प्रेमचन्द का आविर्भाव हुआ। उन्होंने इसरारे मुहब्बत' रूठी रानी श्यामा', प्रेमा' उपन्यासो

की उर्दू म रचना की। हिंदी म इन्होंने सेवासदन, प्रतिज्ञा', निर्मला, कायाकल्प, रंगभूमि, गबन 'कर्मभूमि और गोदान' आदि उपन्यासों की रचना की, जिनका हिंदी साहित्य म ऐतिहासिक महत्व है। प्रेमचन्द के समय से हिन्दी उपन्यास म मनोवैज्ञानिकता तथा यथार्थवाद आदि का आरम्भ हुआ। श्री देव नारायण द्विवेदी लिखित कर्तव्याघात, नरोत्तम व्यास लिखित पाप का परिणाम, रामचन्द्र शर्मा लिखित कलंक, टीकाराम सदाशिव तिवारी लिखित पुण्यकुमारी भगवानदीन पाण्डे लिखित सती सामर्थ्य, कमलदेव नारायण शर्मा लिखित 'युगल कुसुम और रामनाथ पांडेय लिखित शैतानी लीला या गुनहगार पाप आदि उपन्यासों म पूर्व युगीन कथा प्रवृत्तियां ही मिलती हैं। जयशंकर प्रसाद ने यथार्थवादी आधारभूमि पर कंकाल की रचना की। तितली म भी लेखक का दृष्टिकोण यथार्थता की आधारभूमि पर है। इस युग के आदर्शवादी उपन्यासकारों म विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक का नाम उल्लेखनीय है। इनके लिखे हुए मां 'भिखारिणी तथा संघर्ष आदि उपन्यासों म आदर्शपरक आधारभूमि पर यह संकेत किया गया है कि वास्तविक सन्तोष एवं सुख धन और वैभव से नहीं अपितु सच्ची भावनाओं म होता है। हिंदी उपन्यास साहित्य म यथार्थपरक स्तर पर कथा रचना करने वालो म पांडेय बेचन शर्मा उग्र' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके उपन्यास 'दिल्ली का दलाल चन्द हसीनों के खतूत बुधवा की बेटी सरकार तुम्हारी आखो मे 'जीजा जी तथा शराबी आदि हैं। इस युग के अन्य सामाजिक उपन्यासो म रूपनारायण पांडेय लिखित तारा जगमोहन वर्मा लिखित लोकवृत्ति', जयगोपाल लिखित उर्वशी विश्वम्भर नाथ जिज्जा लिखित 'तुर्क तरुणी, प्रेम पूर्णिमा, दादू विनायक लाल लिखित चन्द्रभागा गौरीशंकर शुक्ल पथिक' लिखित रमणी रहस्य विनोद शंकर व्यास लिखित अशांत लक्ष्मी नारायण सुधांशु लिखित भ्रांत प्रेम आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भगवती प्रसाद वाजपेयी ने अपने उपन्यासो मे जीवन के विविध पक्षो का चित्रण कर समाज की विभिन्न समस्याओ पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं। इनके उपन्यास प्रेमपथ' 'अनाथ पत्नी, त्यागमयी लालिमा, प्रेम निर्वाह 'पिपासा 'दो बहिन 'निमंत्रण' 'गुप्त धन चलते चलते पतवार, 'मनुष्य और देवता धरती की सास' यथार्थ से आगे, 'विश्वास का बल 'चन्दन और पानी, टूटते बन्धन आदि हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला लिखित अप्सरा, अलका निरुपमा, 'प्रभावती, काले कारनामे बिल्लेसुर बकरिहा कुल्ली भाट', जी०पी० श्रीवास्तव लिखित लखोरी लाल दिल जले की आत्मकथा शिव पूजन सहाय लिखित देहाती दुनिया, सियारामशरण गुप्त लिखित 'गोद, अन्तिम आकांक्षा, 'नारी गोविन्द वल्लभ पंत लिखित प्रतिमा 'मदारी, जूनिया', अनुराग गिनी, 'अमिताभ, 'एक सूत्र नूरजहां मुक्ति के बन्धन,' चन्द्रकांत यामिनी, नौजवान, 'जल समाधि', पण, मैत्रेय' 'फारगेट मी नाट, कागज की नाव', प्रगति की राह आदि तृतीय विकास युग के अन्तर्गत उल्लिखित की जा सकने योग्य

गाधी टोपी, 'सावनी समा' तथा 'सूरदास', सुदर्शन लिखित 'झकार तथा 'भागवन्ती', उषादेवी मित्रा लिखित 'वचन का मोल, 'नष्ट नीड', सोहनी, पिया, जीवन की मुस्कान, उदयशकर भटट लिखित 'नये मोड तथा 'सागर लहरें और मनुष्य, रामवक्ष बनीपुरी लिखित चिता के फूल' तथा 'गेहूँ और गुलाब, इलाचन्द जोशी लिखित 'घृणामयी, 'सन्यासी', 'पर्दे की रानी', प्रेत और छाया, निर्वासित, 'मुक्तिपथ', सुबह के भूले, जिप्सी तथा जहाज का पछी, भगवतीचरण वर्मा लिखित पतन, चित्र लेखा तीन वर्ष, टेढ मेढे रास्ते, 'आखिरी दाव भूले बिसरे चित्र, वह फिर नहीं आयी, सामर्थ्य और सीमा तथा सीधी सच्ची बातें, यशपाल लिखित दादा कामरेड, देशद्रोही, पार्टी कामरेड' 'मनुष्य के रूप', दिव्या', 'अमिता झूठा सच, प्रताप नारायण श्रीवास्तव लिखित निकुज, विदा विजय', 'विकास, बयालीस, विश्वास की वदी पर, बेकसी का मजार', वेदना "आयतन, विसजन, देवीप्रसाद धवन विकल' लिखित कुबेर, जनेन्द्रकुमार लिखित परख, सुनीता, 'त्यागपत्र कल्याणी, सुखदा', विवत, व्यतीत', सच्चिदानन्द हीरानद वात्स्यायन अज्ञेय' लिखित शेखर एक जीवनी नदी के द्वीप, अपने अपने अजनबी', रमाप्रसाद घिल्डियाल पहाडी लिखित सराय चलचित्र, रामेश्वर शुक्ल अचल' लिखित 'चढती धूप नयी इमारत, उल्का, 'मरुदीप' आदि हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास के चतुथ विकास युग के अन्तगत रखी जा सकती हैं। इस चतुथ विकास युगीन जो उपलब्धिया सामने आयी वे सभी अपने व्यापक महत्व की ओर सकेत करती हैं।

[५] स्वातन्त्र्योत्तर युग स्वतत्रता के पश्चात हिन्दी उपन्यास के स्वरूप म विविधता का आविर्भाव हुआ। पूर्व युगीन कथा प्रवृत्तिया के साथ ही कुछ नवीन प्रवृत्तिया का भी विकास हुआ। भारत की स्वतत्रता एव भारत के विभाजन के फलस्वरूप अनेक धार्मिक साम्प्रदायिक, सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओ का उपन्यासकारो ने सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया और उन्ह अपनी रचनाओ म यथाथ रूप म उतार लिया। अत इस युग मे पौराणिक ऐतिहासिक प्रवृत्तियो के साथ ही राजनतिक प्रवृत्तिया का भी विकास हुआ। इसके साथ ही हास्य व्यग्य प्रधान औपन्यासिक कृतियां की परम्परा का भी विकास हुआ। आचलिक उपन्यासो की परम्परा का नवीन रूप म विकास हुआ। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आधुनिक युग के विशेष सन्दभ मे शाश्वत, नतिक दार्शनिक, सास्कृतिक और मनोवज्ञानिक मान्यताओ का विवेचन हिन्दी उपन्यास के नवीनतम स्वरूप का द्योतक है। इस काल म डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ऐतिहासिक सास्कृतिक पृष्ठभूमि म बाणभटट की आत्म कथा तथा चारु चन्द्रलेख नामक उपन्यास प्रस्तुत किये। अन्य लेखको की कृतियो म विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त लिखित 'चादी का जूता, 'गाव के देवता तथा नया जमाना, अन्नपूर्णानन्द लिखित 'महाकवि चच्चा', मगन रहु चोला तथा मेरी हजामत' उल्लेखनीय हैं। सामाजिक आदशवादी उपन्यासो म यज्ञदत्त शर्मा के उपन्यास

इन्साफ, अंतिम चरण', 'इन्सान', 'महल और मकान', 'रजनीगंधा' तथा 'विश्वासघात' उल्लिखित किये जा सकते हैं। राजनैतिक विचारधारा प्रधान उपन्यासों में बहता पानी', रैन अंधेरी' सवेरा, नयी प्रतिक्रिया, 'उलझन' 'अपराजित, 'घेरे के अन्दर' 'जागरण, 'जाल, 'ज्वालामुखी, दिशाहीन, 'दुश्चरित्र, 'देख कबीरा रोया, रंगमंच मुख्य हैं जिनके लेखक मन्मथनाथ गुप्त हैं। आनन्द प्रकाश जैन लिखित 'आग और फूस, 'आग के फूल' 'तीसरा नेत्र, पलकों की ढाल', डा० कु० कंचनलता सब्बरवाल लिखित 'पुनरुद्धार, रघुवीर शरण मित्र लिखित आग और पानी' 'उजला कफन, 'कांपती आवाज', 'ढाल तलवार', 'पहली हार, 'राख की दुलहन, 'सोन की राख' आदि उपन्यास ऐतिहासिक आदर्श प्रस्तुत करते हैं। नरेश मेहता लिखित 'डूबते मस्तूल 'वह पथ बंधु था, नागार्जुन लिखित 'अग्रतारा' 'दुखमोचन 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ' 'रतिनाथ की चाची', 'वरुण के बेटे 'हीरक जयंती' तथा विश्वम्भर 'मानव लिखित उजड़े घर 'कावेरी, 'नदी, पील गुलाब की आत्मा' 'प्रेमिकाएं आदि उपन्यास मुख्यत प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है। उपेन्द्रनाथ अश्क' लिखित सितारों के खेल' 'गिरती दीवारें', 'गर्म राख' 'बड़ी-बड़ी आखें' पत्थर अल पत्थर' तथा 'शहर में घूमता आइना' आदि उपन्यासों में मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त अमर बहादुर सिंह 'अमरेश लिखित 'क्रांति के कगन अमृतलाल नागर लिखित 'महाकाल, बूंद और समुद्र तथा 'अमृत और विष', फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'मैला आंचल', तथा 'परती परिकथा आदि औपन्यासिक कृतियां हिन्दी उपन्यास में पंचम विकास युग के अंतर्गत उल्लिखित की जा सकती हैं। इनमें प्रमुखत सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा आंचलिक कथा प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया गया है। इन्हीं प्रवृत्तियों के अंतर्गत इस युग के अन्य उपन्यासों में डा० रांगेय राघव लिखित घरौंदे विषाद मठ' तथा मुर्दों का टीला, प्रभाकर माचवे लिखित 'परन्तु', द्वाभा, राजेन्द्र लिखित सावन की आखें, डा० देवराज लिखित पथ की खोज, 'बाहर भीतर, रोड़े और पत्थर अजय की डायरी, विष्णु प्रभाकर लिखित 'तट के बंधन, 'निशिकांत, स्वप्नमयी, अमृतराय लिखित नागफनी का देश, राजेन्द्र यादव लिखित उखड़े हुए लोग, डा० प्रतापनारायण टंडन लिखित 'रीता की बात', अंधी दृष्टि, 'रूपहले पानी की बूंदें, 'वासना के अंकुर, अभिशप्ता' आदि भी उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यास और समकालीन प्रवृत्तियां

हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकासात्मक इतिहास में श्री शांतिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव पंचम विकास काल में हुआ था। इस युग में प्रेमचन्द युगीन उपन्यास की विशिष्ट उपलब्धियां ही नवीन उपन्यास साहित्य की आधार स्तम्भ बनी हुई थीं। परन्तु इस विकासात्मक काल में उपन्यास का विषय विस्तार पहले की अपेक्षा कहीं

अधिक हुआ और प्रेमचन्द की पूववर्ती प्रवृत्तियों का भी इस युग म अनुगमन किया गया। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की समकालीन औपन्यासिक प्रवृत्तियों पर दृष्टि डालन स पूव यह आवश्यक है कि हम उस युग का और विशेषत उसकी सामाजिक, राजनतिक, आर्थिक, साम्प्रदायिक आदि परिस्थितियों का अवलोकन करें। हिन्दी साहित्य क क्षेत्र म आपका आविर्भाव द्वितीय महायुद्ध स पूव ही हो गया था। यह वह युग था जबकि राजनतिक स्तर म अत्यन्त उथल पुथल मच गयी थी। इसके साथ ही सामाजिक जीवन म भी नवजागरण का उत्थान हो रहा था। राजनतिक स्तर पर विभिन्न मतो एव वादो का बोलबाला था। जहा एक ओर गाधी जी की क्रियाशीलता के कारण गाधीवाद का प्रचार एव प्रसार हो रहा था वही दूसरी ओर क्रान्तिकारी साम्यवाद का भी प्रभाव राजनीति पर पड रहा था। साम्यवादी हिंसा के आधार पर भारत मे स्वाधीनता चाहते थे परन्तु गांधी जी इसके विपरीत शातिपूवक अपना स्वराज्य माग रहे थ। इस प्रकार उद्देश्य एक होते हुए भी दोनो के पथ अलग अलग थ। एस सघषपूण वातावरण का प्रभाव साहित्य पर न पडे, यह असम्भव है। अत अपने युग स प्रभावित होकर साहित्य की सबस सचेतन विधा उपन्यास म उपन्यासकारो न अपनी बहुमुखी प्रतिभा क साथ ही अपनी सचेतन सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय दिया।

द्वितीय महायुद्ध स पूव ही भारत म नवजागरण व्याप्त चुका था। गाधी जी मनुष्यो म सोई चेतना को जाग्रत कर उनम स्वावलम्बन की भावना का उद्रेक करना चाहते थे। यही कारण था कि उन्होने चर्खा कर्घा योजना के साथ ही कृषि एव कुटीर उद्योग धन्धो को भी महत्त्व दिया। गाधीवाद की विचारधारा तक पर आधारित न होकर स्वानुभूति पर आधारित है। यही कारण है कि उसम एक प्रकार की आध्यात्मिकता और विचार स्वातन्त्र्य का आभास होता है। गाधी जी का सर्वोच्च सामाजिक आदश था सत्याग्रह जीवनादश और रामराज्य शासनादश था। हिन्दी साहित्य म गाधी व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उनकी व्यवहार प्रक्रिया के विविध रूप तथा विचार शक्ति के अश अभिहित हुए। हिन्दी उपन्यास साहित्य के अन्तगत प्रेमचन्द न अपन उपन्यासो और कहानियो मे सत्याग्रह हृदय परिवतन स्वाधीनता सग्राम म सत्य अहिंसा क शस्त्रो के प्रयोग का चित्रण आश्रमो की स्थापना द्वारा सुधार आदि गाधीवाद के अनेक पक्षो की अभिव्यक्ति की है। प्रेमचन्द क कुछ उपन्यास एव कहानियो म तो गाधीवाद का व्यवहार पक्ष इतना उभर आया है जितना उनके समकालीन अन्य लखको म भी नहीं मिलता है। कौशिक सुदशन भगवतीचरण वमा, एव जनेन्द्र आदि उपन्यासकारो न भी गाधीवाद की यत्र-तत्र अभिव्यक्ति की है।

[१] द्विवेदी जी और ऐतिहासिक औपन्यासिक प्रवत्ति सामान्य कथा रचना की प्रक्रिया स इतिहास कथा रचना की प्रक्रिया सवथा भिन्न होती है। अत इसम

कथाकार को बहुत ही सतर्कतापूर्वक इतिहास के कथा सूत्रों का संकलन करना होता है। इस क्षेत्र में उसके लिए यह आवश्यक है कि वह जिस युग से कथा सूत्र ले रहा हो उस युग की पृष्ठभूमि और वातावरण का उचित रूप से अध्ययन कर ले। ऐतिहासिक कथा वस्तु से सम्बन्धित सामग्री का पर्यवेक्षण और अध्ययन उपन्यास की उपकरणात्मक समृद्धता के लिए आवश्यक होता है। पूर्ववर्ती ऐतिहासिक औपन्यासिक दोषों से मुक्ति के लिए भी इसकी आवश्यकता है। अंग्रेजी समालोचक वाल्टर वेग हीट ने ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास की तुलना बहते हुए जल प्रवाह में पड़ी हुई प्राचीन दुर्ग मीनार की छाया से की है। जल नवीन है, नित्य परिवर्तनशील है परन्तु मीनार पुरानी है और अपने स्थान पर डटी हुई है। ऐतिहासिक उपन्यास लेखक की भी यही समस्या है कि उसके पैर तो इस पृथ्वी पर ही हैं वह सांस इस युग और निमिष में ले रहा है परन्तु उसका स्वप्न पुरातन है और फिर भी नवीन है। एक ही ऐतिहासिक विषय पर विभिन्न युग के लेखक इसी कारण से विभिन्न प्रकार से लिखेंगे। ऐतिहासिक उपन्यास और इतिहास का पार्थक्य निश्चय ही विनान युग का स्वाभाविक परिणाम है। यह पृथकता होते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास और वर्तमान का तथा यथार्थ और कल्पना का बहुत सन्तुलित और आनुपातिक समन्वय होना आवश्यक है। इसके साथ ही कल्पना को कलात्मक रूप से प्रकट करना भी आवश्यक है तभी वह यथार्थ सी लगेगी। यही ऐतिहासिक उपन्यास की विशेषता है। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और कथा की इस पुरातन समीपता की नूतन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति है जिसके पीछे युग-युग के अतीतोन्मुखी संस्कार निहित है। उसकी उत्पत्ति विगत में आत्मविस्तार की आन्तरिक मानवीय वृत्ति से हुई है। कथा की कोई भी कल्पना विगत अथवा ऐतिह्य से उसी प्रकार अपने को सर्वथा मुक्त नहीं कर सकती जिस प्रकार इतिहास अपने को कल्पना से पृथक नहीं कर सका। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा का प्रवर्तन यद्यपि भारतेन्दु युग में ही हो चुका था परन्तु उसके साहित्यिक और कलात्मक रूप का विकास प्रेमचन्द युग में हुआ। प्रेमचन्दोत्तर ऐतिहासिक उपन्यास लेखकों में वृन्दावन लाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल और रांगेय राघव आदि के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं। इसका मुख्य कारण है इनकी रचनाओं में दो मूल प्रवृत्तियों का पोषण—प्रथम प्रेमचन्द की सामाजिक प्रवृत्ति और द्वितीय समाजवादी अथवा प्रगतिवादी प्रवृत्ति। ऐतिहासिक क्षेत्र में दो और प्रवृत्तियां व्यक्तिवादी और मनोविश्लेषण की प्रवृत्ति का आभाव है। डा० वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में जात्याभिमान, राष्ट्र प्रेम आदर्श स्थापन तथा वीर पूजा की भावना उद्वलित हो रही है तो आचार्य चतुरसेन शास्त्री की ऐतिहासिक रचनाएं इतिहास रस में लिप्त रहने की नैसर्गिक भावना और वर्तमान को शक्तिशाली बनाने के लिए अतीत से उपजीवन खोजने की भावना से प्रभावित हैं। राहुल सांकृत्यायन

तथा यशपाल के उपन्यासो मे जीवन की नवीन व्याख्या प्रस्तुत करने की भावना तथा ऐतिहासिक पात्रो एव घटनाओ के प्रति न्याय की भावना का प्रतिनिधित्व चित्रित है। इस प्रकार अतीत का उपयोग उपादेयता के रूप मे साहित्य के नवजागरण काल मे आदशवादी एव सुधारवादी प्रवत्ति है जिसे प्रेमचन्द परम्परा की सामाजिक कोटि की सज्ञा दी जाती है और इस कोटि मे वन्दावन लाल चतुरसेन तथा हजारी प्रसाद की ऐतिहासिक रचनाएँ उल्लखनीय हैं। इनम समाज कल्याण एव व्यक्ति मगल के समन्वय की भावना अन्तर्निहित है। समाज के समक्ष व्यक्ति तुच्छ हो जाता है। अत समाज कल्याण की धारणा मे व्यक्ति मगल का समाहार हो गया है। इनकी कृतियो मे अतीत को मानवतावादी जीवन दशन के रूप मे अंकित कर वतमान जीवन के लिए उसकी उपादेयता की ओर सकेत है।

[२] द्विवेदी जी और सामाजिक औपन्यासिक प्रवत्ति हिन्दी उपन्यास मे प्रमुख रूप से सामाजिकता की पवृत्ति ही मिलती है जो भारतेन्दु युग से लेकर परवर्ती युगा तक अनेक रूपो मे विकासशील रही। इसकी पुष्टि सामाजिक उपन्यास के क्रमिक विकास के अध्ययन से ही हा जाती है। वस्तुत सामाजिक उपन्यास कला की आधारभूत विचारधारा व्यक्ति चिन्तन से सम्बद्ध न होकर समाज मगल की भावना स अनुप्रेरित है। इस दृष्टि से सामाजिक उपन्यास की निजी विशेषताए हैं तथा उसका अपना विशिष्ट स्वरूप है। उपन्यास की इस प्रवृत्ति का विश्लेषण करते हुए आचाय नन्द दुलारे वाजपेयी ने कहा है कि सामाजिक यथाथवाद अन्य यथाथवादो की अपेक्षा अधिक स्वस्थ एव विकासोन्मुखी है। इसके द्वारा जीवन तथा समाज मे अधिकाधिक सन्तुलन एव समन्वय स्थापित किया जा सकता है। भारतीय समाज के विविध वर्गों मे नव जागरण का आभास समकालीन उपन्यासों से ही सम्भव हो सकता है। हिन्दी के सवप्रथम मौलिक उपन्यास परीक्षा गुरु मे भी समाज म होने वाल विविध परिवतनो का आभास मिलता है। रूढ़िवादिता के विरुद्ध प्रतिक्रिया तथा नवीन चेतना का बौद्धिक परिवेश म जागरण इन उपन्यासो मे प्रतिभासित होता है। भारतेन्दु युगीन उपन्यासो के चरित्र ही इस नवीनता के सूचक हैं। समाज के विभिन्न वर्गों और विशष रूप स मध्य तथा निम्न वर्गों म सामाजिक चतना एव जागरण की प्रक्रिया अधिक तीव्र थी। भारतेन्दु युगीन उपन्यासो मे मध्य वग के चित्रण की बहुलता है जब कि भारतेन्दु क परवर्ती युग के उपन्यासा म अधिकाशत निम्न वग को ही प्रधानता दी गइ है। विषय विस्तार की दष्टि स सामाजिक उपन्यास का क्षेत्र अत्यधिक व्यापक एव प्रशस्त है। भारतेन्दु युग प्रमचन्द युग तथा प्रमचन्द क परवर्ती युगो म जो सामाजिक उपन्यास लिखे गय उनका क्षेत्र विस्तार बहुत अधिक है। समाज म हान वाले विविध क्षेत्रीय परिवतनो क फलस्वरूप जो नवीन समस्याए सामन आयीं उनका उपन्यासकारो न विस्तार स निदानात्मक विश्लषण प्रस्तुत किया। बालकृष्ण भट्ट के 'एक सुजान सौ अजान तथा राधाकृष्ण दास क 'निस्सहाय

हिन्दू' में जो समस्याएँ मिलती हैं वे ही आगे चल कर प्रेमचन्द के विभिन्न उपन्यासों में व्यापक आधार पर विश्लेषित की गई हैं। इसी विषय पर जो भाव प्रधान आदर्शवादी उपन्यास ब्रजनन्दन सहाय जैसे उपन्यासकारों ने पूर्व युगों में प्रस्तुत किये थे विशम्भर नाथ शर्मा श्रीनाथ सिंह उषा देवी मित्रा तथा गोविन्द वल्लभ पन्त आदि ने उसका प्रसार किया। आधुनिक औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि में कृषक जीवन की समस्या, श्रमिक जीवन की समस्या एवं आर्थिक वर्ण भेद की अन्य समस्याएँ, शोषक एवं शोषित वर्गों के सन्दर्भ में उठाई गई समस्याएँ स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह एवं कुरीति निवारण की समस्याएँ, समकालीन सामाजिक जीवन की विकासशीलता की द्योतक हैं। प्रेमचन्द ने जो मानववादी दृष्टिकोण अपने सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत किये थे उसका प्रसार सियारामशरण गुप्त, विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', चंडीप्रसाद हृदयेश तथा विष्णु प्रभाकर आदि उपन्यासकारों ने किया। भगवतीचरण वर्मा यशपाल तथा अमृतलाल नागर आदि उपन्यासकारों ने सामाजिक पृष्ठभूमि में व्यष्टि और समष्टि के समन्वय के द्वारा यान्त्रिकता के फलस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों का निदान प्रस्तुत किया है।

[३] द्विवेदी जी और व्यक्तिवादी उपन्यासों की प्रवृत्ति व्यक्तिवादी उपन्यासों में सामाजिक मान्यताओं की अपेक्षा वैयक्तिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है और उसी की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तिवादी औपन्यासिक प्रवृत्ति सामाजिक प्रवृत्ति एवं मनोविश्लेषणवादी प्रवृत्ति के मध्य की कड़ी है यद्यपि स्थूल रूप में दोनों ही व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के समकक्ष जान पड़ते हैं। व्यक्तिवादी जीवन दर्शन आधुनिक युग की देन है और मानव चेतना के अभिनव विकास का सूचक है। इन उपन्यासों में व्यक्ति विशेष के मनोभाव एवं विचार ही अधिक मुखरित होते हैं। इसमें सामाजिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति विद्रोह के साथ ही साथ नैतिकता अनैतिकता की नवीन कसौटी पर परखने का वास्तविक चित्रण दर्शित होता है। इनके पात्रों के जीवन की सबसे जटिल समस्याएं होती हैं प्रेम तथा विवाह की पाप पुण्य के अन्तर की नैतिक अनैतिक की, इसके साथ ही सामाजिक बन्धनों तथा वैयक्तिक आकांक्षाओं के मूल्य को आंकने की। इस तरह व्यक्तिवादी उपन्यास में चरित्र चित्रण की शैली भी व्यक्तिवादी जीवन दृष्टि से प्रभावित हैं। व्यक्तिवादी उपन्यासकारों में भगवती चरण वर्मा जयशंकर प्रसाद उदय शंकर भट्ट भगवती प्रसाद वाजपेयी आदि निःसन्देह व्यक्तिवादी जीवन दर्शन से प्रभावित हैं। उपेन्द्रनाथ अश्क रामेश्वर शुक्ल अचल लक्ष्मीनारायण लाल जनार्दन मुक्तिबोध आदि की रचनाओं में यद्यपि सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति हुई है परन्तु उनके पात्रों को रूप तथा प्रेरणा व्यक्तिवादी चिन्तन के ही द्वारा मिलता है। प्रसाद के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में मानवतावादी भावना विद्यमान है। मध्यवर्गीय समाज की व्यक्तिवादी चेतना भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में विद्यमान मिलती है। इसी सन्दर्भ में लेखक ने कतिपय

उसका कथानक पाच दिन सात दिन कुछ महीनों अथवा कुछ घटों तक म भी सीमित हो सकते हैं। इन उपन्यासों म कम से कम पात्रो की सयोजना की जाती है। नाटकीय तत्व के सदभ म मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म यह तत्व समाविष्ट होता है परन्तु उसके पीछे कोइ न कोई वैज्ञानिक कारण अवश्य होता है। अपनी प्राचीन परिपाटी का त्याग कर आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार यथासम्भव लघुतम सवाद सकता का योजना करता है। प्रमचन्द तथा अन्य सामाजिक परम्परा के उपन्यासकारो न विवाह के बधन की पवित्रता को प्रधानता दी है। इसके लिए प्राणी जगत को चाहे जितना भी सघष क्यो न करना पड़। इसके विपरीत आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपन्यास कारो म विशेषत धर्मवीर भारती अनन्त गोपाल शेवड दवराज तथा अन्य न अपनी औपन्यासिक कृतियो म प्रेम के विविध स्वरूपो के चित्रण द्वारा मध्यवर्गीय ह्रासोन्मुखी एव मरणशील चेतना को अभिव्यक्त किया है। आधुनिक युग चेतना की आवश्य कताओ न उपन्यास के विषय तथा शली को नवीनता के साच म ढाल दिया है। अन्तश्चेतनावादी उपन्यासकार ने युग परिस्थितियो के प्रभाववश साहित्य की परिभाषा ही बदल दी है। वह साहित्य को रसात्मक वस्तु न मान कर उसे कवल वयक्तिक और अन्तर्मुखी पदार्थ मानता है। मनोविश्लेषणात्मक आधारभूमि पर हिन्दी उपन्यास को विकास की नई दिशाए प्रदान करने वाल लखको म जनेन्द्र कुमार का नाम भी उल्लखनीय है। उन्होने आधुनिक बौद्धिकता और परम्परागत दार्शनिकता के अन्तर्द्वन्द्व स ग्रस्त मानव मन का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। इलाचन्द जोशी न अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो मे विशेष रूप से मानवीय कुठाओ विकृतियो तथा मानव मन की चेतन अद्धचेतन एव अचेतन सत्ताओ का चित्रण किया है। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने अपने मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म काम कुठाओ का विश्लेषण मानसिक विकृतियो का चित्रण एव अवचेतन के विविध रूपात्मक चित्रण का प्रयत्न किया है। जनेन्द्र कुमार लिखित त्याग पत्र और सुनीता इलाचन्द जोशी लिखित सयासी और जहाज का पक्षी सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय लिखित नदी के द्वीप तथा शेखर एक जीवनी डा० दवराज लिखित ढाभा तथा नरेश मेहता लिखित डूबते मस्तूल आदि उपन्यास इस प्रवत्ति के अन्तगत प्रतिनिधि कृतियो के रूप म मान्य किये जा सकते हैं।

द्विवेदी जी के उपन्यासो का सद्धान्तिक विश्लेषण

उपन्यास साहित्य के सद्धान्तिक विश्लेषण के लिए उसके शास्त्रीय स्वरूप एव महत्व को दृष्टि म रखना आवश्यक है। प्राचीन संस्कृत साहित्य शास्त्र म विविध कथा रूपों की व्याख्या स यह स्पष्ट हो जाता है कि आधुनिक उपन्यास विधा उनसे सवथा भिन्न है। यह भिन्नता कथा रूपो के विभिन्न तत्वो म भी दृष्टि होती है। शास्त्रीय दृष्टि स उपन्यास विधा को गद्य काव्य के अन्तगत उल्लिखित किया जा सकता

है। गद्य काव्य के ही प्राचीन रूपों से आधुनिक हिन्दी उपन्यास के स्वरूप का विकास हुआ है। उपन्यास शब्द का प्रयोग प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी मिलता है। आचार्य भामह के 'काव्यालंकार' में, आचार्य दंडी के 'काव्यादर्श' में, आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के साथ ही गुणाढ्य की 'बृहत्कथा', 'पंचतंत्र' और बौद्ध जातक कथाओं तक में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में मिलता है। 'उपन्यास' दो शब्दों के योग से बना है—उप = समीप तथा न्यास = थाती, जिसका अर्थ निकट रखी हुई वस्तु अर्थात् वह वस्तु या कृति जिसमें अपने ही जीवन का प्रतिबिम्ब हो, अपनी कथा स्वयं की भाषा में कही गई हो। आधुनिक उपन्यास में उपपत्ति कृतत्व और प्रसादनत्व दोनों मौलिक गुणों की रक्षा होते हुए भी इसका क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि दोनों में गुणात्मक अंतर आ गया है। साहित्य के जितने भी रूप विधान हो सकते हैं, उनमें उपन्यास का रूप विधान सबसे लचीला है और वह परिस्थिति के अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। यही कारण है कि इस नवीन साहित्यांग को सम्यक् रूप से परिभाषित करने के प्रयत्न के साथ ही विद्वानों ने इसके पृथक् पृथक् पक्षों का भी अवलोकन किया है। अतएव उपन्यास की उपलब्ध परिभाषाओं में अत्यधिक वैविध्य मिलता है। विचारकों एवं अन्य प्रबुद्ध जनों ने उपन्यास के आकारिक स्वरूप, गद्यात्मकता, यथार्थात्मकता, कल्पनात्मकता, चित्रणात्मकता, कथात्मकता और कलात्मकता आदि पर जोर देते हुए इस साहित्यांग को विविध रूप में परिभाषित करने का प्रयत्न किया है। आकारिक दृष्टिकोण से 'दि न्यू वेबस्टर्स इन्साइक्लोपीडिया' में उपन्यास या नावेल दीर्घ आकार की गद्य में रचित उस काल्पनिक कथात्मक रचना को कहा गया है जिसमें जीवन के यथार्थ स्वरूप की परिचायक कथा तथा पात्र सृजित किये गए हों। इसी प्रकार प्रसिद्ध उपन्यास शास्त्री ई० एम० फास्टर ने उपन्यास को गद्य में लिखी हुई कथा के रूप में परिभाषित करते हुए उसके आकार के सम्बन्ध में यह मन्तव्य प्रस्तुत किया है कि उपन्यास को कम से कम पचास हजार शब्दों की रचना अनिवार्य रूप में होनी चाहिए।[1] नवीनता की दृष्टि से आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भारत तथा पश्चिमी देशों में भी उपन्यास को आधुनिक युग की देन माना है तथा उसके आविर्भाव को नवीन युग के आगमन का सूचक बताया है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने आधुनिक उपन्यास को साहित्य का एक नया और सश्लिष्ट रूप विधान बताया है जिसके क्षेत्र एवं संभावनाएँ अपरिसीमित हैं।[2] डा० नगेन्द्र ने भी उपन्यास को 'नये युग की नयी अभिव्यक्ति का नया रूप' माना है।[3] कथात्मकता की दृष्टि से डा० गुलाबराय के अनुसार उपन्यास कार्य कारण शृंखला में

1. आधुनिक साहित्य : श्री नन्द दुलारे वाजपेयी, पृ० १२३।
2. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष : श्री शिवदान सिंह चौहान, पृ० १४१।
3. साहित्य सन्देश : आधुनिक उपन्यास अंक, जुलाई-अगस्त १९५६, पृ० ७।

बधा हुआ वह गद्यात्मक कथानक है जिसमे अपेक्षाकृत अधिक विस्तार एव पेचीदगी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियो से सम्बधित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।" पाश्चात्य लेखिका ईरा वाल्फट ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए व्यक्त किया है कि 'उपन्यास मानवीय जीवन और भावनाओ का गद्य म प्रस्तुत किया गया अनुवाद मात्र है। उसका विचार है कि इस उपन्यास रूपी गद्यात्मक अनुवाद को पाठको का आत्मज्ञान बढ़ाने मे सहायक होना चाहिए क्योकि उपन्यास और मानव जीवन घनिष्ठ रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं।'[2] इसी प्रकार हनरी जम्स न भी उपन्यास म यथार्थात्मकता की प्रवृत्ति को उसके स्वरूप निर्माण मे महत्वपूर्ण माना है। कल्पनात्मकता की दृष्टि से ई०ए० बेकर ने इसको उपन्यास का प्रमुख तत्व माना है और बताया है कि उपन्यास एक कल्पित गद्य कथा के रूप म ही मानव जीवन की व्याख्या करता है। उपन्यास लेखक कल्पना शक्ति की प्रखरता क ही अनुपात म सफलता प्राप्त करता है यद्यपि उसमे युगीन बौद्धिकता तथा तर्कशीलता की प्रतिक्रिया भी ध्यान दने योग्य होती है। इसी प्रकार फासिस बेकन बारन शिपल एडिथ हाटन ने भी उपन्यास म कल्पना को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। विलियम हेनरी हडसन का मत है कि वह एक ऐसी कथा हाती है जो कल्पित होती है। परन्तु इस कल्पित कथा का आधार मनुष्य का यथार्थ जीवन ही होता है।[3] चित्रणात्मकता की दृष्टि से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार मुशी प्रेमच द ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए लिखा है कि 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'[4]

उपन्यास के छ मूल उपकरण माने गये हैं। विलियम हेनरी हडसन न इन तत्वो का नाम (१) कथानक, (२) पात्र (३) कथोपकथन, (४) देश काल (वातावरण), (५) शैली तथा (६) उपन्यास द्वारा प्रस्तुत आलोचना, व्याख्या अथवा जीवन दर्शन दिया है। उपन्यास के इन्हीं छ तत्वो को लगभग सभी विद्वान एक मत से स्वीकार करते हैं। लेकिन कुछ विद्वानो ने 'जीवन दर्शन' के स्थान पर 'उद्देश्य तत्व को माना है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानो न द्वन्द्व या सघर्ष और कुतूहल या द्विधाभाव को भी उपन्यास के तत्व माने हैं लेकिन वास्तव मे यह रचना कौशल के अग हैं। हिन्दी काव्य शास्त्रकारो ने उपन्यास के सात तत्वो की ओर सकेत किया है। उनके मत मे उपन्यास में निम्न तत्व पाये जाते हैं (१) कथा अथवा कथा

---

१ 'काव्य के रूप' डा० गुलाब राय पृ० १५६।
२ दि राइटस बुक', ईरा वाल्फट, पृ० ८।
३ 'एन इट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ लिटरेचर', विलियम हेनरी हडसन पृ० १६६।
४ 'साहित्य का उद्देश्य', प्रेमचन्द, पृ० ५४।

समाज की परिस्थितियो एव उसकी विडम्बनाओ से ग्रसित आधुनिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। इसका कथानक कमल के विगत जीवन की अनुभूतियो एव स्मृतियो पर आधारित है। कमल एक कल्पना जीवी कलाकार है। वह कला की साधना को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बनाता है। कमल का अनुमान है कि सस्कृति के अभाव म सारा विश्व मृत्यु तुल्य एव निर्जीव है जहा आत्मिक रुचि साहित्य सौन्दय और कला का समन्वय उस अपने वातावरण म नही मिलता। सपूर्ण ससार ही सवेदन शून्य है। आज महत्व है तो केवल टकसाली सिक्का का, जिसके बिना मानव एक पग भी आगे नही बढ सकता। इस अभिशप्त ससार म भोजन वृत्ति की तृप्ति के साथ ही किसी रागिनी अनुरागिनी की प्रेरणा भी दुलभ है। वहा भी आर्थिक टकसाली सिक्को का राज्य है। ससार म एक ओर जहा सरलता, सुकुमारता एव सौन्दय का आधिक्य है वही दूसरी ओर विद्रूप ताडव नृत्य भी होता रहता है और ससार की इस विडम्बना के समक्ष सरलता एव निरीहता भी दाव पर लगा दी जाती है। कमल ने खादी को एक सावभौमिक समस्या के रूप म चित्रित करके उस एक नसर्गिक साधना के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार गाधीवादी विचारो को भी इस उपन्यास म प्रोत्साहन एव एक विशिष्ट स्थान मिला है। कमल अपने सास्कृतिक त्यौहारो को भी विस्मृत नही कर सका है जो मानव जीवन के एव जीविका के लिए उत्पादन के विशिष्ट महोत्सव हैं। उदाहरणाथ विजयादशमी जीवन दशन का त्यौहार है दीपावली जीविका पुरुषाथ का त्यौहार है। जो कुछ धम ग्रन्थो मे लिखित है वही त्यौहारो मे दृश्याकित है।[1] इसके अतिरिक्त कमल ने अपरोक्षत वज्ञानिक और औद्योगिक तकनीको के विरुद्ध आवाज उठाई है। समाज को अपने नसर्गिक वातावरण म लाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रम को यात्रिक बन्धनो से मुक्त किया जाय और अथ शास्त्र को टकसाली सिक्को से। भविष्य की चिन्ता परिच्छेद मे एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा हुआ है कारण कि भविष्य अभी क्षितिज मे है और उसी के सदृश अदृश्य एव अप्राप्य।

कथानक की प्रमुख विशषताए कथानक मे विभिन्न घटनाओं का नियोजन विभिन्न रूप मे होता है। अत उसमे घटना विन्यास सम्बन्धी विशिष्टताओ का होना अत्यन्त आवश्यक है। घटनाक्रम की य ही विशेषताएँ कथानक के गुण कहलाते हैं और वे ही गुण कथानक की स्वाभाविकता, अस्वाभाविकता सफलता या असफलता का कारण होते हैं। यहा पर सक्षेप मे द्विवेदी जी के उपन्यासो में नियोजित कथानक तत्व की प्रमुख विशेषताओ का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) पारस्परिक सम्बद्धता उपन्यास के कलात्मक सौन्दय के लिए कथानक का शृखलाबद्ध सयोजन अत्यन्त आवश्यक है। नवीन शिल्प विधान की दष्टि से भी

---

१ चित्र और चिन्तन श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ७५।

शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो के कथानकों मे नवीनता ही लक्षित होती है। इस नवीनता में भी एक पारस्परिक सम्बद्धता का आभास मिलता है। यद्यपि कथा शृखलाबद्ध नही है इसका मुख्य कारण यही है कि लेखक की दृष्टि नवीन प्रयोगो एव रचनात्मक चितन की ओर ही केन्द्रित रह गई थी। नवीन प्रयोगो की दृष्टि से 'दिगम्बर' के कथानक पर अगर दष्टिपात करें तो स्पष्ट ही उसमे गद्य साहित्य की अन्य विधाओ—कहानी शब्दचित्र, पसनल ऐसे आदि—की विशषताएँ उपलब्ध होगी। लेखक ने इस उपन्यास के प्राक्कथन मे इसे सीधे उपन्यास न कह कर केवल उसका रेखाकन मात्र ही माना है। कथा साहित्य क क्षेत्र म इस नवीन प्रयोग म लेखक न आधुनिक उपन्यास कला और प्राचीन उपन्यास कला का समन्वय किया है। इसी प्रकार से अपनी दूसरी औपन्यासिक कृति चारिका' को लेखक ने 'आख्यायिका' नाम से सम्बोधित किया है जो उपन्यास का ही एक प्राचीनतम रूप कहा जा सकता है। इसके कथानक मे कुछ क्रमबद्धता का आभास होता है परन्तु कथानक क आगे बढन एव प्रासगिक कथाओ के आगमन स वह शृखला टूट भी जाती है। इसम बुद्ध जी की आध्यात्मिक यात्रा का वणन है अत कथानक कही कही पर दाशनिकता से बोझिल सा हो गया है। परतु इसम आध्यात्मिकता एव व्यावहारिकता की पारस्परिक सम्बद्धता साधना के क्षेत्र म दिखलाई देती हैं। द्विवेदी जी की तीसरी औपन्यासिक कृति चित्र और चितन मे कथानक को अठारह अध्यायो म विभक्त कर निबन्धो के रूप मे उनका सयोजन उपन्यास जसा करने का प्रयत्न किया गया है। अत इसका क्रम विन्यास विविध निबन्धो के होते हुए भी उपन्यास सा ही है जो लेखक के नवीन प्रयोग की ओर ही सकेत करता है। इसका कथानक लेखक क लोक जीवन के निरीक्षण एव युग के यथेष्ठ विश्लेषण से आबद्ध है। इसम आदि स अत तक एक ही कथा विकसित होती गयी है अन्य प्रासगिक कथाओ का बहुत ही कम समावेश हुआ है परन्तु वह भी कथा शृखला म बाधक नही, सहायक रूप मे अवतरित हुई है।

(ख) वैचारिक मौलिकता कथानक का दूसरा आवश्यक गुण वैचारिक मौलिकता उपन्यासकार का प्रतिभा का परिचायक होता है। एक सफल उपन्यासकार की दृष्टि की सूक्ष्मता का परिचय इस तथ्य स होता है कि वह जीवन की गहनता से कहा तक परिचित है और जीवन की मूलभूत समस्याओ का किस रूप म साक्षात्कार हुआ है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो म वैचारिक मौलिकता स्थान स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। यह मौलिकता उसके वस्तु वणन में, घटनाओ की कल्पना के सयोजन के साथ ही साथ उसके कथा विन्यास म तो देखी ही जा सकती है परतु उपन्यास के कथानक म स्थान-स्थान पर मतो का विवेचन एव समाज की वास्तविक स्थिति के चित्रण मे भी मौलिकता स्पष्टत ही लक्षित होती है। आज व्यावहारिकता म चारो ओर अभाव ही अभाव है अकाल का साम्राज्य है,

जिसके पीछे मनुष्य का स्वार्थ कार्यान्वित हो रहा है— इस अकाल ग्रस्त युग में अन्न न संस्कृति है न दाक्षिण्य है केवल स्वार्थों की कूटनीति और आर्थिक लोलुपता है।' इनका मूलाधार है शिरा। मक्का मिरा ही वश यान्त्रिक जनता और मानव की व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा की भावना ने उसे और भी निम्नतर बना लिया है। शिर म मनुष्य की सामाजिकता का ह्रास होता है वह बाजारू बन जाता है तथा मन से अकर्मण्य एवं आलसी हो जाता है। दोनों ही मनुष्य को निर्जीवता प्रदान करते हैं। अत इनके निवारण हेतु लेखक ने अपना निर्णय प्रतिपादित किया है जिसमें गांधी जी का कर्म निर्देशित किया गया है। 'दिगम्बर' का नायक विमल आध्यात्मिकता एवं अपनी प्राचीन संस्कृति का आश्रय लेकर उनमें चेतना का संचार करता है। प्रकृति और अन्य जीवधारियों के सदृश ही मनुष्य के लिए भी मिट्टी सजीव भौतिक तत्व है जो मनुष्य से आत्मीयता की माँग करती है पुरुषार्थ द्वारा मानवीकरण चाहती है। इस प्रकार लेखक ने अपने इन दोनों उपन्यासों में गांधीवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर उनके कर्म मार्ग का समर्थन दिया है। आज ग्रामीण समुदाय जो शहरों की ओर भागता आ रहा है किसान वर्ग जिसमें खेती के लिए अरुचि उत्पन्न हो गयी है उन लोगों में अपनी भूमि के प्रति सचेतना का जागरण करके उनमें मिट्टी के प्रति मोह को उत्पन्न करके ग्रामों की ओर उन्मुख होने का प्रेरणात्मक सन्देश दिया है। इसी प्रकार चारिका में यद्यपि आध्यात्मिक क्षेत्र में दार्शनिक मतों का प्रतिपादन हुआ है परन्तु लेखक ने उसमें भी अपने व्यावहारिक दृष्टिकोण का समावेश किया है।

(ग) घटनात्मक सत्यता उपन्यासकार जो कथानक प्रस्तुत करता है वह कल्पना की सहायता से निर्मित होता है। उपन्यासकार की इन कल्पनाओं के पीछे उसका उद्देश्य होता है पाठक के समक्ष सम्भाव्य सत्य को अधिक प्रभावशाली रूप में प्रस्तुत करना। कथानक की घटना सम्भावना क्षेत्र का उल्लंघन न करें इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि स्थानीय विवरण पारिवारिक तथा सामाजिक विवरण, वेषभूषा आदि के वर्णन भी उपन्यासकार के परिपक्व अनुभवों तथा सूक्ष्म दृष्टि की द्योतक हों। बाह्य सम्भावना के साथ ही अन्तस के रहस्य उद्घाटन में भी पूर्ण सत्यता एवं यथार्थता की आवश्यकता होती है। इस दृष्टिकोण से श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की तीनों औपन्यासिक कृतियों में यद्यपि कल्पना का योग अवश्य है पर तु उसकी सत्यता की भी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। इसकी सत्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण पाठक को अपने युग एवं समाज में दृष्टि खोल कर चलने पर ही मिल सकता है। आज मानव का क्या मूल्य रह गया है? समाज किस गर्त में डूबता जा रहा है और सामाजिक मानव की आज क्या स्थिति है? इन सबका मूल्यांकन लेखक ने अत्यन्त ही सूक्ष्मता से किया है जो यह सिद्ध करता है कि लेखक ने अपने समाज एवं युग का बहुत गहनता से अध्ययन किया था। 'दिगम्बर' में समाज की विभिन्न परिस्थितियों—सामाजिक

राजनीतिक, आर्थिक वयक्तिक का यथार्थ चित्र खीचने का प्रयास किया है तथा समाज की विडम्बनाओ का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण किया है।

(घ) शलीगत निर्माण कौशल शलीगत निर्माण कौशल से तात्पर्य है किसी भी औपन्यासिक कृति म कथानक के अन्तगत विभिन्न घटनाओ के नियोजन का प्रस्तुतीकरण रूप। किसी कथानक म घटना अथवा क्रिया कलाप का सीधा सादा चित्रण करने की अपेक्षा उसे कलात्मक ढग स कथानक म साथ सम्बद्ध करना उपन्यास कार की निर्माण कुशलता का परिचायक है। आधुनिक उपन्यासो मे नवीन प्रयोग एव उनकी प्रसिद्धि का एक मात्र कारण यही है कि आधुनिक युग म हिन्दी उपन्यास शिल्प की नवीन उपलब्धियो के साथ ही उनम शैलीगत निर्माण कौशल का भी गुण विद्यमान है। शली की दृष्टि स कथानक मुख्यत व्यग्यात्मक वणनात्मक घटनात्मक विवरणात्मक, वस्तु प्रधान, विचार या कल्पना प्रधान होते हैं। शलीगत निर्माण कौशल कथानक का चौथा आवश्यक गुण है। इस गुण क अन्तगत मुख्यत कथानक के प्रस्तुतीकरण म नाटकीयता और चामत्कारिकता का समावश होता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी क उपन्यासों म प्राय कथानक को विभिन्न रखा सूत्रो के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। दिगम्बर म लेखक न अपने बचपन और किशोरावस्था का चित्रण भावात्मक विकास के आधार पर प्रस्तुत किया है। उसका अनुभूत्यात्मक विकास इस चित्रण की विशेषता है। उदाहरणाथ 'गाव स नगर मे आन पर विमल का मन नही लगता था। वहा प्रकृति का दिगन्त विस्तृत मुक्त प्रागण था यहा जन सकुल सकीण गलिया था कृत्रिम राजमाग था। घनी आबादी के होते हुए भी नगर म वह सूनापन अनुभव करन लगा। नगर की तरह गाव म भी उसके लिए कोई सामाजिक जीवन नही था, व्यावहारिक जगत तो सब जगह एक ही जैसा जटिल है। फिर भी गाव म वह पिंजर बद्ध विहग नही था। पेड पत्ते और पक्षियो के आकाश म स्वच्छन्द विहार करता था। मनुष्यो का साथ न मिलन पर प्रकृति से खेलता था। कल्पना से कवि जहा पहुँचता है वहा वह अपनी ग्राम्यचर्या स पहुँच जाता था। उसका वह निसग लोक पीछे छूट गया, अब स्मृतिया ही उसके हृदय के एकान्त म करुण रागिनी बजाया करती। वह उदास हो जाता, बिलख बिलख कर रोने लगता।'[1] इस जस उदाहरण कथानक के इसी गुण के कारण प्रभावयुक्त बन पडे हैं। चारिका म भी लेखक न गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा के प्रसग मे अनक सहायक उद्धरण प्रस्तुत किय हैं जिनसे कथा कलात्मक दृष्टि से परिपक्व बनी है।

(ङ) वणनात्मक रोचकता रोचकता कथानक का एक महत्वपूर्ण गुण है। आधुनिक युग म उपन्यास म चामत्कारिक तत्वो का समावेश न करके मनोवैज्ञानिक दृष्टि स रोचक बनाने का प्रयत्न किया जाता है। अन घटनाओ म अविश्वसनीय

१ 'दिगम्बर', श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० १६।

तत्वा के आश्रय के साथ ही आधुनिक युग म पात्रा की चारित्रिक विशेषताओं के द्वारा भी कथानक म रोचकता लाने का प्रयास किया जाता है। रोचकता के गुण की सष्टि के लिए उपन्यासकार आकस्मिक और अप्रत्याशित का आश्रय लेता है जिससे सहायता स पाठक की कौतूहल प्रवत्ति को वह आदि से अन्त तक जाग्रत रख सके। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के तीनो उपन्यास कथा सगठन एव औपन्यासिक स्वरूप की दष्टि स भल ही विवादास्पद हो परन्तु इतना निश्चित है कि रोचकता का उनम अभाव नही है। 'दिगम्बर' म लेखक न जिस रचनात्मक उन्वाधन को कथाबद्ध किया है वह सवथा मौलिक होन के साथ रोचकता की दृष्टि स भी सफल है। कथा नायक विमल के मानसिक अन्तद्वन्द्व और व्यावहारिक यथार्थता की उस पर प्रतिक्रिया का जो स्वरूप इसम चित्रित हुआ है वह समकालीन राजनीतिक और सामाजिक विचार धारा स प्रभावित है। विमल की यह मान्यता है कि वास्तविक क्रान्ति केवल नाश और विनाशो स नही हो सकती, इसीलिए वह सिक्के की तरह ही यत्रा का भी विरोध करता है। 'चारिका' म लेखक ने कथा म रोचकता की सष्टि के लिए अनक मनोरजक दृष्टान्ता के माध्यम स आध्यात्मिक सत्या का निरूपण किया है। इस प्रकार के अन्य उदाहरण भी बडी सख्या मे इस उपन्यास म उपलब्ध होते हैं जो गौतम बुद्ध के जीवन के उपलब्ध्यात्मक प्रसग है और जो उपन्यास की सपूण कथा म रोचकता की सष्टि करन म सहायक हुए हैं। 'दिगम्बर' और 'चित्र और चिन्तन' म लेखक ने क्रमश विमल और कमल की विभिन्न मन स्थितिया का चित्रण किया है जिसमे चित्रण की सूक्ष्मता परिलक्षित होती है। इसके साथ ही दोनो औपन्यासिक कृतिया अपने युग, समाज तथा लोक जीवन के चित्र का प्रतिनिधित्व करती हैं एव इसम जीवन की विविध अवस्थाओ का सूक्ष्म विश्लेषण भी हुआ है। चारिका उपन्यास मे लेखक न गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा के द्वारा दार्शनिकता से ओत प्रोत मानव मन का चित्राकन किया है। आज मानव अपने मे लिप्त होकर इस वितृष्ण ससार म भटक रहा है परन्तु आत्म ज्ञान के बोध से वह अपने समस्त बन्धना कष्टा कलप दुख जरा मरण शोक, तृष्णा आदि से मुक्त हो जाता है। इसके लिए मन शुद्धि करना अत्यन्त आवश्यक है।

[२] द्विवेदी जी के उपन्यासो मे चरित्र चित्रण शास्त्रीय दृष्टिकोण से उपन्यास के उपकरणो म कथानक के पश्चात पात्र अथवा चरित्र चित्रण का स्थान है। वस्तुत उपन्यास का मूल विषय मनुष्य और उसका जीवन है और इस जीवन के विविध रूपा का पात्रो के ही माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इस दृष्टि से पात्र अथवा चरित्र चित्रण का तत्व उपन्यास म अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार ससार का अस्तित्व प्राणि मात्र पर निभर रहता है अथवा बिना मानव के हम समाज की कल्पना नही कर सकते दोनो ही एक दूसरे के बिना अधूरे हैं उनका कोई अस्तित्व नही उसी प्रकार पात्रो के अभाव म कथानक की भी कल्पना नही की जा

सकती। अत कथानक की आधार शिला उसके पात्र ही है। पाश्चात्य विद्वानो मे एबट का विचार है कि वस्तुत चरित्र वही कुछ होता है जो कि मनुष्य होता है।[1] लाजोय एग्री का विचार है कि चरित्र की सम्यक व्याख्या करना कठिन है, क्योकि चरित्र वास्तव म मनुष्य की अन्त प्रकृति होती है। उस सामान्य रूप से नही जाना जा सकता। इसी जटिलता के कारण अभी तक चरित्र की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो सकी है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण स मानव चरित्र के स्वरूप पर विचार करते हुए विलियम आचर ने चरित्र को एक प्रकार की बौद्धिक, भावुक और हताश आदतो का सम्मिश्रण माना है। स्काट मेरेडिय ने पात्रो के चरित्र चित्रण की व्याख्या इस प्रकार की है—चरित्र चित्रण किसी गद्य के पात्रो की वैयक्तिक तथा विशिष्ट विशेषताओ के पारस्परिक वैभिन्य का स्पष्टीकरण करने वाली प्रणाली है।[2] आधुनिक हिन्दी साहित्यकारो मे बाबू गुलाबराय ने चरित्र की व्याख्या इस प्रकार की है— चरित्र से तात्पय है पात्र या मनुष्य के व्यक्तित्व का बाह्य और आन्तरिक स्वरूप। मनुष्य का बाह्य (उसका आकार प्रकार वेष भूषा, आचार विचार रहन-सहन, चाल ढाल, बात चीत का निजी ढग तथा काय कलाप) उसके अन्त करण का बहुत कुछ प्रतीक होता है।[3] श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो म चरित्र चित्रण भी एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसका निर्वाह लेखक ने सजगता के साथ किया है। द्विवेदी जी के तीनो उपन्यास दिगम्बर, 'चारिका तथा 'चित्र और चिन्तन मुख्यत चरित्र चित्रण प्रधान हैं। 'दिगम्बर' म लेखक ने एक औपन्यासिक रेखाकन के रूप म कृति का परिचय दिया है। इससे भी यह सकेत मिलता है कि इस रचना म एक साकेतिक व्यजना है। 'चारिका' गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा का गूढ अभिव्यजना स युक्त कथा रूप है। इसमे लेखक न अध्यात्मपरक एव बुद्धिवादी पात्रो की योजना करके कथा को परिपूर्णता प्रदान की है। द्विवेदी जी के उपन्यासो म आयोजित पात्र विविध रूपात्मक हैं और उनका सम्बन्ध इतिहास के विभिन्न युगो से है। इसके अतिरिक्त इनकी कृतियो मे पात्रो की चारित्रिक व्याख्या के लिए चरित्र चित्रण के विभिन्न स्वरूपो का आश्रय लिया है जिनमे परिचयात्मक विश्लेषणात्मक, साकेतिक, मनोवैज्ञानिक एव व्याख्यात्मक आदि रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उपन्यास के चरित्र चित्रण तत्व म कलात्मक सौन्दय के हेतु यह आवश्यक है कि इसके प्रस्तुतीकरण के साथ इनके गुणों एव विशेषताओ को ध्यान म रखा जाय। डा० प्रतापनारायण टडन

---

१ राइटस न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी आफ इगलिश लैंगुवेज, एब्बट, १९५१, पृ० ४६१।

२ स्काट मेरेडिय इन स्टर्पिग दि हालो मैन करक्टराइजशन', 'राइटिंग टु सल्फ,' १९५०, पृ० ६२।

३ 'काव्य के रूप', बाबू गुलाब राय, पृ० १७८।

ने 'हि दी उप याम कला" मे चरित्र चित्रण के कतिपय गुणा का उल्लख किया है। उनक अनुसार चरित्र चित्रण म निम्न विशपताए होनी आवश्यक हैं—पात्रा की कथात्मक अनुकूलता, व्यावहारिक स्वाभाविकता, चारित्रिक सप्राणता आधारिक यथार्थता भावनात्मक सहृदयता रचनात्मक मौलिकता, अन्तद्व द्वात्मकता, बौद्धिकता तथा कलात्मक परिपूणता। इन विविध गुणो के समावेश से लाभ यह होता है कि पात्र काल्पनिकता से परे व्यावहारिकता का आभास देते हैं।

उपन्यास अपन समग्र रूप म सपूण मानव जाति अथवा समाज का इतिहास होता है। मानव म निजी स्वभावगत भि नता पाई जाती है उसी के अनुरूप उपन्याम म चित्रित पात्रा मे भिन्नता का आना स्वाभाविक ही है। उपन्यासो म चित्रित कुछ पात्र आदशप्रिय होते हैं तो कुछ साधारण कोटि के। कुछ म मानवीय गुणा का प्रचुरता होती है तो कुछ अमानवीय गुणो की बहुलता लिए हुए होते हैं। समस्त पात्र अपने अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन उनम से कुछ ऐस भी होते हैं जो वग का प्रतिनिधित्व करते हुए भी अपने बौद्धिक स्तर पर उनसे भिन्न हो जात है। इस प्रकार वर्गो के आधार पर पात्रा की भिन्न कोटिया हो सकती हैं (१) वग प्रधान पात्र—जो अपनी सामान्य विशेषताओ एव आर्थिक हितो म समानता के कारण किसी विशेष वग का प्रतिनिधित्व करते हैं। (२) व्यक्तित्व प्रधान पात्र—जो बौद्धिक दष्टि स अपनी निजी विशपताओ के कारण उपन्यास के अन्य पात्रा से किंचित भिन्न एव विलक्षण होते है। कुछ विद्वानो ने एक अन्य भेद भी स्वीकार किया है (१) स्थिर और (२) गतिशील या परिवतनशील। स्थिर चरित्रो मे बहुत कम परिवतन होता है और गतिशील चरित्रो म उत्थान और पतन अथवा पतन और उत्थान दाना ही बातें होती है।[1] इसके अतिरिक्त पात्रो का वर्गीकरण एक अन्य दृष्टि से भी किया जाता है प्रमुख और सहायक पात्र। प्रमुख प्रात्र वे होते हैं जिनम उपन्यास का मूल अभिप्राय केन्द्रित रहता है और जो उपन्यास म गति का स्रोत माना जाता है। सहायक पात्र वे होते हैं जिनका काम बहुत कुछ घटनाओ को आगे बढ़ाना तथा ऐसी परिस्थितियां का निर्माण करना होता है जो मुख्य पात्र या नायक के विकास मे सहायक हो। सहायक पात्रा को अग्रजी म फ्लट' थिन या डिस्क चरित्रा का नाम दिया जाता है।[2] इस प्रकार उपन्याम के पात्रो म ववविध्य और विस्तार होता है और व अपनी चारित्रिक विशपताओ क कारण विभिन्न युगो एव वर्गों का प्रतिनिधित्व करत हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी क उपन्यासो म मुख्यत तीन कोटियो के अतगत पात्रा को वर्गीकृत किया जा सकता है। इनम से प्रथम कोटि म व पात्र आत हैं जा इन उपन्यासा के नायक हैं। औपन्यासिक रचना क्रम के अनुसार इस वग मे कवल तीन

---

१ काव्य के रूप, डा० गुलाबराय पृ० १७९।

२ हिन्दी उपन्यास कला, डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० १८१।

पात्र ही विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते है—विमल, गौतम बुद्ध और कमल। इसी प्रकार स द्वितीय कोटि म अर्थात सहायक वर्ग के अन्तर्गत मालती, वरुणवी, यमुना, इन्दुमोहन, शुद्धादन, प्रसनजित तथा यशोधरा आदि के नाम उल्लिखित किये जा सकते हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासो म एक तीसरी कोटि के पात्र भी हैं जो ऐतिहासिक युगो से सम्बन्धित हैं। गौतम बुद्ध, शुद्धोदन, राहुल तथा प्रसेनजित आदि के साथ बुद्ध के जीवन वृत्तान्त स सम्बन्धित अनेक पात्र पात्रिया इस वर्ग के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

चरित्र चित्रण की शलिया उपन्यास के विविध पात्रो के चरित्र चित्रण के लिए उपन्यासकार को विभिन्न विधिया अथवा शलियो का आश्रय लेना पडता है। स्थूल रूप से इन विविध विधियो का प्रत्यक्ष विधि अथवा अप्रत्यक्ष विधि के अन्तगत रखा जाता है, परन्तु आधुनिक विकासशील युग म उपन्यास साहित्य के विकसित स्वरूप मे इन दोनो के भी अनेक सूक्ष्म भेद प्रभेद किये गये हैं। यो मुख्यत दो शलिया विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष विधि तथा अभिनयात्मक या परोक्ष विधि हैं जिनके अनेक भेद प्रभेद उपन्यास मे अपना अलग अस्तित्व रखते हैं।

(क) विश्लेषणात्मक या प्रत्यक्ष विधि इसमे उपन्यासकार अपने उपन्यास के पात्रो का एक वैज्ञानिक या आलोचक की भाति सूक्ष्म भावो विचारो तथा मनोवृत्तियो का तटस्थ भाव स विश्लेषण करते हुए कभी कभी उस विशेष पात्र के सम्बन्ध म अपना अभिमत भी प्रस्तुत कर देता है। यही कारण है कि पाठक पात्रो स हार्दिक सामजस्य नही स्थापित कर पाते। इस पद्धति की एक अन्य मुख्य कमी यह भी है कि इसमे प्रमुख पात्र को छोड कर अन्य पात्रो के विकास की उपेक्षा कर दी जाती है। अन्य पात्रो के सम्यक विश्लेषण एव उनके चारित्रिक विकास को दिखाने के लिए यह आवश्यक है कि उन्हे ऐसी परिस्थितियो तथा सघर्षों के मध्य चित्रित किया जाए जिससे वे आर्थिक, सामाजिक बौद्धिक, सास्कृतिक आध्यात्मिक आदि स्तर पर क्रियाशील दिखने के साथ ही चरित्र के जटिलतम पक्षो का भी उदघाटन कर। चरित्र चित्रण की यह प्रणाली विशेष रूप म प्रचलित मानी जाती है और अधिकाश उपन्यास के पात्रो के चरित्र चित्रण म लेखक विश्लेषणात्मक शली का ही अनुसरण करता है।

(ख) अभिनयात्मक या परोक्ष विधि उपन्यास के पात्रो के चरित्र चित्रण की दूसरी विधि अभिनयात्मक कहलाती है। नाटक की चरित्र चित्रण की प्रणाली ही उपन्यास म आश्रित होने पर अभिनयात्मक विधि कहलाती है। अत प्रथम विधि की अपेक्षा यह अधिक कलात्मक एव नाटकीयता स पूर्ण होती है। इसम उपन्यासकार स्वय कुछ न कह कर किसी पात्र के चरित्र का चित्रण या तो दूसरे पात्रो के माध्यम स करवाता है अथवा पात्र स्वय अपने सम्बन्ध म वक्तव्य देता है। यह विधि अधिकाशत आत्मकथात्मक, पत्रात्मक अथवा डायरी शैली म लिखे उपन्यासो मे प्रयुक्त होती है। इस पद्धति के द्वारा उपन्यासकार पात्र की सूक्ष्म स सूक्ष्म

वृत्तियों का उद्घाटन स्वयं अपराध में रहकर भी कथा में पूर्ण सफल होता है।

(ग) स्वगत कथात्मक विधि — अभिनयात्मक विधि का ही एक अन्य स्वरूप स्वगत कथन की विधि है। मनोवैज्ञानिक प्रभाव से प्रेरित उपन्यासों में इस विधि का प्रयोग किया गया है। चरित्र चित्रण की दृष्टि से इस विधि का प्रमुख स्थान है। नाटकों में साधारणतः इसका प्रयोग पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए किया जाता था जिन्हें अन्य पात्रों से गुप्त रखा जाता था। नाटकों में स्वगत कथन का स्वरूप अविकसित ही रहा परन्तु उपन्यास के क्षेत्र में इसका समुचित विकास हुआ और यहाँ तक कि नाटक और उपन्यास में स्वगत कथन के अभिप्राय में भी भिन्नता आ गयी है।

(घ) आत्मकथात्मक विधि — यह विधि स्वगत कथन से कुछ भिन्न है। इसमें एक पात्र को प्रमुखता तो दी जाती है परन्तु उपन्यासकार उस पात्र के द्वारा स्वयं की मानसिक प्रतिक्रियाओं और अनुभवों को व्यक्त करता है। स्वगत कथन एक निश्चित रूप है जब कि आत्मकथात्मक शैली किसी उपन्यास के आधार को वास्तविकता प्रदान करता है। चरित्र चित्रण में आत्मकथात्मक का उद्देश्य आत्मान्वेषण, आत्मसमर्पण या अतीत की पुनरानुभूति की अभिव्यक्ति करना है। इसमें उपन्यासकार अपनी आप बीती को किसी विशिष्ट पात्र द्वारा कल्पना का समावेश करता हुआ अभिव्यक्त करता है।

(ङ) संवादात्मक विधि — पात्र के चरित्र चित्रण में कथोपकथन का भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। चरित्र चित्रण में सजीवता लाने के लिए संवाद अथवा कथोपकथन का आश्रय लिया जाता है। दो पात्रों के वार्तालाप से सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाएं आचार विचार, संकल्प विकल्प तर्क क्षमता भावनाएँ संवेदनाएं सहानुभूतियाँ आदि चरित्र के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन कथोपकथन विधि के द्वारा ही सम्भव हो पाता है। इस प्रकार कथोपकथन के द्वारा मानव के अन्तर्मन की अनेक मनोवैज्ञानिक गुत्थियों का रूप प्रस्तुत हो उठता है जो जाने अनजाने में मुख से निकल जाता है।

(च) विवरणात्मक विधि — पात्रों के चरित्र चित्रण की एक अन्य विधि विवरणात्मक है जिसमें उपन्यासकार पात्र के चरित्र चित्रण में उसके स्वभाव एवं विशेषताओं से सम्बन्धित विवरणों को प्रस्तुत करता है। इसकी मुख्य विशिष्टता चरित्र चित्रण की पूर्णता है जिससे पात्र के व्यक्तित्व के सभी पक्ष उभर कर स्पष्ट हो उठते हैं। व्यावहारिक दृष्टि से इसमें कलात्मकता का अभाव होता है तथा उपन्यास में नीरसता सी आ जाती है।

(छ) संकेतात्मक विधि — विवरणात्मक प्रणाली से आधुनिक संकेतात्मक प्रणाली सर्वथा भिन्न है। इसमें किसी पात्र के चरित्र का सीधा सादा वर्णन न करके उसका मात्र संकेत कर दिया जाता है। नायक के चरित्र के किसी पक्ष विशेष की

अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम सकेतात्मक भी है। इसमे लक्षक प्रतीक, वातावरण उपमान घटनाओ, पत्रो बक आदि के द्वारा पात्रो की विधि मे चारित्रिक विशिष्टताओ की ओर सकेत करता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस विधि का विकास उपन्यास के आधुनिक रूपो के साथ हुआ है।

(ज) मनोवैज्ञानिक विधि आधुनिक उपन्यासो मे मनोविज्ञान के तत्वो का समावेश एक महत्वपूर्ण घटना है। इसने आधुनिक उपन्यासो के विकास एव प्रगति मे अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आधुनिक उपन्यास के प्राय सभी रूपो मे चरित्र चित्रण के लिए मनोवैज्ञानिक दृष्टि को स्वीकार किया गया है जो इसकी नवीनता की ओर सकेत करता है। इसके साथ ही मनोविज्ञान चित्रण की सूक्ष्मता का भी परिचायक है। चरित्र चित्रण की अन्य विधियो की तुलना मे इस नवीन विधि को ही उपन्यास मे अधिक महत्वपूर्ण स्थान मिला है।

द्विवेदी जी के उपन्यासो मे विभिन्न कोटियो के पात्रो के चरित्र चित्रण के लिए जिन विधियो का प्रयोग किया गया है उनमे से प्रमुख परिचयात्मक विश्लेषणात्मक, सकेतात्मक, व्याख्यात्मक तथा मनोवैज्ञानिक हैं। उदाहरण के लिए विमल तथा कमल के चरित्र विश्लेषणात्मक, मनोवैज्ञानिक एव सकेतात्मक विधियो मे चित्रित हुए हैं। गौतम, शुद्धोदन प्रसनजित तथा यशोधरा के चरित्रो मे परिचयात्मक तथा सकेतात्मक विधियो का भी आश्रय लिया गया है। मालती वष्णवी यमुना तथा यशोधरा आदि के चरित्र भी मुख्यत मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रधान ही हैं तथा परिचयात्मक एव व्याख्यात्मक विधियो का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। नीचे द्विवेदी जी के पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ के सन्दर्भ मे उनका विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

विमल 'दिगम्बर' के प्रमुख पात्र विमल के चरित्र के अकन में मुख्यत विश्लेषणात्मक मनोवैज्ञानिक तथा सकेतात्मक शैलियो का आश्रय लिया गया है। प्रस्तुत तथ्य का दिगम्बर' मे स्थान स्थान पर अवलोकन किया जा सकता है। 'दिगम्बर' का नायक काव्य शास्त्र मे वर्णित नायकत्व के विशिष्ट गुणो से आभूषित न होते हुए इसी ससार का चलता फिरता मानव है जो इस ससार मे रहते हुए भी निर्लिप्त रहता है परन्तु निर्लिप्त रहते हुए भी सघर्षो से लडता है। बचपन की अबोधता मे भी उसके अन्दर एक लालसा पनप रही थी जो उसके भविष्य के जीवन की ओर सकेत करती है 'बचपन मे दर्जा मदरसे मे जमीन पर उगलियो से वह वर्णमाला लिखने का अभ्यास करता था। इसके बाद कलम से कागज पर खुशखत लिखने लगा। सुन्दर सुडौल अक्षर लिखने का उसे शौक था। यह उसका कलानुराग था, शिल्प प्रेम था, सौन्दर्य सस्कार था।' विमल को दुखी मनुष्यों से स्नेह है। वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभा से मानव की प्राकृतिक सुषमा मे स्वय को आत्मसात कर लेता है। प्रकृति मे उसे अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है, उससे वह तादात्म्य स्थापित कर लेता था परन्तु इस ससार मे वह नही रम पाता। सभी ओर विद्रूपता का

मतन होता रहता था। विमल के चरित्र का विश्लेषण लेखक ने अनेक रूपों में किया है गवई गांव का गोबर गणेश विमल नगर में आकर प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होता जा रहा था। वह भी संसार में संतरण करना चाहता था लेकिन मार्ग नहीं मिल रहा था। संसार यदि नदी, तालाब और समुद्र का संगम आदि होता तो उसका सजल कोमल हृदय ऊब डूब कर भी उसमें संतरण कर लेता। किन्तु यह तो चट्टान की तरह कठोर पहाड़ की तरह दुर्गम दुर्ग की तरह दुर्भेद्य था। अपने सुकुमार पगों से कैसे दुर्ग पर अभियान करे। जीवन-यात्रा उसे एक जटिल समस्या जान पड़ती थी।' लेखक ने नायक के चरित्र का विश्लेषण आधुनिक समाज की दृष्टि में रख कर किया है एवं नायक के माध्यम से अपने वास्तविक समाज का चित्र अंकन का प्रयास किया है। ऊंची हवेलियां के पीछे भी कृपण मन छिपे होते हैं जो समाज की चपलता, चालाकी एवं चापलूसी में शीघ्र ही पिघल उठते हैं। समाज में मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वार्थों के दांव-पेंच एवं चतुराई की मोहरें चलती हैं। संसार में आज गतिशील केवल सिक्का है। मानव स्वयं टकसाली होता जा रहा है। सिक्के का मान दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रमुख पात्र विमल एक भला भोला मानव है जो संसार में अपने वर्ग का सांगोपांग प्रतिनिधित्व करता हुआ संसार में निस्सहाय बेसहारा अयाचित से अनभिज्ञ अपनी अबोधता और निरीहता लिए हुए प्रवेश करता है। समाज से संघर्ष करता हुआ भी उससे सामंजस्य नहीं कर पाता। इस संघर्षात्मक स्थिति में भी मानव स्वयं की इच्छाओं का प्रत्यक्षतः कितना ही दमन क्यों न करे वह निर्लिप्त क्यों न रहे अप्रत्यक्ष रूप में उस पर इस संसार की चमक-दमक रूप रंग, माया का प्रभाव अवश्य ही पड़ता है वह उस ओर आकर्षित होता है। लेखक ने इस तथ्य का विश्लेषण विमल के माध्यम से ही कराया है भाग्य का परिहास—बाल विहग को आश्रय मिला भी तो ठूठ पर। घर के दरबों में कपोत की तरह निष्प्राण गृह में प्राणवायु की तरह विमल उस प्रासाद में रहता था। वहां का विषण्ण वातावरण अपनी नीरसता से उसकी सजीवता का शोषण करने लगा। एक जगह जम जाने पर विमल को रूप रंग माया का संसार गृहस्थी की तरह ही शोभा शृंगार के लिए उकसाने लगा। खादी की लुंगी पहनने वाला वह बालयोगी अब तरुण रसभोगी हो चला। खादी तो वह अब भी पहनता था क्योंकि नगर के चाकचिक्य में आत्मविस्मृत नहीं हो गया था। लेकिन खादी जिस प्रकृति का मानवीय परिधान था उस प्रकृति की इन्द्रधनुषी शोभा से अछूती नहीं रह सकी। विमल की सादगी में रंगीनी की झलक आ गयी। आधुनिक युग के समाज में बिना किसी घर द्वार के आधार के यह समाज एवं जीवन एक बुद्धिजीवी मानव के लिए बीहड़ जंगल बन जाता है जहां दया माया, ममता, स्नेह एवं मनुष्यता का अभाव रहता है। परन्तु विमल इन अभावों को भी अपने पर हावी नहीं होने देता था वह इन सबसे ऊपर मनस्वी व्यक्ति था। लेखक ने विमल के

चरित्र को अंकित करने के लिए विश्लेषणात्मक शैली का यत्र-तत्र प्रयोग किया है। विभिन्न संकेतों एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों का आश्रय लेकर उनके जीवन की अनेक झांकियों को चित्रित कर वास्तविक समाज में उसकी स्थिति का परिचय दिया है। इसके लिए लेखक ने सकेतात्मक एवं मनोवैज्ञानिक शैलियों का आश्रय लिया है। विमल में आकाश वृत्ति के साथ ही संग्रह करने की प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव था जो उसकी दानप्रियता एवं संसार से निर्लिप्तता की ओर संकेत करती है। इसी कारण वह आधुनिक युग में समाज के व्यावहारिक रूप रंग से सर्वथा विलग है। 'विमल भी क्या जनता जैसा ही है। जीवन की समस्याओं और आवश्यकताओं में वह उसी की सतह पर है किन्तु उसमें जनता की दुनियादारी नहीं है। इसीलिए उसके जीवन में निर्धनता है। इस युग में जबकि सभी वर्गों सभी वर्णों में वाणिज्य वृत्ति और धोखा धड़ी आ गयी है विमल अब भी आकाशवृत्ति से ही जीने का प्रयास कर रहा है। भगवती वीणापाणि के आशीर्वाद से जो मिल जाता है उसी में सन्तोष करता है, उससे अधिक के लिए राग द्वेष और प्रतिस्पर्द्धा नहीं करता। विमल कैसे जी रहा है यह वहीं जानता है। उसकी वेदना तो मूक पशुओं की सी है। किससे वह क्या कहे—काहू के मन की काहू न जाने, लोगन के मन हासी।'[1] लेखक ने विमल का वास्तविक चित्र इस प्रकार चित्रित किया है 'विमल भावुक ही नहीं स्वयं भाव था कवि ही नहीं, स्वयं काव्य था कलाकार ही नहीं स्वयं कला था साहित्यकार ही नहीं स्वयं साहित्य था। जैसे फूल अपने सौन्दर्य का स्रष्टा भी है और स्वयं ही सृष्टि भी है। अन्य साहित्यकारों का साहित्य भी एक फैशन था जिसमें स्पन्दन कम्पन, धड़कन और जीवन का आभास न था। जो स्वयं उपहास के पात्र थे वही उसका उपहास करते थे। लेकिन विमल में भी दुर्बलताएँ थीं क्योंकि वह भी इसी समाज का एक जीता जागता सजीव प्राणी था। विमल में भी देह की दुर्बलता है। लेकिन उसकी दुर्बलता किसी कृत्रिम आवरण से ढकी छिपी नहीं है अपने बाहर भीतर अच्छा-बुरा वह जैसा भी है सबके सामने खुला हुआ है उघरा हुआ है। फिर भी नंगा नहीं दिगम्बर है। भीतर की जो चेतना बाहर भी दिशाओं की तरह सूक्ष्म होकर देह का दिगंचल अथवा द्रौपदी का अनन्त दुकूल बन गयी है सीमा को असीमता और दृश्य को अदृश्य का आभास दे रही है उसी की साधना स्थूल की मर्यादा है जड़ता की सजीवता है देह की दिगम्बरता है। विमल जीवन के इस स्वरूप को पहिचानता है। उसी में तद्रूप हो जाना चाहता है। अपने पशु शरीर में वह प्राकृत प्राणी है अपनी चेतना में सुसंस्कृत आत्मा। उसकी दिगम्बरता में यथार्थ की वास्तविकता और आदर्श की आत्मव्यंजना है। एक साधन है, दूसरा साध्य। विमल साध्य के प्रति सजग है।' विमल के जीवन के विभिन्न रूपों के चित्रण में लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का

---

१ दिगम्बर श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १०६ १०७।

भी आश्रय लिया है। विमल में देह की दुर्वसना (भूख प्यास) है, मन की मलिनता नहीं, इसी लिए वह विमल है। अपने नाम के अनुरूप ही वह विमलता देखना चाहता है। किन्तु उसे कहीं भी जीवन की शुद्धता नहीं मिलती। लोग पशुओं की तरह खाते हैं, उन्हीं की तरह मल मूत्र का विसर्जन करते हैं। अपनी दुष्प्रवृत्तियों से वातावरण को दूषित करते हैं। इस प्रकार 'दिगम्बर' का प्रमुख पात्र विमल वास्तव में इस युग एवं समाज के लिए 'दिगम्बर' सदृश है जो संसार से निर्लिप्त एवं शान्त हृदय है। संसार में विभिन्न विकार जिसे अपनी ओर आकर्षित करते हुए भी अपने में लिप्त नहीं रख पाते। इस प्रकार लेखक ने उपन्यास में प्रमुख पात्र के रूप में विमल के चरित्र चित्रण द्वारा अपरोक्ष रूप में इसी समाज के एक भावुक कल्पनाशील एवं निम्न मध्यम वर्ग के व्यक्ति का यथार्थ एवं सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

वष्णवी — 'दिगम्बर' के अन्य चरित्रों में वष्णवी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह बाल विधवा तपस्विनी के रूप में सांसारिक कष्टों को सहती एवं उनसे अपनी आत्मिक शक्ति के आधार पर संघर्ष करती हुई जीवन व्यतीत करती है। लेखक ने उसके चरित्र को व्यक्त करने के लिए प्रमुखतः परिचयात्मक शैली का ही आश्रय लिया है पर कहीं-कहीं पर अन्य शैलियाँ भी वष्णवी के चरित्र को सजीव बना देती हैं अतः यत्र-तत्र उनका रूप भी दृष्टिगोचर होता है। परिचयात्मक शैली के अन्तर्गत हम यह देख सकते हैं — दैव दुर्विपाक से वह विधवा थी समाज में अभिशप्ता थी किन्तु दैवी और सामाजिक सहयोग न मिलने पर भी वह कंगाल नहीं थी। उसकी चेतना ने उसे आत्मिक ऐश्वर्य (अन्तर्विकास) दे दिया था। संस्कृति और कला से उसका जीवन सगुण काव्य हो गया था। काशी वह तीर्थ यात्रा के लिए नहीं आयी थी। यहाँ तो उसके पिता जी धनोपार्जन के लिए आये थे, उन्हीं के पीछे पीछे जाह्नवी की तरह माता भी इस नीरजा को अपने वक्षस्थल से लगाये हुए चली आयी। पिता तो विरक्त संन्यासी हो गये माता गोलोकवासिनी हो गयी। दोनों की सजीव स्मृति इस विप्रकन्या (आत्मप्रभा) में शेष रह गयी। वष्णवी के चरित्र के उज्ज्वल पक्षों को प्रकाशित करने के लिए लेखक ने विश्लेषणात्मक शैली का आश्रय दिया है। वष्णवी अबला, कोमल और सुकुमार थी परन्तु कमजोर न होकर सबल थी। उसमें सौन्दर्य और कला का सामंजस्य था। नारी अपनी कोमलतम भावनाओं में ही केन्द्रित रहती है। दूसरों का अभिशप्त देखकर उसकी करुण पुकार पर वह दौड़ पड़ती है। समाज की प्रताड़ना की उसे चिन्ता नहीं रहती। अपने साथ वह अन्य दुखी जनों को भी अपने में ही समेट रखना चाहती है। स्वयं उसके नैराश्य पूर्ण एवं दुखमय समय में भी यदि कोई अपनी मनोवृत्तियों में बाल रूप अबोधता लिए उसके समक्ष प्रस्तुत हो जाय तो वह उसे भी ललक कर अपना लेती है। वष्णवी भी इन मनोवैज्ञानिक सत्यों से अपने को अलग नहीं रखती है। उसके चरित्र में नारी की समस्त कोमल एवं वात्सल्ययुक्त भावनाओं का स्पन्दन और सम्मिश्रण हो गया है।

मालती अन्य सहायक स्त्री पात्रो म मालती का नाम भी उल्लिखित है। मालती एक गरीब घर की अभिमानिनी लडकी है। उसके माता पिता लडके के सिक्को की चमक-दमक की ओर आकर्षित हो कर उसकी शादी कर देते हैं। लेकिन उनमे सामजस्य का अभाव ही रहता है। अपने घर की अभावग्रस्तता के कारण उस बेचारी का बचपन न खिल सका था और ससुराल म भी वह सुख का आनन्द न प्राप्त कर सकी। विवाह के उपरान्त भी उसके शरीर म कोई परिवर्तन नहीं हुआ। शरीर तो पनप नही सका बचपन का मुकुलित मन भी मुरझाया हुआ रहता। अब वह न तो कन्या ही थी, न परिणीता वधू ही थी। उसकी दुबली पतली श्रीहीन काया नियति की एक परोडी मात्र थी। उसके सीमन्त मे सुहाग का सिन्दूर किसी कच्ची सडक पर सुर्खी के निशान की तरह थी। महाकाल न मानो अब उनके जीवन को भी अपने लाल फीते से नापना शुरू कर दिया था।' इस प्रकार लेखक ने एक दुखमारी स्त्री का चित्र खींचा है जो अपनी निरीहता के कारण न तो खुल कर सघर्ष ही कर सकती है और न उनमे लिप्त ही हो पाती है। लेखक ने मालती के चरित्र का विश्लेषण अत्यन्त ही सूक्ष्मता से चित्रित किया है। मानव के कई रूप होते हैं। एक ओर जहा वह समाज म अपने बाह्य आवरण म सबलता एव निडरता दर्शित करता है वही दूसरी ओर वह स्वय अपने अतर्द्वन्द्वो म फस कर उचित और अनुचित का बोध नही कर पाता है। परन्तु जब उसे बोध होता है तब या तो वह उसका बहिष्कार कर देता है अथवा स्वय को उस स्वीकार करने हेतु तैयार कर लेता है और वह चल पडता है उसी राह पर वह उचित हो अथवा अनुचित। नारी भी इन परिस्थितियो से विलग नही है। वह अपनी सबलता मे समाज से सघर्ष करते हुए जीवनयापन करती है, तो अपनी अबोधता मे वह समाज के बन्धनो को भी स्वीकार करती है। इस पर भी वह अपने आन्तरिक द्वन्द्वो म फसती है और दृष्टि खुलने ही वह उसका बहिष्कार कर देती है। लेखक ने इस मनोवैज्ञानिक सूत्र को भी मालती के माध्यम से चित्रित किया है ' किसी दिन मालती की मा के अनुरोध से जब विमल ने उसके यहा भोजन किया तब वहा का घरेलू भोजन उसे रुच गया। घर की वृद्धा के शय्याग्रस्त हो जाने पर वह फिर भोजन के लिए वही जाने लगा। मालती आयी थी। विमल को देखकर उससे कहा—कहा थे इतने दिन। मैं तुम्हे पूछ रही थी। विमल को विश्वास नही हुआ कि यह सदा की रूखी मालती उसे पूछ सकती है। उसने आश्चर्य और हर्ष से विस्मित होकर कहा—क्या सचमुच मुझे पूछ रही थी? हा इनसे पूछो—मालती ने मुस्कराते हुए मा की ओर इशारा कर दिया। सदा अपने म गुमसुम रहने वाली मालती कैसे हो गई। उसकी मुस्कराहट म कैशोर्य का सारल्य था किन्तु मुख कुछ विवर्ण था मानो सारल्य और तारुण्य का सघर्ष अवसाद बन कर छा गया था। जब कभी आते जाते अचानक उससे भेंट हो जाती तब मालती मुह से कुछ नहीं कहती हाथ हिला कर नहीं-नहीं कहती। यह कैसी पहेली है। अभी

उस दिन तो कहती थी, पूछ रही थी, अब यह कभी अवहेलना है वर्जना है। विमल तो उससे कुछ कहता नहीं था, मांगता नहीं था, फिर इस निराशाजनक उत्तर की क्या आवश्यकता थी।' और जब मालती अपनी ससुराल से हमेशा के लिए पुन अपने पिता के यहाँ आई तो विमल सवेदना से वशीभूत होकर उससे विवाह के लिए तत्पर हो गया, लेकिन उसके पास उस खरीदने एव उसके माता पिता को तृप्त करने के लिए धन का अभाव था सवेदना से विगलित विमल के मन म एक बात आयी क्यो न वह मालती से विवाह कर ले। शायद वह उसे वैभव का सुख न दे सके, किन्तु जिस सदक लिए वह उसके लिए भी अपनी सुविधाओं का उत्सग तो कर ही सकता है प्रेम की तन्मयता तो दे ही सकता है। मालती म कोई कवि कल्पित सौन्दय नही था। शिक्षा का भी अभाव था। किन्तु विमल उसके बाल्य चापल्य पर रीझा हुआ था। सयानी हो जाने पर भी उसम निश्छलता की झलक बनी हुई थी। बच्चा जैसा मन और घर गृहस्थी म श्रम से तपा हुआ जीवन। अपनी साधना के लिए विमल को ऐसी ही सगिनी चाहिए। प्रसगवश एक दिन उसने मालती की मा से कहा—*घोडे से अन्न वस्त्र के लिए इसे किसी की पराधीनता की क्या आवश्यकता है।* मैं इसे अपनी गृहस्वामिनी के रूप म शिरोधाय कर सकता हूँ। पिता अपने छोटे पजे म लगा हुआ था। कई दिनो बाद विमल ने जब अपनी बात दोहराई तब मा ने कहा—वे तो राजी हैं लेकिन लेकिन मालती पसन्द नही करती। उपयुक्त उदाहरण म लेखक ने मालती की वास्तविक परिस्थितियो पर प्रकाश डाल कर उसके जीवन एव कतिपय चारित्रिक विशेषताओ की ओर सकेत मात्र किया है। मालती निरीह एव अबोध स्त्री है जिसे माता पिता अपने बचाव के लिए ढाल बना कर प्रयोग करते हैं और वह सिफ सहती है समाज के प्रहारो को तथा मुह से सिसक भी नही निकालती। लेखक ने मालती के माध्यम से समाज का यथाथ चित्र प्रस्तुत करने का भरसक प्रयत्न किया है।

इन्दुमोहन इस उपन्यास के सहायक पात्र इन्दुमोहन के नाम के सदृश ही लेखक ने उसका व्यक्तित्व भी वैसा ही चित्रित किया है। विमल के भावो की वह प्रतिमूर्ति था। लेखक ने इन्दुमोहन के परिचय का विश्लेषण इस प्रकार से दिया है जिससे उसके आतरिक गुणो का भी बोध हो जाता है—जैसा नाम वैसा ही आकषण। सुन्दर प्रसन्न मुख, हृदय ही मानो सुधाकर हो गया था। कोमल उज्ज्वल स्निग्ध सजल, उस व्यक्तित्व को देखकर ही विमल के प्राण जुडे जाते थे। उसके मौन सपक से ही शांति मिल जाती थी। विमल अब तक जिन कलाकारो से परिचित हुआ था वे सब कला के रगरेज थ। किन्तु इन्दुमोहन था प्रकृति का प्रेमल चित्रकार। जिस शिल्पी ने प्रकृति का निर्माण किया था उसी का दिव्य प्रतिनिधि था इन्दुमोहन। इन्दुमोहन एक धनाढय चित्रकार था जिसने अभावो का कभी दशन तक न किया था। उसी के चित्रो मे कवि विमल को अपने जीवन की

झांकियां मिलती। उसमे प्रकृति की नसगिक सुदरता के आभास के अतिरिक्त इन दोना के मध्य कही पर एक बडा अन्तर था जो मिलने पर भी इन दोनो को दूर रखता। यह मनोवैज्ञानिक अन्तर था, वह केवल अपने ही आनन्द म आत्मविभोर रहता, अपनी ही वेदना म लिप्त परन्तु दूसरा के प्रति वह सवेदनशील नही हो पाता था। विमल इस अन्तर को कुछ समय पश्चात् स्पष्ट रूप मे समझ गया था। 'विमल इन्दुमोहन से प्राय मिलता रहता था। सच तो यह कि कला के क्षेत्र म वही उसका आराध्य था। लेकिन दोना की सामाजिक परिस्थितियो म बडा अन्तर था, इसीलिए दोना मे व्यावहारिक अन्तर भी था। अब तक विमल ने कभी किसी के सामन आत्महीनता का अनुभव नही किया था, अब वह आत्महीनता का अनुभव करने लगा। एक इन्दु था तो दूसरा ओस बिन्दु। हृदय से समीप होकर भी दृश्य जगत मे दोनो म दूरी बनी रही। विमल पृथ्वी पर रहकर ही पृथ्वी से निर्लिप्त था, इन्दुमोहन निर्लिप्त होते हुए भी पृथ्वी पर नही था। उसम अग जग के प्रति सजग तटस्थता थी अन्यमनस्कता थी। कभी कभी जब वह विमल से हस बोल लेता तो उसकी अधेरी दुनिया मे कुछ देर के लिए चादनी छिटक जाती। इसके बाद फिर वही अन्धकार वही प्रतिदिन का स्वार्थलिप्त तामसिक ससार।'

यमुना इन्दुमोहन के विपरीत लेखक ने यमुना का चरित्र अत्यन्त ही करुणा से पूर्ण दिखलाया है। यमुना अपनी निरीहता मे भी दूसरो के प्रति सवेदनशील थी। यद्यपि वह भी इस विद्रूप ससार की कटुता से आक्रान्त थी परन्तु उसकी नसगिक आभा, करुणापूर्ण हृदय एव सवेदनशीलता लुप्त न हुई थी। लेखक ने उसका परिचयात्मक सकेत अत्यन्त ही सूक्ष्म एव भाव प्रवणता म किया है 'कुहू कुहू अरे, अन्धकार म यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वेदना की सगीतमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक से विधाता के अभिशाप (जीवन के अन्धकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कठ म सीता, राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है। इस प्रकार लेखक ने स्पष्ट परिचय न देकर सकेतात्मक विश्लेषण का आश्रय लिया है जो उस वेदना की मूर्ति की स्पष्ट भावात्मक छवि अकित करती है। लेखक ने इन्दुमोहन और यमुना के मध्य अन्तर का अत्यन्त हृदयस्पर्शी रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया है कि एक वस्तु के दो पक्ष दोनो म अलग अलग थे। एक की कला कृतियो मे जो सौन्दर्य और उल्लास था वही विषादात्मक रूप मे यमुना के सगीत म गुजरित होता रहता था। इस प्रकार लेखक ने मनोवैज्ञानिक तथ्यो के द्वारा विमल और इन्दुमोहन के चरित्रो को प्रश्रय देकर यमुना के चरित्र का परिचय विश्लेषणात्मक शैली मे दिया है जिसका आविर्भाव मात्र एक प्रासगिक कथा के अन्तर्गत इन्दुमोहन के चरित्र का विश्लेषित करने के लिए हुआ है।

कमल 'दिगम्बर के प्रमुख पात्र विमल के ही प्रतिरूप म चित्र और चितन

का प्रमुख पात्र कमल भी इस ससार की विद्रूपता से त्रस्त है। वह कल्पना जीवी कलाकार था परन्तु यथार्थता की सासारिक पृष्ठभूमि मे बौद्धिक होते हुए भी व्यावहारिकता म वह मन्द बुद्धि था। आत्मलीनता उसके चरित्र का स्वाभाविक गुण है। उसे अपना अतीत जीवन याद आता है और स्मरण आते हैं इस नश्वर जीवन के वे विशिष्ट क्षण 'वह भी किसी परिवार म उत्पन्न हुआ था। उसे याद आती है माता पिता भाई बहिन की। एक एक कर सभी तो चले गये, रह गया वह अकेला। सूनापन ही उसका जीवन हो गया।' ससार की विभिन्न परिस्थितियो म वह अपने भावो का स्पदन नही देख पाता है। उसे मानव स्वार्थी और सवेदन शून्य दृष्टिगोचर होता है। इस ससार म मानवता एव प्राणता का लोप हो गया है वह केवल बाजार बन गया है और जीवन केवल मोल तोल रह गया है। ससार की सासारिकता और समाज के कटु आघात उसे क्षण विक्षिप्त कर देते हैं कमल कलाकार है। शैशव म परिवार से जो रागात्मक सस्कार मिला उसी को सजोकर वह पृथ्वी पर स्वग की सष्टि करता आ रहा था। अचानक एक दिन उसे ऐसा जान पडा कि उसका हृदय वस ही रिक्त हो गया है जसे किसी चित्रकार का रग जगत। इस प्रकार लेखक न सवेदनात्मक शैली म कमल के चरित्र को चित्रित किया है। वह कल्पना जगत म रहने वाला भावुक व्यक्ति है एव अनासक्ति उसके चरित्र का सबसे बडा गुण है। अपने इस एकाकीपन मे कुमुदिनी का परिचय उसके मन म कोमल भावनाओ की सष्टि करता है परन्तु विपत्ति ग्रस्तता कुमुदिनी और उसकी कल्पना की कमलिनी दोनो ही उसके सूनेपन म उसे छोड देती हैं। दोनो ही अपने अभिशप्त जीवन को स्वीकार कर समाज की तराजू म स्वय को तौल कर उसे निस्सहाय छोड देती हैं और वह जिस सूनेपन स बाहर निकलता है पुन उसी म लौट जाता है। शून्य ही उसका बसेरा है। इस प्रकार लेखक ने कमल के माध्यम से आधुनिक युग के एक कल्पनाशील एव भावुक व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया है जो समाज मे अपना कोई स्थान न बना पाने के कारण तथा अपनी आत्मा का प्रकाश ससार म न देख कर वह स्वय ही आत्मलीन हो जाता है अपने ही शून्य मे खो जाता है।

लेखक ने आधुनिक समाज का वास्तविक विश्लेषण कमल की मन स्थिति के आधार पर किया है। इसम कमल की विरक्तिजनक भावनाए हैं जो लेखक के दार्शनिक विचारो की अभिव्यक्ति करते हैं। आधुनिक धम भावना कमल म एक श्रद्धा जाग्रत करती है। उसे अपनी हिन्दू परम्परा के कलात्मक और सास्कृतिक पर्वो का स्मरण होता है जो किसी न किसी धार्मिक भावना स ओतप्रोत होते हैं। कमल को अपनी अग्रजा का स्मरण होता है जिसम दीनता नही कुरूपता नही अपवित्रता नहीं, उसका जीवन ओजस्विता रुचिरता, शुद्धता का सगम था। अपनी सुसस्कृत रुचि स वह जीवन के पग पग को प्रयाग बना कर चलती थी घर को भी मन्दिर बना देती थी। उपन्यास मे कमल की डायरी के अन्तगत मृत्यु स सम्बन्धित चिन्तन को

प्रत्यक्ष किया गया है। इसमें कमल की अग्रजा की बीमारी, मृत्यु तथा कमल के द्वारा हुई गलती के प्रति पश्चाताप है। लेखक ने आधुनिक समाज का वास्तविक चित्रण किया है। कमल की विभिन्न चारित्रिक विशेषताओं को प्रकाश में लाया गया है तथा इसमें सांसारिक विडम्बनाओं का अंकन है। संसार की निर्ममता एवं निष्ठुरता में भी कमल अपने को चेतन रखने की चेष्टा करता है। वह दूसरों पर अविश्वास नहीं कर सकता। कमल जीवन की शुचिता, रुचिरता और सनातन संस्कार की ऋजुता के आधार पर ही लोक के पथरीले मार्ग को पार करना चाहता है परन्तु जनता की जड़ता और यांत्रिक निर्जीवता से लोक पथ इतना दुर्गम हो गया कि उसे पग पग पर गत्यावरोध का सामना करना पड़ता है। भक्ति और युग में व्यक्ति विशेष का संकेत करके लेखक ने गांधीवादी जीवन दर्शन की व्यावहारिक व्याख्या की है। लेखक ने कमल के अभावों एवं व्यक्तिगत रिक्तता का समग्र रूप से उस विश्व का अभाव तथा शून्यता माना है।

कुमुदिनी कुमुदिनी की चारित्रिक विशेषताओं के अंकन में लेखक ने कमल के माध्यम से उसका परिचयात्मक संकेत किया है जो उसकी सान्गी सुषमा से प्रभावित था—किसी सीधी सादी कविता सी उसकी सरलता देख कर कवि हृदय कमल उससे आत्मीयता का अनुभव करने लगा। वह उसे जानना और अपनाना चाहने लगा। कमल का यह कमा स्वभाव है कि जो कुछ प्रिय देखता है उसे अपना लेना चाहता है अपनी रिक्तता को भर लेना चाहता है। स्वाती की एक बूंद भी उसे मिल जाती तो उसका जीवन इतना शून्य और लालायित नहीं होता। जब वह बोलती तब मानो पृथ्वी ही उसके कंठ में प्रस्फुटित हो जाती। कमल ने अनुभव किया यदि ऐसी ही कन्या गृहिणी के रूप में मिल जाती तो उसका जीवन कितना धन्य हो जाता। लेकिन विधि की विडम्बना—जहाँ कीचड़ है वहीं कमल पुष्प खिलता है कुछ ऐसी ही स्थिति कुमुदिनी की भी थी। वह अपनी विधवा मौसी के साथ देवोत्तर संपत्ति (मकान) में किराये पर निवास करती थी। उसकी विधवा मौसी में शुचिता रुचिरता के अभाव के साथ ही कुत्सित और घिनौनापन सा था। वह जहाँ रहती थी उस देवस्थान का रखवारा स्वयं देवता बन बैठा था जो केवल वाह्याडम्बर में ही शुद्ध तथा सात्विक था स्वभाव में सात्विक और व्यवहार में शालीनता का उसमें सर्वथा अभाव था। इसी प्रकार कमल ने कुमुदिनी के मध्य एक अन्य व्यक्ति के भी दर्शन किए थे जो उसकी मौसी का देवर मास्टर था और उसी के साथ रहता था। वह मन्दिर के रखवारे के समान ही कुटिल और काइयाँ था। इन तीन विभिन्न प्राणियों के मध्य भी वह अपनी सरलता, अनाघ्रता में ग्राम्य शरद चन्द्रिका सी खिली रहती थी। परन्तु वह बेचारी भी इस समाज के दाव पर लगा दी जाती है। समाज की विभीषिका से वह भी त्रस्त हो उठती है परन्तु उसकी मूक वेदना है जो किसी से कही नहीं जा सकती। वह स्वयं को परिस्थितियों के हाथों में सौंप देती है। अन्त

मे किराय की जमानत के लिए दाव पर लगा दी जाती है। इस प्रकार लखक ने आधुनिक समाज मे नारी जीवन का वास्तविक चित्रण किया है जिनका मूल्य अथ शास्त्र वे टक्साली सिक्को स आका जाता है।

गौतम बुद्ध चारिका' उप यास के प्रमुख पात्र गौतम बुद्ध हैं जो सम्बोधि प्राप्ति के उपरान्त धम चक्र प्रवतन हेतु इस ससार म भ्रमण करते हैं। इसम लखक न अनेक काल्पनिक आख्यानो को गौतम बुद्ध स सम्बधित किया है जिनका इतिहास म कोई प्रमाण नही मिलता। गौतम बुद्ध का समस्त जीवन पृथक पृथक दृष्टान्तो के आधार पर 'चारिका म एक क्रमबद्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। गौतम बुद्ध का चरित्र अत्यन्त ही उच्च कोटि का अथवा या कहे कि मानवीयता की कल्पना से परे किसी अलौकिक मानव के चरित्र का रूप लेखक ने प्रस्तुत किया है। बोधि वक्ष के नीचे सम्बोधि ज्ञान अथवा आत्म ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त उसे विश्व जगत को अव गत कराने हेतु एव ससार मे वास्तविक शाति के लिए वह चारिका के लिए चल पडते हैं। इसक उपरान्त की सपूण कथा का नियोजन इसम अत्यन्त भव्य रूप म हुआ है। कथा के प्रारम्भ स ही उनकी आलोचना ससार के प्रबुद्ध जन करते हैं। परन्तु वे उसस विचलित नही होते कारण रूढियो की तरह पूवग्रह से भी मुक्त थे मताग्रही नही सत्याग्रही थ। अपने प्रति भी जनता का अध विश्वास नही चाहते थ सबम प्रज्ञा का प्रस्फुरण देखना चाहते थे। सबको विचार स्वातत्र्य का अवसर दते थ। विवाद नही करते थे ग्रथो और आप्तवाक्यो का सहारा नही लेते थे दनिक जीवन के दृष्टान्तो स ही उनकी समस्याओ का शमन करते थे। इस प्रकार लेखक ने प्रमुख पात्र के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए कथोपकथन का आश्रय लकर विश्लेषणात्मक शली को अपने उपन्यास का आधार बनाया है। इसके अतिरिक्त लखक न मनोवज्ञानिक और कहीं कहीं पर व्याख्यात्मक शली का भी अनुकरण किया है। मनोवज्ञानिक शली के द्वारा लखक न गौतम बुद्ध के आन्तरिक मनोभावो को व्यक्त किया है। गौतम बुद्ध समस्त प्रकार की जिज्ञासाए शान्त करके भिक्षु दल की वद्धि करते हैं। तरुण श्रेष्ठि पुत्र के भिक्षु बनन की कथा भी कुछ इसी प्रकार की है। इसके साथ ही उनके माता पिता द्वारा की गयी अनेक शकाओ का समाधान गौतम बुद्ध क चरित्र को प्रखरता प्रदान करती है। श्रेष्ठि पुत्र यश क पूव सहचर मित्र आदि की भी परिव्रज्या धारण की कथा पथ निर्देश म उल्लिखित है जो गौतम क चरित्र का विश्लेषित रूप प्रस्तुत करती है। राजा शुद्धोदन, यशोधरा महाप्रजावती आदि के विविध सवादो एव राहुल क प्रव्रज्या धारण क समय दीक्षा समारोह का चित्रण आदि म गौतम बुद्ध का चरित्र सम्बोधि पथ की कसौटी पर खरा उतरता है जो उनकी अन्त शुद्धि का परिचायक है। अनाथ पिंड का लोक कल्याण हेतु समस्त सपत्ति का उत्सग करना गौतम बुद्ध का प्रत्यक्ष प्रभाव प्रतिबिम्बित करता है। गौतम क मान सिक विकास का एक अन्य रूप उस समय भी आभासित होता है जब लोकमाता

महाप्रजावती अपनी विह्वल अवस्था में स्त्रियों को प्रव्रज्या मिलने की अभिलाषा व्यक्त करती है। गौतम बुद्ध का उस क्षण का अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त ही मार्मिक है। इस प्रकार व्याख्यात्मक शैली में गौतम के विभिन्न प्रश्न और उनका आनन्द के द्वारा उठी शंकाओं के आधार पर किया गया विश्लेषण गौतम बुद्ध के चरित्र को और भी निखारता है। बुद्ध के अन्तःकरण के प्रकाश का ही प्रभाव था कि नर संहारक अंगुलिमाल का भी हृदय परिवर्तन हो जाता है। इसके उपरान्त आम्रपाली का तथागत के चरणों में आत्म विसर्जन और अन्ततः गौतम बुद्ध का प्राणायाम है जिसमें भिक्षुओं का संदेश दिया गया है, जो बुद्ध चरित्र की श्रेष्ठता के प्रमाणस्वरूप है।

यशोधरा अन्य सहायक पात्रों एवं पात्रियों में अन्तर्गत यशोधरा के चरित्र का सर्वोत्कृष्ट पक्ष चित्रित है। मानव चरित्र अत्यन्त ही विलक्षण है, उसमें कभी स्वार्थ की प्रवृत्ति का उद्रेक होता है तो कभी परमार्थ का। मन कभी वेदना में डूबता उतराता है तो कभी अतीत की मधुर स्मृतियों में डूबकर उसी में प्रसन्नता अनुभव करने के साथ ही स्वयं को परमार्थ में लगा कर आनन्द की पराकाष्ठा पर पहुँचता है। इस प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में मानव की चिन्तन धारा के विभिन्न पक्षों का उत्पादन स्वतः ही हो जाता है। कुछ ऐसी ही स्थिति यशोधरा की है जो गौतम की पत्नी है और गौतम के निष्क्रमण के उपरान्त अत्यन्त ही व्याकुल एवं विह्वल होकर अतीत की मधुर स्मृतियों में स्वयं को साकार होना देखती है जिसमें केवल स्व की भावना ही काम करती है। परन्तु लेखक ने मनोवैज्ञानिक शैली के द्वारा स्व को भी 'पर' की ओर उन्मुख कर दिया है। उदाहरणार्थ 'एक दिन उन्होंने कहा था—प्रिये पूर्व जन्म में तू मेरी राधा थी, मैं तेरा चितचोर था। तेरा अथाह विरह क्रन्दन मुझे फिर इस भवसागर में खींच लाया। आज भी तो मैं विरह क्रन्दन कर रही हूँ। क्या मेरे आँसू उन्हें फिर खींच नहीं लायेंगे। अरे, मैं यह क्या कह रही हूँ। अपने लिए मैं उन्हें शेष सृष्टि से विमुख कर देना चाहती हूँ। यही यदि प्रेम है तो स्वार्थ किसे कहते हैं। आजीवन क्या मैं प्रेमिका और नववधू ही बनी रहूँगी। यह देखो वे मेरे अंचल में अपना कैसा दायित्व दे गये हैं—राहुल। विश्व को वात्सल्य देने के लिए वे जिस साधना के पथ पर चल गये वही साधना मेरे लिए गृह में सुलभ कर गये। प्रणय में जिसकी मैं समभागिनी थी, संन्यास में भी मैं उसकी सहयोगिनी बनूँगी।'[1] यशोधरा का चरित्र उस समय और भी मुखर होता है जब वह राजा शुद्धोदन के विकल व्यथित मन को सान्त्वना प्रदान करती हैं अथवा उस समय जब कि राहुल को प्रव्रज्या प्रदान करवाती हैं। उस क्षण तथागत भी उस त्यागमयी आत्मा के लिए सोच में पड़ जाते हैं 'यशोधरा ने सविनय कहा—प्रभो! आपके आने के पहले यह राजपुत्र था, अब परिव्राजक की प्रजा है इस परिव्राजक का दायज

१ 'चारिका' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ५०।

दीजिय। तथागत ने सोचा—ओह, यह कसी त्यागमयी महान आत्मा है। अपने शेष अवलम्ब को भी कल्याण माग मे अर्पित कर देना चाहती है। उन्होंने श्रद्धा स नतमस्तक होकर कहा—देवि! क्या तुम्हे दुख नही होगा? यशोधरा ने आत्मस्थ होकर कहा—आपसे इसे जो प्राप्य मिलेगा उससे मेरा ही नही, त्रैलोक्य का दुख दूर हो जायेगा, फिर मैं अपने क्षुद्र अहम की चिन्ता क्यो करू।"[1] इस प्रकार लेखक ने यशोधरा का परमाथपूण एव त्यागमयी नारी के रूप म चित्रण किया है।

शुद्धोदन कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन राजपाट सपूण वभव के होते हुए भी अपन पुत्र सिद्धाथ के निष्क्रमण से व्यथित थे। सिद्धाथ राजकुमार ही सम्बोधि प्राप्ति के उपरा त बुद्ध हुए। जिस प्रकार माता पिता की दृष्टि मे उनका पुत्र सदव ही एक बालक सदश होता है वह कितना भी प्रौढ एव समझदार क्यो न हो जाय उसी प्रकार राजा शुद्धोदन की दृष्टि मे भी सिद्धाथ एक बालक से ही थे। यद्यपि वह युवावस्था को पार कर चुके थे राजा को अभी भी यह चि ता थी कि मरे लिए वह अब भी अबोध है। बचपन की तरह ही उसे अपने तन बदन की सुध-बुध नही है। अपन साथ वह कुछ भी तो नहीं ले गया। इसीलिए उनका मन और भी व्यथित विक्षिप्त सा है। इस प्रकार लेखक ने जहा राजा शुद्धोदन के मन मे अपने पुत्र के प्रति प्रम को चित्रित किया है वही दूसरी ओर राहुल के प्रति अपने वात्सल्य को भी अंकित किया है। अत राजा शुद्धोदन का परिचय उनके पारिवारिक वातावरण क अतगत मुखर हुआ है। राजा शुद्धोदन एक नपराज के रूप म भी चित्रित हैं। अत राज दरबार का वातावरण भी 'चारिका उपयास म उपस्थित हुआ है लेकिन उसका व्याख्यात्मक परिचय नही है। त्रपुप और भल्लिक दो व्यापारियो को बुद्ध के दशन करके आया हुआ जान कर राजा ने उन्हें बुद्ध के कुशल क्षम पूछने हेतु दरबार म बुलाया। और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वह द्वार द्वार भिक्षा मागते हैं तो उनका रान्त्य ममाहत हो उठा। फिर भी वह उसके लिए विकल हो उठ राजा ने आदेश दिया—अश्वचालन मे प्रवीण नवतरुण सामन्तो को द्रुतगति से राजगह भेजो। मेरा शासन (पत्र) देकर वे सिद्धाथ स निवेदन कर जहा आपका सब कुछ है वहा भी पधारें। माता पिता पुत्र कलत्र स्वजन परिजन पुरजन सब आपक दशना क लिए लालायित हैं। वद्ध पिता तो पतझड का पत्ता है उसके धाराशायी हो जान क पहिले अपना वर्षो स ओझल श्रीमुख एक बार तो दिखला दें।[2] लखक ने इस प्रकार राजा शुद्धोदन क चरित्र म नप गुणो को भी समावश किया है जिनम काय क शीघ्र पूरा कर वान की तत्परता है। साथ ही राजाओ म जिस दप घमड एव अनुशासनप्रियता की आवश्यकता होती है शुद्धोदन क चरित्र म सभी गुण घुलमिल स गय हैं।

---

१ चारिका श्री शांतिप्रिय द्विवदी, पृ० ६६।

२ वही पृ० ५६।

प्रसेनजित सहायक पात्रों में प्रसेनजित का नाम भी उल्लिखित किया जा सकता है। यह कौशल के नरेश हैं। नरेश होते हुए भी जिन्हें आन्तरिक शांति नहीं है अत राजनीति में भी शांतिपूर्ण वातावरण नहीं हो पाता है। इनके चरित्र की प्रमुख विशेषता विनम्रता है। तथागत से वार्तालाप के उपरान्त ही राजनीतिक द्वन्द्व एवं संघर्ष के वास्तविक कारण का बोध होता है इसमें अहंकार वृत्ति का बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ होता है। इस बोध के उपरांत ही उन्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान होता है। मन शांति के लिए आत्म निरीक्षण और प्रत्यवेक्षण (गम्भीर चिन्तन) की आवश्यकता होती है जो गृहस्थ आश्रम में रह कर भी पूर्ण की जा सकती है। राजा प्रसेनजित अपने राज्य में शांति चाहता था लेकिन वह उसमें सर्वदा सफल नहीं हो पाता था। इसी का एक वृत्तान्त इन उपन्यास में उल्लिखित है। अन्त में बुद्ध ने उसे अपनी शरण में ले लिया था।

आम्रपाली 'चारिका' उपन्यास में उद्धृत विभिन्न कथाओं में एक कथा की प्रमुख पात्री आम्रपाली है जिसका पालन पोषण पद से अवकाश प्राप्त वृद्ध सेना नायक महानमन ने किया था। इतिहास में भी आम्रपाली का चरित्र अवस्थित है। आम्रपाली की माता वैशाली की सर्वश्रेष्ठ अनिन्द्य सुन्दरी परन्तु विधवा थी। आम्रपाली का बचपन आनन्द ग्राम के प्रकृति प्रांगण में मुकुलित हुआ। लेखक ने सकेतात्मक शैली में उसका परिचय एवं मानसिक चित्रण इस प्रकार किया है अपने ही भीतर निमीलित रहने वाली बालिका क्रमश मुकुलित प्रस्फुटित होने लगी। अपनी शिशु आखों से जब वह सृष्टि को विस्मित दृष्टि से देखती तब भावना से उसका अन्तर्जगत स्वप्निल हो जाता परियों की सी थी उसकी आत्मा। खिलौनों से खेलते खेलते वह अपनी भावनाओं को कलाभिव्यक्ति देने लगी। उसका अन्तर्जगत घरौंदा से लेकर गुड़िया तक में साकार होने लगा। वह निसर्ग कन्या वय के साथ-साथ अपनी अनुभूतियों में भी किशोरी हो गयी, वह स्वयं अपनी भावनाओं की सदेह अभिव्यक्ति हो गयी। तरंगिनी लहरी सी उसकी देह थी। ज्योत्स्ना सी उसकी गौर द्युति थी। उसी जैसी शुक्ल वसना थी। वह शुभ्रा थी। उसकी उच्छल भावनाएँ जब उमड़ पड़ती तब उमगों से उसकी देह हिल्लोलित विलोलित हो उठती। कैसी अल्हड़ किशोरी थी। विहगिनी सी निर्द्वन्द्व इधर उधर फुदकती रहती, फुर फुर उड़ती रहती, न आत्मकुण्ठा, न लोकलाज सामाजिक विधि निषेधों से परे मुक्त वायुमंडल में अतीन्द्रिय चेतना की तरह विचरती रहती। इस प्रकार लेखक ने प्रकृति के माध्यम से उसकी सुन्दरता की रूपरेखा खींचने का प्रयास किया है। लेखक ने आम्रपाली के चरित्र को उद्घाटित करने के लिए मनोवैज्ञानिक शैली का भी आश्रय लिया है। उदाहरणार्थ तरुण ने मुस्कराते हुए वंशी ओठों पर रख कर उसमें अपने प्राणों को पुलकित प्रकम्पित कर दिया। किशोरी ने देखा कि जिस गहराई में पहुँच कर वंशी हिये में हूक उठा देती है उसी गहराई में सांस लेकर यह कूक रही है। क्या इसके हृदय

मे भी कोई हूक कुहुक रही है। अरे, क्या है जो उसके भीतर रह रह कर हूक उठता है। वह अपने हृदय को टटोलने लगी। कोई मनोरथ उसे मथ रहा है किन्तु पकड म नही आ रहा है। वह अनुभावित होकर भी अपरिचित सा है। जिसे खोज रही थी उसे सामने पाकर भी क्या जान पहचान सकी ? वह भी तो अभी मनोरथ की तरह ही अपरिचित है।'

[३] **द्विवेदी जी के उपन्यासो मे कथोपकथन** कथोपकथन उपन्यास का तीसरा मूल तत्व है। उपन्यास मे दो अथवा अधिक पात्रो के वार्तालाप के लिए कथोपकथन' शब्द प्रयुक्त होता है। परन्तु कभी कभी केवल एक ही पात्र आत्म तल्लीनता की स्थिति मे स्वय से ही वार्तालाप करने लगता है इसे स्वगत कथन कहा जाता है। कथोपकथन के स्वरूप की विविधता की ओर सकेत करते हुए डा० प्रताप नारायण टडन ने लिखा है— कथोपकथन का स्वरूप इतना विविधतापूण है कि उस आज तक ठीक स परिभाषाबद्ध करना सम्भव नही हो सका है। आज के ही युग म यदि देखा जाय तो कथोपकथन का नवीनतम वज्ञानिक साधनो म प्रयुक्त होते हुए एक नया रूप निखर रहा है जसे रेडियो प्रसारण म या सिनेमा आदि म। मुख्य रूप स दखा जाय तो कथोपकथन क द्वारा कुछ विचारो को सजीवता देने म सरलता पडती है। नाटको म जो वस्तु अभिनय द्वारा व्यक्त होती है उपन्यासो म वह बहुत कुछ कथोपकथन द्वारा लायी जाती है।[१]

कथोपकथन के उद्देश्य किसी भी औपन्यासिक कृति म कथोपकथन की योजना कई कारणो से आवश्यक होती है। विचारो की सजीवता को व्यक्त करना एव कथानक को गति देना इसका महत्वपूण उद्देश्य है। इसके साथ ही कथानक म इसक लोप स कलात्मकता प्रभावात्मकता एव उसकी सवेदनशीलता का लोप हो जायगा। कथोपकथन के माध्यम स लेखक अपन उद्देश्य की अभिव्यक्ति तो करता ही है साथ ही वह कथोपकथन क द्वारा अपनी औपन्यासिक कृति म देशकाल अथवा वातावरण वग आदि की भी सृष्टि करता है। अतएव उपन्यास म कथोपकथन का सयोजन प्राय निम्न उद्देश्यो की दृष्टि म रख कर होता है। इसके अतिरिक्त श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी अपनी औपन्यासिक कृतियो म इन उद्देश्यो म कहा तक सफल हो सके हैं इसका विश्लेषण कथोपकथन के विभिन्न सद्धान्तिक उद्देश्यो के साथ ही साथ यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) कथानक का विकास करना उपन्यास के कथानक की पारस्परिक सम्बद्धता और उसकी विविध घटनाओ म किसी न किसी प्रकार क सामजस्य क लिए सवाद योजना की आवश्यकता उपन्यासकार को अपने उपन्यास के हेतु होती है जो मूल कथा को अन्य प्रासगिक कथाओं क साथ समन्वित करता हुआ कथा को

१ हिन्दी उपन्यास कला डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २१८ १९।

एक गति प्रदान करता है। उपन्यास म लेखक कथा वस्तु के विकास के लिए वणनात्मक या साकेतिक आधार लेता है परन्तु भिन भिन पात्रा का पारस्परिक वार्तालाप भी कही कही आगे की कथा का सकेत करके कथा वस्तु के भावी विकास की दिशा का उद्घाटन करता है। कथावस्तु के विस्तृत विवरण एव विस्तृत घटनाओ को सक्षेप म व्यक्त करने के साथ ही कथोपकथन के माध्यम से लेखक कथावस्तु म आयोजित अनक घटनाओं का केवल साकेतिक परिचय ही देता है। इसके अतिरिक्त कथोपकथन का काय उपन्यास के कथानक म विविधता, रोचकता और स्वाभाविकता भी उत्पन करना है।'[1] इस दष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवदी न अपनी औपन्यासिक कृतियो मे कथानक क विकास के लिए विभिन्न प्रासगिक कथाओ का समावेश किया है और कही कही कथोपकथन के माध्यम से कथानक का विकास हुआ है। 'चित्र और चिन्तन औपन्यासिक कृति मे कमलिनी कुमुदिनी की प्रासगिक कथा कथानक के विकास के साथ ही युग के विश्लेषण की ओर भी सकेत करती है जो लखक के लोक निरीक्षण एव सूक्ष्म दष्टि की परिचायक है। इसके कथोपकथन कथानक के विकास की दष्टि स नही लेकिन युग विश्लेषण की दष्टि से अत्यन्त महत्वपूण हैं।

(ख) पात्रा की व्याख्या करना उपन्यास के पात्रो के भावो एव विचारा के प्रत्यक्षीकरण, उनकी विविध जटिल परिस्थितिया उनकी अन्तद्वन्द्व सम्बन्धी प्रतिक्रियाओ का चित्रण लेखक अपनी औप यासिक कृति म कथोपकथन के माध्यम स करता है। इस प्रकार कथोपकथन के माध्यम स वह चरित्र की व्याख्या एव उन्हें विकास की ओर अग्रसर करता है। अत स्पष्ट है कि कथोपकथन का मुख्य आधार चरित्र चित्रण ही है। स्पष्ट, सजीव सरस एव औचित्यपूण कथोपकथन चरित्र के चित्रण मे निखार उत्पन करके पात्रा के चरित्र की विवत्ति म सहायक हाते हैं। इसके अतिरिक्त कथोपकथन क द्वारा ही उपन्यास म नाटकीय तत्वा का भी समावेश होता है, जो विवरण के माध्यम से सम्भव नही हा सकता है। अत कथोपकथन के माध्यम स उपन्यास के पात्रा के चरित्र की आन्तरिक विशेषताओ का भी विश्लेषण होता है। इस दष्टि से द्विवेदी जी क दिगम्बर उपन्यास मे यद्यपि कथोपकथन अशत ही है परन्तु पात्रो की आन्तरिक विशेषताओ का उदघाटन उन्होंने अत्यन्त ही सूक्ष्मता स किया है। पात्र अपनी अन्तद्वन्द्वात्मक परिस्थितियो म अपने भाव एव विचारों को प्रकट करते चलते हैं जिससे उपन्यास म नाटकीय तत्व का भी यत्र तत्र समावेश हो जाता है। उदाहरणाथ विमल वष्णवी को छोडकर चला जाना है परन्तु दखी सदोप से वह पुन उसे मिल जाता है तब वह स्वय अपने हार्दिक भावो को इस प्रकार व्यक्त करती है जिससे उपन्यास म नाटकीय तत्व का भी समावेश हो जाता है 'एक दिन वष्णवी ने कहा—जब से तुम चले गये विमल

---

१ हिन्दी उपन्यास कला, डा० प्रतापनारायण टडन, पृ० २१९।

तब से न जाने कितने दु स्वप्नो म तुम्हे देखती आयी। कभी देखती कोई काल की तरह महाकराल राक्षस पने पजा और लम्ब नुकील दाता से तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर रहा है कभी देखती कोई दुर्दा त दानव तुम्हारे दुग्न शरीर पर लोमहषक अत्याचार कर रहा है। मैं क्रोधित होकर अपने हाथा स प्रहार करती हुई उस वरजती रहती दूर हटो दूर हटो, हिंसक। यह कोमल कलवर तुम्हारा ग्रास हान लायक नही है।''[1]

(ग) लखक के उद्देश्य को स्पष्ट करना उपन्यास उपन्यासकार के अनुभवा का ही लेखा जोखा होता है। अतएव वह अपनी अभीष्ट बात को कहन के लिए पात्रा को ऐसी परिस्थितियो म प्रतिबिम्बित करता है कि लखक स्वय कुछ न कह कर पात्रो के कथोपकथन के माध्यम स उस प्रकट कर देता है। उपन्यासकार किसी भी पात्र पर अपन व्यक्तित्व को आरोपित करके अपन भावो की अभिव्यक्ति करता है। कुछ विद्वान उपन्यास के कथोपकथन द्वारा अपन निश्चयो, सिद्धातो कल्पनाआ ज्ञान भडार आदि के दिग्दशन को अधिकार का दुरुपयोग मानते हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियो के पयवेक्षण स ज्ञात होता है कि इनके उपन्यासो म समाज का वास्तविक चित्र अध्यात्म का स्पश करता है। दिगम्बर तथा चित्र और चिन्तन' मे लेखक का उद्देश्य प्रमुख पात्रो द्वारा स्वचिन्तन के रूप म अंकित हुआ है जो कथोपकथन का ही एक अन्यतम रूप है।

कथोपकथन के गुण सद्धान्तिक रूप से उपन्यास मे कथोपकथन की सफलता के लिए कतिपय गुणो की निहिति अपेक्षित है। यह गुण जहा एक ओर उपयोगिता की दृष्टि से महत्वपूण होते हैं वहा दूसरी ओर इनसे उपन्यास की कलात्मक उत्कृष्टता मे भी वद्धि हो जाती है। जसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है कथोपकथन या सम्वाद योजना उपन्यास म कथात्मक विकास चरित्राकन तथा उद्देश्य के स्पष्टीकरण की दष्टि से की जाती है। कथोपकथन के विभिन्न गुण इनकी साथकता भी सिद्ध करते हैं। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के विभिन्न उपन्यासो म सवाद योजना का जो रूप उपलब्ध होता है उसके आधार पर उनका सक्षिप्त विश्लेपण यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(क) उपयुक्तता कथोपकथन का प्रथम गुण उसकी उपयुक्तता है। उपयुक्त कथोपकथन ही उपन्यास के विशेष स्थला मे चमत्कार की सष्टि करता है। अत कथोपकथन का उपन्यास की घटना अवसर तथा वातावरण के अनुकूल होना बहुत ही आवश्यक है। केवल इसी क्षत्र म ही नही उपन्यास के साहित्यिक पक्ष म भी विषय की एकता शलीगत उत्कृष्टता और रूपात्मक गठन आदि गुण भी इसके लिए आवश्यक हैं। इस दष्टिकोण से श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासा म चारिका उपन्यास उल्ल

१ दिगम्बर', श्री शातिप्रिय द्विवदी, पृ० ८०।

खनीय है जिसमे घटना अवसर, वातावरण की अनुकूलता के साथ ही विषय और पात्रो की अनुकूलता का भी ध्यान रखा गया है ।

(ख) स्वाभाविकता उपन्यासकार का उपन्यास म कथोपकथन के समावश करने मे उसकी स्वाभाविकता का विशेष ध्यान रखना चाहिए । कथोपकथन मे विषय की सत्यता के साथ ही उसमे स्वाभाविकता के लिए यह भी आवश्यक है कि घटना स्थल म अनेक अनावश्यक पात्रो को एकत्र न करें तथा उनम अनगल और अनावश्यक कोटि का वार्तालाप न हो । इस दृष्टि से श्री शातिप्रिय द्विवदी के दिगम्बर' उपन्यास का एक उदाहरण द्रष्टव्य है 'विमल को किस लिए बुलाया था उस मालूम नही। विमल जब वहा पहुँचा तब एक कोन मे रखी हुई टोकरी की ओर इशारा कर उन्होन कहा—दखो इस घर दे आना राह म बन्दरपना मत करना । वटी और गोलियो को गिन गिन कर हिसाव रखन वाले बुद्धराज जी दुकान से जब घर आय तब अपनी टोकरी को ज्यो का त्यो पाकर खुश हो गये । हस कर बडी मिठास स बोल—राह म कही कुछ गपक ता नही गया रे । इस प्रकार आपक उपन्यासो मे स्थान-स्थान पर स्वाभाविकता का बोध तो होता ही है इनम उदधृत कथोपकथन भी स्वाभाविकता के गुण से युक्त हैं ।

(ग) सक्षिप्तता कथापकथन का एक अन्य गुण उसकी सक्षिप्तता है जो परिस्थितियो का परिचय देन म अधिक सफल होते हैं । लम्बे कथोपकथन उपन्यास मे अस्वाभाविकता तथा दुरूहता उत्पन्न करते हैं जब कि सक्षिप्त कथापकथन उपन्यास म कलात्मकता एव प्रभावात्मकता का उद्रेक करत हैं । श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासा म कथोपकथन की मुख्य विशेषता उसकी सक्षिप्तता है । उपन्यासा मे कथोपकथन छोटे परन्तु सारगर्भित हैं जो अपने अन्दर कथोपकथन के अनेक गुणा को आत्मसात किए हुए हैं । उदाहरणार्थ उसन निर्निमेष दष्टि स तरुण की ओर देखा जसे चकोरी कलाधर को देखती है । तरुण ने किशारी को दखा जस गायक अपनी स्वर लिपि को देखता है । दोना म सौहार्द स्थापित हो गया । सखिया ने कहा—इसी तरह आया करो जी, वशी बजाया करो जी । अपन मनोरथ को स्पष्ट न समझ पान पर भी किशोरी ने दशना की आशा से उत्कठित होकर कहा—हा आया करो जी ।"[1]

(घ) उद्देश्यपूर्णता उपन्यास का प्रत्यक कथोपकथन यथासम्भव उद्देश्यपूर्ण होना चाहिए । वस्तुत कथानक क विकास एव पात्रा के चरित्र चित्रण म कथोपकथन का विशेष योगदान रहता है । इस दृष्टि से विशेष परिस्थितियो म पात्रो की मानसिक प्रतिक्रिया को प्रस्तुत करना घटना विषयक जटिलताओ क परिचय के साथ ही दो विरोधी पात्रो का एक दूसरे के मन की थाह लने का प्रयत्न चित्रित करना एव भावी घटनाओ का पूर्व सकेत करना यही कथोपकथन की समग्रता एव साथकता के परि

---

१ 'चारिका, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ९० ।

चायक हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में कथोपकथन का यह गुण भी यत्र तत्र मिलता है। उनके कथोपकथनों में पात्रों की मानसिक प्रतिक्रिया के प्रस्तुत होने के साथ ही उसमें विभिन्न जटिल समस्याओं को उठा कर उनका विश्लेषित रूप प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त भावी घटनाओं अथवा परिस्थितियों का भी पूर्व संकेत हो जाता है। उदाहरणार्थ भिक्षुओ! मल मूत्र के जैसे शरीर की उपेक्षा नहीं की जा सकती, वैसे ही मनोविकारों के कारण भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मल शुद्धि की तरह मन शुद्धि भी इसी शरीर से किया जा सकता है। यदि मल और मनोविकार न हो तो साधना की क्या आवश्यकता!

भिक्षुओं ने पूछा—शरीर की रक्षा करने से क्या भौतिक संपत्ति का संचय नहीं होने लगेगा?

परिव्राजक ने कहा—जैसे शरीर में मल मूत्र का संचय करना कोई बुद्धिमान पसन्द नहीं करता वैसे ही जीवन में भौतिक संपत्ति का संचन करना भी पसन्द नहीं होना चाहिए। मल मूत्र के संचय से शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है भौतिक संचय से मन विकारग्रस्त हो जाता है। स्वस्थ जीवन के लिए देह शुद्धि की तरह मन शुद्धि भी आवश्यक है।

भिक्षुओं ने पूछा—मन शुद्धि (चित्त शुद्धि) कैसे की जाय?

परिव्राजक ने कहा—जैसे देह शुद्धि के लिए नियम संयम है वैसे ही मन शुद्धि के लिए भी नियम संयम हैं। जैसे शरीर अपने सर्वांग संगठन से व्यवस्थित है वैसे ही मन भी सम्यक बोध से सुव्यवस्थित (सुस्थिर चित्त) हो सकता है। प्रस्तुत कथोपकथन अपनी दीर्घता में भी मानव जीवन के यथार्थ परन्तु दार्शनिक जीवन मूल्यों से सम्बद्ध है जो लेखक के मौलिक चिन्तन की अपेक्षा रखता है। इसमें मानव जीवन का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया गया है जो आधुनिक समाज के अशान्तिमय वातावरण में एक उचित एवं निश्चित धरातल को प्रस्तुत करता है।

(ड) अनुकूलता और सम्बद्धता उपन्यास में चरित्र विकास की दृष्टि से कथोपकथन पात्रों के स्वभाव के अनुकूल होना आवश्यक है। इसके साथ ही उनमें उपन्यासकार के विचार कथानक एवं पात्रों में किसी न किसी प्रकार की प्रत्यक्ष एवं पारस्परिक सम्बद्धता भी आवश्यक है। कथोपकथन केवल विविध पात्रों के स्वभाव के ही अनुकूल न हो अपितु उसे पात्रों के सामाजिक बौद्धिक और सांस्कृतिक स्तर के भी अनुकूल होना चाहिए। इस दृष्टि से श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में यत्र-तत्र अनुकूलता एवं सम्बद्धता लक्षित होती है। उदाहरणार्थ चारिका में यश के गौतम की शरण में चले आने पर उनकी माता का तथागत से वार्तालाप उनके स्वाभावानुकूल ही है 'माता ने कहा—भगवन फूल के वन्तच्युत हो जाने से जैसे क्षुप का हृदय मर्माहत हो जाता है वैसे ही अपने रक्त मांस की सृष्टि के विच्छिन्न हो जाने से माता का हृदय भी पीडित हो जाता है। माया ममता को क्लेश होना स्वाभाविक है।

तथागत ने कहा—विच्छिन्नता तो उसी दिन आरम्भ हो गई जिस दिन शिशु मा के गर्भ के बाहर आ गया। मा क्या यही चाहती है कि शिशु उसके गर्भ म अजन्मा पड़ा रहे ?

माता न कहा—नहीं भगवन !

तथागत ने कहा – तो फिर विच्छिन्नता का अनुभव क्या करती हो ?

माता ने कहा—जो कभी निकट था वह दूर जान पड़ता है।

तथागत ने कहा—जो कभी गर्भ म था वह तुम्हारे आचल म आया, जो आचल मे दूध पीता था वह किलक कर पुलक कर पृथ्वी पर ठुमकन लगा, जो ठुमकता था वह प्रवृत्तियो से प्रेरित होकर ससार मे ससरण करन लगा।[1]

(च) मनोवैज्ञानिकता प्रारम्भिक युगीन उपन्यासो म प्राप्त कथोपकथन सर्वथा मनोवैज्ञानिकता स दूर होत थ एव उनम कलात्मकता का अभाव था। परन्तु ज्यो ज्यो उपन्यासो मे कथानक की अपेक्षा चरित्र चित्रण को महत्व प्रदान किया गया उसम मनोवैज्ञानिकता का समावेश होने लगा तथा मन की अनेक गुत्थियो के सुलझे रूप को स्पष्ट करने म उपन्यासो का महत्व बढने लगा। अतएव आधुनिक उपन्यासो म कथोपकथन की प्रमुख विशेषता की दृष्टि से श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो म कथोपकथन मनोवैज्ञानिकता के गुण को स्पर्श करते हैं। उदाहरणार्थ 'परिव्राजक न कहा—तुम्हारा क्या नाम है पथिक ?

श्रेष्ठि पुत्र ने कहा—आपके चरणो म शरणागत इस दास का नाम यश है सुगत। अब-तक के जीवन मे तो मेरा नाम रूप विद्रुप मात्र है मैं तथागत स तद्रूप होना चाहता हूँ। यश नहीं, शांति चाहता हूँ।

परिव्राजक ने कहा—शान्ति के लिए जिस दिन तुम्हारे मन मे प्रेरणा जगी, उस दिन से ही तुम्हारे सासारिक नाम रूप का स्वत परिवर्तन होने लगा। अब तुम्हे ऐसा आचरण चाहिए जो अन्त प्रेरणा को स्थायी बना दे।[2]

(छ) भावात्मकता उपन्यास को प्रभावशाली बनाने म कथोपकथन मे भावात्मक गुण के समावेश का भी महत्वपूर्ण हाथ है। कभी कभी कथोपकथन क मध्य भावात्मक चेष्टाएँ एव आकुलता क चिह्न के साथ ही कतिपय मूक सकेत अनुभूत्यात्मक अभिव्यक्ति म सहायक होते हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो के कथोपकथनो म कहीं कहीं पर भावात्मकता का गुण भी परिलक्षित होता है, उनम भावना का प्रवाह होता है। उदाहरणार्थ 'लोगो न कहा—इस बेजानी-पहिचानी को ठहराना मत जी, न जान किसके घर से क्या चुरा ल जाय।

किन्तु वैष्णवी न आग बढ कर उस अपना लिया। रात्रि की निस्तब्ध

१ चारिका, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३५ ३६।
२ वही पृ० २१ २२।

नीरवता में रो रो कर उठा। अपनी जो राम कहानी सुनाई वह समाज के युग युग के अत्याचारों की मार्मिक कथा थी। दीपक का धुंधला उजाला उसके निरीह मुख पर क्षीण प्रकाश डाल रहा था।

पण्डाजी ने विगलित होकर कहा—अब तुम कहीं मत जाओ यहीं रहो। हम दोनों मिलकर सुख-दुख में एक हो जायेंगे।

दुखिया ने भारी मन से कहा—अपना अपना भाग्य तो भोगना ही है पण्डाजी। मुझ अभागिन के कारण तुम अपने को परेशानी में मत डालो।'[1]

कथोपकथन का महत्व — उपन्यास में कथोपकथन के उपयुक्त उद्देश्य एवं गुण होने के साथ ही इसमें एक रूप और मिलता है। वह है स्व वार्तालाप या स्वगत कथन। स्वगत कथन की योजना यद्यपि नाटक की वस्तु है तथा उसी में प्रयुक्त होता है परन्तु आधुनिक युग में चारित्रिक विशिष्टता एवं मनोभावों के अन्तर्द्वन्द्व को चित्रित करने के लिए उपन्यासों में स्वगत कथन को स्थान मिला है। उपन्यास के विभिन्न पात्रों में निकटता एवं आत्मीयता नहीं होती इसका मुख्य कारण कथा की विभिन्नता एवं पात्रों की विपरीतता होती है जो कथा में पृथक पृथक से लगते हैं अथवा वह कथा प्रवाह में धीरे धीरे पृथक हो जाते हैं। उनमें निकटता लाने के लिए कथोपकथन की योजना की जाती है जिसके माध्यम से पात्र पारस्परिक संवेदना और अनुभूतियों के कारण एक दूसरे के निकट आ जाते हैं। अतएव इससे स्पष्ट होता है कि कथोपकथन उपन्यासों का नाटकीय तत्व है जो पारस्परिक परिस्थितियों को उत्पन्न करके उपन्यास को प्रभावात्मक बनाने में सहायक होता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में स्वगत कथन को भी स्थान मिला है जिसका विश्लेषण ऊपर किया जा चुका है। इनके उपन्यासों में प्रयुक्त कथोपकथन अत्यन्त सजीव, सार्थक एवं प्रभावोत्पादक बन पड़े हैं। कथोपकथन की जितनी सैद्धान्तिक विशेषताएँ हैं वे द्विवेदी जी के संवादों में विद्यमान हैं। कथानक के विकास, पात्रों की चारित्रिक व्याख्या और लेखक के उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिए ही द्विवेदी जी की कृतियों में संवाद योजना हुई है। पात्रों के विविध विषयक विचार भी उनके संवादों से स्पष्ट हुए हैं। उपयुक्तता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, सोद्देश्यता, अनुकूलता, मनोवैज्ञानिकता, भावात्मकता, ध्वन्यात्मकता, व्यंग्यात्मकता तथा बौद्धिकता आदि विशेषताओं से युक्त द्विवेदी जी के संवाद कलात्मकता एवं परिपक्वता के द्योतक हैं।

[४] द्विवेदी जी के उपन्यासों में भाषा तत्व — उपन्यास का चौथा तत्व भाषा है। इसमें प्रायः भाषा दो अर्थों में प्रयुक्त होती है—संकुचित और व्यापक अर्थ में। संकुचित अर्थ में भाषा का पृथक और सैद्धान्तिक महत्व होता है परन्तु व्यापक अर्थ में उपन्यास के अन्य महत्वपूर्ण तत्व भी इसी के अन्तर्गत आ जाते हैं। हिन्दी

१ दिगम्बर, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० १३ १४।

उपन्यास के आरम्भिक युग में भाषा को महत्ता प्रदान नहीं की गई थी। भाषा अपने विकास की अवस्था में थी तथा उसका स्वरूप भी निर्धारित नहीं हुआ था। उपन्यासों की भाषा प्रायः मिश्रित भाषा थी। कथानक में कल्पनात्मकता और विलक्षणता की प्रवृत्ति अत्यधिक थी। परन्तु भाषा के परिष्कार एवं परिमार्जन के साथ ही भाषा के रूपों में स्थिरता आने पर भाषा तत्व का महत्व भी बढ़ गया। परवर्ती युग में उपन्यास के सभी उपकरणों में अन्त सम्बद्धता के रूप में भाषा तत्व को महत्व दिया गया। औपन्यासिक प्रगति का एक आधार उस भाषा की समृद्धि भी है जो उसमें प्रयुक्त की जा रही होती है। साहित्य और भाषा घनिष्ठ रूप में पारस्परिक सम्बद्धता रखते हैं। भाषा क्षेत्रीय समृद्धि से साहित्यिक माध्यमों की उपलब्ध्यात्मक सम्भावनाओं में भी वृद्धि होती है। उपन्यास साहित्य रूपी माध्यम चूँकि मानव समाज और जीवन से अत्यधिक निकटता रखता है अतः वह विशेष रूप से उससे सम्बद्ध होकर उसकी समृद्धि का आधार ग्रहण करता हुआ एक आवश्यक साधन के रूप में उसका प्रयोग करता है।[1]

समन्वित भाषा भिन्न भिन्न युगों में उपन्यासों में प्रयुक्त की गयी भाषा का जो स्वरूप मिलता है उसे समन्वित भाषा कहा जाता है। यदि भिन्न भिन्न युगों के उपन्यासों में उपन्यासकारों द्वारा प्रयुक्त भाषा का अवलोकन किया जाय तो स्पष्टतः ही लक्षित होता है कि खड़ी बोली के अतिरिक्त उसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की भी बहुलता है। इस प्रकार की संस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग प्रायः उपन्यासों के भाव पूर्ण प्रसंगों में किया जाता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में एकाध स्थलों में इस प्रकार की भाषा दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ 'भोजन में भी संस्कृति और स्वास्थ्य का सौष्ठव पाने के लिए कमल इधर उधर भटकता है, किन्तु जहाँ लोगों का स्वभाव ही शुद्ध (सुसंस्कृत) नहीं है वहाँ उनके असन वसन में संस्कारिता कहाँ मिलेगी? सांस्कृतिक चेतना के अभाव में क्या सारा संसार ही जीवन्मृत निश्चेतन जनता का महाश्मशान नहीं बन गया है?'[2]

सामान्य प्रयोग की भाषा हिन्दी उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा का रूप खड़ी बोली है जिसे बोलचाल की भाषा अथवा सामान्य प्रयोग की हिन्दुस्तानी भाषा कहते हैं। इसमें भाषा के शुद्ध और क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं मिलता है। यद्यपि स्फुट रूप में संस्कृत, अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के भिन्न भिन्न शब्दों का प्रयोग मिलता है। हिन्दी उपन्यासकारों में अधिकांश ने भाषा के इस रूप का प्रयोग किया है। इसका कारण यही है कि यह भाषा भारतीय सामाजिक जीवन के अधिक निकट है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास की भाषा भी उपर्युक्त गुणों से युक्त है। वह

---

१ 'हिन्दी उपन्यास कला', डा० प्रतापनारायण टंडन पृ० २३४।

२ 'चित्र और चिन्तन', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८।

कहीं कहीं पर जो साधारण से अधिक विरल है। उदाहरणार्थ — जिन्दगी की जरूरतों का ही नहीं, दिन रात का भी अनिश्चय उसके लिए नहीं रह गया है। उसकी गाड़ी अपने आप चलती है, इसलिए चल रही है। देह में यदि घड़ी की तरह चाभी लगानी पड़े तो वह चाभी लगाने की तरफ में नहीं पड़ता। कमरे में एक कैलेंडर टंगा है लेकिन उसे तारीख बदलने की भी फुरसत नहीं है, जिन्दगी नहीं है। दुनिया का सब कुछ भूल कर वह अपने में ही डूबा रहता है, अपने में ही खोया रहता है।[1]

मिश्रित भाषा — भाषा के इस स्वरूप के अन्तर्गत विशिष्ट तथा बोलचाल की भाषा के शब्द — संस्कृत, उर्दू, अरबी, फारसी, अंग्रेजी तथा प्रान्तीय भाषाओं के शब्द एवं भिन्न भिन्न प्रकार की शैलियों के शब्दों का सम्मिश्रण मिलता है। आदि रूप से उपयुक्त भाषा के समस्त स्वरूप इसी के अन्तर्गत परिगणित किए जाते हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में भाषा का यह स्वरूप अधिकता से प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ — विमल वहाँ बार-बार गया। कभी-कभी मालती जब मुस्कराती तब उसकी ओर प्यार से देखता। उसके शरीर में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। शृंगार तो पहले नहीं सका, यौवन का मुस्कुराता मन भी मुरझाया ही रहता। अब वह न तो कन्या ही थी न परिणीता वधू ही थी। उसकी दुबली-पतली श्रीहीन काया नियति की एक परछाईं मात्र थी। उसके सीमन्त में सुहाग का सिन्दूर किसी कच्ची सड़क पर गुर्री की निशानी की तरह था। महाकाल ने मानो अब उसके जीवन का भी अन्तराल फीते से नापना शुरू कर दिया था।[2]

लोक भाषा — उपन्यास की भाषा के विविधात्मक प्रयोगों में लोक भाषा का भी महत्व है। उपन्यासों में लेखक समाज के विविध वर्गों के जीवन चरित्र की झांकी सजाता है, अतएव उनमें ग्रामीण पात्रों का होना स्वाभाविक ही है। इसलिए उनकी भाषा ग्राम्य भाषा ही होती है। यह ग्राम्य भाषा प्रायः अनेक बोलियों में प्रयुक्त की जाती है। इस भाषा के प्रयोग से लेखक स्वाभाविकता लाने के लिए ग्रामांचलों में प्रचलित मुहावरों, कहावतों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग अधिकता से करता है और उनकी चारित्रिक विशेषताएं जैसे सरलता, निर्भयता, अशिष्टता, वाचालता या उद्दंडता आदि भी स्पष्ट हो जाती हैं।[3] श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियों में लोकभाषा का यत्र-तत्र प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। परन्तु उनमें कहावतों एवं मुहावरों का प्रयोग नहीं के बराबर है। चूंकि लेखक स्वयं ही एक विशिष्ट पात्र के विषय में दिग्दर्शित करता चलता है अतः उसमें सरलता गुण का ही आभास होता है। अन्य गुणों का तो उसमें स्पर्श भी नहीं है। उदाहरणार्थ — अकेले वही नहीं, गांव के अन्य

---

१ दिगम्बर, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १२४।

२ वही, पृ० ५।

३ हिन्दी उपन्यास कला, डा० प्रतापनारायण टंडन, पृ० २४१।

घर के लडके लडकियां भी अमराई में आम की रखवाली करते थे। किसका किसका नाम लें। उनके लिए घर घर में कोई कमी नहीं थी, आम की फसल तो घलुए में था। किंतु इस बालक के लिए तो आम ही सहारा था। बाकी दिनों में भूखा-प्यासा ही रहता था। उसके रक्त मांसहीन शरीर की तरह ही उसका मस्तिष्क भी निर्बल था। उसे चक्कर आता, रास्ते चलते आंखों के सामने झांय झांय मालूम पड़ती।''

संस्कृत प्रधान भाषा श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में भाषा का जो रूप मिलता है वह संस्कृत प्रधान है। शुद्ध खड़ी बोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग इसमें बहुलता से किया गया है। उदाहरणार्थ श्रद्धा और प्रेम के लिए भावना की आवश्यकता है इसके बिना वस्तु दर्शन बाह्य उपादान मात्र रह जाता है जैसे विज्ञान में। जहां भावना रहती है, वहां बाह्य उपादान भी वस्तु मात्र न रह कर एक सजीव अस्तित्व बन जाते हैं सूर्य चन्द्र नदी वृक्ष सब पूज्य और प्रिय हो जाते हैं। पंचभूत उपादान नहीं, प्रकृति के अपने ही जैसे सजीव सम्प्रदान हैं इसीलिए उनमें प्राणोदन होता है और जीवमात्र के साथ संवेदनात्मक सम्बन्ध जुड़ता है। पंचभूत यदि उपादान मात्र होते तो वह उदात्त प्रेरणा नहीं जाग्रत होती जिससे मनुष्य संस्कृति और कला में अपना मनोविकास प्रतिफलित करता है और अन्य प्राणियों को भी अपना अभिन्न बना लेता है।'

काव्यमयी भाषा श्री द्विवेदी जी की भाषा का एक अन्य स्वरूप काव्यमयी भाषा भी है जिसमें काव्य की सी भाव प्रवणता है। यों इनके उपन्यासों में बहुत कम स्थल ऐसे हैं जहां भाषा में काव्यमयता लक्षित हो। उदाहरणार्थ कुहू कुहू—अरे अंधकार में यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वन्दना की सगोत्रमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक में विधाता के अभिशाप (जीवन के अंधकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कंठ में सीता राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है।'

क्लिष्ट भाषा भाषा के अन्य गुणों के अतिरिक्त द्विवेदी जी की भाषा की एक अन्यतम विशेषता उसकी क्लिष्टता है जो कहीं-कहीं पर तो भाषा को अत्यन्त ही दुरूह बना देती है। अतः जिन उपन्यासों में क्लिष्ट भाषा का प्रयोग हुआ है वह जन-साधारण से अलग साहित्यिक वर्ग के लिए श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। क्लिष्ट भाषा का एक उदाहरण जैसे देह शुद्धि के लिए नियम-संयम है वैसे ही मन शुद्धि के लिए भी नियम-संयम है। जैसे शरीर अपने सर्वांग संगठन से व्यवस्थित है वैसे ही मन भी सम्यक बोध से सुव्यवस्थित (सुस्थिरचित्त) हो सकता है। बोधिवृक्ष के

---

१ दिगम्बर' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ६।
२ 'चित्र और चिन्तन, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७९।
३ दिगम्बर', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७०।

नींव जब युग मनोविकारों का कारण ज्ञात हुआ तब उनके निराकरण (उदात्तीकरण) का भी परिज्ञान हो गया। भिक्षुओ! कार्य-कारण की शृंखला के अनुसार चित्त शुद्धि और आत्म शांति मिला और शांति के लिए यही भावना प्रबुद्ध सिद्धार्थ ने सबके लिए प्रदान की है।'[1] शान्तिप्रिय जी के उपन्यासों में विशिष्ट भाषा का प्रयोग यहीं पर हुआ है जहाँ मानसिकता के पूर्ण गूढ़ अर्थ स्वतन्त्र आध्यात्मिक तत्वों का चित्रण हुआ है। अन्यथा इनकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है और कहीं कहीं संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अतः शान्तिप्रिय जी के उपन्यासों की भाषा विषय दुरूह गम्भीर चिन्तन युक्त परिष्कृत एवं परिमार्जित है।

साहित्य की अधिकांश विधाओं में भाषा को ही अभिव्यञ्जनात्मकता की दृष्टि से प्राथमिकता दी जाती है। इसीलिए विविध विधाओं में हुए परिवर्तन वस्तुतः भाषागत ही होते हैं। उपन्यास में भाषा का प्रयोग व्यापक अर्थ में महत्त्व रखता है। प्रथम यह उपन्यासकार के कथा यथार्थ स्वरूप की अभिव्यक्ति करती है और द्वितीय वह उपन्यासकार के विभिन्न पात्रों के चरित्रों के माध्यम से हृदय की विविध अनुभूतियों एवं भावनाओं की प्रतीति दूसरों तक पहुँचा देती है। द्विवेदी जी के उपन्यासों की भाषा काव्यात्मक एवं बौद्धिक रूपों की प्रधानता लिए हुए है। जो लेखक के कवि और आलोचक व्यक्तित्व की प्रधानता इंगित करती है। उनकी भाषा के विविध रूप समकालीन जीवन और व्यवहार में प्रयुक्त भाषा के परिचायक हैं। मुख्यतः उन्होंने सामान्य प्रयोग की भाषा, मिश्रित भाषा, लोक भाषा, तथा संस्कृत प्रधान भाषा के ही रूप प्रस्तुत किए हैं। ग्राम्य भाषा, उर्दू प्रधान भाषा एवं अंग्रेजी प्रधान भाषा के प्रयोग द्विवेदी जी की औपन्यासिक कृतियों में विरल रूप में ही उपलब्ध होते हैं। यत्र तत्र इन भाषाओं के स्फुट शब्द अवश्य प्रयुक्त हुए हैं। संक्षेप में भाषा के काव्यमय रूप ने इनके उपन्यासों को प्रभावात्मकता से युक्त बना दिया है जो भाषा क्षेत्रीय कलात्मकता और प्रौढ़ता का ही सूचक है।

[५] द्विवेदी जी के उपन्यासों में शैली तत्व : हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल में शैली तत्व भी उपन्यास के अन्य तत्वों की भाँति नगण्य सा ही था एवं शैली क्षेत्रीय नवीन विकास की सम्भावनाओं को भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था। पूर्व युगीन अधिकांश उपन्यासों में तृतीय पुरुष के रूप में वर्णनात्मक शैली का ही प्रायः प्रयोग किया जाता था। परन्तु बाद में कलात्मक विकास के साथ उपन्यासों में अन्य शैलियों का भी प्रयोग प्रारम्भ हुआ और इस प्रकार अनेक नवीन शैलियों का आविष्कार हुआ। तृतीय पुरुष के रूप में लिखित वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त प्रथम तथा द्वितीय पुरुष के रूप में भी लिखित शैलियों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। उपन्यास की कथा में वर्णन तत्व के जितने भी रूप हो सकते हैं उपन्यास में उतनी ही शैली

१ 'चारिका' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ७८।

की कोटियां भी हो सकती हैं। उपन्यास म शैली तत्व के स्वरूप का यदि सम्यक अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट ही ज्ञात होगा कि प्रत्येक भिन्न साहित्यिक विधा अपने मूल रूप म वाङमय की एक विशिष्ट शली होती है। एक लेखक जब उपन्यास रूपी साहित्यिक माध्यम का चयन करता है तब वह इस शैली के प्रति एक विशिष्ट आग्रह प्रदर्शित करता है।[1]

वर्णनात्मक शली उपन्यास म प्रयुक्त सबसे प्राचीन और प्रारम्भिक शली वर्णनात्मक है। इसमे उपन्यासकार का स्थान एक कथाकार सा होना है, जो निर्लिप्त भाव से कथा का वर्णन करता है। इस पद्धति की प्रमुख विशेषता यह है कि इसम उपन्यासकार का काय अधिक सुविधाजनक हो जाता है क्योंकि कथा की वर्णनात्मक सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इसके साथ ही चरित्र चित्रण की सफलता की अधिक आशा होती है। वर्णन एक लखन कला क साथ ही एक सक्रिय कला भी है जिसके माध्यम म कथानक का काल समय तथा सामाजिक वातावरण का निर्धारण होना है। उदाहरण के लिए हम श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी क चित्र और चिन्तन उपन्यास का निम्न उदाहरण ले सकते हैं कमल का जीवन अभावो का ऐसा गहन वन है जो न केवल उसकी व्यक्तिगत रिक्तता को सूचित करता है अपितु सारी पृथ्वी की अनल शून्यता का भी ज्ञापित करता है। यह ठीक है कि पृथ्वी पर हरे भरे मैदान भी हैं पर्वत भी हैं नदी और समुद्र भी हैं फिर भी जीवन कहा है बाहर के भराव की नीव अभावो स खोखली है तभी तो कभी भूकम्प आता है कभी ज्वालामुखी का विस्फोट होता है। कहा जा सकता है कि यह तो प्राकृतिक नियम है किन्तु ध्वस ही नहीं, निर्माण भी प्रकृति का नियम है उसी स वह अपनी क्षति पूर्ति करता है। इस वैज्ञानिक युग म मनुष्य जब कि प्रकृतिविजयी होने का दावा करता है वह निर्माण क्या कर रहा है? कभी-कभी सहअस्तित्व का नारा सुनायी पडता है किन्तु उसके लिए स्नेह और सहयोग कहा है? स्नेह और सहयोग के बिना जसे गह्वर वसे शिखर सब जीवन शून्य है।'[2]

विश्लेषणात्मक शली उपन्यास म प्रयुक्त होने वाली दूसरी शली विश्लेषणात्मक है जिसका उपन्यास मे विशिष्ट अर्थो म प्रयोग होता है। ऐसे उपन्यास जो विवेचनात्मक अथवा तर्क प्रधान शली म लिखे गये हो वह विश्लेषणात्मक शैली की कोटि के अन्तर्गत आते हैं। विचारो के विश्लेषण के लिए इस विशिष्ट शली का प्रयोग होता है जिसम विचारो के व्यावहारिक और सद्धान्तिक पक्षो का विवेचन और विश्लेषण होता है। विश्लेषणात्मक शैली मे लिखे उपन्यासो म लखक प्राय बौद्धिक और शिक्षित वग के पात्रो का चयन करता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के

१ हिन्दी उपन्यास कला' डा० प्रतापनारायण टडन पृ० २५७।
२ चित्र और चिन्तन, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५१।

उपन्यासो म यत्र-तत्र विश्लेषणात्मक पद्धति के समस्त रूप मिलते हैं और कही कही पर तो एक साथ ही दो-तीन पद्धतियो का सम्मिश्रण सा हो गया है। निम्न उद्धरण यथार्थपरक विश्लेषणात्मक शली का अनुकरण करता है जहा प्रकृति अठखेलिया करती है वहा उसी की प्रतिकृति बच्चे भी खेलते-कूदते थिरकते थे। किन्तु विमल तो इस विश्व लीला मे अधिक भाग नहीं ले सका। उसम खेलने की प्रतिभा नही थी। उसम तो उस बाल समाज की सरलता थी जो अपनी अनभिज्ञता के कारण बिना पात्रापात्र का विचार किये ही सभी को अपने समाज का अग बना लेती है। विमल का तो कोई स्थान नही था—न छोटे बडो के समाज म, न घर म न किसी के हृदय म। बचपन म ही वह अनाथ हो गया था। लोग उसे टूअर पातर कहते थे। उसने भी किसी परिवार म ही जन्म लिया था। किन्तु माया ममता का दुलार नही पा सका था। सब लोग उसे दुरदुराते ही रहते थे। कोई पालन-पोषण न मिलने पर भी उसका मृगछौन सा क्षीण शरीर प्रकृति के क्रोड मे मृणाल तन्तु की तरह हिलता डुलता रहा।[1]

डायरी शली डायरी शैली मुख्यत प्रथम पुरुष म लिखी जाती है। इस शली मे लिखे उपन्यासो म कभी-कभी एक से अधिक पात्रो की डायरी भी कथा म सम्बद्ध होती है। कभी-कभी डायरी शली किसी औपन्यासिक कृति मे पूण रूप स समाविष्ट न होकर आशिक रूप से प्रस्तुत की गयी मिलती है। आत्मकथात्मक शली और डायरी शली मे अन्तर केवल यह है कि डायरी शली म प्रथम के अतिरिक्त द्वितीय और ततीय पुरुष की ओर से लिखी गयी डायरिया भी सम्मिलित हो सकती हैं परन्तु आत्मकथात्मक शली म केवल प्रथम पुरुष म ही कथा अन्तर्निहित होती है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी के केवल 'चित्र और चिन्तन उपन्यास म डायरी शली का प्रयोग हुआ है और वह भी कथा के मध्य मे आशिक रूप स। लेखक ने कथा के मध्य डायरी शली का प्रयोग इस प्रकार से किया है 'कमल ने अपनी डायरी मे लिखा है अपने जीवन की सबसे बडी भूल क्या कहूँ? भूल समझदारा से होती है जिसम समझ नहा, उसकी क्या सही और क्या भूल। मे समझदार कभी नही रहा। फिर भी यदि कहना ही है तो यही कह सकता हू कि मेरी सबसे बडी भूल यह है कि मा के उदर से मैं दुबल तन दुबल मन लेकर पृथ्वी पर आ गया। ससार इस प्राकृतिक नियम को क्षमा कर दे तब भी मैं अपने को क्षमा नहा कर सकता क्योकि अपनी नासमझी स जीवन म भूल करता रहा। मानवीय विवेक तो दूर मुझमे उन पशु पक्षिया जितनी भी समझ नही है जो अपना हानि लाभ समझते हैं। एक सास्कृतिक कुल म मरा जन्म हुआ। मा गृहसाधिका भारतीय नारी, पिता गहत्यागी बनवासी सन्यासी। आयललना की कला रुचिरता और माता की सात्विकता की प्रतिमूर्ति

---

१ 'दिगम्बर' श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ९१०।

तपस्विनी बालविधवा बहिन। माता पिता जब मेरे शशव म ही चल बसे तब बहिन क ही आंचल म आश्रय पाकर मैं जी गया। "[1]

स्मृतिपरक अथवा फ्लशबक शैली 'फ्लैशबैक' शब्द सिनेमा शिल्प से सम्बन्धित है। इसम घटना अथवा घटनाओं को तत्काल न दिखा कर किसी पात्र की स्मृति मे दिखलाया जाता है। वह स्मरण शक्ति के आधार पर उस घटना को प्रत्यक्ष प्रतिबिम्बित होते देखता है। इस टेकनिक की मुख्य विशेषता यह है कि इसम एक घटना पर पात्र विशेष के दोहरे मनोभावों का प्रभाव सरलता एव स्पष्टता स दिखाया जा सकता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियों मे फ्लशबक शैली का प्रयोग खुलकर हुआ है। इनके तीनो उपन्यासो म इस शैली का रूप मिलता है। 'चित्र और चिन्तन' उपन्यास म इसका रूप जीवन की अतीत घटनाओं को स्वप्न म देखने के रूप म प्रस्तुत हुआ है। उदाहरणार्थ 'कमल जब सो जाता है तब उसकी आखो मे उसके अनुभवो का ससार सिमट कर स्वप्न बन जाता है। कभी-कभी मरुस्थल म ओएसिस की तरह सुखद स्वप्न भी देख लेता है। ग्रीष्म म कमल छोटे स मकान की छत पर सोता है। सवेरे जब उसकी नीद खुलती है तब देखता है मस्तक पर विस्तृत नीला आकाश चदोवे की तरह फला हुआ है, नीचे पृथ्वी पर पूरब की ओर चौडे पाटो मे गगा का अमृत प्रवाह बह रहा है। न जाने किस प्राण प्रवेग से प्रेरित होकर तरह-तरह के छोटे-बडे पक्षी द्रुतगामी स सरकते और उडते जा रहे है। कोटरो स निकल कर अलसाये कपोत इधर उधर फुदकते हैं। कभी कभी जल विहग हस पृथ्वी पर अपने शुभ्र पख पन्फ्रा कर नयी स्फूर्ति से गगा की ओर अग्रसर हो जाते है। सामने उत्तर की ओर कमल का वह पुराना जाना पहिचाना विशाल बट वक्ष है जिसकी छत्रछाया म कभी उसका बचपन हसता खेलता था, जिसके किसी पत्लव में वटपत्र शायी बालमुकुन्द की तरह उसका शशव सोया हुआ है। क्षण भर प्रकृति स प्रफुल्ल होकर कभी द्राभा को कभी उषा को, कभी अरुणोदय को नमस्कार कर कमल विफल स्वप्नो से बोझिल मस्तिष्क लेकर फिर वस्तुजगत म आ जाता है।'[2]

कथोपकथन या सवाद शैली वस्तुत सवाद नाटक का प्रमुख तत्व है तथापि उपन्यासो म इसका उपयोग अपनी विशिष्ट महत्ता लिए हुए है। कुछ उपन्यासो म कथोपकथन का आशिक रूप म प्रयोग म लाया जाता है परन्तु कभी कभी उपन्यासो म कथोपकथन को प्रमुख स्थान भी दे दिया जाता है। ऐसे उपन्यासो की विशेषता ही कथोपकथन होता है। इस दृष्टि स ऐतिहासिक उपन्यासो को उद्धृत किया जा सकता है जिसम विशिष्ट वातावरण की सृष्टि करने के लिए संस्कृत गर्भित भाषा को सवादो म रखा जाता है। इस शैली के प्रयोग का महत्व उपन्यास म चामत्कारिकता उत्पन्न करना है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी क उपन्यासो म और विशष रूप स चारिका

---

१ चित्र और चिंतन, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ४२।
२ वही, पृ० ३३ ३४।

उपन्यास म कथोपकथन की बहुलता है। अतएव इसम कथोपकथन का प्रमुख स्थान है सारिपुत्र ने अश्वजित के समीप जाकर कहा—आवुस ! तेरी इंद्रियां प्रसन्न हैं तेरी कान्ति शुद्ध और उज्ज्वल है, तू किस दिव्यात्मा का शिष्य है ? तेरा शास्ता कौन है।

अश्वजित ने कहा—महाश्रमण तथागत मेरे शास्ता हैं।

सारिपुत्र ने पूछा—आयुष्मान के शास्ता किस सिद्धान्त को मानते हैं ?

अश्वजित न कहा—मैं अभी नया स्नातक हूं। विस्तार से अपने धम का *सिद्धान्त नहा समझा सकता।*

सारिपुत्र न कहा—सक्षेप म ही बतलाओ आयुष्मान् ! मुझ तो सार चाहिए। चातक के लिए एक बूद भी पर्याप्त है।

अश्वजित न तथागत के शान्तिमत्र स उसके अन्तःकरण को अभिषिक्त कर लिया। गभ बिन्दु पाकर सारिपुत्र भीतर स उदभिज्ज हो उठा।[1]

काव्यात्मक शली   काव्यात्मक शली को ही दूसरे शब्दों म भावात्मक शली भी कहा जाता है। इसका आविर्भाव हिन्दी उपन्यास के प्रथम विकास काल म हुआ था। हिन्दी गद्य साहित्य और विशेषत उपन्यास विधा अपने विकास स पूव प्रचलित काव्य की विविध शलियों से प्रभावित है। उसी का प्रभावात्मक रूप उपन्यास मे काव्यात्मक या भावात्मक शली है। आधुनिक युग की विभिन्न प्रवत्तियों के अन्तगत आने वाले उपन्यासों म भाव प्रधान काव्यात्मक शली अधिक रूप म मिलती है। इस शली का पूर्णात्मक प्रयोग बहुत कम उपन्यासों म हुआ है। इस पद्धति का एक रूप आधुनिक युग के उपन्यासों मे प्रकृति चित्रण का आधार लेकर विकसित हुआ है। इस दष्टि से श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास भी भाव प्रधान काव्यात्मक शली स अनुप्राणित प्रतीत होते हैं। यत्र-तत्र उसके उदाहरण परिलक्षित होते हैं। दिगम्बर मे तो प्रकृति के माध्यम से ही एक पात्रा का चित्राकन किया है   कुहू कुहू अरे अ धकार मे यह कौन कुहुकिनी कुहुक उठी। यह तो वेदना की संगीतमयी आत्मा यमुना है। अपनी हूक स विधाता के अभिशाप (जीवन के अन्धकार) को चुनौती दे रही है। इसके सन्तप्त कठ म सीता राधा और शकुन्तला का सामाजिक क्रन्दन है नारी के विगलित हृदय का युग प्लावन है। प्रकृति का यह भी एक दुखान्त चित्र है।[2]

आचलिक शली   आचलिक शली पूण मौलिकता लिए हुए है परन्तु वह लोककथात्मक शली के अत्यधिक समीप है। इस शली का आधारभूत तत्व कथा म विशिष्ट प्रदेश का स्थानीय चित्रण है जिसमे प्रदेश की लोक कथाओं लोक परम्पराओ, रीति रिवाजो, आचार विचार समाज व्यवहार, भाषा बोली आदि का विस्तृत एव

१ चारिका श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ४५।
२ 'दिगम्बर श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७०।

सूक्ष्मता से अंकन होता है। इस शैली की सबसे बड़ी सीमा इसमें वैयक्तिकता का अभाव है। विविध पात्रों की निजी चारित्रिक विशेषताएं समाप्त हो जाती हैं और वह केवल अपने अपने वर्गों का एकात्मक प्रतीक ही रह जाते हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में आंशिक रूप में ही आंचलिक शैली का प्रयोग हुआ है जिसमें केवल एक गांव विशेष का अपरोक्ष रूप में अंकन है। उदाहरणार्थ "गांव की अमराइया में एक बालक घूमता रहता था। आमों की रखवाली करता था। खेती नाम मात्र की थी। बगीचे में जैसे अनेक पेड़ वैसे ही घर में अनेक प्राणी। यहां तक कि पुरानी पीढ़ी की निशानी बूढ़ी दादी भी अभी तक जीवित थी। पेड़ों के झुंड से अलग जैसे कहीं कोई नन्हा बिरवा दिखाई देता है वैसे ही परिवार की सीमा में वह बालक था। मानव शिशुओं की तरह उसका लालन पालन नहीं हो सका था पेड़ पौधों की तरह ही वह अमराइया में खिलता खेलता रहा। जब सब लोग सवेरे की मीठी नींद में सोये रहते तभी वह घर से बगीचे में चला आता। उस सूने निर्जन में उसे भय नहीं मालूम होता क्योंकि वहां डाल-डाल पर चिड़ियों की चहचहाहट उसका स्वागत करती, मानों वह भी उन्हीं में से कोई एक हो। सांझ को जब बगीचा फिर सुनसान हो जाता, तब और कोई नहीं, वही बालक वहां वन की सूक्ष्म आत्मा की तरह सन्ध्या समीर की तरह घूमता रहता। वह पेड़ों के शिखरों की ओर देखता—वहां किन पत्तों की ओट में कौन आम पका हुआ है। दूर से ही वह कच्चे और पक्के आमों को पहचान लेता। ऐसी थी उसकी पैनी दृष्टि।"[1]

मनोविश्लेषणात्मक शैली हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रादुर्भाव पाश्चात्य मनोविश्लेषणशास्त्री सिगमंड फ्रायड, एडलर और युंग आदि के वैचारिक सिद्धान्तों के आधार पर हुआ। इस शैली के अन्तर्गत कथानक के पात्रों की विविध मन स्थितियों का चित्रण होता है। आधुनिक युगीन उपन्यासों में यह शैली चरित्र के विश्लेषण तथा अन्तर्वृत्ति में विशेषत सहायक होती है। आधुनिक उपन्यास लेखन के क्षेत्र में रचनात्मकता और क्रियाशीलता की दृष्टि से इसी शैली का प्रयोग और प्रचार अधिक है। हिन्दी के मनोविश्लेषणात्मक शैली में लिखे उपन्यासों में मन की चेतन और अचेतन दोनों ही अवस्थाओं का स्पर्श किया जाता है। सर्वप्रथम प्रेमचन्द के उपन्यासों में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण का समावेश हुआ परन्तु उसका आंशिक प्रयोग ही मिलता है। उसका विशुद्ध रूप तो प्रेमचन्दोत्तर कालीन उपन्यासों में परिलक्षित होता है। मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के कथानकों में संगठनात्मकता तथा पात्रों की संख्या कम होने के कारण इसमें मनुष्य की अन्त चेतना का सूक्ष्म विश्लेषण होता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में मनोविश्लेषण का विशुद्ध रूप एवं शैली तो नहीं दृष्टिगोचर होती है परन्तु यत्र-तत्र उसका प्रभाव अवश्य ही दृष्टिगोचर होता है। उदाहरणार्थ "एक दिन ब्राह्ममुहूर्त में जब

१ 'दिगम्बर' की ...

की विशेषताएँ एव कुरीतिया आदि का चित्रण आता है। उपन्यास के कथानक और पात्रा के चित्रण में वातावरण एक सीमा का निर्धारणा सा कर देता है जिसका अति क्रमण करने से उपन्यास का अशक्त हो जाना सम्भव है। उपन्यास की विविध घट नाओ, उसके पात्रो के क्रियाकलाप और विभिन्न परिस्थितियो म उनकी प्रतिक्रियाओं को यथाथ रूप मे चित्रित करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी सामाजिक पृष्ठ भूमि मे देश काल का यथाथ चित्रण एव वास्तविक लेखा जोखा प्रस्तुत हो। परिवतन शीलता प्रकृति का एक नैसर्गिक सिद्धान्त है। प्रकृति के समान समाज मे भी समया नुसार विविध परिवतन लक्षित होते हैं और मानव उन परिवतना से प्रत्यक्ष या परोक्षत अवश्य ही प्रभावित होता है। अतएव उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि उपन्यास की पृष्ठभूमि मे कथा और पात्रा की जीवन्तता के लिए विविध क्षेत्रीय नवीनता के सयोजन के साथ ही वह समाज के विविध आन्दोलना से प्रभावित पात्रा की बदलती विचारधाराओं का एक सामाजिक मानव के सदश दिग्दशन कर।

देश काल के गुण उपन्यास म कथा समय और कथा प्रकार की विशिष्टता की दृष्टि से प्राय देश-काल का चित्रण होता है। इस चित्रण के लिए उपन्यास म कुछ निश्चित आधार और गुण होते हैं जिनका पालन उपन्यासकार के लिए आवश्यक होता है। इन गुणो का समावश वातावरण चित्रण को अभिव्यक्ति पूणता प्रदान करता है एव उसमे विश्वसनीयता का समावेश होता है। ये गुण सक्षेप म इस प्रकार उल्लिखित किय जा सकते हैं

(क) वणनात्मक सूक्ष्मता उपन्यास म अन्य वणना की तरह ही देश-काल और वातावरण का वणन भी कलात्मक और सूक्ष्म तथ्यपरक होना चाहिए। स्थूल वणन उपन्यास मे वातावरण सष्टि की सफलता एव उपादेयता मे बाधक ही होता है। वणनात्मक सूक्ष्मता ही पाठक के सम्मुख काल और युग विशेष का सजीव चित्र अकित कर सकती है।

(ख) विश्वसनीय कल्पनात्मकता उपन्यास मे वातावरण की सृष्टि का दूसरा महत्वपूण गुण उसकी विश्वसनीय कल्पनात्मकता है। अत स्पष्ट ही है कि उपन्यासकार को युग और वातावरण के चित्रण म भी कल्पना का आश्रय लना पडता है। परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि उपन्यासकार यथाथ चित्रण और कल्पना तत्व का ,अनुपातिक रूप ही प्रस्तुत करे। शुष्क, नीरस, प्रभावहीन यथाथ चित्रण करत समय लेखक उसमे कल्पना का समावेश करके उसे सजीवता प्रदान कर सकता है। सामाजिक और एतिहासिक उपन्यासो म कल्पनात्मकता का महत्वपूण योग रहा है। प्राकृतिक वणन प्रधान उपन्यासा मे भी कल्पना के योग स किसी चित्र को स्वरूपात्मक पूणता प्रदान की जा सकती है। अतएव सन्तुलित, मर्यादित और अनु पातिक रूप मे कल्पना तत्व का समावेश उपन्यास के वातावरण तत्व का आवश्यक गुण है।

(ग) उपकरणात्मक सन्तुलन जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है,

उपन्यास में वातावरण तत्व उपन्यास के अन्य तत्वों और मुख्यतः दो प्रधान तत्वों कथानक और पात्र से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होता है। पात्रों का सम्बन्ध कार्य कलाप, वार्तालाप और रीति विचार के कारण किसी न किसी युग विशेष से रहता है और उस युग का चित्रण वातावरण तत्व के माध्यम से ही होता है। अत उपन्यास में वातावरण और चित्रण का उपकरणात्मक सन्तुलन होना आवश्यक है। केवल वातावरण चित्रण पर अधिक बल देने से वह वर्णनात्मक कृति ही हो जायेगी और पात्र तथा अन्य उपकरण अशक्त से परिलक्षित होंगे।

देश-काल के भेद देश-काल का वातावरण से बाह्य रूप से सम्बन्ध है। यह उपन्यास में युग अथवा परिस्थिति चित्रण में सहायक होता है। देश काल के सभी भेद अलग-अलग क्षेत्रीय महत्व रखते हैं। ये विषयानुकूल होने पर लेखक की सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्नता और मनोरम चित्रण क्षमता का परिचय देते हैं परन्तु अरोचक होने पर कथा प्रवाह में बाधक भी होते हैं। देश-काल चित्रण के बाह्य रूपात्मक भेद निम्नलिखित हैं

(क) सामाजिक वातावरण इसके अन्तर्गत विशिष्ट समाज के युग विशेष की परिस्थितियां एवं सामाजिक दशा का यथार्थ चित्रण किया जाता है। सामाजिक जीवन से सम्बन्धित समस्त वर्णन वेष भूषा, भाषा रीति रिवाज, सामाजिक वर्ग, शिक्षा संस्कृति सामाजिक व्यापार आदि सामान्य व्यवहार में आने वाले तत्व इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के सभी उपन्यासों में अपने युग का सूक्ष्म विश्लेषण हुआ। ऐतिहासिक उपन्यास में अपने विशिष्ट युग का सामाजिक चित्रण चित्रित करने में लेखक सफल हुआ है। उसी प्रकार अन्य सामाजिक उपन्यासों में तो आधुनिक सामाजिक जीवन का जीता जागता चित्र उपन्यासकार ने चित्रित कर दिया है। इसके चित्रण मे लेखक ने परोक्ष और अपरोक्ष दोनो ही रूपों का आश्रय लिया है। उनमे व्यक्ति उसका परिवेश उसका युग और उसका रचनात्मक चिन्तन चित्रित है। उदाहरणार्थ उसे भी भूख लगती थी प्यास लगती थी। कला से उसे जो मानसिक तृप्ति मिलती थी, वही तृप्ति शरीर भी मांगने लगा। देश काल की तरह अपनी भूख प्यास को भी भूले हुए वह कला की साधना करता था किन्तु यह भुलावा कब तक चल सकता था, शरीर अपनी अवहेलना नहीं सह सकता था। जीवन का पथ उसके लिए दूभर हो गया, एक पग भी चलना मुश्किल हो गया। कहां मिलेगी उसे सुरुचि ? कहां मिलेगी उसे शुचिता रुचिरता ?[1]

(ख) प्राकृतिक वातावरण उपन्यास मे घटना की प्रभावात्मकता और अनुकूलता की सार्थकता के लिए कभी-कभी लेखक कथा में नियोजित पात्रों के सुख-दुख के साथ प्रकृति की समता विषमता को बड़े ही नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है। उपन्यास में प्राकृतिक वातावरण का चित्रण उसके पात्रों के अनुभूति साम्य के उद्देश्य

---

१ चित्र और चिन्तन, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६।

से किया जाता है। मनुष्य स्वभावत अपनी आह्लादकारी तथा वेदनात्मक दोनों ही प्रकार की अनुभूतियों की प्रतिच्छवि प्रकृति में लक्षित करता है। उसे प्रकृति म कभी प्रसन्नता का आवरण प्रतिभासित होता है तो कभी वेदना की प्रतिमूर्ति दृष्टिगोचर होती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में प्रकृति का वर्णनात्मक शैली में उल्लेख न करके प्रकृति को पात्रों के परिचय का माध्यम बनाया है। अत प्रकृति चित्रण का अगत ही उपयोग हुआ है। उदाहरणार्थ 'अपने लौकिक अस्तित्व में वह मानवी थी, किन्तु अपनी चेतना म स्वय प्रकृति थी। प्रकृति के सभी रूप रग रस उसके स्वभाव और सौन्दर्य म समन्वित हो गए थे। कमलिनी सी वह तरंगिनी थी। पिक सी मधुर भाषिणी थी। अग्नि सी तेजस्विनी थी। सघन कादम्बिनी सी करुणाई थी। हृदय की तरह सरला थी। उसका अत करण गगाजल की तरह निर्मल था, जिसम राग विराग उषा-सन्ध्या की तरह प्रतिबिम्बित था। इसीलिए विधवा होते हुए भी उसके परिधान म गगा के उस पार (प्राची) की अनुरागिनी उषा भी रगीन थी, इस पार (प्रतीची) की सन्यासिनी सन्ध्या भी रगीन थी।"[1]

(ग) राजनीतिक वातावरण राजनीतिक उपन्यासो म कथा राजनीतिक घटनाओ स सम्बन्धित होती है। अतएव चरित्र तथा वातावरण भी राजनीतिक होना है। कुछ उपन्यासो का वातावरण राजनीतिक एतिहासिक होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि घटनाए इतिहास से सम्बन्धित होती हैं और उसका वातावरण राजनीतिक होता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासो म राजनीतिक वातावरण का अगत प्रयोग मिलता है—जहा लेखक न स्वय अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ 'बौद्ध युग म राजनीति भी धार्मिक हो गयी थी, अशोक का धर्मचक्र इसका ऐतिहासिक सकेत है। किन्तु कालान्तर म राजनीति का पुन प्राधान्य हो गया, धर्म (परमार्थ) का स्थान स्वार्थ ने ले लिया। धर्म निर्जीव शरीर की तरह सम्प्रदाय मात्र रह गया। राजनीति न मनुष्य म जो हिंसात्मक स्वार्थ सचेष्ट कर दिया, वही तामसिक स्वार्थ व्यक्तियो में, परिवारो म सम्प्रदायों म राष्ट्रो म, तरह-तरह की दलबन्दियो म और गुटो मे अधिकार और न्याय के नाम पर पाशविक सघर्ष करने लगा। गाधी-युग का जब उदय हुआ तब हमारे देश म अग्रेजों का शासन था। अग्रेजी शासन म भारत म भी वे सभी दूषण आ गये जो पश्चिमी देशो म आधि-व्याधि के रूप मे फले हुए थे। भारत भारत नहीं रह गया, उसका जीना अग्रेजों पर उसका बोलना अंग्रेजी पर निर्भर हो गया। गाधी युग की राष्ट्रीयता भारत के उस मौलिक व्यक्तित्व को जगाने के लिए थी, जो अपनी अहिंसा में वसुधैव कुटुम्बकम् की ओर उसी तरह उन्मुख थी, जैसे सरिता समुद्र की ओर। गाधी जी के बाद बौद्ध युग के 'पचशील शब्द' का प्रयोग किया गया, किन्तु उसका रूप राजनीतिक ही रह गया। राजनीति ने पचशील के राजनीतिक रूप का भी शील भग कर दिया जिसका

---

१ दिगम्बर, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११।

प्रमाण सम्प्रति चीन का आक्रमण है।"[1]

(घ) ऐतिहासिक वातावरण ऐतिहासिक उपन्यासो म प्राय ऐतिहासिक वातावरण की आवश्यकता है। इन उपन्यासो म उपन्यासकार को अधिक सतक रहना पड़ता है जिससे कि किसी भी स्थल पर काल दोष न आने पाये और वर्णन इतिहास विरुद्ध न होने पाये। कथा का मूल ढाचा इतिहास सम्मत होने हुए भी उसम कल्पनात्मकता का अधिक स्थान होता है। वातावरण की दृष्टि से उपन्यास की ऐतिहासिक कोटि के अन्तगत एक उपकोटि ऐतिहासिक सास्कृतिक भी है जिनम ऐतिहासिक सामाजिक एव सास्कृतिक जीवन का चित्रण होता है। ऐतिहासिक सास्कृतिक उपन्यासो की विशुद्ध भारतीय परम्परा मे अन्तगत द्विवेदी जी का चारिका उपन्यास रखा जा सकता है जिसम साहसिक अथवा रोमांटिक कथा तत्व का अभाव है परन्तु कथोपकथन तत्व की प्रमुखता लिए हुए परिष्कृत सस्कृत गर्भित भाषा का प्रयोग हुआ है। 'चारिका का कथानक गौतम बुद्ध की आध्यात्मिक यात्रा से सम्बद्ध है अत इसम धार्मिक आध्यात्मिक तत्वो का अधिक समावेश हुआ है।

देश काल और स्थानीय रग उपन्यास म प्रभावात्मकता और स्वाभाविकता के लिए स्थानीय रग का विशेष महत्व है। इसका महत्व ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण प्रधान उपन्यासो मे सामान्य रूप से होता है। देश-काल और वातावरण के चित्रण का सम्बन्ध विशिष्ट प्रदेश की क्षेत्रीय विशेषताओ स भी होता है अतएव उपन्यासो म वातावरण चित्रण म विभिन्न क्षत्रीय परिस्थितियो के अनुरूप उनमे पृथकता और परिवतन दृष्टिगोचर होता है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासो म स्थानीय रग का आभास तो होता है लेकिन उसका तीखापन दृष्टिगोचर नही होता। इसका मुख्य कारण यह है कि उसम बड शहरो के काफी हाउस और विश्वविद्यालयो का चित्रण है इसके साथ ही उनके उपन्यास बौद्धिक हैं एव उनम विभिन्न समस्याओ का विश्लेषण हुआ है। अतएव आंशिक रूप म स्थानीय रग यत्र तत्र परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ काशी मे गगातट का चित्रण लेखक न पात्री की मनोदशा के आधार पर किया है एक दिन ब्रह्म मुहूर्त म जब गगास्नान करके लौट रही थी तब सीढी पर कोई शुभ्र वस्तु दिखाई पडी। उसने सगमरमर के ठाकुर जी की बटिया समझ कर उसे उठा लिया। कैसी भोली थी। हाथ मे लेते ही वह सफेद चीज पञ्च से फूट गयी। वह तो किसी चिडिया का अडा था। कीचड म पाव पड जाने स जसी जुगुप्सा होती है वसी ही जुगुप्सा स उसका हृदय खिन्न हो गया।[2]

देश काल और आंचलिक चित्रण उपन्यास साहित्य के सूक्ष्म अवलोकन से स्पष्ट होता है कि आचलिक चित्रण का वतमान और पूववर्ती स्वरूप सवथा भिन्न है। उनम एकरूपता का अभाव है और इसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन उपन्यास

---

१ 'चित्र और चिन्तन, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ५४ ५५।
२ 'दिगम्बर श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

साहित्य के कथा तत्व में आदर्शवादिता का गुण विद्यमान रहता था तथा उनमें लोक जीवन का ही मूल स्वर गूंजता था परन्तु आधुनिक उपन्यासों में आंचलिक चित्रण यथार्थपरक भाषण से अनुप्राणित है। आंचलिक उपन्यासों में प्रादेशिक जीवन की बड़ी ही स्पष्ट और जीती जागती तस्वीर मिलती है परन्तु उनके पीछे वैचारिक या सांस्कृतिक प्रेरणा स्पष्ट नहीं हो पाती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास आंचलिक कोटि में नहीं आते हैं यद्यपि आंचलिक तत्व का आंशिक प्रयोग हुआ है।

देश-काल और लोक तत्व सामाजिक वातावरण का एक रूप लोक तत्वों पर भी आधारित है। इसका क्षेत्र विस्तार बहुत अधिक है। इन तत्वों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जन समाज से होता है। जन समाज अपनी विविधता और नवीनता के साथ भिन्न भिन्न रूपों में लोक साहित्य के अन्तर्गत अभिव्यक्ति पाता है। उसका प्रसार भिन्न भिन्न युगों में नवीन रूप धारण करता है। साहित्य का प्राय प्रत्येक नवीन रूप इसी उद्गम स्थल से निकलता है और अपने परिष्कृत तथा विकसित रूपों में दूसरे क्षेत्रों से इसकी सम्बद्धता स्वीकार कर ली जाती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में प्राय लोक तत्व का अभाव सा ही है। एकाध स्थलों में ही ग्रामीण जन जीवन का उल्लेख मिलता है वह न जाने कैसी-कैसी स्मृतियां जगाती थी—घर की रसोई से लेकर गांव की बातों तक से उसका मन लहराता रहता था। चांचर के उतार चढ़ाव के अनुसार ही उसकी स्मृतियों में भी एक ताल सुर रहता था उसी के साथ-साथ वह नाचती थी थिरकती थी। मानो लोक कथा के साथ लोकनृत्य करती थी।[1]

देश काल के चित्रण का महत्व विभिन्न औपन्यासिक कोटियों में जिस प्रकार कथा प्रधान और चरित्र प्रधान उपन्यासों में क्रमश कथा और चरित्र की प्रधानता होती है उसी प्रकार आंचलिक आदि की कोटि में आने वाले उपन्यासों में देश काल और वातावरण का प्राधान्य होता है। परन्तु देश-काल और वातावरण चित्रण प्राय सभी उपन्यासों में अपना स्थान रखता है। इसके लिए वातावरण चित्रण की कोई न कोई विशिष्ट सार्थकता का होना आवश्यक है। अन्य औपन्यासिक तत्वों के सदृश ही आधुनिक दृष्टिकोण से देश-काल और वातावरण की सृष्टि के अन्तर्गत स्थानीय रंग को भी महत्व प्रदान किया गया है। वस्तुत वातावरण सृष्टि उपन्यास में औपन्यासिकता का मूल आधार होती है कारण कि उपन्यास के वातावरण में ही पात्र और उनके क्रिया कलाप की यथार्थता का बोध होता है। आधुनिक उपन्यासों में तो बहुधा वातावरण की प्रमुखता पर ही अन्य औपन्यासिक तत्वों का विकास किया जाता है। द्विवेदी जी के उपन्यासों में मुख्य रूप से सामाजिक और ऐतिहासिक वातावरण उपलब्ध होता है। सामाजिक वातावरण के अन्तर्गत उन्होंने आधुनिक समाज में व्याप्त विडम्बनात्मक परिस्थितियां अंकित की हैं। काशी और प्रयाग आदि नगरों

१ दिगम्बर' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पृ० ८।

की सामाजिक पृष्ठभूमि म उन्होंने वहा के लोगो की धार्मिक मनोवत्ति और धार्मिक चेतना का विस्तत अकन किया है। अनक स्थला पर प्राकृतिक सुषमा क भी विविध चित्र मिलते हैं, विशेष रूप स वशाली पूर्णिमा आदि अवसरो पर 'विमल ज्योत्स्ना मे नहाई प्रकृति के विविध चित्र। ऐतिहासिक वातावरण क अतगत लखक न बुद्ध कालीन जीवन और समाज का सम्यक रूपात्मक चित्र प्रस्तुत किया है जो समकालीन सामाजिक व्यवस्था और धार्मिक चेतना का द्योतक है। द्विवेदी जी की कृतियो म वातावरण की तत्वगत सफलता का मुख्य कारण लखक की अनुभूत्यात्मकता और सवेदनशीलता है।

[७] द्विवेदी जी के उपन्यासो मे उद्देश्य तत्व उपन्यास का सातवा और अतिम तत्व उद्देश्य है। औपन्यासिक कला रूप के विकास के साथ ही इसका भी महत्व धीरे धीरे बढ़ता गया। प्राचीन युग म कथाओ की रचना प्राय नतिक उपदेशात्मकता और कौतूहल जनित कल्पना पर आधारित मनोरजन के उद्देश्य से होती थी। परन्तु आधुनिक युग के प्रारम्भिक चरण स ही सामाजिक और समस्या प्रधान कथाओ की रचना प्रारम्भ हो गई। उसी समय से उपन्यास के गम्भीर उद्देश्यो को भी स्वीकार किया जाने लगा। आधुनिक काल के प्रारम्भिक युगीन उपन्यासो मे ही उद्देश्य तत्व के विस्तार का भाव परिलक्षित होता है। उपन्यास के विषय क्षेत्र के साथ ही साथ उसके लक्ष्य म भी वविध्य दृष्टिगोचर होने लगा और प्राचीन उद्देश्यो का आधुनिक उपन्यासो म केवल खडन ही नही हुआ प्रत्युत उनम मानव जीवन के विविध परिवेशो की सम्भाव्य समस्याओ का चिन्तनपरक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्यगत विभिन्न धारणाएँ *हिन्दी उपन्यास के विकास के विविध युगो म उद्देश्य की दृष्टि से वैभिन्न्य लक्षित होता है। पूववर्ती उपन्यासो मे उपदेशात्मकता* की प्रवत्ति के आधार पर समाज सुधार की भावना का प्राधान्य था। इसके अतगत अधिकाश सामाजिक उपन्यासो को रखा जा सकता है। आधुनिक उपन्यासो म जीवन के सम्बन्ध मे एक व्यापक दृष्टिकोण से विचार करते हुए किसी आस्थावादी सदेश को प्रस्तुत किया जाता है।

(क) समस्याओ का चित्रण पूववर्ती उपन्यासो मे उद्देश्यगत भिन्नता के कारण उनम स्वरूप की भिन्नता भी मिलती है। आधुनिक उपन्यासो का उद्देश्य केवल मनोरजन करना ही नही प्रत्युत उसम मानव जीवन के विविध पक्षो से सम्बधित विभिन्न समस्याओ का दिग्दशन भी होता है। किसी भी औपन्यासिक कृति म उठायी गयी समस्याएँ और उनके प्रति लेखक का दृष्टिकोण जितने गहन स्तर पर सत्य का स्पश करेंगी उस कृति की सफलता की सम्भावनाएँ उतनी ही अधिक होगी। उपन्यासो मे प्राय उन्ही समस्याओ को प्रश्रय दिया जाता है जो मानव के मनोभावो अथवा उनके जीवन से सम्बधित होती हैं। कभी कभी समकालीन समस्याओ को भी स्थान दिया जाता है। वतमान युगीन उपन्यासो मे मनोविज्ञान से

सम्बंधित समस्याओं की बहुलता के कारण उपन्यास जगत में एक नवीनीकरण हुआ, उसे एक नई दिशा प्राप्त हुई। उनमें विभिन्न समस्याओं एवं कुरीतियों का चित्रण है जिनका आधार समसामयिक सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। स्थूल रूप से प्रारम्भिक युग में उपन्यास के अंतर्गत जिन विशेष समस्याओं को अभिहित किया गया था परवर्ती युग में कथा साहित्य के अंतर्गत उन्हीं समस्याओं के विभिन्न पक्षों से सम्बंधित प्रश्नों को कुछ अधिक विस्तृत आधारभूमि पर प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ बाल विवाह और विधवा विवाह की प्रमुख समस्या का ही विस्तृत रूप परवर्ती युग में अनमेल विवाह, दहेज की समस्या, वेश्या समस्या आदि के रूप में उपन्यास में समन्वित हुआ। इसी प्रकार राजनीति सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं का वैचारिक मूल्यांकन हुआ है। इसके अतिरिक्त वर्तमान युग के हिन्दी उपन्यासों की प्रमुख विशेषता उनकी मनोवैज्ञानिकता है। उसमें विभिन्न मनोवैज्ञानिक समस्याओं का प्राधान्य है और इनका मुख्य आधार मनोविश्लेषणात्मक सम्बन्धी सिद्धान्त हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों में मानव जीवन से सम्बंधित विभिन्न समस्याओं का स्पर्श किया गया है परन्तु उनका दृष्टिकोण सुधारवादी नहीं है। उन्होंने समाज के वास्तविक चित्रण के लिए केवल विभिन्न समस्याओं को सूक्ष्मता से चित्रित किया है।

(ख) राजनीतिक उद्देश्य हिन्दी उपन्यास साहित्य में राजनीतिक क्षेत्र का विशुद्ध रूप लक्षित नहीं होता है अपितु उसमें राजनीतिक और सामाजिक तत्वों का ही अधिक सम्मिश्रण हुआ है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् राजनीति मानव जीवन का एक अंग सा बन गयी है एवं राज्य का प्रभाव व्यक्तिगत जीवन में प्रविष्ट होने लगा। फलस्वरूप उपन्यासकारों का ध्यान मुख्यतः उन मनोवैज्ञानिक समस्याओं की ओर आकृष्ट हुआ जो युद्ध जैसे राजनीतिक परिणामों के लिए उत्तरदायी हैं और दूसरी ओर दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली मनोवैज्ञानिक विकृतियों की ओर भी जो युद्ध की विभीषिका एवं उसके दुष्प्रभाव की परिचायक हैं। कांग्रेस की स्थापना एवं उसके आन्दोलन के फलस्वरूप ही हिन्दी उपन्यास साहित्य में भी राजनीतिक वातावरण का समावेश होने लगा और उनका मुख्य उद्देश्य राजनीति से सम्बंधित घटनाओं का दिग्दर्शन कराना हो गया। अतएव गांधी जी के सत्याग्रह और भारत छोड़ो आन्दोलनों का देश के सामाजिक और साहित्यिक स्तर पर विशेष प्रभाव पड़ा तथा इन क्षेत्रों में क्रान्तिकारी जागरण हुआ। ब्रिटिश सत्ता और साम्राज्यवाद का संघर्ष, स्वतंत्रता की मांग, क्रांतिकारी आन्दोलन आदि उपन्यास के प्रेरक बने तथा उपन्यास में राजनीति का भी समावेश परिलक्षित होने लगा। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के सामाजिक उपन्यासों में राजनीतिक आन्दोलनों को स्पर्श कर समाज में उसके प्रभाव का अत्यन्त सूक्ष्मता से चित्रण हुआ है। उसमें गांधी युग की अहिंसा का सम्यक विवेचन हुआ है। लेखक ने उसका तुलनात्मक रूप चित्रित किया है। राज-

में राजनीति के प्राधान्य ने धर्म का स्थान स्वार्थ ने ले लिया। धर्म निर्जीव शरीर की तरह साम्प्रदाय मात्र रह गया। राजनीति में मनुष्य के जो दिगम्बर स्वार्थ ने नग्न कर लिया वही सामाजिक स्तर व्यक्तियों में परिवारों में सम्प्रदायों में राष्ट्रों में तरह-तरह की स्पर्धा फैली और गुटों में अधिकार और स्वार्थ के नाम पर पारस्परिक संघर्ष होने लगा। गांधी युग का रचनात्मक प्रतीक गांधी का आधुनिक युग में महत्व एवं उसका उचित मूल्यांकन करना भी लेखक का उद्देश्य रहा है। समाज में व्याप्त जड़ता, व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा पूँजीवाद की दुष्प्रवृत्ति तथा अर्थ योजना के साथ ही विभिन्न वादों साम्यवाद पूँजीवाद साम्प्रदायवाद कम्युनिष्ट आदि का भारतीय समाज पर विपरीत प्रभाव स्पष्ट करना लेखक का उद्देश्य है। राजनीति केवल राष्ट्रीय क्षेत्र में ही नहीं उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी है और लेखक ने इस क्षेत्र का भी स्पर्श किया है। चित्र और चिन्ता उपन्यास में अखिल भारतीय विश्व महासंघ सम्मेलन (दिल्ली) में वातावरण अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और राष्ट्र संघ की संस्थापना का मुख्य उद्देश्य प्रतिबिम्बित करके विभिन्न लोगों के मतों का भी विवेचन किया है जैसे ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री मिस्टर एटली और पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि। इन सब के विवेचनात्मक रूप को प्रस्तुत करके लेखक ने पुनः मानव को अपने नैसर्गिक जीवन की ओर उन्मुख किया है—अपनी पृथ्वी से मिट्टी से स्नेह स्वरूप कृषि व्यवस्था पर ही अधिक बल दिया है। दिगम्बर में भी राजनीतिक वातावरण का लेखक ने दिग्दर्शन किया है लेकिन उसके यथार्थ एवं व्यावहारिक पक्ष को ही स्पर्श किया है।

(ग) जीवन-दर्शन का प्रकटीकरण कुछ उपन्यासकारों ने उपन्यास का अनिवार्य अंग जीवन दर्शन के प्रकटीकरण को माना है। आधुनिक उपन्यास साहित्य के जिन उपन्यासों में कथानक तत्व शिथिल और विशृंखलित है उसमें लेखक का जीवन दर्शन ही उपन्यास को सूत्रबद्ध रखता है। ऐसे उपन्यास मुख्यतः चरित्र प्रधान होते हैं। इसमें लेखक प्रशस्त जीवन दृष्टि के बोध एवं गहरे जीवन दर्शन के प्रतीकात्मक रूप के द्वारा विशिष्ट चरित्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभार कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। कुछ विद्वान विचार प्रधान उपन्यासों को और जीवन दर्शन प्रधान उपन्यासों को एक ही कोटि में रखकर उनका विश्लेषण करते हैं। परन्तु इन दोनों में भिन्नता होती है। विचारों का सम्बन्ध लेखक की बौद्धिक तैयारी से होता है और जीवन दृष्टि के प्रतिपादन के अन्तर्गत लेखक का पूर्ण व्यक्तित्व आभासित होता है तथा सूक्ष्म मानसिक और अस्पष्ट प्रतिक्रियाओं का भी आभास होता है जो बौद्धिकता से चित्रित करना सम्भव नहीं है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने अपनी औपन्यासिक कृतियों में विशिष्ट जीवन दर्शन को प्रकट करने के उद्देश्य को अपने सम्मुख रखा है। उन्होंने अपने उद्देश्य को प्रतिष्ठान के आमुख में स्वयं ही प्रकट किया है 'मेरा गन्तव्य जीवन का नैसर्गिक निर्माण है। नव निर्माण के लिए मैंने प्रकृति को निमंत्रण दिया है। उसी से कला, संस्कृति और पुरुषार्थ का भी स्वाभाविक प्रस्फुटन और उन्नयन

होता है। इसी दृष्टि से मैंने काव्य म छायावाद और जीवन म गाधीवाद को प्रतिष्ठित किया है।' लेखक के तीनो उपन्यासा म प्रमुख चरित्रा में लखक के ही प्रमुख गुण प्रतिभासित होते हैं एव उनके सामाजिक उपन्यास गाधीवादी विचारधारा स आन प्रोत हैं। उनके उपन्यासा म भी जीवन के नव निर्माण क लिए प्रारम्भिक नैसर्गिक जीवन की आवश्यकता एव खादी क वास्तविक महत्व पर प्रकाश डाला गया है जा मानव को स्वावलम्बी एव श्रम सहयोग की प्रेरणा देता है। श्री शातिप्रिय द्विवदी न अपन उपन्यासा म जो स देश दिया है वह पाठा को सरल अकृत्रिम जीवन और आडम्बरविहीनता की शिक्षा म अग्रसारित करता है। घम राजनीति, सस्कृति सभ्यता और शिक्षा के क्षेत्र म द्विवेदी जी मानवीय भावनाओ और मानवतावादी दृष्टिकोण के कल्याणकारी पक्षो की प्रतिष्ठा करते हैं जो उनके दृष्टिकोण पर बुद्ध तथा गाधी क वैचारिक प्रभाव का परिचय देत हैं।

उद्देश्य तत्व का महत्व आधुनिक युग म हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा सभी माध्यमो म अभिव्यक्ति का सबस सशक्त माध्यम माना जाता है। उपन्यासकार अपनी कृति म विशिष्ट दृष्टिकोण का आश्रय लकर मानव जीवन का मूल्याकन करन के साथ ही अपने जीवन-दशन को भी स्पष्ट करता है। अनक आलाचको का मत है कि जीवन-दशन से रहित उपन्यास केवल एक शुष्क कृति ही रह जाती है। वस्तुत उपन्यास म उदभुत विचारधारा बौद्धिकता के क्षेत्र म एक नवीन उपलब्धि के रूप म लखक की महानता का परिचायक है। उपन्यास के स्वरूप और उसके उद्देश्य के तात्विक विकास के विश्लषण से स्पष्ट होता है कि उपन्यास का ध्येय समय समय पर भिन्न और परिवर्तित हाता रहा है। द्विवेदी जी ने सामाजिक कुरीतियो के निवारण, सामाजिक नतिकता क खोखलेपन, बौद्धिकता तथा यात्रिकता मे निहित कृत्रिमता आदि उद्देश्यो से उपन्यासा की रचना की है। अपने एकमात्र एतिहासिक सास्कृतिक उपन्यास 'चारिका मे लेखक ने जीवन के उस शाश्वत स्वरूप की प्रतिष्ठा का सन्देश दिया है जो उदात्त जीवन मूल्यो की व्यावहारिक परिणति का प्रतीक है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी की उपलब्धिया

प्रस्तुत अध्याय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी की औपन्यासिक कृतियों का हिन्दी उपन्यास की विकास रेखा और समकालीन औपन्यासिक प्रवत्तियो की पृष्ठभूमि म जा विश्लेषण किया गया है वह उनकी उपन्यास क्षेत्रीय कलात्मक उपलब्धियो क साथ-साथ इस क्षेत्र विशेष म उनकी साहित्यिक प्रतिभा का भी परिचय दने मे समथ है। जसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास समकालीन हिन्दी उपन्यास के प्रचलित स्वरूप और अथ स पर्याप्त भिन्नता रखते हैं। यह वभिन्य सैद्धातिक और व्यावहारिक दोनो ही दृष्टिया से स्पष्टत सकेतित होता

है। उपन्यास के सम्बन्धित उपकरणों का जिस रूप में निर्वाह आधुनिक साहित्य में उपलब्ध होता है वैसा द्विवेदी जी के उपन्यासों में नहीं। इसीलिए उपन्यास की स्थूल परिभाषा और स्वरूप का यदि कट्टर निर्वाह ही देखा जाय तो इन कृतियों का उपन्यास कहना सामान्य दृष्टि से अधिक संगत नहीं होगा। परन्तु द्विवेदी जी के उपन्यासों की स्वरूपगत यह अभिनवता ही उनकी कलात्मक उपलब्धियों का आधार है। इसके साथ ही इन उपन्यासों के सम्बन्ध में जो समकालीन वक्तव्य उपलब्ध होते हैं वे भी औपन्यासिक विधा के रूप में इन कृतियों की सार्थकता और औचित्य का निरूपण करते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शान्तिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासों का अध्ययन और मूल्यांकन मात्र पारम्परिकता की कसौटी पर नहीं किया जा सकता वरन् उपन्यास के क्षेत्र में शिल्पगत अभिनव प्रयोगात्मकता की कसौटी पर भी उनकी परख करना संगत है। स्वयं लेखक ने इन कृतियों को पारम्परिक विधा के रूप में उपन्यास न कह कर मात्र औपन्यासिक रेखांकन कहा है। इसलिए भी इन उपन्यासों के शिल्पगत स्वरूप पर गौरव देना अपेक्षित है। हिन्दी उपन्यास के विकास की जो ऐतिहासिक रूपरेखा इस अध्याय के आरम्भ में संक्षेप में प्रस्तुत की गयी है उसका उद्देश्य इस तथ्य की ओर संकेत करना भी है कि किस युग विशेष में इस प्रकार के शिल्प रूपों का प्रयोग उपन्यास साहित्य में बहुलता से हुआ है और उसके फलस्वरूप उपन्यास साहित्य के रूप विकास की गति कैसे निर्धारित हुई है। प्रेमचन्द युग तक हिन्दी उपन्यास का जो विकास हुआ वह मुख्यत कथा के प्रकार और वस्तु में परिवर्तनशीलता का द्योतक है और इसी परिवर्तनशीलता के फलस्वरूप कथा के विविध शिल्प रूपों का भी जन्म हुआ है। भारतेन्दु युगीन हिन्दी उपन्यास से लेकर स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास तक जो तात्विक एवं शिल्पिक विकास के चरण हैं उनसे यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि कथा वस्तु का निरंतर संकोच हुआ है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कथावस्तु की दृष्टि से जो ह्रास हुआ है वही कथा शिल्प के विकास का आधार है।

कथात्मकता के क्षेत्र में उपयुक्त प्रयोगात्मक विशेषताओं के साथ साथ श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कृतियों में चरित्र चित्रण क्षेत्रीय अभिनव प्रयोग भी मिलते हैं। यहा पर इस तथ्य का उल्लेख करना असंगत न होगा कि द्विवेदी जी के तीनों उपन्यास 'दिगम्बर' 'चारिका' तथा 'चित्र और चिंतन' प्रधान रूप से चरित्र प्रधान ही हैं। इनमें से प्रथम में लेखक ने एक औपन्यासिक रेखांकन उपस्थित किया है जो वस्तुत एक सांकेतिक योजना है। द्वितीय अध्यात्मपरक एवं बुद्धिवादी पात्रों से संगठित रचना है। तृतीय कृति लोकनिरीक्षण और युग विश्लेषण का प्रस्तुतीकरण करने वाली रचना है जिसका आधार चारित्रिक योजना है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह तीनों उपन्यास चरित्र प्रधान हैं जिनके पात्र समाज के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। दिगम्बर के पात्र यदि भारतीय सामाजिक वर्गों के प्रतिनिधि हैं तो 'चारिका' के

पात्र बुद्ध कालीन इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'चित्र और चिन्तन' के पात्र सामाजिक वर्गों के स्थान पर आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक वर्ग, भेद के प्रतिनिधि हैं। लेखक ने इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की जो व्याख्या की है वह कथात्मक पृष्ठभूमि के अनुकूल है। 'दिगम्बर' के पात्रों का जो चरित्र चित्रण हुआ है वह मनोविश्लेषणात्मक एवं सकेतात्मक शैलियों के आधार पर है। इसका नायक निम्न मध्य वर्ग के एक परिवार की यथार्थ परिस्थितियों से प्रेरित होकर विशिष्ट चारित्रिक सम्भावनाओं का परिचय देता है। उपन्यास के अन्य पात्र भी निम्न मध्य वर्गीय समाज के पारिवारिक सगठन और आर्थिक सघर्ष में अपनी वैयक्तिकता का विलीन कर देते हैं। 'चित्र और चिन्तन' में लेखक का यही दृष्टिकोण किसी सीमा तक ऐतिहासिक सांस्कृतिक सन्दर्भ में आध्यात्मिक और धार्मिक वृत्ति प्रधान हो गया है। इसमें नायक के विचार अध्यात्मजनित विरक्ति और दर्शन जनित वितृष्णा का परिचय देते हैं। 'चारिका' की पात्र-योजना इन दोनों उपन्यासों से भिन्न है। इसमें बुद्ध कालीन इतिहास, धर्म, दर्शन और संस्कृति का जो निरूपण है वह गौतम बुद्ध के मानसिक विकास के सन्दर्भ में क्रमशः मूर्तिमान होता गया है। इस उपन्यास में चरित्रांकन की शैली मुख्यतः व्याख्यात्मक है जो विभिन्न सन्दर्भों में सांकेतिक भी हो गयी है। सक्षेप में द्विवेदी जी की औपन्यासिक कृतियों में जो चरित्र योजना है वह कलात्मक तथा यथार्थात्मक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण कही जा सकती है। लेखक ने जो पात्र चयन किया है वह समाज और इतिहास के विभिन्न वर्गों और युगों के प्रतिनिधित्व से युक्त है। उसमें कल्पनात्मकता और व्यावहारिकता का सम्मिश्रण है। इसी प्रकार से आदर्श और यथार्थ की सतुलित अभिव्यंजना भी उसमें मिलती है। फलतः इसमें शिल्पगत अभिनवता और कलात्मक परिष्कार भी मिलता है।

सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से उपन्यास में सवाद-तत्व का समावेश कथानक के विकास, पात्रों के चारित्रिक विकास तथा लेखक के मन्तव्य की अभिव्यंजना के उद्देश्य से किया जाता है। 'दिगम्बर' 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' में सम्वाद योजना प्रधानतः इन्हीं उद्देश्यों से हुई है। 'दिगम्बर' में जो विविध विषयक प्रासंगिक कथासूत्र नियोजित हुए हैं उनके विकास का आधार सवाद तत्व ही है। 'चारिका' में अनेक अर्थपूर्ण दृष्टान्त इसी तत्व के माध्यम से प्रस्तुत किये गये हैं। 'चित्र और चिन्तन' में भी सहायक कथा सूत्रों की योजना का आधार कथोपकथन ही है। द्वितीय उद्देश्य की दृष्टि से 'दिगम्बर' में प्रधान तथा सहायक पात्रों के वे अन्तर्द्वन्द्व जो उनकी चारित्रिक विवृत्ति में सहायक हैं इसी तत्व के माध्यम से निरूपित हुए हैं। जहाँ तक कथोपकथन के तीसरे उद्देश्य का सम्बन्ध है उसके अनुसार 'दिगम्बर' 'चारिका' तथा 'चित्र और चिन्तन' में लेखक ने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में अनेक ऐसे सकेत उपस्थित किए हैं जो उसके अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हैं और जिनके माध्यम से लेखक ने अतीत युगों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वर्तमान जीवन में व्याप्त हुई जड़ भौतिकवादिता सह-

अस्तित्व, सहयोग यान्त्रिकता तथा बौद्धिकता आदि का परिचय दिया है। इसके साथ ही उपयुक्तता स्वाभाविकता सक्षिप्तता उद्देश्यपूर्णता, अनुकूलता सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता की दृष्टि से भी यह सवाद तत्वगत कलात्मकता एव परिपक्वता के द्योतक हैं।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव जिस युग म हुआ था उसमे मुख्यत दो प्रकार की भाषा परम्पराए उपन्यास के क्षेत्र मे उपलब्ध होती हैं। प्रथम तो प्रेमचन्द की परम्परा के अनुसार मिश्रित भाषा अथवा सामान्य प्रयोग की भाषा और द्वितीय छायावादी भाषा। श्री शातिप्रिय द्विवेदी की भाषा मे भी प्रमुखत यही दो रूप उपलब्ध होने है। जसा कि पिछले पृष्ठो म उल्लिखित किया जा चुका है द्विवेदी जी की भाषा का रूप वह है जिसे समन्वित भाषा कहा जा सकता है। इस प्रकार की भाषा के उदाहरण चित्र और चिन्तन म विशेष रूप से उपलब्ध होते है। सामान्य प्रयोग की जिस भाषा का समावेश उनकी कृतियो म मिलता है वह समन्वित भाषा के स्वरूप स भिन्न है। इसम विभिन्न भाषाओ के प्राय सभी प्रचलित शब्दो का समावेश मिलता है। इसके उदाहरण दिगम्बर म बहुलता से उपलब्ध होते है। जहा तक भाषा के ग्राम्य प्रधान उर्दू प्रधान एव अग्रेजी प्रधान रूपो का सम्बन्ध है वे द्विवेदी जी के उपन्यासो मे अनुपलब्ध है। यद्यपि इन भाषाओ के प्रचलित शब्द यत्र तत्र अवश्य प्रयुक्त किये गये है। लोक भाषा के भी कतिपय उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं। द्विवेदी जी का कवि हृदय उनकी भाषा के काव्यमय स्वरूप का भी बोध कराता है। चारिका म अवश्य क्लिष्ट भाषा मिलती है जो दाशनिक आध्यात्मिक तत्वो के निरूपण के ही सन्दभ म प्रयुक्त हुई है। इस प्रकार स द्विवेदी जी के दिगम्बर चित्र और चिन्तन तथा चारिका उपन्यासो की भाषा काव्यात्मक बौद्धिक और कलात्मक होने के कारण प्रभावपूण बन सकी है।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के उपन्यासो म उपन्यास के विभिन्न शास्त्रीय उपकरणो म सबसे विशिष्ट शली तत्व है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, यह तत्व हिन्दी के प्रारम्भिक कालीन उपन्यास साहित्य म उपेक्षित रहा है। प्रेमचन्द युग तक जो उपन्यास लिखे गये उनमे प्राय वणनात्मक शली का ही प्रयोग किया गया है जिसम कथा का वणन तृतीय पुरुष के रूप मे किया जाता है। उपन्यास लखन की अन्य शलिया विशेष रूप स प्रत्यक्ष शलिया उपेक्षित रही है। द्विवेदी जी के उपन्यासो मे वणनात्मक शली के साथ साथ विश्लेषणात्मक डायरी फ्लश बक सवादात्मक नाटकीय कलात्मक शली लोक कथात्मक आचलिक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियो का समावेश भी मिलता है। किन्तु इन शलियो का सप्रयन कथा वस्तु के विकास के सन्दभ म इस प्रकार स हुआ है कि यह उपन्यास शली के क्षेत्र म विशिष्टता और नवीनता के द्योतक हैं। इनम शली का प्रयोग कथानक को सम्बद्ध करन के लिए

केवल एक रेखांकन के रूप में किया गया है जो इस क्षेत्र में नवीनता प्रयोगात्मकता और मौलिकता का द्योतक है।

उपन्यास के शास्त्रीय उपकरणों में देश काल और वातावरण तत्व का भी विशिष्ट महत्व है। शांतिप्रिय द्विवेदी ने अपने उपन्यासों में इस तत्व का जो समावेश किया है वह देश-काल के सैद्धान्तिक गुण, वर्णनात्मक सूक्ष्मता विश्वसनीय कल्पनात्मकता उपकरणात्मक सन्तुलन आदि से युक्त है। देश-काल के विभिन्न भेदों में सामाजिक प्राकृतिक राजनीतिक ऐतिहासिक आदि का समावेश इन कृतियों में विस्तार से हुआ है। देश काल और वातावरण का प्रभाव युक्त बनाने के लिए उनमें लेखक ने स्थानीय रंगों का समावेश भी किया है। इस दृष्टि से जो विशिष्ट स्थल हैं उनका उल्लेख यथास्थान किया जा चुका है। देश काल में आंचलिक चित्रण का योग भी होता है जो सांकेतिक रूप में द्विवेदी जी के उपन्यासों में विद्यमान है। देश काल और लोक तत्व भी परस्पर सम्बद्ध हैं और इनकी सांकेतिक निहिति इन उपन्यासों में मिलती है। इन तत्वों के योग से देश-काल और वातावरण सृष्टि का सम्यक और प्रभावात्मक रूप द्विवेदी जी की कृतियों में सफलतापूर्वक समाविष्ट हुआ है।

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के उपन्यास उद्देश्य तत्व के समावेश की दृष्टि से भी वैशिष्ट्य रखते हैं। आधुनिक उपन्यास अपेक्षाकृत गम्भीरतर उद्देश्य से लिखा जाता है। उद्देश्यगत विभिन्न प्राचीन धारणाएँ विशेषत नीति शिक्षा मनोरंजन कौतूहल सृष्टि सुधार भावना हास्य सृष्टि समस्या चित्रण आदि के साथ-साथ अब इस क्षेत्र में राजनैतिक एवं बौद्धिक तत्वों से युक्त जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति का भी समावेश हो गया है। इनके उपन्यास आधुनिक यान्त्रिक जीवन की पृष्ठभूमि में मानवीय चेतना का उद्बोधन करते हैं। युद्ध की विभीषिका से अभिशप्त मानव जीवन को इस समय अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस शांति-दर्शन की अपेक्षा है उसकी व्यावहारिक परिणति द्विवेदी जी के उपन्यासों का उदात्तपरक उद्देश्य है। इस प्रकार से सैद्धान्तिक वैचारिक एवं कलात्मक दृष्टियों से शांतिप्रिय द्विवेदी का उपन्यास साहित्य अपने स्वरूपगत वैशिष्ट्य का द्योतक है।

शातिप्रिय द्विवेदी का सस्मरण साहित्य

गद्य साहित्य की रचनात्मक विधाओ के क्षेत्र मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी ने पथ चिह्न, 'परिव्राजक की प्रजा 'प्रतिष्ठान तथा 'स्मृतिया और कृतिया' शीपक सस्म रणात्मक रचनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। ये रचनाएँ निसगत आत्मव्यजना प्रधान हैं और इनम लेखक ने जहा एक ओर अपने जीवन के विभिन्न सस्मरण प्रस्तुत किए है वहा दूसरी ओर इनके माध्यम से साहित्य, सस्कृति, कला और दशन विषयक अपनी वचा रिक मान्यताएँ भी सामने रखी। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के गद्य साहित्य विशेषत आलोचना, निबन्ध उपन्यास तथा सस्मरण म भी उनके कवि हृदय की कोमल अभिव्यजनाएँ प्रधान हो गयी हैं। पथचिह्न, 'परिव्राजक की प्रजा, प्रतिष्ठान तथा स्मृतिया और कृतिया म सगहीत विविध विषयक सस्मरण लेखक के सजग चिन्तन के द्योतक हैं।

द्विवेदी जी की सस्मरणात्मक कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य क अन्तगत पथचिह्न', परिव्राजक की प्रजा, 'प्रतिष्ठान 'स्मृतिया और कृतिया का उल्लेख किया गया है। ये कृतिया यद्यपि अनुभूत्यात्मकता और आत्मव्यजना की दृष्टि से परस्पर पूण समानता रखती हैं परन्तु विषय क्षेत्र की दृष्टि से इनमे पर्याप्त वविध्य है। उदाहरण के लिए यदि पथचिह्न मे सस्कृति और कला के सन्दभ म लेखक ने चिन्तन परक सस्मरण प्रस्तुत किये हैं तो परिव्राजक की प्रजा म आत्मपरिचय प्रधान सस्मरण हैं। इसी प्रकार स यदि प्रतिष्ठान मे जीवन और साहित्य के समन्वय का निदशन करन वाल सस्मरण हैं तो स्मृतिया और कृतिया म लेखक ने जीवन यात्रा क विविध पडावा पर दृष्टिपात करते हुए सस्मरणात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। यहा पर द्विवेदी जी के इन्ही सस्मरणात्मक रचनाओ का विषयवस्तु तथा अन्य विशेषताओ की दृष्टि स सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] पथचिह्न श्री शातिप्रिय द्विवेदी की सस्मरणात्मक रचना पथचिह्न म आपन सस्कृति और कला के माध्यम से विश्व एव शक्ति की समस्याओ का स्पश किया है। प्रस्तुत पुस्तक की शली आत्मपरिचयात्मक है जिसम उनक भावुक मन तथा तत्पर बुद्धि का परिपाक हुआ है। इनकी समस्त कृतिया के सदृश ही इसम भी उनकी लखन शली की नवीनता क साथ उनक रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। लखक ने इसम अपनी एकमात्र स्वर्गीया बहिन को भारत माता की आत्मा क रूप म स्वीकार करते हुए उनक व्यक्तित्व को केन्द्र बिन्दु मान कर जीवन और युग की

समस्याओ का आलेखन किया है। द्विवेदी जी के मत मे आज यात्रिक युग मे सस्कृति निस्पन्द तथा कला निश्चेष्ट हो गयी है। सामाजिक जीवन का दनिक चर्या मे सस्कृति और कला का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए लेखक न रचनात्मक कायक्रम की आवश्यकता पर जोर दिया है। अतएव इसम लोक जीवन के निर्माण का पथ निर्देश है। प्रस्तुत पुस्तक भारतीय सस्कृति की प्रमुख विशेषता शाति पक्ष का प्रति निधित्व करती है। लेखक ने इसम अपने चिन्तन क आधार पर इस अशात और अ यवस्थित युग के उपरान्त जीवन के स्वाभाविक निमाण क रूप म भविष्य की कल्पना की ह। द्विवेदी जी ने प्रस्तुत पुस्तक म स्मृति चिन्तन वह स्वर्गीय निधि, आहुति, अभिशापो की परिक्रमा, पयवेक्षण तथा अन्त सस्थान शीपको मे अन्तगत अपन भावो एव विचारो को वर्णित किया है। 'स्मृति चिन्तन म श्री द्विवेदी जी ने भैयादूज के अवसर पर अपनी बाल विधवा स्वर्गीया बहिन को स्मरण किया है। आहुति' सस्मरण म भी बहिन की मृत्यु के समय तथा इसके उपरात उसक सपूण जीवन का जो धधकती चिता के सदश ही स्वय अन्दर अन्दर जीवनपयन्त जलती रही थी, का चित्रण है। अभिशापो की परिक्रमा सामान्य सस्मरण म बहिन की मृत्यु के उपरान्त इस जगत क अभिशापो से लेखक परिचित होता है। लेखक बचपन से ही एकाकी जीवन व्यतीत करता था। अपने परिचय के साथ ही लेखक न अपन पिता का परिचय दिया है जिन्हें लाग दुबली महाराज के नाम स सम्बोधित करते थे। इस प्रकार लेखक ने स्वय के दैनिक जीवन और अपनी स्वच्छदात्मक प्रवत्ति का भी परिचय दिया है। सामान्य सस्मरण 'पयवेक्षण मे श्री द्विवेदी ने युग के यथाथ रूप को चित्रित करन का प्रयत्न किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात मानव जीवन अन्धकार म लडखडा रहा है। उसकी गति कुठित हो गयी है। इस युद्ध ने अन्न, धन तथा जन का अत्यधिक शोषण किया है। जीवन के सभी साधनो का अभाव हो गया है। प्रत्यक वग दूसरे वग के प्रति सन्दिग्ध तथा प्रतियोगी हो रहा है। सभी अपने स्वाथ मे लगे हुए हैं। अन्त-सस्थान' शीपक सामान्य सस्मरण म भी लेखक ने साहित्य सगीत और कला के अधीश्वरो को जनता मे नव चेतना जाग्रत करने क लिए सम्बोधित किया है जिनके कधों पर आज सतप्त जगत को आश्वासन देने तथा दिग्भ्रमित विश्व को दिग्दशन करने का भार है। आज मानव जिस अतृप्ति का अनुभव कर रहा है उसके पीछे भावुकता की माग अन्तर्निहित है जिसे ससार मे बिखरने के लिए कवीन्द्र रवीन्द्र का आविर्भाव हुआ परन्तु उनकी भावधारा आकाश पगा के सदृश छायापथ तक ही सीमित रही। उसके उपरान्त गाधी और लनिन का न्यावहारिक क्षेत्र म आविर्भाव हुआ। परन्तु आज भी मानव जावन सजलता नही प्राप्त कर सकी है। सवाग्राम तथा अन्य सास्कृतिक कलाकेन्द्रो के माध्यम स भी जनता अनुराग न प्राप्त कर सकी है। लखक ने जनता की व्यावहारिक सुरुचि की पुन स्थापना पर जोर दिया है। विश्व म नव जागरण का सचार कलाकारो तथा कवियो के सहयोग स सम्भव है। इस

पदचिह्न' संस्मरणात्मक कृति में श्री द्विवेदी ने अपने आरम्भ में कटु प्रहारों का चित्रण करते हुए अपने युग का चित्रण करने में प्रस्तुत पुस्तक के समस्त संस्मरणों में साम्य को भी प्रमुखता प्रदान की है। साम्य पंक्तियाँ संस्मरण के प्रारम्भ मध्य एवं अन्त सभी में ही विद्यमान मिलती हैं। इसके साथ ही इनकी शैली की नवीनता भी अपना अलग स्थान रखती है।

[२] परिव्राजक की प्रजा' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की प्रस्तुत साहित्यिक आत्म कथात्मक पुस्तक में लेखक ने जीवन में क्षीण होती स्मृतियों को सजाने का प्रयत्न किया है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसमें सन्यासी पिता की साहित्यिक सन्तान की आत्मकथा निहित है। प्रस्तुत पुस्तक में संस्मरणों में कहानी और निबन्ध का गठबन्धन सा हुआ है और इस प्रकार ये संस्मरण ऐसे में स्थानान्तरित प्रतीत होते हैं। इसमें लेखक के जीवन की धारा के प्रवाह का उल्लेख है जो सांस्कृतिक परम्परा में पला ग्राम्य की प्राकृतिक गोद में खेल कर नगर में आकर साहित्य क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। लेखक ने राजनीति की अपेक्षा सामाजिक सहयोग तथा ग्रामोद्योग को महत्व दिया है। वस्तुत वह सर्वोदय के समर्थक हैं। लेखक ने पूरी पुस्तक को दो भागों में विभाजित किया है—बाल्यकाल और उत्तरकाल। बाल्यकाल में लेखक के प्रारम्भिक जीवन से विद्याध्ययन तक के संस्मरणों को बहुत ही भावात्मक शैली में व्यक्त किया है। इस मुक्त पुष्प सगुण शिशु मातृविसर्जन वनदेवी का अचल साधना की साध्वी बाल्य क्रीडा लीला और मेला अप्रत्याशित निमंत्रण, अन्त प्रस्फुटन और वातावरण नीरव के तट पर तथा परिपाटी का परित्याग आदि शीर्षकों से सम्बन्धित कर दिया गया है। उत्तरकाल में विद्याध्ययन के पश्चात जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में विचरण करते तथा विभिन्न कटु अनुभवों को आत्मसात करते हुए लेखक अपने लक्ष्य पथ पर अडिग है। इसके साथ ही विभिन्न गण्यमान्य नेताओं और साहित्यिकों आदि से हुए परिचयों को लेखक ने शब्द चित्र के माध्यम से अंकित किया है। इसे भी विभिन्न शीर्षकों से सम्बन्धित संस्मरणों से एक क्रमिक रूप प्रदान किया गया है। मुक्त पुष्प में लेखक ने अपने पिता का जीवन परिचय, उनका जन्मस्थान उनकी जन्मभूमि का परिचय आदि दिया है। सगुण शिशु में जिस मोहल्ले में लेखक इन दिनों रहता था उसका चित्रण किया है। घर में चबूतरे के नीचे ही मांझियों की छोटी बस्ती थी जहां से उन्हें प्यार दुलार एवं स्नेह मिलता रहता था। मातृविसर्जन में इस परिवार के आश्रयदाता दुक्खू चाचा (प० दुखभंजन मिश्र) थे जो दूसरों के दुखों को हर कर भी स्वयं दुखी बने रहते थे। उनका हृदय बहुत उदार था लेकिन उनके बड़े भाई निरंजन मिश्र बड़े बिगडैल स्वभाव के थे वैसी ही उनकी स्त्री भी थी। लेखक के चारों ओर कहानियों का ही साम्राज्य छाया रहता था। इसके अतिरिक्त अक्षर ज्ञान के अभाव में भी वह देववाणी संस्कृत के वायुमंडल में सांस लेते थे। वन देवी का अंचल में बहिन काशी से देहात आयी। उनके साथ आप भी थे लेकिन बहिन पुन

काशी लौट गयी और वह स्वय वहीं पर पाठशाला जाने लगे। उस सयुक्त परिवार म केवल वद्धा दादी ही उसकी खोज खबर रखती। उ हा का स्नेह सम्बल उन्हें प्राप्त था। 'साधना की साध्वी बहिन रूपवती अपनी मा के अभाव को न भूल सकी। वह तेजस्विनी थी। किसी की दया का पात्र न बनना चाहती थी इसलिए उसने अपने जीवन यापन के लिए कलात्मक साधन गोटे की बुनाई को माध्यम बनाया। देहात क प्राकृतिक वातावरण से उसने ही द्विवेदी जी को सास्कृतिक वायुमडल म बुला लिया। 'बाल्य क्रीडा' म द्विवेदी जी के जीवन की धारा तीन दिशाओं म विपथगा बन गयी थी—घर स्कूल और नगर। पढाई की अपेक्षा इनका मन खेलकूद म अधिक लगता था। यहा पढाई के बाद जाह्नवी की गोद म ही समस्त बालक क्रीडा हेतु पहुच जाते थे। वहीं पर तरह-तरह के खेल वह लोग खेलते थे। त्योहारा एव मेला म भी यह सब बच्चे सक्रिय भाग लेते थे। 'लीला और मेला' म रामलीला मे कृष्णलीला बालका क जीवन एव स्वभाव क अधिक निकट है। काशी म हमेशा कोई न कोई धार्मिक उत्सव होता रहता था तथा मेला आदि भी लगता था। इनके अतिरिक्त भी वहा बच्चा के मनोरजन के अन्य साधन होते थे। काशी से उन्ह पुन किसी के विवाह म ग्राम म जाना पडा। विवाह के उपरान्त वह पुन ग्राम म ही रह गए। लेकिन अब बच्चे बडे होकर कामो मे लग गय थ। अप्रत्याशित निमत्रण म द्विवेदी जी को अपनी छोटी बहिन के घर से निमत्रण मिला जिसका विवाह अमिला म हुआ था। वहा विवश होकर उन्हें जाना पडा था। अत प्रम्फुल्ल और वातावरण मे द्विवेदी जी ने बहिन क घर का प्रबन्ध तथा उन परिस्थितिया म बहिन की स्थिति का चित्रण किया है। 'जीवन के तट पर' शीर्षक सस्मरण म काशी आगमन क उपरात का जीवन चित्रित है। परिपाटी के परित्याग म द्विवेदी जी के स्कूल छोडने के साथ विद्या स हटने की घटना का निर्देश है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड उत्तरकाल क सस्मरणात्मक लेखा म आधार की खोज म लेख म लेखक ने विद्याध्ययन स परित्याग के उपरान्त अपने जीवन को चित्रित किया है। द्विवेदी जी अत्यन्त ही अन्तमुखी तथा भावुक थ। स्कूल छोडने स वह स्वय अपनी बहिन की कल्पना के विपरीत होते गय। 'नेताओ की झाकी' मे काशी विद्यापीठ के सस्थापन समारोह म सम्मिलित होने वाले विभिन्न नेताओ के भाषण एव उनके व्यक्तित्व का चित्रण है। 'एक सामाजिक उद्यान' म आय समाज भवन म होने वाले विभिन्न कार्यक्रमा का लेखा जोखा है। आनन्द परिवार म लेखक ने उपवास के महत्व का निर्देश किया है। अपने अभाव के कारण ही वह एकान्त स समाज की ओर आए। यह अभाव उनके लिए वरदान और अभिशाप दोना ही रूपा म समक्ष आया। उन्होंने सस्कार और स्वाध्याय को ही जीवन का सम्बल बनाया। 'छायावाद की स्थापना' म कलकत्ते स पुन काशी आने का चित्रण है जब कि वह पुन आजीविका के लिए नि सहाय घूमने लगे। कुछ वय किशोरा से उनका परिचय हुआ। इन्हीं दिना टाल्सटाय की 'अन्ना' पर एक छोटा सा लेख

लिया जो भारत में छप गया तथा प० मगनदेव शर्मा ने इसे 'भारत' के साहित्यिक विभाग में ले लिया। 'हमारे साहित्य निर्माता' का प्रकाशन इन्हीं दिनों 'प्रकाशमाला' कार्यालय से हुआ। यही उनका सर्वप्रथम आलोचनात्मक ग्रन्थ है। छायावाद की कविता का मर्मोद्घाटन सर्वप्रथम इसी में हुआ। इसीलिए अन्य लोगों ने इसका प्रोत्साहन लिया। इसमें उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद को स्वच्छन्दतावाद न कहकर उनका वास्तविक स्पष्टीकरण किया है। 'कवि और काव्य' की प्रेरणा उन्हें बनारस में ही मिली। लीडर प्रेस की सीढ़ियों पर उनका परिचय गंगाप्रसाद पाण्डेय से हुआ। यह द्विवेदी जी के माध्यम से साहित्यकारों के सम्पर्क में आना चाहते थे। अनिच्छा होते हुए भी उन्होंने उनका परिचय कुछ साहित्यकारों से करवाया। १९३६ में 'कवि और काव्य' के प्रकाशन से उन्हें कुछ आर्थिक सहयोग मिल गया। 'व्यक्ति और समाज' लेख में समाज के एकाकीपन का बहुत तीक्ष्ण अनुभव व्यक्त हुआ है। बहिन की मृत्यु पर अनेक संवेदनात्मक एवं सहानुभूति पत्रों का इसमें उल्लेख है जिसमें महादेवी वर्मा, गंगाप्रसाद पाण्डेय तथा नरेन्द्र शर्मा आदि हैं। पाण्डेय जी ने उन्हें प्रयाग में आमन्त्रित किया था लेकिन वहाँ भी यह प्रसन्न न हो सके। पंत जी और नरेन्द्र शर्मा ने प्रयाग में स्वयं इनके पास उपस्थित होकर अपना मौन संवेदन व्यक्त किया। सन् १९३९ के मार्च में बहिन की मृत्यु हुई, अप्रैल में 'संचारिणी' प्रकाशित हुई। १९४० ई० में *युग और साहित्य* का प्रकाशन हुआ जिसमें उनका समाजवादी दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। 'रचनात्मक दृष्टिकोण' में १९४१ में 'कमला' छोड़ने तथा उसके बन्द होने का उल्लेख है। वह आर्थिक दृष्टि से फिर निरवलम्ब हो गए। इस समय द्वितीय महायुद्ध चल रहा था जिसमें प्रत्येक लाभान्वित हो रहा था। इसके उपरान्त 'महाप्राण हिटलर के व्यक्तित्व' का चित्र अंकित है। सन् १९४२ में वह भटकते हुए लखनऊ आ पहुँचे जहाँ उन्हें श्री दुलारेलाल भार्गव का आश्रय मिला। इसके साथ ही उन्हें वहाँ स्नेह का वातावरण प्राप्त हुआ। लखनऊ प्रवास में ही वह 'सामयिकी' की रूपरेखा लेकर बनारस चले गए, वहाँ फिर उसी नीरस वातावरण में वह घिर गए। 'युग और साहित्य' में समाजवादी दृष्टिकोण की प्रधानता है लेकिन *सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ 'सामयिकी' में वह* गौण हो गया। समाजवाद तथा प्रगतिवाद को ऐतिहासिक स्थान प्राप्त हुआ। 'सामयिकी' लेखक की बहुत अस्वस्थता में लिखी गयी है। इसके लेखन काल में उनकी प्रवृत्ति भ्रमणशील थी। इसके उपरान्त 'वीणा' के सम्पादन के लिए वह इन्दौर गये। यह यात्रा उनके शरीर के लिए लाभकर सिद्ध हुई। उनमें पुनः नवीन कर्मोदय आ गया। 'वीणा' के सम्पादकीय स्तम्भों में उन्होंने अपनी शुचिता, रुचिरता से संस्कृति और कला के व्यावहारिक पक्ष का निदर्शन किया। इन्दौर में प्राकृतिक वातावरण स्वास्थ्यकर होते हुए भी सामाजिक वातावरण निरानन्द था। वह पुनः बनारस चले आए। बनारस में 'पथचिह्न' सन् १९४६ में प्रकाशित हुई। इसमें संस्कृति और कला

का स्वर प्रतिध्वनित हुआ है। इसके साथ ही इसमें गांधी जी के ग्रामोद्योग को भी संबद्ध किया गया है। इस प्रकार इसमें मानयोग और कर्मयोग का समन्वय है। लेकिन 'धरातल' (१९४८) में लेखक का दृष्टिकोण उद्योग, संस्कृति और कला में पार्थक्य न रह कर अभिन्न और पर्याय हो गया है। इसका मूल आधार कृषि है। इसके उपरान्त 'ज्योति विहग' (१९५१) में सौंदर्य और संस्कृति के कवि पन्त जी की संपूर्ण कृतियों का अनुशीलन है। 'सौंदर्य दर्शन' संस्मरणात्मक लेख में सौंदर्य के महत्व एवं उसके वास्तव का दिग्दर्शन किया है। वह स्वयं के लिए लिखते हैं "कृष्ण की तरह ही मैं मधुकर हूँ, वनमाली हूँ। सौंदर्य के साथ खेलना भी चाहता हूँ और स्नेह से, सुरुचि से उसे सींचते भी रहना चाहता हूँ।" लेखक ने सौंदर्य के मातृ अंश का अनुभव किया है, जिससे शिशु का जन्म होता है। सौंदर्य में चेतना का वास्तव विद्यमान है। यह मनुष्य की संस्कृति का ही सगुण रूप है। इसी पर मानव का स्वभाव अवलम्बित है। रज, तम और सत्व—इन गुणों के अनुसार ही मानव का रूप बनता है। स्मृति पूजन में वहिन के अन्तिम दिनों के निवास स्थानों का ही लेखक ने तीर्थ मान कर उनकी परिक्रमा की है।

[३] 'प्रतिष्ठान' प्रस्तुत पुस्तक में श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने जीवन और साहित्य का संस्थापन किया है। इसमें लेखक के रचनात्मक दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। इसके लेखों में लेखन शैली की विविधता दृष्टिगोचर होती है। पर्सनल एसे, निबंध, समीक्षा तथा संस्मरण आदि को इसमें संगृहीत किया गया है। इस दृष्टि से इसकी नवीनता दर्शनीय है। इसके साथ ही प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत लेखों में प्रकीर्णता न होकर सम्बद्धता है। इन अनेक लेखों में अनुबंधना है। यह क्रमबद्धता उनकी समस्त कृतियों में किसी न किसी रूप में परिलक्षित होती है। इस प्रकार लेखन की दृष्टि से नवीन होते हुए इसमें जीवन की रचनात्मक प्रक्रिया भी है। इन लेखों का भी एक सुनिश्चित ध्येय है। द्विवेदी जी का यही उद्देश्य उनके संपूर्ण साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि उनके साहित्य में हृदयपक्ष, कला पक्ष के साथ ही आर्थिक पक्ष का भी समन्वय किया गया है। इसमें चिन्तनशील मानव की धड़कन है और है युग मन्थन। वस्तुतः लेखक का दृष्टिकोण अपनी प्राचीन संस्कृति से सम्वर्धित होते हुए भी अभिव्यक्ति में नवीनता है। लेखक अपनी उर्वर भूमि की ओर मानव को आकृष्ट कर कृषि का प्रोत्साहन देता है। इस कृति के संस्मरणात्मक लेखों में 'बाल्य स्मृति' शीर्षक लेख आत्मचरितात्मक संस्मरण है जिसमें लेखक अपनी बाल्य स्मृतियों को सजाना चाहता है। 'पथ संधान' शीर्षक आत्मचरितात्मक लेख में द्विवेदी जी के देहात से नगर आगमन की चर्चा है। 'त्रिवेणी के अंचल में' शीर्षक साहित्यिक संस्मरण में लेखक ने प्राक्कथन के साथ ही निराला, पन्त और महादेवी के सम्पर्क में आने एवं उनसे प्रेरणा प्राप्त करने का चित्र प्रस्तुत किया है। प्राक्कथन में लेखक ने अपने समाज का अपने युग का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। समाज में दो

युद्धों की भयावनी भीषणता का आज राज्य है। छायावाद के उपरांत साहित्य में प्रगतिवाद की आवाज सुनाई देने लगी लेकिन प्रगतिवाद भी अंतस्पर्शी तथा सत्वोद्रेक न होकर तामसिक विद्वेष और राजनीतिक राग द्वेषों से पूर्ण है। कांग्रेसी सरकार के स्थायित्व पर साहित्यकारों ने भी अपने नारे बुलन्द किये और शासन में साहित्यिकों को भी स्थान मिल गया। लेखक की दृष्टि में यह तुच्छ है। वह सस्ती प्रसन्नता के पीछे दौड़ना नहीं चाहते। उन्हें तो शाश्वत सुख एवं प्रसन्नता से लगाव था। आज मानवता के क्षेत्र में भी साहित्य में न संवेदना है और न सेवा। केवल आत्मप्रदर्शन तथा आडम्बर मात्र ही दिखाई देता है। साहित्य के क्षेत्र में भी शोषण आरम्भ हो गया है। महादेवी से द्विवेदी जी का परिचय सन् १९२९ में हुआ था। १९३४ में इलाहाबाद के प्रवास में उनका सान्निध्य भी उपलब्ध हुआ। महादेवी के काव्य के धरातल तथा सामाजिक जीवन के धरातल में भिन्नता है। एक में कल्पना है तो दूसरे में वास्तविकता। लेकिन उनके संपूर्ण साहित्य में यह विरोधाभास अलग न होकर एक दूसरे से सम्बद्ध है। जहां उनके काव्य में जगमग चेतना का अतीन्द्रिय सुख है वहीं संस्मरणों में बुझते दीपक का करुण विलाप। जीवन की सघनता की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उनमें मानवीय संवेदना है। तदनुरूप उनके काव्य में वैष्णव तथा रहस्यवादियों की अतृप्त प्रेम वेदना अन्तर्निहित है। गंगाप्रसाद पांडेय से परिचय के उपरांत वह द्विवेदी जी से लाभ उठाकर महादेवी के समक्ष पहुंचना चाहते थे जिसमें वह सफल भी हुए। लेकिन अपनी समुचित श्रद्धा न दे सकने के कारण ही वह महादेवी जी के सत्संग का समुचित सदुपयोग न कर पाये। सार्वजनिक क्षेत्र में पदार्पण से पूर्व उनकी साहित्यिक और सामाजिक निकटता सुलभ थी। वह प्रत्येक के कष्ट से अनुप्राणित थीं। लेकिन सार्वजनिक क्षेत्र में पदार्पण करने पर वह दुर्लभ हो गयीं। श्री श्रीप्रकाश जी वस्तुतः अपनी मर्यादा में भी एक आदर्श नागरिक हैं। उनकी इस आदर्श नागरिकता की झलक उनके सेवकों पर स्पष्ट लक्षित होती है। श्रीप्रकाश जी में शालीनता, शिष्टता, संस्कारिता की छाप, आत्मीयता, सहानुभूति तथा सहनशीलता आदि गुण विद्यमान हैं। वह दूसरों को अपने स्नेह से आप्लावित कर देते हैं। महादेवी जी में भी स्नेह, संवेदना और सहानुभूति है लेकिन अपनी ज्योत्स्ना से पुलकित करने की कांति उनमें नहीं है। ऐसा ही व्यवहार दूसरे के प्रति उनके सेवकों का भी है। वस्तुतः आधुनिक युग में साहित्यिक क्षेत्र में राजनीतिक संकीर्णता का आभास द्विवेदी जी के समय से ही होने लगा था जिसमें व्यक्तिवाद को प्रधानता दी जाती है। महादेवी जी महिला विद्यापीठ, राज्य परिषद्, सार्वजनिक समारोह, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, मंथन, अस्वास्थ्य, दिनचर्या तथा पारिवारिक और सामाजिक समस्याएं आदि जीवन की संकुलताओं में घिरी हुई हैं। ऐसे समय में उनका सामीप्य न प्राप्त होना आश्चर्यजनक बात नहीं है। शांतिप्रिय द्विवेदी जी के प्रयाग जाने पर यद्यपि छायावाद के तीन स्तम्भ पन्त, निराला, महादेवी वहां पर हैं लेकिन फिर भी अब उस वातावरण में उल्लास

नही है। युग का प्रभाव सवत्र फैल रहा है। पत अपनी असमथता तथा महादेवी अपनी बहुव्यस्तता के कारण इनस बहुत दूर हैं। द्विवेदी जी निराला जी के अधिक निकट हैं लेकिन वह भी जीवनमुक्त हैं। अतएव सगुण रूपान्तर छायावाद मे भी द्विवदी जी निगुण क शून्य को ही आभासित करत हैं।

[४] 'स्मतिया और कृतिया' श्री शातिप्रिय द्विवेदी की स्मृतिया और कृतिया' शीषक कृति म सगहीत सस्मरणात्मक लेख लेखक की भावुकता क साथ गद्य साहित्य म उनकी पैठ को दर्शित करत हैं। इस कृति म लखक की तत्पर बुद्धि एव भावुक मन का सुदर समन्वय हुआ है। 'स्मृति के सूत्र आत्मचरितात्मक सस्मरण के प्रारभ म श्री द्विवेदी ने अपने जीवन के प्रारम्भिक क्षणो का स्मरण किया है। शैशव एव किशोरावस्था के उपरान्त साहित्य क्षेत्र म पदापण क उपरान्त द्विवदी जी छायावादी कवियो म पन्त और निराला स विशेष रूप स प्रभावित हुए। निराला के मुक्त छन्द तथा ओजस्वी स्वर न उन्ह कविता के लिए उत्साहित किया। निराला के जीवन स अधिक साम्य होने पर भी भाव और स्वभाव की दष्टि स वह पन्त के काव्य कामल व्यक्तित्व की ओर मुखरित हुए। पत जी के बाद उनका परिचय महादेवी जी से हुआ। महादेवी की कविताओ से वह चमत्कृत हो उठे। उनम द्विवदी जी को अपनी बहिन की अन्तरात्मा का बोध हुआ। महादेवी की आत्मा भी जन्म जन्मान्तर स विरहिणी प्रतिभासित होने लगी। प्रयाग स काशी आने पर उनका यह साहित्यिक सगम छूट गया तथा काशी म उन्हें बहुत दारुण एव कष्टकर अनुभवो का ज्ञान हुआ। काशी प्रवास म ही उनकी बडी बहिन कल्पवती की मृत्यु हो गयी। वह प्रयाग से काशी कमला मे काम करने के लिए गय थ अतएव अपनी इस दारुण व्यथा मे भी कमला के काम मे मन लगाने का प्रयत्न करने लगे। बहिन क अभाव मे महादेवी जी अपनी लेखिनी क द्वारा उन्हें प्रोत्साहित करती रहती थी। कमला के सपादन काल म ही उन्होने युग और साहित्य का प्रारम्भ किया जिसम बहिन के व्यक्तित्व से प्रभावित सास्कृतिक श्रद्धालु होने पर भी सामाजिक आधार क अभाव म प्रगतिवादी दष्टिकोण का आभास मिलता है। १९४० मे 'युग और साहित्य प्रकाशित हुआ। इसी समय महादेवी जी उनस रुष्ट हो गयीं जिसक पीछे साहित्यिक कारण था और किसी की स्वाथ भावना थी। वह स्वच्छन्दता की विरोधिनी थीं और द्विवदी जी उस समय नैतिक रूप से स्वच्छन्द थे। लेकिन निराला मे भी तो यही स्वच्छन्दता अत्यन्त प्रबल रूप म थी जिन्ह उन्होन अपना भाई बना लिया था। लखक ने उस समय की साहित्यिक गुटबन्दी की ओर सकेत किया है। उनके रुष्ट होन पर भी वह प्रयाग जाने पर उनस भेंट करने अवश्य जाते थे वह मिल अथवा न मिलें क्योकि उनका विमुख होना उनके लिए अपनी बहिन की स्मृति स विमुख होन जसा हो था।'[1] प्रतिक्रिया

---

१ स्मृतिया और कृतिया, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ११।

भावात्मक संस्मरण मे द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है कि उनमे काव्य स्रोत के सूख जाने का कारण वैयक्तिक प्रतिभा का अभाव न होकर सावजनिक था। शोषण तथा पीडा ने उन्हे विरस मा बना दिया था।[1] उन पर अपने परिव्राजक पिता तथा मीरा की सी साधिका बाल विधवा बहिन की सस्कृति कला और करुणा की छाप पडी। बाल्यकाल म गुप्त जी की कविता से प्रभावित थे तथा गाधी के आदर्शों ने भी उनम आदश के प्रति अनुराग जगा दिया। इसके अतिरिक्त ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ के मधुर अध्यात्म और स्वामी सत्यदेव के साहित्य से उन्हें उदबोध तथा उत्साह प्राप्त हुआ।[2] प्रभात से सन्ध्या की ओर भावात्मक सस्मरण मे लेखक ने स्वय सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का दिग्दशन करते हुए स्वय के जीवन म कल्पना की उडान भरी है। उनकी कुटिया मे गाहस्थिक सम्बन्धों की कोई भी शृखला न थी। उनका जीवन विरस एव एकाकी हो गया था। इसके साथ ही जीवन के लिए अन्न एव अवलम्बन का भी अभाव ही था। उन्होने अपने जीवन की तुलना चाल्स लम्ब से की है जो कल्पना म ही अपने गाहस्थिक क्षेत्र को विस्तृत करके उनमे बाल्य चपलता, ममता स्नेह के आगार का रसास्वादन करता था। अपने दाम्पत्य सुख की लालसा म लेखक भी जीवन मे कल्पना की उडान अपनी जाग्रतावस्था मे करता है। स्वप्नो मे बहिन के दशन उन्हे अवश्य ही हो जाते थे जो एक झलक दिखा कर गायब हो जाया करती थी। एक लम्बी अवधि तक साहित्य क्षेत्र मे रहने पर भी अपने सूनेपन के कारण तथा सामाजिक विहचिता के कारण इस उदरम्भि युग में उनका लेखन काय बन्द हो गया। अपने जीवन के अभाव को वह समाज म तथा अन्य परिवारो म भी अनुभव करते। यही कारण है कि आज परिवार विशृखल होते जा रहे हैं। मनुष्य आत्मद्रोही तथा समाजद्रोही होता जा रहा है। इसके साथ ही उसम धार्मिक सवेदना का भी अभाव है। लेखक अपने निरवलम्ब जीवन के अन्तिम क्षणों के प्रति भी चिंतित हो उठा है। शेष सम्पन्न भावात्मक सस्मरण म राष्ट्रकवि बाबू मैथिली शरण गुप्त से परिचय एव उनसे प्राप्त अन्तिम पत्र का उल्लेख किया है। वही पत्र अब उनके अन्तिम सस्मरण रूप म शेष सम्पदा है। गुप्त जी से उनका परिचय १९२५ म हुआ था। गुप्त जी की जन्मभूमि चिरगाव जाने का उन्हें कभी अवकाश न मिला। लेकिन सन् १९३९ म बहिन क देहावसान के उपरान्त निरवलम्ब हो जाने पर तथा निजनता एव उदासीनता क आधिक्य म प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सवेदनशील गुरुजन गुप्त जी स परामश एव पथप्रदशन क लिए पत्र लिखा जिसके उत्तर म उन्होने बहुत सक्षिप्त प्रेरणात्मक पत्र लिख कर उन्हे आमन्त्रित किया तथा अपनी शुभकामना उन्होंने सन १९६१ म वामन्ती के अभिनन्दन विशेषाक के लिए भेजी थी। 'युग सकट

---

१ स्मृतियां और कृतियां', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १३।
२ वही पृ० १४।

वचारिक सस्मरण मे निराला क व्यक्तित्व की विचित्रता का अकन, उनकी साहित्यिक पृष्ठभूमि म यथाथ जीवन का तुलनात्मक रूप अकित हुआ है। वह प्रगतिशील नयी पाढा के उत्क्रान्त कवि थे जिनका जीवन सवथा अभावग्रस्त रहा। निराला जी क देहावसान क पूव वसन्त पचमी क अवसर पर काशी जान पर द्विवेदी जी उनक दशनाथ गय। उस समय वह अस्वस्थ थे। इस अस्वस्थता न उनक तेजस्वी मन को जर्जरित बना दिया था जो काव्य म इतना ओजस्वी एव उच्छ खल है। जीवन के अभावा न उन्हें अपनी अस्वस्थता से पूव ही मुर्दा बना लिया था। अपने आप स उब की प्रतिक्रिया स्वरूप ही उनका स्वभाव विचित्र था। उनके तेजोद्दीप्त व्यक्तित्व का यह जीवन्मृत रूप सम्भवत मनोवनानिक दष्टि से सामाजिक व्यवधाना क फलस्वरूप ही था। छायावादी कविया म किसी का भी जीवन सुखमय न था। पन्त न भी 'युग वाणी' म सूनपन के अनुभव क कारण उसका बौद्धिक समाधान दिया। इसी प्रकार महादवी ने भी अपने सूनेपन को आसुआ से धोकर अभिशापा को ही उज्ज्वल वरदान बना दिया। द्विवेदी जी की दृष्टि म छायावादी कवि अपनी भावुकता के कारण ही विकल थ। वस्तुत राजनीतिक सामाजिक धार्मिक आर्थिक और वयक्तिक दिशाओ स युग युग से कोई ऐसी ऐतिहासिक शून्यता (सहयाग शून्यता) चली आ रही है जिसने पुज पुज पुजीभूत होकर कवियो बुद्धिजीविया और जनता के जीवन को रिक्त कर दिया है।[1] निराला जी की प्रथम स्मृति 'निराला जी मरी दष्टि म' तथा 'निराला जी जीवन और काव्य' आदि साहित्यिक सस्मरणा मे द्विवेदी जी न निराला जी के प्रथम परिचय एव उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की विवेचना का अपनी सूक्ष्म विश्लेषणात्मक दष्टि क अनुसार निदशन किया है। अनमिल आखर पन्त जी और मैं साहित्यिक सस्मरण मे द्विवेदी जी क बचपन की करुण अनुभूतिया के कारण पन्त की सुकुमार भावनाआ स आप्लावित एव प्रेरित होन का चित्रण है। सन १९२६ म द्विवेदी जी पन्त जी के दशनाथ प्रयाग गए जहा वह अपने उद्देश्य मे सफल भी हुए। अपनी शारीरिक मानसिक असमयता तथा सामाजिक विषमता क कारण द्विवदी जी पन्त जी के सम्मुख अस्पष्ट से ही रहे यद्यपि पन्त जी का व्यक्तित्व एव साहित्य उनके सामने स्पष्ट हो चुका था। युग परिवतन न यद्यपि दोना म ही कुछ परिवतन ला दिया लकिन विचार की दष्टि स उनम साम्यता थी। नेहरू जी की अन्तिम स्मृति भावात्मक सस्मरण म द्विवदी जी न नहरू जी के निकट परिचय क अभाव मे भी उनकी आत्मीयता के बोध का वणन किया है। इसम लखक न स्वय नहरू जी के प्रत्यक्ष दशन का उल्लेख किया है जो सन १९६३ म विजयादशमी क अवसर पर रामलीला के मैदान म सम्भव हो सका था।

---

१ स्मृतिया और कृतिया श्री शान्तिप्रिय द्विवदी पृ० ३०।

द्विवेदी जी के संस्मरण और हिन्दी संस्मरण साहित्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक युग म हिन्दी साहित्य की प्राय सभी प्रमुख गद्यात्मक विधाओ की भाति संस्मरण का उद्भव भी भारते दु युग म हुआ। भारत दु काल म स्वय भारते दु हरिश्च द्र ने 'एक कहानी, कुछ आप बीती कुछ जग बीती' शीर्षक से जो रचना आत्म कथात्मक शली म प्रस्तुत की है वह भी मूलत संस्मरणात्मक तत्वो स युक्त है और उसमे समकालीन समस्याओ के प्रति व्यग्यात्मकता की भावना मिलती है। इस युग म कुछ अ य रचनाए विशेष रूप स कार्तिक प्रसाद खत्री लिखित दामोदर राव की आत्म कहानी तथा श्री शालिगराम लिखित एक ज्योतिषी की आत्म कथा जसी रचनाए आत्मकथात्मक अथवा संस्मरणात्मक शली म ही लिखी गयी हैं। इस युग म यद्यपि स्वतत्र रूप स संस्मरण साहित्य का लखन नही हुआ परतु उपयुक्त कृतिया उसका स्वरूपगत आभास देती हैं। प्रमच द युग म अनेक लेखको ने कहानी स मिलत जुलते संस्मरण प्रस्तुत किए। इसके उपरान्त श्री शांतिप्रिय द्विवेदी क रचनाकाल म आत्मकथा आत्मसंस्मरण तथा यात्रा संस्मरण के रूप म अनेक लखको न स्वतत्र रचनाएँ प्रस्तुत की। इनम से जो आत्म कथा प्रधान रचनाए हैं वे मुख्यत धार्मिक आचार्यों, राजनीतिक नताओ समाज सुधारको तथा लखको के जीवन स सम्बन्धित हैं। आत्म कथात्मक कोटि की रचनाओ म श्री रामविलास शुक्ल लिखित 'मैं क्रान्तिकारी कस बना राजाराम लिखित 'मेरी कहानी घनश्याम दास बिडला लिखित 'डायरी क कुछ पृष्ठ ओंकार शरद लिखित मेरा बचपन, क हैयालाल माणिकलाल मुशी की आधे रास्ते सीधी चढ़ान' *'आत्मकथा (दो भाग)* तथा *'स्वप्न सिद्धि की खोज म'*, गुलाबराय लिखित मेरी असफलताए, च द्रभूषण लिखित 'अपनी अपनी बात जवाहरलाल नहरू लिखित मेरा बचपन तथा मेरी कहानी देवव्रत शास्त्री लिखित साहित्यकारो की आत्मकथा परमान द लिखित 'आप बीती तथा काले पानी क कारावास कहानी, भवानी दयाल स यासी लिखित प्रवासी की कहानी तथा प्रवासी की आत्मकथा महादव हरिभाइ देसाई लिखित डायरी (तीन भाग), मूलच द अग्रवाल लिखित पत्रकार की आत्मकथा', यशपाल लिखित सिंहावलोकन (तीन भाग) राजद्र कुमार लिखित 'मेरा बचपन तथा आत्मकथा', राहुल साकृत्यायन लिखित मेरी जीवन यात्रा, डा० श्यामसु दर दास लिखित मेरी आत्म कहानी' तथा आचाय चतुरसेन शास्त्री लिखित मेरी आत्म कहानी' आदि उल्लखनीय हैं। आत्म संस्मरणात्मक रचनाओ के अ तगत अनुग्रहनारायण सिंह लिखित मेरे संस्मरण अरुण लिखित महापुरुषो के संस्मरण क हैयालाल मिश्र लिखित भूल हुए चेहरे कपिल लिखित सूरत और सीरतें किशोरीदास वाजपेयी लिखित साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण क्षमच द्र सुमन लिखित साहित्यिको के संस्मरण गणेश प्रसाद लिखित पावन स्मृतिया नागाजुन लिखित साहित्यिको के संस्मरण, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश लिखित 'मैं इनसे मिला (दो भाग), प्रकाशच द्र गुप्त लिखित पुरानी

स्मृतियां और नय स्केच, बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित 'सस्मरण, व्रजलाल वियाणी लिखित 'जेल मे, भगवानदीन लिखित 'मर साथी, महादेवी वर्मा लिखित अतीत के चलचित्र', 'शृखला की कडिया' तथा 'स्मृति की रखाएँ, महावार प्रसाद अग्रवाल लिखित 'साहित्यिक सस्मरण, महावीर प्रसाद द्विवेदी लिखित अतीत स्मृति, लक्ष्मी नारायण गर्दे लिखित 'जेल मे चार साल, विजय लक्ष्मी पडित लिखित 'जेल के वे दिन' शचीन्द्र सान्याल लिखित बन्दी जीवन (दो भाग) शिवरानी देवी लिखित प्रेमचन्द घर मे, श्रीराम शर्मा लिखित '१९४२ क सस्मरण, सत्यदेव परिव्राजक लिखित 'नई दुनिया के मेरे सस्मरण तथा यूरोप की सुखद स्मृतिया, सहजानन्द सरस्वती लिखित किसान सभा के सस्मरण, सीताराम सक्सरिया लिखित स्मृति-कण', सोहनलाल लिखित अतीत की स्मृतिया, और हरिभाऊ उपाध्याय लिखित काव्य सस्मरण' तथा 'पुण्य सस्मरण' आदि कृतिया इस युग के सस्मरण साहित्य क अन्तगत परिगणित की जाती हैं।

यात्रा साहित्य से सम्बन्धित जो रचनाएँ उपलब्ध हैं उनम पूरनचन्द नाहर का 'जसलमेर, लाला सीताराम का चित्रकूट की झाकी, वासुदेव शरण अग्रवाल का श्रीकृष्ण की जन्मभूमि, भवानीदयाल सन्यासी लिखित 'दक्षिण अफ्रीका के मेरे अनुभव', राहुल सांकृत्यायन की मरी तिब्बत यात्रा' तथा मेरी ईरान यात्रा, धरम चन्द्र लिखित यूरोप म सात मास, महश प्रसाद की मरी ईरान यात्रा, सत्यनारायण की 'रोमाचकारी रूस अमृतलाल चक्रवर्ती की विलायत की चिट्ठी, कन्हैयालाल का हमारी जापान यात्रा, लाला कल्याण चन्द्र लिखित श्री बद्रीनाथ यात्रा काका कालेलकर लिखित हिमालय की यात्रा, केसरीमल अग्रवाल लिखित दक्षिण तथा पश्चिम के तीर्थ स्थान, गणेश नारायण सोमण लिखित मरी यूरोप यात्रा, गदाधर सिंह लिखित 'चीन म तेरह मास, गोपालराम गहमरी की लका यात्रा का वणन सठ गोविन्द दास की पृथ्वी की परिक्रमा, 'जवाहरलाल नेहरू की आखो देखा रूस जी०पी० जोशी लिखित साइकिल यात्रा, जमिनी मेहता लिखित अमेरिका यात्रा तथा 'श्याम देश की यात्रा' ठाकुर दत्त मिश्र की लन्दन की एक झलक ठाकुर दत्त शर्मा दधीचि की चारो धाम की यात्रा' तोताराम सनाढय की फिजी म मेरे इक्कीस वर्ष, दामोदर शास्त्री लिखित मेरी जन्मभूमि यात्रा, देवदत्त शास्त्री लिखित मेरी काश्मीर यात्रा, देवी प्रसाद खत्री लिखित 'बदरिकाश्रम यात्रा, धमचन्द्र सरावगी लिखित 'यूरोप म सात मास, धमरक्षित भिक्षु लिखित नेपाल यात्रा तथा 'लका यात्रा, धीरेन्द्र वर्मा लिखित 'यूरोप के पत्र डा० भगवतशरण उपाध्याय लिखित 'कलकत्ता से पीकिंग, भगवानदास वमा लिखित लदन यात्रा, मगलानन्द पुरी 'सन्यासी' लिखित अफ्रीका की यात्रा रामनारायण मिश्र तथा गौरीशकर प्रसाद लिखित योरूप यात्रा छ मास', सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय लिखित अरे यायावर रहेगा याद तथा हरिकृष्ण झाझडिया लिखित 'मेरी दक्षिण भारत यात्रा

आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। जीवन साहित्य के अन्तर्गत रामनारायण मिश्र की 'महादेव गोविन्द रानाडे, माधव मिश्र की 'विशुद्धानन्द चरितावली, प० सत्यदेव की 'स्वामी श्रद्धानन्द' सत्यदेव विद्यालंकार की लाला देवराज', गोपीनाथ दीक्षित की 'जवाहरलाल नेहरू, रघुवंश भूषण शरण की रूपकला प्रकाश, गौरीशंकर चटर्जी की 'हृप वधन, विश्वेश्वरनाथ रेनु की राजा भोज, गंगाप्रसाद मेहता की 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, गोपाल दामोदर तामस्कर की शिवाजी की योग्यता' ब्रजरत्नदास की बादशाह हुमायू हरिहरनाथ शास्त्री की 'मीरकासिम, चन्द्र शेखर शास्त्री की हिटलर महान, सदानन्द भारती लिखित महात्मा लनिन नारायण प्रसाद अरोड़ा लिखित डी० वेलेरा शिवकुमार शास्त्री की नेलसन की जीवनी, प्रेमनारायण अग्रवाल की भवानी दयाल सन्यासी जगदीश नारायण तिवारी की सुभाषचन्द्र बोस, घनश्याम दास बिड़ला की 'श्री जमुनालाल जी, त्रिलोकीनाथ सिंह की 'स्टालिन, अक्षयकुमार मिश्र की सिराजुद्दौला अक्षयवर मिश्र की 'दुर्गादत्त परमहंस', अनूपलाल मंडल की महर्षि रमण तथा श्री अरविंद, इन्द्र विद्यावाचस्पति की जवाहरलाल नेहरू, ईश्वरी प्रसाद माथुर की तानसेन ईश्वरी प्रसाद शर्मा की लोकमान्य बालगंगाधर तिलक उदयभानु शर्मा की 'देवी अहिल्याबाई उमादत्त शर्मा की शंकराचार्य, कमलधारी सिंह की भारत की प्रमुख महिलाएं कृष्ण रमाकांत गोखले की झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा वीर दुर्गादास गंगाप्रसाद गुप्त की दादा भाई नौरोजी तथा रानी भवानी चतुर्भुज सहाय की भक्तवर तुकाराम' दीनानाथ व्यास लिखित सरदार वल्लभ भाई पटेल दुर्गाप्रसाद रस्तोगी लिखित माननीया श्रीमती पंडित', देवदत्त शास्त्री लिखित 'चन्द्रशेखर आजाद बाबूराव जोशी की 'तपोधन विनोबा' रामनाथ सुमन की 'हमारे नेता तथा हमारे राष्ट्र निर्माता' लक्ष्मीसहाय माथुर की 'बेंजामिन फ्रेंकलिन सत्यव्रत की एब्राहम लिंकन शिवनन्दनसहाय की गौरांग महाप्रभु प्रभुदत्त की चैतन्य चरितावली, हरिरामचन्द्र दिवाकर' की सन्त तुकाराम, अगरचन्द नाहटा की 'जिनचन्द्र सूरि' एवं मंगल लिखित 'भक्त नरसिंह मेहता' आदि कृतियां उल्लिखित की जा सकती हैं।

रिपोर्ताज घटना प्रधान होता है। उसमें भाव प्रवणता एवं विचारात्मकता का अभाव होता है। यही कारण है कि रिपोर्ताज शब्द रिपोर्ट पर आधारित है। वर्ण्य विषय के यथातथ्य वर्णन में कलात्मक तथा साहित्यिक विशिष्टताओं का रूप अन्तर्निहित होने पर वह रिपोर्ताज कहलाता है। हिन्दी रिपोर्ताज लेखकों में प० श्रीनारायण चतुर्वेदी डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० रांगेय राघव डा० प्रभाकर माचवे तथा अमृतराय आदि साहित्यकारों के नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। इससे यह स्पष्ट है कि श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'पथ चिह्न परिव्राजक की प्रजा 'प्रतिष्ठान तथा 'स्मृतियां और कृतियां में जो संस्मरण प्रस्तुत किये हैं वे समकालीन संस्मरण साहित्य की प्रायः सभी विशेषताओं से युक्त हैं। 'पथचिह्न के आत्मपरिचयात्मक

सम्मरणात्मक लखो मे द्विवेदी जी ने अपना तथा अपनी एक मात्र स्वर्गीया बहिन के जावन का परिचय दिया है। उनकी लेखन शली का यह रचनात्मक प्रयास सवथा अपनी मौलिकता एव नवीनता मे अक्षुण्ण है। लेखक न यह परिचय अत्यन्त ही कलात्मक रूप मे देत हुए आधुनिक जीवन के कटु यथार्थो का रूप प्रस्तुत कर जीवन मे कला और सस्कृति के अभाव की ओर सकेत किया है। स्मृतिचिन्तन' शीषक लेख म लेखक न अपनी वाल विधवा बहिन को स्मरण किया है जो लेखक की दष्टि म मूर्तिमती तपस्या, साक्षात पवित्रता जीवित करुणा, रामायण, गीता तथा गगाजली था। लेखक के शब्दो म 'बहिन तुम कल्पवती थी, तुम युग युग अजर अमर हो आज तुम्हारी करुणा अदेह होकर भी इस पृथ्वी के दुख दैन्य म सदेह है। पृथ्वी के कोटि कोटि दरिद्रनारायणो मे मैं तुम्हें प्रणाम करता हू। तुम उन्ही के बीच सुजलाम सुफलाम शस्यश्यामलाम होकर उगो मलयज शीतलाम होकर उनके सन्तप्त हृदय का परस करो।'[1] पथचिन्ह' सस्मरण के 'वह स्वर्गीय निधि' तथा 'आहुति शीषक लेखा म भी आत्मपरिचयात्मकता का बोध होता है। इसमे लेखक न अपनी अबोधता एव निरीहता का परिचय देकर अपनी मा, पिता बहिन तथा परिवार के अन्य भाई बहिनो का साकेतिक परिचय दिया है। अपनी बाल विधवा बहिन की धार्मिक परन्तु सामाजिक प्रवृत्ति की ओर सकेत करते हुए द्विवेदी जी न लिखा है 'सत्य श्रम, शिल्प यही उसके जीवन के धन थे। यो कह धम ही उसका सवस बडा धन था। भगवान उसके साक्षी विनायक थे। धम पर अटल श्रद्धा रखते हुए भी वह धमभीरु नही धम प्राण थी। इसीलिए उसमे अन्तम तेजस भी था। प्रकृति म पावती की तरह कोमल और पौरुष म रुद्राणी की तरह दुद्धष थी। यदि वह शरद की सुरवाला थी तो वही शिवानी भी थी। उसकी स्वावलम्बिनी और एकाकिनी आत्मा प्रकृति पुरुष स्वय हो गयी थी। इस द्वित्व व्यक्तित्व म एकमात्र शिवत्व की शुभकामना के कारण वह सवमगला थी।'[2]

द्विवेदी जी के सस्मरणात्मक लेखो की प्रमुख विशेषता आत्मपरिचयात्मकता के साथ विचारा की प्रधानता तथा भावुकता है। उदाहरण के लिए पथचिन्ह' कृति का 'अभिशापा की परिक्रमा लेख, परिव्राजक की प्रजा' कृति का 'स्मृति पूजन' लख तथा स्मृतिया और कृतिया सस्मरण कृति के प्रतिक्रिया, प्रभात स सन्ध्या की ओर', शप सपदा' तथा नेहरू जी की अन्तिम स्मृति आदि लखो म आत्मकथात्मक रूप के साथ लेखक की भाव प्रवणता का भी परिचय मिलता है।

परिव्राजक की प्रजा' कृति के स्मृति पूजन' शीषक लेख मे लेखक की भावुक कल्पना का परिचय मिलता है 'कितने दिन कितने मास कितने वष बीत गये। बहिन

---

१ पथचिन्ह, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३।

२ वही, पृ० २६।

युग-युग की पीड़ित मानवता को उसके रुग्ण शरीर से मुक्ति देनी चाहिए। भावी युग में आत्मा (छायावाद और गांधीवाद) की अभिव्यक्तियाँ (भाव और संस्कृति) की चेतना का प्रकाश था वह प्रस्फुटित होती रहेगी किन्तु वे समाजवादी मानव के उत्फुल्ल मुखमंडल पर ही स्वस्थ मुस्कान अंकित कर सकेंगी अभी तो वे मुरझाए मुखों पर पूनों की म्लान छवि जगी हैं।'[1] लेखक ने आधुनिक युग की विभिन्न समस्याओं पर विचार किया है जो वस्तुतः यांत्रिक कारणों से उत्पन्न हुई हैं। आधुनिक युग में विज्ञान प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है। यही कारण है कि वह अपने मानवोचित गुणों से दूर होता जा रहा है। कृषि से दूर जा रहा है। आज टकसाली सिक्कों का महत्व दिनानुदिन बढ़ता जा रहा है तथा मनुष्य पशु से पशुतर होता जा रहा है 'समस्या वाणिज्य की नहीं कृषि की है (अकाल ग्रस्त देशों में प्रत्यक्ष रूप से धनाढ्य देशों में प्रच्छन्न रूप से)। कृषि और वाणिज्य का असाध्य भार पड़ जाने के कारण सामाजिक जीवन में गत्यावरोध उत्पन्न हो गया है। यही गत्यावरोध आर्थिक दुष्परिणामों में प्रकट हो रहा है। आज मनुष्य सामाजिक प्राणी नहीं बल्कि आर्थिक प्राणि है। समाज नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। आर्थिक हानि-लाभ को लेकर परस्पर जुड़न-टूटन वाले सम्बन्धों का नाम ही समाज रह गया है। निम्न वर्ग से लेकर उच्च वर्ग तक सभी एक ही पूँजीवादी टाइप फाउन्डरी में ढले हुए हैं। टकसालों में ढले हुए छोटे-बड़े सिक्के यदि मानव आकार धारण कर एक दूसरे से स्वार्थ संघर्ष कर बठें तो उस संघर्ष का जो रूप होगा वही आज शोषित तथा शोषकों तथा दीनों और सम्पन्नों के संघर्ष का है। सिक्कों के संघर्ष से द्रव्यागार में जो अशांति फलती वही अशांति आज वर्गों के संघर्ष से समाज में फली हुई है।'[2] स्पष्ट है कि आज मानव में संस्कृति का सर्वथा अभाव होता जा रहा है। संस्कृति के पुनर्जागरण के लिए भी रचनात्मक कार्यों की आवश्यकता है सैद्धांतिक विश्लेषण की नहीं। आजकल भवनों संग्रहालयों तथा सांस्कृतिक केन्द्रों के होते हुए भी जन मन का परिष्कार नहीं हो रहा है। इसके साथ ही विशिष्ट जन भी प्रायः जीवन के उसी धरातल पर अवस्थित जान पड़ते हैं। सभी दूषित कुत्सित तथा असंस्कृत हैं। इसके लिए जनता में सांस्कृतिक चेतना की आवश्यकता है इसके लिए मानव के आन्तरिक सुधार की आवश्यकता है जो आदेशों निषेधों और किसी विधि विधानों से नहीं हो सकता। 'आवश्यकता इस बात की है कि कर्त्तव्य के प्रति मनुष्य की अन्तःप्रेरणा जगाई जाय। हमें नागरिकता नहीं, संस्कारिता चाहिए। नागरिकता में पारस्परिक स्वार्थों का सामूहिक संगठन है संस्कारिता में सामाजिक चेतना का अन्तः प्रस्फुरण। संस्कारिता के बिना नागरिकता पुलिस वकील जज आदि सरकारी अथवा अर्द्ध सरकारी पदाधिकारियों की कृत्रिम

---

१ परिव्राजक की प्रजा श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २४५।

२ 'प्रतिष्ठान' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ४५-४६।

क्तव्यपरायणता की तरह है। पुलिस की परेड, सेना की कवायद और कालेजो युनिवर्सिटियो म सैनिक शिक्षा से अधिक आवश्यक है सस्कारिता जगाना। सरकस की टर्निंग से हमारा काम नही चलेगा। हम मनुष्य को मानसिक स्नान करा कर दुष्प्रवत्तियो का परिष्कार करना है। सस्कारिता का अकुर जनता के अ त करण स फूटना चाहिए। सडको पर झाडू लगाने और हरिजनो का उद्धार करने से जन मन का परिष्कार नही हो सकेगा। बाहर की ग दगी तो लाक्षणिक है सबसे बडी ग दगी मनुष्य के भीतर उसकी दुष्प्रवत्तियो म है।"[1] इसके लिए लेखक ने जीवन म कला और सस्कृति के प्रति मानव मे अनुराग जाग्रत करने की प्रेरणा पारिवारिक तथा सामाजिक शिक्षा के माध्यम से माना है। लेखक ने जनता के स्वावलम्बन के लिए गाधीवाद एव कृषि को महत्व दिया है।

लेखक के सस्मरण साहित्य की अन्यतम विशेषता उसके साहित्यिक सस्मरण हैं। इस दृष्टि से परिव्राजक की प्रजा के प्राय अधिकाश लेख साहित्यिक आत्म कथात्मक रूप मे हैं। साहित्यिक आत्मकथात्मकता का रूप इस पुस्तक के दूसरे खड उत्तरकाल म परिलक्षित होता है जब कि इसके प्रथम खड बाल्यकाल म लेखक ने आत्मपरिचयात्मक लेखो को सगृहीत किया है। परिव्राजक की प्रजा के अतिरिक्त इस कोटि के लेख 'प्रतिष्ठान कृति का त्रिवेणी के अचल म तथा स्मृतियाँ और कृतियाँ के 'निराला जी की प्रथम स्मृति, 'निराला जी मेरी दृष्टि म निराला जी जीवन और काव्य, अनमिल आखर प त जी और मैं आदि हैं जिनमे लेखक का साहित्यिक परिचय प्रतिभासित होता है। साहित्यिक आत्मकथा प्रधान लेखो म द्विवेदी जी ने अपने जीवन परिचय के अतिरिक्त विभिन्न साहित्यकारो से साक्षात्कार उनका अ तर जीवन तथा अपने साहित्य पर प्रभाव को स्पष्ट किया है। लेखक ने अपने जीवन म हुए विभिन्न सुखद और कटु अनुभवो को भी प्रत्यक्ष किया है। परिव्राजक की प्रजा सस्मरणात्मक कृति म 'मुक्त पुरुष', मगुण शिशु', मात विसजन वनदेवी का अचल 'साधना की साध्वी, शल्य क्रीडा, 'लीला और मेला, अप्रत्या शित निमत्रण अ त प्रस्फुटन और वातावरण' जीवन के तट पर परिपाटी का परित्याग आधार की खोज मे 'कुतूहल और प्रेरणा, नताओ की झाकी, अलक्षित भविष्य की ओर 'एक सामाजिक उद्यान, आत्मपरिणति 'सस्कृति की आत्मा तथा 'बहिन का बलिदान आदि आत्मपरिचयात्मक सस्मरण के अ तगत आते हैं तथा आन द परिवार, आकाक्षा के पथ पर' रोमान्टिक अनुभूति मानसिक स्थिति भावना का केन्द्रीकरण, अध्ययन और अनुभव छायावाद की स्थापना, गौरव और हिमानी यागायोग तथा वह सुखमय प्रवास' आदि साहित्यिक आत्मकथात्मक सस्मरण के अ तगत आते हैं।

---

१ 'प्रतिष्ठान, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ८६ ८७।

द्विवेदी जी ने सस्मरण साहित्य म अपनी इन अनेक विशिष्टताओ के अतिरिक्त अपनी नवीन मौलिकता तथा रचनात्मक प्रवत्ति का द्योतन करते हुए 'प्रतिष्ठान' सस्मरण कृति म जिसम जीवन और साहित्य का सस्थापन हुआ है एक रिपार्ताज भी सगहीत किया है जो यात्रा सस्मरण के अतगत ही अभिहित किया जा सकता है। 'मिथिला की अमराइया म शीपक लख म लखक ने यात्रा सस्मरण तथा रिपोताज के समन्वयात्मक रूप की प्रतिस्थापना की है। द्विवेदी जी ने इसम जनकपुर धाम की अपनी यात्रा का वणन करते हुए उस विशेष स्थल की प्राकृतिक राजनीति और सस्कृति, वर्षा मगल आदि के अतगत मिथिला की अमराइया म बसी जनकनन्दिनी की पावन जन्मभूमि जनकपुर धाम के विभिन्न सास्कृतिक कलात्मक प्रकृति सुषमा एव उसके उन्मुक्त वातावरण के साथ उसके नसर्गिक सौन्दय का चित्र प्रस्तुत किया है। वस्तुत यह लेख लेखक की रचनात्मक प्रवत्ति के साथ ही अपने म लेखक की कोमल भावनाओ को भी आत्मसात किय हुए है।

द्विवेदी जी के सस्मरण और समकालीन प्रवृत्तिया

आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र म द्विवेदी जी का रचनाकाल प्रेमचन्दोत्तर युग स सम्बधित है। इस युग म ही वस्तुत सस्मरण के कलात्मक स्वरूप का आविर्भाव और विकास हुआ। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के सस्मरण प्राय उन सभी प्रवत्तियो का स्वरूप उपस्थित करते हैं जो समकालीन सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे विद्यमान था। यद्यपि इसके पूव युग म जो सस्मरण लिखे गय वे या तो कहानी की कोटि के थे और या निबन्धो की कोटि के। द्विवेदी जी के सस्मरण इनके विपरीत निबन्धात्मक, आत्मचरितात्मक साहित्यिक, यात्रा विवरणात्मक होने के साथ साथ विशुद्ध सस्मरणो के रूप म भी उपलब्ध होते हैं। नीचे सस्मरण की समकालीन प्रवत्तिया की पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] साहित्यिक सस्मरण श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य म साहित्यिक सस्मरणो की प्रवत्ति स्पष्टत परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी अपने जीवन काल मे जिन साहित्यकारो से परिचित हुए एव जिनका उन पर विशेष प्रभाव पडा है प्राय ऐसे समस्त सस्मरण उसी कोटि के अन्तगत रखे जा सकते है। इस दृष्टि से 'परिव्राजक की प्रजा सस्मरण के उत्तर काल खड के अनेक लेख इस कोटि के अतगत परिगणित किये जा सकते हैं जिनमे आनन्द परिवार आकाक्षा के पथ पर' 'रोमैन्टिक अनुभूति 'मानसिक स्थिति, 'भावना का केन्द्रीकरण 'अध्ययन और अनुभव छायावाद की स्थापना, वह सुखमय प्रवास आदि मुख्य हैं। प्रतिष्ठान सस्मरण मे त्रिवेणी के अचल मे' शीषक साहित्यिक सस्मरण मे लेखक ने निराला पन्त और महादेवी आदि शीपको मे छायावादी कवियो से परिचय एव स्वय पर उनके

पडे प्रभावो को स्वीकार करते हुए जीवन मे हुए प्रत्यक्ष अनुभवा को सस्मरण रूप म प्रस्तुत किया है। इसके पूव लेखक न इसी लेख के प्राक्कथन म अपने अबोध और सरल जीवन के साथ समाज के सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक परिस्थितिया म त्रस्त मानव जीवन का चित्र प्रस्तुत करते हुए विभिन्न साहित्यिक वादा के यथाथ रूप को प्रत्यक्ष किया है। इसके अतिरिक्त स्मृतिया और कृतिया सस्मरण म निराला जी की प्रथम स्मृति निराला जी मरी दष्टि म, निराला जी जीवन और काव्य' तथा 'अनमिल आखर पन्त जी और मैं शीषक साहित्यिक सस्मरणा म लेखक न निराला जी से हुए प्रथम परिचय को स्मति म साकार करते हुए उनके जीवन और काव्य का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त लेखक की दष्टि म निराला जी के प्रति यथाथ दष्टिकोण को भी यह लेख प्रस्तुत करते हैं। निराला जी मेरी दृष्टि में' लेख म निराला जी के महाप्रयाण के उपरान्त तरुणावस्था म हुए उनके विधुर तथा आर्थिक अभावो से पूण जीण शीण जीवन मे लेखक अपन जीवन का साम्य पा जाता है। परन्तु पत जी की काव्यात्मक एव सुकुमार कोमल भावनाओ के कायाकाश मे लेखक को अपनी मानसिक तप्ति का आभास हुआ। समय के व्यवधान तथा युग-परिवतन के साथ द्विवेदी जी और पत जी म व्यावहारिक रूप म यद्यपि अधिक परिवतन हो चुके हैं परन्तु विचारा मे वह अनमिल आखर ही सदव बने रहे।

[२] आत्मपरिचयात्मक सस्मरण लखक का अपन जीवन से सम्बद्ध वणन आत्मकथात्मक सस्मरण कहलाता है। इसम लेखक अपन अतीत जीवन और यहा तक कि जन्म से अपने जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि मे विस्मत पृष्ठा को उदघाटित करता है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरण मे लेखक के अपने जीवन का महत्व दर्शित रहता है, तथा लेखक अपने जीवन के सुखद और कटुकर घटनाओ को अत्यन्त ही रोचक एव विवेकपूण ढग से व्यक्त करता है। इस कोटि की रचनाओ में कथा का प्रमुख पात्र लेखक स्वय होता है। वस्तुत इसमे घटनाओ और परिस्थितिया का केवल वही रूप वर्णित होता है जो उसके जीवन क्रम को प्रभावित सचालित या नियन्त्रित करता है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरण लेखन के मूल म लेखक की कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा अवस्थित होती है। डायरी जनल आदि इसी के स्फुट रूप हैं। हिन्दी के सवप्रथम आत्मकथात्मक सस्मरण में जैन कवि बनारसीदास की अधकथा परिगणित की जाती है। सपूण हिन्दी साहित्य म इसका रूप यत्र-तत्र बिखरा हुआ दष्टिगोचर होता है परन्तु आत्मकथात्मक सस्मरण का व्यवस्थित रूप आधुनिक युग की देन है। अद्यतन युग म गद्य के अन्य रूपो के साथ इस रूप का भी प्रादुर्भाव हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुछ आप बीती, कुछ जग बीती, स्वामी दयानन्द के पूना व्याख्यान के अन्तगत अपन जीवन से सम्बद्ध सस्मरण, स्वामी श्रद्धानन्द का कल्याण पथ का पथिक' तथा अम्बिका दत्त व्यास का निज वत्तान्त आदि इसी कोटि के अन्तगत परिगणित

किये जाते हैं। अद्यतन युग में अनेक सम्बद्ध और स्फुट आत्मपरिचयात्मक संस्मरण लिखे गये हैं। सम्बद्ध रूप में लिखे आत्मकथात्मक संस्मरणों में श्यामसुन्दर दास की 'मेरी आत्म कहानी' तथा राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' आदि हैं तथा स्फुट रूप में लिखी महावीर प्रसाद द्विवेदी की आत्मकथा, सियारामशरण गुप्त की 'झूठ सच' तथा 'बाल्य स्मृतियाँ' आदि उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त आत्मपरिचयात्मक शैली में लिखे बनारसीदास चतुर्वेदी के 'संस्मरण' और 'हमारे अपराध', महादेवी वर्मा के 'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएँ' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'माटी की मूरतें' आदि भी इसी कोटि के अन्तर्गत उल्लिखित की जाती हैं। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के संस्मरण साहित्य में आत्मपरिचयात्मक संस्मरणों की प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। सम्बद्ध रूप में 'पथचिह्न' तथा 'परिव्राजक की प्रजा' में लेखक का आत्मपरिचयात्मक दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ है। स्फुट रूप में 'प्रतिष्ठान' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि संस्मरण कृतियों में भी इस कोटि की रचनाएँ संगृहीत हैं। 'परिव्राजक की प्रजा' लेखक की साहित्यिक आत्मकथा है अतएव इसके बाल्यकाल और उत्तरकाल के अधिकांश लेख इसी कोटि के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। 'पथचिह्न' में भी लेखक का अपना व्यक्तित्व ही उभरा है परन्तु लेखक अपनी बाल विधवा बहिन को विस्मृत नहीं कर सका है। 'पथचिह्न' के प्रारम्भिक लेखों में उसी का व्यक्तित्व अंकित है। 'प्रतिष्ठान' संस्मरण के 'बाल्य स्मृति' और 'पथ सन्धान' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' के संस्मरण खंड के 'स्मृति के सूत्र' आदि आत्मपरिचयात्मक रचनाओं में स्वयं लेखक का जीवन परिचय तथा विभिन्न पारिवारिक घटनाएँ निहित हैं। इन रचनाओं में लेखक ने जीवन में घटित घटनाओं एवं विभिन्न परिस्थितियों में अपने भावों की अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता, निष्कपट आत्मप्रकाशन तथा सहृदयता का परिचय दिया है। अपने जीवन परिचय के माध्यम से लेखक ने अपने युग का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। इन समस्त रूपों में लेखक का भावुक हृदय तथा विश्लेषणात्मक दृष्टि उद्भासित हुई है।

[३] **भावात्मक संस्मरण**—सामान्य संस्मरण से भिन्न भावात्मक संस्मरण में रागात्मकता की भावना की प्रधानता है। यद्यपि संस्मरण में बुद्धि और हृदय का परिपाक होता है परन्तु भावात्मक संस्मरण में बुद्धि की अपेक्षा हार्दिक भावनाओं के माध्यम से आत्मानुभूति की सफल व्यंजना होती है। इस कोटि के संस्मरण आत्मानुभूति को तीव्रता के साथ ही आगे बढ़ते हैं तथा अपनी सजीवता और रोचकता के लिए प्रसिद्ध होते हैं। कभी कभी लेखक अतीत जीवन की विभूतियों एवं श्रेष्ठ पात्रों को स्मरण करते हुए तथा अपने जीवन में उनके प्रभावों को स्वीकार करते हुए भावानुभूति से पूर्ण अपने हार्दिक भावों में ही विचरण करने लगता है। ऐसे समय में वह अपने उन क्षणों को सजीव कर लेता है जो समाप्तप्राय हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त अपने जीवन के ऐतिहासिक वातावरण का चित्र भी प्रस्तुत करता है। इस

कोटि के संस्मरणों में श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' की 'भूले हुए चेहरे' शीर्षक रचना परिगणित की जा सकती है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के संस्मरण साहित्य में संगृहीत अनेक लेखों में भावात्मक संस्मरण की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। 'पथचिह्न' कृति का 'अभिशापों की परिक्रमा' शीर्षक लेख, 'परिव्राजक की प्रजा' संस्मरण कृति का 'स्मृति पूजन' शीर्षक संस्मरण तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' संस्मरण कृति के 'प्रतिक्रिया', 'प्रभात से सध्या की ओर' 'शेष सम्पदा' और 'नेहरू जी की अंतिम स्मृति' आदि संस्मरणों में भावात्मक संस्मरण की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। लेखक के इन संस्मरणों में बुद्धि पक्ष की अपेक्षा हृदय पक्ष की प्रधानता है। 'अभिशापों की परिक्रमा' में द्विवेदी जी ने अपने जीवन का परिचय भावात्मक तथा आत्मकथात्मक शैली में दिया है। इसमें उन्होंने ग्रामीण जीवन और अपने बाल्य काल के वर्णन के माध्यम से प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य में अपनी भावुक कल्पना को प्रतिबिम्बित किया है। 'स्मृति चिन्तन' में द्विवेदी जी ने अपनी एकमात्र बाल विधवा बहिन की स्मृतियों को सजोया है। जीवन के अन्तिम क्षणों के निवास स्थलों को लेखक ने तीर्थ मान कर उनकी वन्दना पूजन आदि की है। अपने चित्त की एकाग्रता में भी लेखक उस सच्चिदानन्द स्वरूप बहिन में ही एकाग्र होता है। 'प्रतिक्रिया' शीर्षक भावात्मक संस्मरण में लेखक ने युग सकट के प्रति अपने जीवन एवं कार्यों के द्वारा प्रतिक्रिया की ओर भावात्मक स्तर पर चित्रण किया है। 'प्रभात से सध्या की ओर' में लेखक ने अपनी रागात्मक प्रवृत्ति का परिचय दिया है। लेखक ने अपने जीवन प्रभात के सौन्दर्यार्पण तथा सौन्दर्यानुराग से पूर्ण हृदय का जीवन के सान्ध्य बेला की ओर अग्रसर होने पर जीवन के यथार्थ की कठोर भूमि का चित्र प्रस्तुत करते हुए अपने जीवन की तुलना चार्ल्स लैम्ब से की है जो अपने काल्पनिक परिवार के सदस्यों से व्यवहार एवं वार्तालाप करता था और जिसने अपना काल्पनिक गृह बसा लिया था। लेखक चार्ल्स लैम्ब में अपने जीवन का साम्य प्राप्त करके स्वयं भी वैसे स्वप्न देखता है परन्तु क्षणिक। यथार्थ में लेखक के जीवन में एक रागात्मक सूनापन छा जाता है। लेखक ने इसमें अपने जीवन के सूनेपन से पूर्ण क्षणों साहित्य के क्षेत्र से निष्क्रिय तथा उदासीन होने आदि का भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। 'शेष सम्पदा' भावात्मक संस्मरण में लेखक ने अपनी अनुभूत्यात्मक प्रवृत्ति का परिचय देते हुए राष्ट्र कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त से परिचय तथा उनसे प्राप्त सवेदनात्मक एवं सहानुभूति से पूर्ण पत्रों का उल्लेख किया है। लेखक के पास उनकी एकमात्र शेष सम्पदा के रूप में केवल १९६१ के 'वासन्ती' के अभिनन्दन विशेषांक के लिए भेजी गयी शुभकामना से पूर्ण कविता ही रह गयी। 'युग सकट' संस्मरण में लेखक ने छायावादी कवियों के जीवन के दुखद एवं अस्वस्थ क्षणों का आभास तथा काव्य के माध्यम से उनके जीवन का परिचय प्राप्त किया है। कवियों बुद्धिजीवियों और जनता के जीवन में इसी के

माध्यम से लेखक ने युग संकट का बोध किया है। नेहरू जी की अंतिम स्मृति' में लेखक ने नेहरू जी के प्रत्यक्ष अंतिम दर्शन को भावविह्वल रूप में प्रस्तुत किया है।

[४] यात्रा विवरणात्मक संस्मरण यात्रा संस्मरण का सम्बन्ध मानव की स्वच्छन्द यायावरी प्रवृत्ति सौन्दर्य बोध की सूक्ष्मता तथा साहित्यिक मनोवृत्ति से है। मानव अपने इन विविध गुणों के कारण ही यात्रा करता हुआ उन्हें साहित्य की सामग्री के रूप में अंकित करता है। साहित्यिक मनोवृत्ति से पूर्ण मानवों के इस साहित्य सृजन में उनकी आत्मिक प्रेरणा कार्य करती है और यही कारण है कि यात्रा संस्मरण में संवेदनशीलता एवं भावुकता का भी आंशिक रूप में समावेश होता है। यात्रा संस्मरण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें लेखक केन्द्र में होकर भी अपने व्यक्तित्व को नहीं उभरने देता प्रत्युत वह यात्रा के मध्य आकर्षित करने वाले तत्वों को ही प्रमुखता देता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यात्रा विवरण लेख रूप में भारतेन्दु काल से ही अवलोकित होते हैं परन्तु अद्यतन युग में गद्य साहित्य की यह विधा भी अपने प्रांजल रूप में प्रत्यक्ष हो रही है। यात्रा साहित्य के अंतर्गत यात्रोपयोगी साहित्य में राहुल सांकृत्यायन की 'हिमालय परिचय' तथा 'मेरी यूरोप यात्रा', स्वामी प्रणवानन्द की 'कैलास मानसरोवर' शिवनन्दन सहाय की 'कैलास दर्शन' गोपाल नेवटिया की 'भूमंडल यात्रा' तथा भिक्षु धर्मरक्षित की 'नेपाल यात्रा और लंका यात्रा' उल्लेखनीय हैं। देश विदेश के व्यापक जीवन के संपूर्ण परिप्रेक्ष्यों को उभारने वाले साहित्य के अंतर्गत सत्यनारायण की 'आवारे की यूरोप यात्रा' यशपाल की 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' जगदीश चन्द्र जैन की 'चीनी जनता के बीच' राजवल्लभ ओझा की 'बदलते दृश्य' तथा गोविंद दास की 'सुदूर दक्षिण पूर्व' आदि उल्लिखित हैं। लेखक पर पड़े प्रभावों, प्रतिक्रियाओं तथा संवेदनाओं से पूर्ण यात्रा संस्मरण साहित्य के अंतर्गत भगवतशरण उपाध्याय की 'वो दुनिया' अमृतराय की 'सुबह के रंग' रांगेय राघव की 'तूफानों के बीच' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी की 'पैरों में पंख बाँधकर' और 'हवा पर' आदि, प्राकृतिक सौन्दर्य प्रधान यात्रा साहित्य में काका कालेलकर की 'हिमालय यात्रा' हंसकुमार तिवारी की 'भूस्वर्ग कश्मीर' श्रीनिधि की 'शिवालक की घाटियां' आदि उत्कृष्ट यात्रा संस्मरण साहित्य में समग्र जीवन की अभिव्यक्ति की कसौटी पर आने वाले लेखकों में अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद' देवेशचन्द्र दास के 'यूरोप' और 'रजवाड़े' तथा मोहन राकेश की 'आखिरी चट्टान तक' आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। अन्तिम कोटि के यात्रा साहित्य में वस्तुतः "महाकाव्य और उपन्यास का विराट तत्व, कहानी का आकर्षण, गीतिकाव्य की मोहक भावलीनता, संस्मरणों की आत्मीयता, निबन्धों की मुक्ति सब एक साथ मिल जाते हैं। उत्कृष्ट यात्रा साहित्य ऐसा ही होता है।"[1] इसके अतिरिक्त भावुक

---

१ हिन्दी साहित्य कोश' सं० धीरेन्द्र वर्मा पृ० ६१०।

शैली मे लिखे यात्रा सस्मरण मे देवेन्द्र सत्यार्थी की 'क्या गोरी क्या सावरी' और 'रेखाएँ बोल उठी, भदन्त आनन्द कौसल्यायन की जो न भूल सका' तथा जो लिखना पडा आदि भी इसी कोटि मे परिगणित किए जा सकते है। श्री शातिप्रिय द्विवेदी क सस्मरण साहित्य मे यात्रा सस्मरण का रूप यत्र तत्र लक्षित होता है। उत्कृष्ट यात्रा सस्मरण की समस्त विशिष्टताए द्विवेदी जी के यात्रा सस्मरण लेखा म विद्यमान हैं। उदाहरणाथ प्रतिष्ठान सस्मरणात्मक कृति के मिथिला की अमराइयो म शीषक यात्रा सस्मरण लेख मे आकषण भाव प्रवणता आत्मीयता तथा उन्मुक्त चित्रण आदि गुणा का समावेश हुआ है। इसमे लेखक ने मौलिक रचनात्मक प्रवत्ति का परिचय दते हुए गद्य साहित्य की अन्यतम नवीन विधा रिपोर्ताज का भी आश्रय लिया है।

[५] निबन्धात्मक सस्मरण सस्मरण साहित्य की एक प्रवत्ति उसका निबन्धात्मक रूप है। कुछ सस्मरण एसे भी होते हैं जिनमे लेखक विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थितियो से उत्पन्न समस्याआ को निबन्ध रूप मे प्रस्तुत करता हुआ अपने विचारो का प्रतिपादन करता है। निबन्ध की मुक्तता वस्था का इसमें आवास होता है। इन सस्मरणा मे आत्मीयता एव वयक्तिक आत्म निष्ठ दष्टिकोण होने के साथ इसमे लखक के विचारो की प्रगल्भता, अनुभवशीलता, प्रौढता तथा अभिव्यक्ति की मार्मिकता का गुण विद्यमान रहता है। लेखक इस काटि के सस्मरणा म ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का आश्रय लेता है। इन सस्मरणा मे निबन्ध की स्वच्छन्दता, सरलता घनिष्ठता आडम्बर हीनता तथा उन्मुक्त चित्रण सभी गुणा का समावेश होता है। निबन्धात्मक सस्मरणो की कोटि मे डा० गुलाब राय की मरी असफलताए उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस कोटि मे पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के रामलाल पडित और 'कुजविहारी, सियारामशरण के हिमालय की झलक', जनेन्द्र कुमार के ये और वे रामवक्ष बेनीपुरी के 'गेहूँ और गुलाब, डा० प्रभाकर माचवे के खरगोश के सींग' मे सगहीत निबन्धा की विशेषता स युक्त सस्मरण भदन्त आनन्द कौसल्यायन के रेस का टिकट मे सगहीत कुछ लेख, डा० कलाशनाथ काटजू के मैं भूल नही सकता' तथा डा० पदमसिह शर्मा 'कमलेश के 'मैं इनसे मिला आदि इसी कोटि के सस्मरण मान जा सक्त हैं। श्री शानिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य मे इस प्रवत्ति के दशन होते हैं। पथचिन्ह' म सगहीत 'व्यक्ति और समाज', रचनात्मक दृष्टिकोण और 'सौन्दय दशन, 'प्रतिष्ठान' मे सगहीत प्रकृति, सस्कृति और कला, 'युग निर्माण की दिशा छायावाद का प्राकृतिक दशन, 'सस्कृति की साधना और 'समकालीन साहित्य तथा स्मतिया और कृतिया म सगृहीत 'युग सकट' आदि लेखों म लेखक की निबन्धात्मक सस्मरण की प्रवत्ति परिलक्षित होती है। निबन्धात्मक सस्मरण की समस्त विशिष्टताएँ इसमे दर्शित होता हैं। पथचिन्ह के 'पयवक्षण' शीपक लेख मे प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध क परिणामस्वरूप उत्पन्न विभिन्न विभीषिकाआ को ज्वलत प्रश्न के रूप मे लेखक ने समकालीन सकट की ओर

सकेत किया है। आधुनिक युग की व्यापारिक एव आर्थिक मनोवत्ति का चित्र प्रस्तुत करते हुए द्विवेदी जी ने मानव की पशु प्रवत्ति के निराकरण म संस्कृति कला के जीवन म सामजस्य को महत्वपूण माना है। अन्त सस्थान म भी द्विवदा जी ने साहित्य सगीत और कला के अधीश्वरो को सम्बोधित कर देश की जागरूकता एव उत्थान मे सहयोग की प्रेरणा दी है। देश की विभिन्न क्षेत्रीय उन्नति के लिए द्विवेदी जी न अपने विचारो का प्रतिपादन किया है। परिव्राजक की प्रजा के व्यक्ति और समाज, रचनात्मक दष्टिकोण म द्विवेदी जी ने अपनी वयक्तिक समस्याओ को निबन्ध की पृष्ठभूमि म प्रस्तुत किया है। इसम लेखक ने युग की यथाथता एव उसकी कटु कठोर भूमि की ओर सकेत किया है। द्विवेदी जी ने तत्कालीन अनेक समस्याओ को प्रत्यक्ष करते हुए अपनी प्रतिकूल परिस्थितियो की ओर सकेत किया है। द्विवेदी जी ने कृषि ग्रामोद्योग आदि को जीवन की अनिवायता के रूप म इगित किया है जिससे विभिन्न समस्याओ का समाधान हो सकता है। सौन्दय दशन मे लखक की वचारिक मनोवत्ति के दशन होते हैं। लखक ने आधुनिक कुरूपता, रहन सहन से उत्पन्न समस्याओ आदि के निराकरण म सौन्दय कला सस्कारिता रज-तम सत्व आदि मानवीय प्रवृत्तिया के साथ सत्यम शिव सुन्दरम् का जीवन म महत्व आदि पर अपने वचारिक मतो का प्रतिपादन किया है। प्रतिष्ठान' के लेखो म द्विवेदी जी ने जीवन म प्रकृति संस्कृति और कला के महत्व कृषि, पृथ्वी के प्रति अनुराग, गाधी जी के ग्रामोद्योग आदि पर आधुनिक अशान्तमय जीवन के परिप्रेक्ष्य म विचार किया है। गाधी जी के सर्वोदय, ग्रामोद्योग और कृषि तथा पृथ्वी की उवरा शक्ति को सामाजिक जीवन की आवश्यकता क रूप म मानते हुए लखक ने युग निर्माण की दिशा मे पूजीवाद तथा मानव की व्यापारिक एव आर्थिक प्रवत्ति को बाधक माना है। लखक न जीवन म सस्कृति की साधना के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करके स्वराज्य के रचनात्मक कार्यों को महत्व प्रदान किया है। स्मतिया और कृतिया सस्मरण क युग सकट शीषक लख म साहित्यकारो क जीवन पर विभिन्न समस्याओ आर्थिक सामाजिक आदि के रूप को प्रत्यक्ष किया है। मानव समाज का प्रत्यक प्राणी आधुनिक युग की आर्थिक, व्यापारिक सामाजिक सभी समस्याओ स प्रभावित है।

द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सद्धान्तिक विश्लेषण

सिद्धान्तत सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कथात्मक दृष्टि स उपन्यास तथा कहानी के, वचारिक दृष्टि स निबन्धो के तथा भावात्मक दृष्टि स कविता क निकट है। उपन्यास तथा कहानी के निकट यह इसलिए होता है क्योंकि इसम समान रूप स कथात्मकता का रूप विद्यमान रहता है। यदि कोई कहानी या उपन्यास आत्मपरक होती है और उसम काव्यानुभूति की मुख्य रूप स अभिव्यक्ति होती है तो उसे सस्मरणात्मक कहा जाता है। इसी प्रकार स यदि कोई सस्मरण कथात्मक रोचकता स

परिपूर्ण होता है तो वह कहानी के निकट हो जाता है। इसी प्रकार से जो आत्म-चरितात्मक सस्मरण होते हैं व आत्मकथा के रूप म लेखक के अतीत जीवन का सिंहावलोकन प्रस्तुत करत हैं। जो सस्मरण निबन्धात्मक होते हैं व विचार प्रधान होते हैं। जा सस्मरण काव्यात्मक अधिक होते हैं वे भावात्मक सस्मरणा की कोटि म रखे जात हैं। इस दृष्टि से अनुभूत्यात्मकता अथवा स्वानुभूति की प्रधानता, वणनात्मकता, विवरणात्मकता, वचारिकता भावात्मकता यथाथता कल्पनात्मकता, आदि के साथ विषय क्षेत्र भाषा तथा शली आदि तत्व ही शेष सस्मरण की कसौटी होनी हैं। यहा पर इन्ही के आधार पर द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

[१] वचारिकता द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य म अनक स्थलो पर गम्भीर विचार तत्वो की निहिति मिलनी है जो उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व की परिचायक है। इस प्रकार के तत्व द्विवेदी जी के आलाचना निबन्ध तथा उपन्यास साहित्य म भी समाविष्ट मिलते हैं। सस्मरण साहित्य के अन्तगत इस प्रकार के अश जहा जहा आये हैं वहा उनसे सस्मरण के सहज रचनात्मक प्रवाह म बाधा नही आई है। यह कलात्मकता की दृष्टि से इनकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। 'पथचिन्ह' म सगहीत पयवक्षण शीषक सस्मरण से ऐसा एक उदाहरण यहा उद्धत किया जा रहा है जो लखक के अतीत जीवन की पृष्ठभूमि म उनके सहज विचार प्रवाह का द्योतक है जीने के साधन तो समाप्त हो गये हैं किन्तु पृथ्वी के अवशिष्ट अश स सभी अपना अपना स्वाथ पुष्ट कर लने के लिए उतावल हैं। प्रत्येक वग एक दूसरे के प्रति सन्दिग्ध और प्रतियोगी हो गया है। प्रत्येक एक दूसर को आवश्यकताग्रस्त समझ कर उसकी विवशता स मनमाना लाभ उठा लेना चाहता है। यही कारण है कि अन्न और धन ही नहीं गह और जन भी दुलभ हो गये हैं। खोजने पर मकान नहा मिलत, कमचारी नही मिलते। असल म सामाजिकता (सहयोगिता) टूटती जा रही है व्यापारिकता (आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा) तीव्र होती जा रही है। उसकी तीव्रता अपन ही वेग के आधिक्य स समाप्त हो जाने के लिए है आज जीवन कितना शून्य हा गया है इसका परिचय सिनेमाघरो की भीड देख कर मिल जाता है। क्या निधन, क्या धनिक क्या शिक्षित, क्या अशिक्षित सभी अपने अपन अभावो को छायापट पर परछाई की तरह मिटती हुई तसवीरो से भर लना चाहते हैं। इस प्रकार जीवन के खोखलेपन को सिनेमा देख देख कर भुलाया जा रहा है। आज सभी वर्गों के जीवन का एकमात्र परिणति है निर्जीवता।"[१]

[२] वणनात्मकता द्विवेदी जी क सस्मरणा म वणनात्मकता का तत्व उनकी सहज और स्मृतिपरक अनुभूतिया की पृष्ठभूमि मे विद्यमान मिलता है। यह

१ 'पथचिन्ह' जी शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ७० ७१।

गुण उनके कवि हृदय की सहज भावनाओं की अभिव्यजना का भी साकेतिक परिचय देता है। यो तो इसके अनेक उदाहरण उनके विभिन्न सस्मरणो म उपलब्ध होते हैं परन्तु यहा पर उनके लिखे हुए 'मिथिला की अमराइयो मे' शीर्षक सस्मरण से एक अश उद्धत किया जा रहा है जो लेखक की वयक्तिकता और स्वभाव से भी सामजस्य रखता है बगल मे सडक पर एक सार्वजनिक ट्यूबवेल झरने की तरह चौबीसो घटे झरता रहता था उससे नल की बडी सुविधा हो गयी। सोना मैं छत पर चाहता था, किन्तु सीढी नही थी। ब्रह्मशकर ने बिजली के खम्भा जैसी लम्बी एक पुरानी सीढी का जीर्णोद्धार कर मानो स्वर्ग का सोपान तैयार कर लिया। मेरे लिए जगल मे ही मगल हो गया। छत पर खडे होकर देखने से जुगनुओ जैसी क्षीण ज्योति मे जगमगाते हुए चारो ओर के दृश्य किसी स्वप्नजगत की तरह अपना छायाभास देते थे। घर द्वार बाग तालाब, खेत सब किसी मायावी की मायापुरी जैसे मनमोहक जान पडते थे। दिन म बरामदे के सामने अन्तरिक्ष को छूता हुआ दूर तक फैला खेतो का मैदान प्रकृति के मुक्त हृदय जैसा सुखद लगता था। फुर फुर बहती शीतल हवा तन मन की तपन हर लेती थी। इतना सुन्दर स्थान मुझे बडे भाग्य से ही मिल गया था। जनकपुर धाम मेरे लिए प्रकृति धाम हो गया।[1]

[३] विवरणात्मकता द्विवेदी जी के अनेक सस्मरण उनके अतीत जीवन के उस काल से सम्बन्धित हैं जो उनके साहित्यिक जीवन का विशेष सघर्ष काल था। यह सस्मरण इस तथ्य की ओर सकेत करते हैं कि समकालीन वचारिक पृष्ठभूमि म द्विवेदी जी की साहित्यिक धारणाओ की निर्मिति इस काल मे हो रही थी। उदाहरण के लिए सन १९४१ मे जब उन्होने 'कमला' पत्रिका से विच्छेद किया तब उनके सामने अनेक आर्थिक समस्याएँ आयी। इसका एक प्रमुख कारण द्वितीय विश्व युद्ध भी था। *रचनात्मक दृष्टिकोण शीर्षक सस्मरण से एक अश यहा उद्धत किया* जा रहा है जो विवरणात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है 'सन १९४१ मे कमला' छोड कर फिर आर्थिक दृष्टि से निरवलम्ब हो गया। मेरे छोडते ही कमला बन्द हो गयी। दूसरा महायुद्ध चल रहा था। व्यापारियो को खूब लाभ हो रहा था। उनकी आय कई गुना बढ गई थी। किन्तु मेरे जैसे हिन्दी लेखक की स्थिति न सावन सूखा न भादो हरा थी। महायुद्ध के आकाश मे छाये हुये धुएँ के बादलो मे बिजली की कौंध की तरह एक जाज्वल्यमान व्यक्तित्व दमक उठता था। वह था महाप्राण हिटलर जो विश्व के राजनीतिक रगमच पर प्रलयकर ताडव कर रहा था। बोलता था तो भूकम्प गूज उठता था चलता था तो तूफान पदध्वनि बन जाता था। मस्तक पर तरुणो जैसा केश-कलाप वक्षस्थल पर अमृत पुत्रो का स्वस्तिक चिन्ह, ओठो पर झल्लाये हुए शिशु का दृढ असन्तोष, जिह्वा पर काल भुजगम का विक्षुब्ध आक्रोश,

---

१ प्रतिष्ठान, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ६९।

पलक। पर उज्ज्वल भविष्य का विजय स्वप्न। कैसा था वह कोमल कराल क्रांतिकारी।"[1]

[४] यथार्थात्मकता श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की विचारधारा पर समकालीन विचार दर्शनों में प्रगतिवाद का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल में योरप के प्रसिद्ध राजनैतिक विचारक कार्ल मार्क्स के क्रांतिकारी सिद्धांतों के फलस्वरूप साम्यवाद का विशेष प्रचार हुआ और उसी के समानांतर साहित्य में यथार्थवाद की प्रवृत्ति विकसित हुई। द्विवेदी जी के विविध विषयक साहित्य में यत्र-तत्र यथार्थवाद के जो तत्व समाविष्ट मिलते हैं वे इसी प्रवृत्ति का परिणाम हैं। आधुनिक युग के यांत्रिक जीवन की स्वार्थपरता और विरूपता से युक्त जीवन एक अभिशाप की भांति विभत्स अशोभन और जुगुप्साजनक हो गया है। इसी भावना से युक्त अनेक प्रसंग द्विवेदी जी के संस्मरणों में उपलब्ध होते हैं। यहां पर 'पथचिह्न' में संगृहीत 'अभिशापों की परिक्रमा' शीर्षक संस्मरण से एक अंश उद्धृत किया जा रहा है जो इस दृष्टि से उल्लेखनीय है 'सच तो यह है कि रूप कुरूप पाप पुण्य सद असद विपत-सम्पद सब कुछ विरूप से अभिशप्त होता चला जा रहा है। वर्तमान काल युगों की ऐतिहासिक विकृतियों का पुंजीकृत युग है। इस युग में राजनीति और अर्थशास्त्र अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। सभी की भीतरी मुखावृत्तियाँ स्वार्थ के आर्थिक ढांचे में अधप हो गयी हैं। आज बालक के ओठों पर भी भोलापन नहीं है। जीवन केवल पाशविक व्यापार मात्र रह गया है। पुण्य भी पण्य बन गया है। प्रत्येक केवल अपने ही अहम् की चिंता से त्राहि-त्राहि कर रहा है।'[2]

[५] भावात्मकता द्विवेदी जी के अनेक संस्मरण जहां एक और कथात्मक रोचकता से परिपूर्ण हैं वहां दूसरी ओर पद्यात्मक भावात्मकता भी उनमें प्रचुर रूप से विद्यमान मिलती है। ऐसे स्थलों पर अतुकान्त कविता की भांति कवि अपना भावनाओं की अभिव्यंजना प्रधान करता चला जाता है। पथचिह्न में संगृहीत 'अभिशापों की परिक्रमा' शीर्षक संस्मरण से इस विशेषता से युक्त एक उद्धरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है अहा वे दिन भी कितने सुंदर थे। अणु अणु, कण-कण जन-जन, सारा अंग जग ही कितना प्यारा लगता था। रूप कुरूप सब एक ही परम चेतना से उद्भासित होकर चांदनी में सम विषम धरातल की तरह सरल कोमल-मधुर मनोहर हो गये थे। सारी सृष्टि अभेद की तन्मयता में एकाकार हो गयी थी। मन सब ओर खिला खिला रहता था। सुकुमार भीमाकार सभी आकार प्रकार के प्राणियों को देख कर उनसे मिलने के लिए हृदय ललक पुलक उठता। काल भुजंग भी अपने फण पर नृत्यमग्न जान पड़ता था। जिससे मिलता वह मुझे अपनी ही आत्मा की

---

१ 'परिव्राजक की प्रजा', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० २५२।

२ 'पथचिह्न', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६५।

गुण उनके कवि हृदय की सहज भावनाओं की अभिव्यंजना का भी सांकेतिक परिचय देता है। यों तो इसके अनेक उदाहरण उनके विभिन्न संस्मरणों में उपलब्ध होते हैं परन्तु यहां पर उनके लिखे हुए 'मिथिला की अमराइयों में' शीर्षक संस्मरण से एक अंश उद्धृत किया जा रहा है जो लेखक की वैयक्तिकता और स्वभाव से भी सामंजस्य रखता है 'बगल में सड़क पर एक सार्वजनिक ट्यूबवेल झरने की तरह चौबीसों घंटे झरता रहता था उससे नल की बड़ी सुविधा हो गयी। सोना मैं छत पर चाहता था किन्तु सीढ़ी नहीं थी। ब्रह्मशंकर ने बिजली के खम्भों जैसी लम्बी एक पुरानी सीढ़ी का जीर्णोद्धार कर मानो स्वर्ग का सोपान तैयार कर लिया। मेरे लिए जंगल में ही मंगल हो गया। छत पर खड़े होकर देखने से जुगनुओं जैसी क्षीण ज्योति में जगमगाते हुए चारों ओर के दृश्य किसी स्वप्नजगत की तरह अपना छायाभास देते थे। घर द्वार बाग, तालाब खेत सब किसी मायावी की मायापुरी जैसे मनमोहक जान पड़ते थे। दिन में बरामदे के सामने अंतरिक्ष को छूता हुआ दूर तक फैला खेतों का मैदान प्रकृति के मुक्त हृदय जैसा सुखद लगता था। फुर फुर बहती शीतल हवा तन-मन की तपन हर लेती थी। इतना सुन्दर स्थान मुझे बड़े भाग्य से ही मिल गया था। जनकपुर धाम मेरे लिए प्रकृति धाम हो गया।'[1]

[३] विवरणात्मकता द्विवेदी जी के अनेक संस्मरण उनके अतीत जीवन के उस काल से सम्बंधित हैं जो उनके साहित्यिक जीवन का विशेष संघर्ष काल था। यह संस्मरण इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि समकालीन वैचारिक पृष्ठभूमि में द्विवेदी जी की साहित्यिक धारणाओं का निर्माण इस काल में हो रही थी। उदाहरण के लिए सन् १९४१ में जब उन्होंने 'कमला' पत्रिका से विच्छेद किया तब उनके सामने अनेक आर्थिक समस्याएँ आयीं। इसका एक प्रमुख कारण द्वितीय विश्व युद्ध भी था। 'रचनात्मक दृष्टिकोण' शीर्षक संस्मरण से एक अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है जो विवरणात्मकता की दृष्टि से उल्लेखनीय है सन् १९४१ में कमला छोड़ कर फिर आर्थिक दृष्टि से निरवलम्ब हो गया। मेरे छोड़ते ही 'कमला' बन्द हो गयी। दूसरा महायुद्ध चल रहा था। व्यापारियों को खूब लाभ हो रहा था। उनकी आय कई गुना बढ़ गई थी। किन्तु मेरे जैसे हिन्दी लेखक की स्थिति न सावन सूखा न भादों हरा थी। महायुद्ध के आकाश में छाये हुए धुएँ के बादलों में बिजली की कौंध की तरह एक ज्वलंत ज्वल्यमान व्यक्तित्व चमक उठता था। वह था महाप्राण हिटलर जो विश्व के राजनीतिक रंगमंच पर प्रलयंकर ताण्डव कर रहा था। बोलता था तो भूकम्प गूंज उठता था चलता था तो तूफान पदध्वनि बन जाता था। मस्तक पर लटकता जैसा केश-कलाप वक्षस्थल पर अमृत पुत्रों का स्वस्तिक चिह्न ओठों पर मुस्कराते हुए शिशु का दृढ़ अमन्तोष जिह्वा पर काल भुजंगम का विषाक्त आक्रोश

---

१ 'प्रतिस्मरण' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६९।

पलकों पर उज्ज्वल भविष्य का विजय स्वप्न। कैसा था वह कोमल कराल शांति कारी।"[१]

[४] यथार्थात्मकता श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की विचारधारा पर समकालीन विचार दर्शनों में प्रगतिवाद का भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल में योरप के प्रसिद्ध राजनैतिक विचारक कार्ल मार्क्स के क्रांतिकारी सिद्धांतों के फलस्वरूप साम्यवाद का विशेष प्रचार हुआ और उसी के समानान्तर साहित्य में यथार्थवाद की प्रवृत्ति विकसित हुई। द्विवेदी जी के विविध विषयक साहित्य में यत्र-तत्र यथार्थवाद के जो तत्व समाविष्ट मिलते हैं वे इसी प्रवृत्ति का परिणाम हैं। आधुनिक युग के यांत्रिक जीवन की स्वार्थपरता और विरूपता से युक्त जीवन एक अभिशाप की भांति वीभत्स, अशोभन और जुगुप्साजनक हो गया है। इसी भावना से युक्त अनेक प्रसंग द्विवेदी जी के संस्मरणों में उपलब्ध होते हैं। यहां पर 'पथचिन्ह' में संगृहीत 'अभिशापों की परिक्रमा' शीर्षक संस्मरण से एक अंश उद्धृत किया जा रहा है जो इस दृष्टि से उल्लेखनीय है 'सच तो यह है कि रूप कुरूप, पाप पुण्य सत्-असद विपत-सम्पद् सब कुछ चिरन्तन से अभिशप्त होता चला जा रहा है। वर्तमान काल युगों की ऐतिहासिक विकृतियों का पुंजीकृत युग है। इस युग में राजनीति और अर्थशास्त्र अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया है। सभी की भीतरी मुखाकृतियां स्वार्थ के आर्थिक ढांचे में जघन्य हो गयी हैं। आज बालक के ओठों पर भी भोलापन नहीं है। जीवन केवल पाशविक व्यापार मात्र रह गया है। पुण्य भी पाप बन गया है। प्रत्येक केवल अपने ही अहम् की चिंता से त्राहि-त्राहि कर रहा है।[२]

[५] भावात्मकता द्विवेदी जी के अनेक संस्मरण जहां एक ओर कथात्मक रोचकता से परिपूर्ण हैं वहां दूसरी ओर पद्यात्मक भावात्मकता भी उनमें प्रचुर रूप से विद्यमान मिलती है। ऐसे स्थलों पर अतुकान्त कविता की भांति कवि अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना प्रधान करता चला जाता है। 'पथचिन्ह' में संगृहीत 'अभिशापों की परिक्रमा' शीर्षक संस्मरण से इस विशेषता से युक्त एक उद्धरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है "अहा, वे दिन भी कितने सुन्दर थे। अणु अणु कण-कण जन-जन सारा जग जग ही कितना प्यारा लगता था। रूप-कुरूप सब एक ही परम चेतना से उद्भासित होकर चांदनी में सम विषम धरातल की तरह सरल-कोमल-मधुर मनोहर हो गये थे। सारी सृष्टि अभेद की तन्मयता में एकाकार हो गयी थी। मन सब ओर खिला खिला रहता था। सुकुमार भावाकार सभी आकार प्रकार के प्राणियों को देख कर उनसे मिलने के लिए हृदय ललक-पुलक उठता। काल भुजंग भी अपने फण पर नृत्यमंच जान पड़ता था। जिससे मिलता वह मुझे अपनी ही आत्मा का

---

१ 'परिव्राजक की प्रजा' श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० २५२।
२ 'पथचिन्ह', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० ६५।

आवत्ति सा लगता था। जिस किसी के गले म हाथ डाल देता, जान पडता, मैं अपन ही को भेंट कर रहा हूँ। जन समाज को देख कर स्वामी राम की तरह मैं भी बोल उठता था—इन विविध रूपो म शोभायमान मेरे ही ब्रह्मन।'[1]

[६] अनुभूत्यात्मकता श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के साहित्य के विभिन्न रूपा के अध्ययन के सन्दभ मे विगत अध्यायो मे पृथक-पृथक रूप से यह सकेत किया जा चुका है कि वे आत्मव्यजना प्रधान हैं। इसका कारण उनके साहित्य की आत्मानुभूतिपरकता है। द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य के सन्दभ म भी यही बात सत्य है। उनम विभिन्न प्रसगो म गम्भीर चिन्तन मनन के साथ ही लेखक की कोमल काव्यात्मक अनुभूतिया नैसर्गिक रूप मे आत्म व्यजनात्मक हो गयी हैं। स्मृतिया और कृतिया' मे सगृहीत प्रतिक्रिया शीषक सस्मरण मे इस प्रकार के अनेक अश दृष्टिगत होते हैं जिनम से एक यहा पर उदाहरणाथ प्रस्तुत किया जा रहा है घोर उदासी मे मेरे सामने यह विषण्ण प्रश्न उठ खडा हुआ कि जिस खादी, सस्कृति कला और उसस प्रभावान्वित केश म अपना अन्तर्बाह्य रूप लेकर युग यात्रा कर रहा हू नवजीवन पान के लिए उनमे से किसे छोडू ? किसी एक को छोडना सबको छोडना है, क्योंकि ये अन्योन्य और अनन्य हैं। प्रश्न का उत्तर मुझे उस पितपक्ष मे मिला जिसमे श्रद्धालु हिंदु अपने केश मुडवा देते हैं। लीजिये जीवन के शोक पव (युग सकट) मे मैंने भी केश मुडवा दिये। क्या यह केवल पतिक्रिया मात्र है इसमे भी कोई प्रक्रिया नही है ? मैं यदि वीतराग सन्यासी नही हूँ तो मेरे केश फिर उगेंगे। मुझम राग अभी शेष है तभी तो मुझम अब अन्तद्वन्द्व भी आ गया है। गृहस्थ नही वानप्रस्थ नही सन्यासी नही चिर कुमार हू। यदि काल की निष्ठुरता से अस्तमित नही हो गया तो मेरे नये केशो म फिर कशोय लहरायेगा।'[2]

[७] भाषा श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की भाषा के सम्बन्ध म प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो मे भी विचार किया जा चुका है। द्विवेदी जी की भाषा की समृद्धि उनके आलोचना साहित्य निबन्धो तथा उपन्यासो के माध्यम से भी स्पष्ट होती है। जसा कि इन विधाओ के स दभ म सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी की भाषा क अनेक रूप हैं जिनमे विशेष रूप से सस्कृति गर्भित, मिश्रित भाषा काव्यात्मक भाषा लोक भाषा मुहावरेदार भाषा तथा अलकारिक भाषा आदि रूप मिलते हैं। भाषागत रूप वविध्य के द्योतक उदाहरण द्विवेदी जी के पथचिह्न' 'परिव्राजक की प्रजा, 'प्रतिष्ठान तथा स्मृतिया और कृतिया आदि म सगृहीत सस्मरणो म बहुलता से उपलब्ध हाते हैं। अनपेक्षित विस्तार भय से इनमे स प्रत्येक के विश्लेषण का प्रयत्न यहा नही किया जा रहा है वरन् केवल सकेत रूप मे कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए

१ पथचिह्न, श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० ६०।
२ स्मृतिया और कृतिया श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १७ १८।

जा रहे हैं जो द्विवेदी जी की भाषा क्षेत्रीय उपयुक्त विशेषताओ से युक्त हैं

ऐसे गाढे मौके पर निष्ठुर न होते हुए भी उनकी रक्षा उन्हे जड बना देती है। जिनके पास दो चार पैसे होते भी हैं वे अगल बगल के पडोसिया को अथवा किसी अन्य गाव के गरजमन्दा को सूद दर सूद के हिसाब से कर्ज देकर जमीदारो और महाजनों की तरह शोषण करने लगत ह।'[1]

"सष्टि म जो कुछ शुभ्र स्निग्ध सरस-सुमगल है उसी के समावेश म यह धम अमृत हो गया है। इस धम का ध्येय प्रकृति की कल्याणकारिता और रमणीयता से सवलित कर मनुष्य को उस स्वरूप (आपो ज्योती रसाऽमतम ब्रह्म भूभुव स्वरोम) स तपद्रू कर दना है।"[2]

"जाडा मे खेता की शाभा अठखेलिया करन लगती। मृदु मन्द समीर के स्पश से पौधे न जाने किस विश्व उल्लास का आभास पाकर आनन्द स थिरक उठते।"[3]

"लोगा म जो खलबली मच गयी उसका साथ देने के लिए प्रकृति भी ललक पडी। घनघोर घटा घिर आयी बिजली चल चल चमकन लगी। पानी बरसन के पहिले ही मैं अपने निवास पर चला आया। सोचा—सभा तो अब क्या होगी लाग भीगेंगे खूब। बरामदे म दीवाल से टिक कर बठते ही झम झम झम थम पानी बरसने लगा। वर्षा की फुहार बिना गुलाब जल के ही सर्वांग को तरावट देन लगी।"[4]

[८] शली श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की भाषा के सदृश ही शली के सम्बन्ध मे भी प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो में विवेचन किया जा चुका है। द्विवेदी जी की शली की विविधता एव समृद्धता उनके आलोचना, निबन्धा तथा उपन्यासा के माध्यम स स्पष्ट होती है। जसा कि इन विधाओ के सन्दभ म सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी की शली के भी अनेक रूप उपलब्ध होते हैं जिनमे विशेष रूप से वण नात्मक विश्लेपणात्मक आत्मकथात्मक, पत्रात्मक, भावात्मक, विचारात्मक, निण यात्मक तथा उदबोधनात्मक शैली आदि मुख्य हैं। शैलीगत वैविध्य के द्योतक अनक उदाहरण द्विवेदी जी के पथचिन्ह, परिव्राजक की प्रजा, प्रतिष्ठान' तथा स्मतिया और कृतिया आदि म सगृहीत सस्मरणा मे मिलते है। अनपेक्षित विस्तार भय स इनमे से प्रत्येक के विश्लेपण का प्रयत्न यहा नही किया जा रहा है वरन केवल सकेत रूप म कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जा रह हैं जो द्विवेदी जी की शली गत विशिष्टताओ

---

१ पथचिन्ह, श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ३३।
२ वही पृ० २९।
३ वही पृ० ४८।
४ 'प्रतिष्ठान' श्री शातिप्रिय द्विवेदी, पृ० ७५।

स परिपूर्ण हैं

'अकस्मात दूर क्षितिज म अम्बर डम्बर म क्षीण विरल उज्ज्वल नक्षत्र की तरह लीलामच पर व दिखायी पड़—खादी के धवल विमल परिधान म शारदा आत्मा जस। उस समय विदेशी पत्रकारों फोटोग्राफरो अतिथियो और लीला क पात्रो एव कार्यकर्ताओ की रेलपेल म टहलते हुए नेहरू जी ऐसे रिलमिल गये थ मानो वे भी उन्ही के अग हो। फिर भी अपनी बाल सुलभ प्रसन्नता स मुस्कराते हुए वे सबस अलग पहिचान जा सकते थ।'[1]

कृषि है सामाजिक साधना वाणिज्य है राजनीतिक व्यवसाय। यह व्यवसाय अपन अति लाभ के लिए अनुचित उचित सभी साधनो स काम लेने लगा। मानवीय सामर्थ्य (स्वाभाविक शक्ति) का ह्रास हो जाने पर उसका स्थान यत्रो को मिल गया। यत्रो न मनुष्य का प्रकृति से सम्बन्ध विच्छेद कर दिया।'[2]

जीवन म सामाजिक सुख सुख कभी मिला नहीं। जिस बड़ी बहिन का स्नेह सम्बल मेरे अस्तित्व का आधार है उसका तो ससार ही सूना था। और यह मझली बहिन मुझमे अपने को उडेल कर भी किसी की पराधीन पत्नी ही थी। छूटे हुए गाव म भी कोई गृह सुख नहीं था वहा तो मेरी स्थिति ह्यूगो के ला मिजराबुल की कासेट' जसी थी।[3]

उसके अभाव म चिरपरिचित विश्व अपरिचित सा जान पडने लगा था। मन न हर्षित सा न विमर्षित सा' हो गया था। ससार ज्यो का त्यो था किन्तु इसम मेरा केवल शरीर ही था चेतना लोकान्तरित हो गयी थी। चेतना उसी अतीन्द्रिय ज्योति का अनुसरण करती हुई सूक्ष्म म विलीन हो गयी थी जो अभी कल तक अपनी देह के दीपक मे भी जगमगा रही थी। धीरे धीरे जब चेतना आकाशचारिणी विहगिनी की तरह अपने विश्व नीड म लौट आयी तब प्रतिभासित हुआ कि मूल ज्योति तो चली गयी किन्तु वह अपनी लौ इस दीपक मे भी लगा गयी थी।'

"राजनीतिक जागृति से अधिक आवश्यक है मनुष्य की अन्त सत्ता जिसके बिना उसका सारा कार्यकलाप जीवनमृत व्यापार हो गया है। सस्कृति और कला का काम मनुष्य की उसी विलुप्त अन्त सत्ता (अन्तश्चेतना) को पुनर्जीवित करना है सच तो यह है कि मनुष्य को पुन काव्य की मनोभूमि पर लाकर अनुप्राणित करना है। मनुष्य के हृदय की सास कविता की ही सास है उसी से वह जीवित रहता है। किन्तु कट्टर राजनीतिज्ञ इस सत्य को स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे

---

१ स्मृतिया और कृतिया श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ५१।

२ 'प्रतिष्ठान, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ३९।

३ 'पथचिन्ह' श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ५१।

४ वही पृ० ३९।

नक्ली फेफडा से भी जीने का प्रयास करते हैं। सस्कृति और कला काव्य की ही प्राण शिराएँ हैं। भाव उनका मम स्पन्दन है।"[1]

'हिंसा, लोलुपता, लम्पटता ये सब अमानुषिक उद्योगो की व्याधिया हैं। ग्रामोद्योगो म अनावश्यक उत्पादन और आर्थिक शोषण की गुजाइश न होने के कारण मानवीय प्रवृत्तिया का स्वाभाविक विकास होता है। मनुष्य अपन आयास प्रयास मे प्रकृतिस्थ एव स्थितप्रज्ञ हो जाता है। गाधी जी के एकादश व्रत की सावजनिक सफलता ग्रामोद्योगो स ही मिल सकती है। जिओ और जीने दो यह होगी अहिंसा जीने के जो सरल नियम (सामाजिक नियम) हैं वही होंगे सत्य। सभी श्रेणियो और सभी सद्वत्तिया का सर्वोदय ग्रामोद्योगा से होगा।'[2]

[९] विषय वविध्य श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य की एक विशपता उनका विषयगत वैविध्य और विस्तार है। जैसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के सस्मरण मुख्यत साहित्यिक, आत्मपरिचयात्मक भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक तथा निबन्धात्मक कोटियो के हैं। पथचिह्न' 'परिव्राजक की प्रजा 'प्रतिष्ठान तथा 'स्मतिया और कृतिया मे सगहीत सस्मरण मुख्यत उपयुक्त वर्गों म विभक्त किये जा सकते हैं। इनमे साहित्यिक सस्मरणा के अन्तगत लेखक ने श्री सूय कान्त त्रिपाठी निराला श्री सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्रीमती महादवी वर्मा आदि के सानिध्य के फलस्वरूप अनेक प्रसगो का उल्लेख किया है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरणा मे लेखक न अपन साहित्यिक जीवन क विभिन्न युगा के सघर्षों क साथ साथ बाल्यावस्था से सम्बन्धित पारिवारिक प्रसगो का भी उल्लेख किया है जो अभिव्यजना शली की दष्टि स अत्यन्त मार्मिक है। भावात्मक सस्मरणो के अन्तगत लेखक ने मुख्य रूप से उन स्मतिया को सस्मरणबद्ध किया है जो उनके जीवन के करुणापूर्ण प्रसगो स सम्बन्धित हैं। यात्रा विवरणात्मक सस्मरणो के अन्तगत लेखक ने वे रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जो उनकी विभिन्न यात्राओ विशषत मिथिला प्रदेश के अन्तगत विभिन्न रमणीक स्थला के भ्रमण से सम्बन्धित हैं। निबन्धात्मक सस्मरणा के अन्तगत लेखक ने वे रचनाए प्रस्तुत की हैं जो समकालीन साहित्यिक गतिविधियो से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार से द्विवेदी जी के सस्मरण आत्मव्यजनात्मक और वयक्तिक अनुभूतिपरक होते हुए भी विषय वविध्य और विस्तार से भी युक्त हैं।

हिन्दी सस्मरण साहित्य को द्विवेदी जी की देन

प्रस्तुत अध्याय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी के सस्मरण साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है वह इस क्षेत्र म उनकी देन का परिचय देन म समथ

१ पथचिह्न, श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ८५।
२ 'प्रतिष्ठान' श्री शातिप्रिय द्विवेदी पृ० ८८।

है। जसा कि इस अध्याय के आरम्भ मे सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी के सस्मरण पथचिह्न, परिव्राजक की प्रजा, तथा 'स्मृतिया और कृतिया मे सगृहीत हैं। *यह सस्मरण जहा एक ओर लेखक की इस क्षेत्र विशेष मे उपलब्धियो की द्योतक* हैं वहा दूसरी ओर वचारिकता एव का यात्मकता का भी परिचय देते है जो द्विवेदी जी के आलोचक यक्तित्व और कवि हृदय के सूचक हैं। इन सस्मरणो मे लेखक ने मुख्य रूप स अपने अतीत जीवन पर दष्टिपात करते हुए उन प्रसगा का उल्लेख किया है जो वास्तविक अथ म उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक हैं। इसके साथ ही साहित्य, समाज धम, सस्कृति, सभ्यता और राजनीति से सम्बधित समकालीन समस्याओ का पर्यालोचन भी इनम मिलता है। पथचिह्न म सगहीत सस्मरण इसी कोटि क है अथात उनम वचारिकता और वयक्तिकता का सम वय है। इसम लेखक ने समकालीन जीवन का यथाथ स्वरूप प्रस्तुत किया है। दूसरे श दो मे, यह कहा जा सकता है कि यह सस्मरण द्वितीय विश्वयुद्ध कालीन परिस्थितियो का सिहावलोकन सा प्रस्तुत करते हैं। 'परिव्राजक की प्रजा म जो सस्मरण सगहीत है वे अपक्षाकृत अधिक वैयक्तिक है। उनम लेखक न अपन परिवार के व्यक्तिया से सम्बधित प्रसग प्रस्तुत किय हैं। इसके द्वितीय खड म जो सस्मरण है वे साहित्यिका स सम्बधित ह। यह भी समकालीन साहित्यिक जीवन का पर्यालोचन सा प्रस्तुत करते हैं। सौ दय शास्त्र, सस्कृति कला और साहित्य स सम्बधित अनेक सकेत भी लेखक ने इस काटि क सस्मरणा म प्रस्तुत किये हैं। 'प्रतिष्ठान म जो सस्मरण सगृहीत हैं वे लेखक के रचनात्मक दृष्टिकाण के परिचय के साथ उनकी रचना शली के वविध्य की दष्टि से भी महत्वपूण ह। इसमे लखक न जीवन मूल्या और साहित्यिक मा यताआ का सम वय प्रस्तुत किया है, जा लखक क उदात्तपरक दृष्टिकोण का परिचायक है। बाल्य स्मृतियो स सम्बधित जो सस्मरण इस पुस्तक म सगृहीत हैं व मुख्यत *आत्मचरितात्मक* और अतिशय रूप स ममस्पर्शी हैं। साथ ही इनसे लखक की साहित्यिक चतना और वयक्तिकता का भी आभास मिलता है। शोषण के इस यात्रिक युग म एक कलना प्रिय सहज हृदय कितना निरस्कृत और उपेक्षित हो सकता है, यह इनम स्पष्ट हुआ है। वचारिक दृष्टि स द्विवेदी जी का सम्बध जिन आधुनिक विचारा दोलना स हुआ *उनकी प्ररणा और प्रभावा का भी सकेत इन सस्मरणा स मिलता है। वास्तव* म यह द्विवदी जा क साहित्य रचना की प्रक्रिया क नियामक सूत्र रहे हैं। अपन चतुथ सस्मरण सग्रह स्मतिया और कृतिया म द्विवदी जी न जो आत्मचरितात्मक सस्मरण प्रस्तुत किए हैं वे उनक जीवन क शशव और कशोय स सम्बधित हैं। साहित्य सृजन के क्षत्र म भी यह उनका आरम्भिक काल कहा जा सकता है जिसम उन्हे अनेक गुरुओं *प्रेरणाएँ प्राप्त हुई तथा विविध साहित्यिक विचारा दोलना का उन पर प्रभाव पड़ा।* इसी प्रसग म उन्होंने अपन समकालीन साहित्यकारा विशष रूप स मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रा नन्दन पन्त, सूयकान्त त्रिपाठी निराला तथा महादेवी वर्मा आदि स सम्बधित

घटनाएँ भी वर्णित की हैं। इसी प्रसग मे आधुनिक युग के प्रसिद्ध राजनीतिक, सामाजिक नेता जवाहरलाल नेहरू स सम्बधित कुछ उदगार भी उन्होने व्यक्त किये हैं। द्विवेदी जी के रचना काल के विषय में ऊपर यह सकेत किया जा चुका है कि मुख्य रूप से साहित्यिक आत्मपरिचयात्मक भावात्मक यात्रा विवरणात्मक तथा निबधात्मक सस्मरण लिखे जा रहे थे। इन क्षेत्रो मे जो प्रमुख लेखक क्रियाशील थे उनके द्वारा रचित साहित्य की पृष्ठभूमि मे द्विवेदी जी के सस्मरणो की परिचयात्मक व्याख्या की है। इस अध्याय मे यह भी सकेत किया गया है कि उन्होंने प्राय सभी समकालीन सस्मरणात्मक प्रवृत्तियो के क्षेत्र मे अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य के विश्लेषण के सन्दर्भ मे इस तथ्य को ध्यान मे रखना चाहिए कि उनका स्वरूप सपूर्णात्मक है। सिद्धान्तत सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कहानी के निकट कथात्मक दृष्टि से निबन्ध के निकट वैचारिक दृष्टि से तथा कविता के निकट भावात्मक दृष्टि मे की जा सकती है। द्विवेदी जी के सस्मरण भी इन्ही रूपो का समन्वय हैं अर्थात उनमे वे ही विशेषताएँ विद्यमान हैं जो इन तीनो साहित्यिक विधाओ की स्वतत्र विशेषताए मानी जाती हैं। इस दृष्टि से यदि द्विवेदी जी के सस्मरण साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेषण किया जाय तो इस तथ्य की अवगति होगी कि वे अनुभूत्यात्मकता वर्णनात्मकता विवरणात्मकता, वैचारिकता भावात्मकता यथार्थता तथा कल्पनात्मकता आदि के गुणो से युक्त हैं। वैचारिकता का तत्व जो उनमे समाविष्ट मिलता है वह द्विवेदी जी के चितन प्रधान व्यक्तित्व के कारण है। परन्तु उससे उनके सस्मरणो मे रचनात्मक प्रवाह में क्षेत्रीय बाधकता नही आयी है। इसी प्रकार से वर्णनात्मकता का तत्व भी उनमे समाविष्ट मिलता है जो मुख्यत उन प्रसगो में है जो सामान्यत विभिन्न स्मृतिपरक वृत्तातो पर आधारित हैं। जो सस्मरण यात्रा वृत्तातो के रूप मे हैं उनमें विवरणात्मकता का तत्व भी बहुलता से विद्यमान मिलता है जिसकी सोदाहरण व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। द्विवेदी जी की विचारधारा पर जिन समकालीन विचारान्दोलनों का प्रभाव पडा है उनमे यथार्थवाद अथवा प्रगतिवाद मुख्य है। आधुनिक युग के जीवन मे यात्रिकता और वैज्ञानिकता के फलस्वरूप जो अमानवीयता की द्योतक भावनाए बन गयी हैं उनकी ओर भी इसी प्रसग मे सकेत किया गया है। जसा कि अनेक स्थलो पर इगित किया गया है द्विवेदी जी की भावनाएँ मूलत काव्यात्मक हैं और इसके प्रभाव स्वरूप भावात्मकता के तत्व भी उनके सस्मरण साहित्य मे समाविष्ट हुए हैं। आत्मव्यजना प्रधान होने के कारण द्विवेदी जी की काव्यात्मक अनुभूतिया भी नैसर्गिक रूप मे इन सस्मरणों मे दृष्टिगत होती हैं। द्विवेदी जी की भाषा अन्य साहित्यिक विधाओ की भाति इस क्षेत्र मे भी बहुरूपात्मक है जिसके अन्तर्गत प्रमुखत सस्कृत गर्भित मिश्रित, काव्यात्मक लोकपरक और आलकारिक रूप मिलते हैं जिनका उदाहरण सहित उल्लेख ऊपर किया गया है। इसी प्रकार से

शैलीगत बहुलता भी इन संस्मरणों की एक उल्लेखनीय विशेषता है जिसके विभिन्न रूपों की ओर संकेत किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी के संस्मरण साहित्य की एक उल्लेखनीय विशेषता उनकी विषयगत वैविध्य और विस्तार है। इनका क्षेत्र आत्मव्यंजनात्मक, भावात्मक, यात्रा विवरणात्मक, निबन्धात्मक तथा साहित्यिक संस्मरणों तक प्रशस्त है। इस रूप में ये संस्मरण साहित्य के इस रूप विशेष के क्षेत्र में लेखक की प्रतिभा और सामर्थ्य का द्योतन करते हैं। इस प्रकार से इस अध्याय में द्विवेदी जी के संस्मरण साहित्य का जो विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वह विगत अध्यायों में विश्लेषित आलोचना साहित्य निबन्ध साहित्य तथा उपन्यास साहित्य के साथ ही साथ संस्मरण साहित्य के क्षेत्र में भी उनकी मौलिक प्रतिभा, रचनात्मक सामर्थ्य और विशिष्ट देन का परिचय देने में समर्थ है।

शातिप्रिय द्विवेदी का काव्य साहित्य

प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्याया म श्री शातिप्रिय द्विवेदी के गद्य साहित्य का अध्ययन किया गया है जिसके अन्तगत मूलत उनका आलोचना, निबन्ध, उपन्यास तथा सस्मरण साहित्य आता है। इस अध्याय म द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। जसा कि पीछे सकेत किया जा चुका है द्विवदी जी के लिखे हुए विविध विषयक गद्य साहित्य म जा सवेदनशीलता और भावनात्मकता विद्यमान है वह उनके कवि हृदय की द्योतक है। परन्तु उनकी कोमल कल्पना अपने जिस रूप म उनके लिखे हुए काव्य साहित्य मे दष्टिगत होती है वह सरल अनुभूतिया की सहज अभिव्यजना की दष्टि से विशेष महत्व रखती है। यद्यपि द्विवेदी जी की लिखी हुई स्फुट कविताओं के केवल दो स्वतन्त्र सग्रह उपलब्ध होते हैं परन्तु इनस ही उनकी काव्य प्रतिभा का सम्यक परिचय मिल जाता है। इस अध्याय म विशेष रूप से इन्हीं दोनो सग्रहा नीरव तथा हिमानी को आधार बना कर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। उपयुक्त दो कृतियो क अतिरिक्त द्विवेदी जी की अन्य काव्य कृतियो म मधु सचय और 'परिचय का उल्लख भी मिलता है परन्तु मोतियो की लडी का उल्लेख केवल एक प्रकाशन सूची म मिलता है और यह अप्राप्य है। मधु सचय' तथा परिचय मे कवि ने क्रमश ब्रजभाषा क विशिष्ट शृगारिक कवियो की कविताओ तथा 'परिचय मे छायावादी कविया की कविताओ को सकलित किया है। मधु सचय' का प्रकाशन हिन्दी पुस्तक भण्डार (लहरिया सराय) से हुआ है तथा परिचय' का प्रकाशन सन १९२६ म साहित्य सदन, चिरगाव, झासी स हुआ। 'परिचय' काव्य सकलन म कवि न एक मौलिक प्रयास किया है। उन्होंने उसमे कविया की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय देते हुए उनकी कविताओ का सकलन किया है। 'परिचय के विषय म द्विवेदी जी के एक मित्र का कथन था कि 'कारावास भी इससे सुखमय हो जायगा'।

द्विवेदी जी की काव्य कृतियो का परिचय एव वर्गीकरण

[१] 'नीरव' : भारती भडार-लीडर प्रेस, काशी स प्रकाशित श्री शातिप्रिय द्विवेदी की नीरव' काव्य कृति एक लघु काव्य-सग्रह है जिसम कवि की सन १९२४ से १९२९ तक की रचनाएँ सगहीत हैं। इसका प्रकाशन काल सवत १९८६ अथात सन् १९२९ ई० है। प्रस्तुत काव्य-सग्रह के प्रकाशन से पूर्व ही इसकी अधिकाश रचनाएँ अपने समय के प्रमुख पत्र पत्रिकाओं मे प्रकाशित होकर द्विवेदी जी के लिए साहित्य म

स्थान निर्दिष्ट कर रही थी। द्विवेदी जी प्राणी की अनादिकालीन प्रवृत्ति से प्रेरित होकर ही काव्य जगत में प्रविष्ट हुए हैं। यही कारण है कि उनके 'नीरव' काव्य-संग्रह में विभिन्न मानवीय मनोवृत्तियों का परिचय मिलता है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में लगभग की सतीस कविताएँ संगृहीत हैं जिनमें शृंगार रस के अतिरिक्त शान्त करुण और वात्सल्य रस का भी परिपाक हुआ है। 'उपगम कविता में कवि ने अपनी उल्लासमयी सौन्दर्यपरक प्रवृत्ति का आभास देते हुए वेदना का अंगीकार की स्वीकृति दी है। मलयानिल शीर्षक कविता में कवि ने मलय समीर को सम्बोधित करते हुए परोक्ष रूप में सृष्टि के कण कण की सुन्दरता का अनुभव किया है तथा समीर की चचलता का चित्रण किया है। 'अधखिली कली से' शीर्षक कविता में मुक्त छन्द के माध्यम से कवि ने चिर शैशव एवं कैशोर्यावस्था को दुहराया है। पद अर्' शीर्षक कविता में भी कवि ने अपनी विपुल वेदना में नीरव पद अर को सम्बोधित करते हुए उसमें तादात्म्य स्थापित किया है। तितली शीर्षक कविता में कवि प्रकृति की एक निश्छल चचल एवं कोमल प्राणी तितली-सा स्वय अपने हृदय को उन्मुक्त करना चाहता है परन्तु वह केवल बालिका रूप ही ग्रहण करना चाहता है उसका दग्ध यौवन नहीं जिसमें केवल वेदना ही वेदना है। 'स्वागत फूल' शीर्षक लघु कविता प्रश्नोत्तर रूप में है। यौवन में मदमस्त प्रियतमा अपने प्रिय के आगमन पर खुशी की उत्तेजना में स्वागत के वास्तविक रूप को भी भूल जाती है परन्तु तथ्य यह है कि वह अपनी भ्रू लतिका पुष्पों के द्वारा ही अपने प्रिय का स्वागत करती है। मनोवेग' शीर्षक कविता में प्रेमिका रूप में एक नवोढा नववधू ने अपने हृदय के भावों को व्यक्त किया है जो सुहाग लाज से सिमट सी जाती है। रंगीली तितली' शीर्षक कविता में कवि तितली के सौन्दर्य पर विमुग्ध हो उसकी चचलता से प्रफुल्लित हो उठता है। 'निवेदन शीर्षक कविता में कवि अपने सम्पूर्ण समर्पण भाव की ओर सकेत करके जीवन की नश्वरता का बोध कराता है। लता सुहागिन शीर्षक कविता में कवि ने ग्रामवासिनी बाल सगिनी को सम्बोधित करके मानव व्यापारों का चित्रण किया है। अरुण तितली में पुन तितली के रक्तिम रग तथा चचलता पूर्वक इधर उधर मडराने एव छिपने पर कवि की कल्पना उसकी लज्जाशीलता की ओर आकर्षित होती है। निराशा शीर्षक कविता मे कवि ने प्राकृतिक व्यापारों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। 'प्रतीक्षा' शीर्षक कविता मे कवि ने प्रकृति के प्रणय मिलन में अपने अभावों एव वेदना से विह्वल हृदय को निहित किया है। 'स्नेह स्मृति' शीर्षक कविता मे कवि प्रकृति के क्रिया कलापों में अपने प्रिय के दर्शनों की अभिलाषा करता है और प्रकृति के कण कण में उसे अपने प्रिय के स्वरों की गूंज सुनाई पडती है। विज्ञापन शीर्षक कविता में कवि के हृदय की वेदना मुखरित हुई है जो उसके सम्पूर्ण जीवन मे व्याप्त है उस वेदना के परिष्कार के लिए कवि का करुणाकलित हृदय अनुनयबद्ध है। 'दीवाली शीर्षक कविता में प्रकृति के सुकुमार सुन्दर चित्र के साथ कवि ने दीवाली की उत्फुल्लता का भी निर्देश किया

है जिसका हास प्रकृति में व्याप्त है। सशय' कविता में कवि का करुण हृदय मा के सम्बोधन के द्वारा प्रकृति के क्रियाकलाप को देख कर सशय करता है और स्वय अपने जीवन के सशयो मे भटक जाता है। 'आकाक्षा' शीर्षक कविता के दो खड हैं। प्रथम मे कवि की आकाक्षा है कि वह स्वय की आभा से प्रज्वलित होकर स्वय को क्षीण करके भी ससार मे शशि विराजमान रहे। दूसरे खड म कवि अपन कलुषित और कालिमापूर्ण जीवन मे भी उज्ज्वलता की कामना करता है। कवि की सर्वोच्च आकाक्षा यही है कि सताप स दग्ध प्राणी उसके जीवन मे शीतलता का अनुभव करें। 'शरच्चद' कविता म कवि की जिज्ञासा की भावना मुखरित हुई है। 'निझरणी की स्वतत्रता कविता प्रकृति के एक उपाग निझर की स्वतत्रता के माध्यम से मानव को महान सदेश देती है। 'पथिक' शीर्षक कविता म वीर रस का सयोजन है। 'खादी कविता म भी कवि क हृदय की मूल भावना का चित्र प्रस्तुत हुआ है। छिद्र' लघु कविता म तुच्छ मानव के सरम महान गुणो की ओर सकेत किया गया है जो उसम अन्तर्निहित रहते हैं। याचना शीर्षक कविता म ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। 'उत्सग' शीर्षक कविता म मानव जीवन म सुख के साथ दुख को भी सजाने की ओर सकेत है। वदना स शीर्षक कविता कवि के वेदनामय जीवन की ओर दृष्टिपात करती है। वेदना कवि की प्रियतमा है जिसस वह चिर आलिंगनबद्ध होकर परस्पर भार वहन करना चाहता है। सताप कविता भी कवि-हृदय के रुदन को प्रस्तुत करता है। व्यथित वशी कविता में कवि अपने हृदय की व्याकुलता म वशी के छिद्रो स उत्पन्न उसकी पीडा एव व्यथा को अनुभव करता है जो पीडित होते हुए भी दूसरो के लिए मधुर गान एव सगीत छेडती है। मौन विषाद म वाह्य सुदरता एव प्रसन्नता म मौन विषाद बार-बार आकर लौट जाती है। 'बालुके' शीर्षक कविता में कवि ग्रीष्मकालीन तपती हुई वालू के प्रति भी सवेदनशील होकर उसकी तपन, रुदन एव व्यथा को आभासित करता है। 'विकल समीर म कवि वायु की तीव्रता म किसी विरहिणी, दीन की व्यथा व्याकुलता का आभास करता है। 'मुरम फूल स शीर्षक कविता म कवि सुख की नश्वरता का भास खिल हुए पुष्प से करता है जो क्षण भर म अपना सौरभ बिखेर कर मुरझा जाता है। 'तरुपात शीर्षक कविता म जीवन की अस्थिरता एव क्षण भगुरता का चित्र तरु एव लघु तरु के माध्यम स चित्रित हुआ है। विजन मे कविता के प्रथम खड म ससार के वास्तविक चित्र को प्रस्तुत कर प्रतिध्वनि को ही विजन म अपना साथी माना है जो ससार की तरह दुख मे हसती नही है। कोलाहल' शीर्षक कविता म कवि ने कोलाहल का व्यापक अर्थों म मूल्याकन करते हुए उसकी सवत्र व्याप्त ध्वनि को स्वीकार किया है। मा शीर्षक कविता म कवि सवत्र प्रसन्नता एव प्रफुल्लता की कामना करता है। मा के मदिर म सभी समान रूप से निद्वन्द्व स्वच्छदता स विचरण करें, उनम बधुत्व की भावना का उद्रेक हो, कवि की यही कामना है।

[२] 'हिमानी' श्री शातिप्रिय द्विवेदी का दूसरा काव्य-सग्रह 'हिमानी'

हिंदी मंदिर प्रेस, प्रयाग से मार्च सन् १९३४ में प्रकाशित हुआ। यह भी कवि की भावुकता एवं बाल सुलभ चपलता से ओत प्रोत स्फुट कविताओं का संग्रह है। प्रस्तुत काव्य संग्रह में केवल इक्कीस कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें द्विवेदी जी की सन् १९२९ से १९३४ तक की लिखी कविताए संगृहीत हैं। हिमानी शीर्षक कविता में कवि प्रकृति के परिवर्तित रूपों में माँ हिमानी के स्मित हास का अनुभव करता है जो कवि को काव्य सृजन की प्रेरणा प्रदान करता है। प्रकृति के प्रत्येक स्पंदन में कवि को संगीत का आभास होता है। प्रस्तुत काव्य-संग्रह की दूसरी कविता में मानव जीवन के सुख दुख उस चिर सुंदर तथा अलौकिक व्यक्ति की साधना के साधन मात्र हैं। तीसरी कविता में सरिता के गति प्रवाह के माध्यम से कवि ने मानव जीवन की गति की ओर संकेत किया है जो निरंतर प्रवाहित होता हुआ अनिर्दिष्ट लक्ष्य में भी अपने मन के निज साधन को प्राप्त कर लेता है। चौथी कविता में कवि के प्राणों का उच्छवास निहित है जो प्रकृति पुष्पों के रूप में एक दूसरे को देख कर प्रारम्भ में आकर्षित होकर उच्छवास छोडते है और अंत में स्वतंत्र होकर एक दूसरे से मिल जाते हैं। काव्य संग्रह की पाँचवी कविता में कवि अपनी आंतरिक वेदना को विश्व व्याप्त प्रकृति में आभासित करता है। छठी कविता मे भी कवि हृदय की वेदना मुखरित हुई है। सातवी कविता शिशु में कवि ने शशव सौंदर्य को अभिव्यंजित करते हुए उसके भावी रूपों का चित्रण किया है जो अपने प्रकाश से ज्योतिर्मान होकर विश्व में सर्वत्र ज्योति फैला देगा। आठवी कविता 'जुगनू की बात' में कवि ने जुगनू के हृदय के भावो को प्रत्यक्ष किया है। नवी कविता 'भिखारिणी' मे कवि ने मानव समाज से प्रताडित की गई तथा अपने बोझिल हृदय भार से द्रवित भिखारिणी के प्रति संवेदना प्रकट की है तथा कवि उसका परिचय प्राप्त करना चाहता है। दसवी कविता मे प्रिय के आगमन की बात तथा उनकी अगवानी के निमित्त खाली हाथो की ओर संकेत है। ग्यारहवी कविता मे कवि ने प्रकृति में व्याप्त शैशव को देख कर स्वयं अपने शशव को प्रदर्शित किया है। बारहवी कविता मे अपने प्रिय से एकाकार की भावना निहित है जो अनजाने ही गतिशील रहता है। तेरहवी कविता भिखारिणी मे कवि उस भिखारिणी को पुन प्रकृति के प्रांगण मे लौट चलने को प्रेरित करता है। चौदहवी कविता मे कवि विहगकुमार को सम्बोधित करते हुए विश्व के सुख दुख में ही जीवन यापन का संदेश देता है। पंद्रहवी कविता का शीर्षक अधे का गान है। सोलहवी कविता में विश्व के काल चक्र एवं मानव की नश्वरता को व्यक्त किया गया है। कवि ने इसमे ताजमहल के स्मरण मे एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए प्रेमालिंगन मे बद्ध मानव का रूप अंकित किया है। गगन के प्रति शीर्षक कविता में कवि ने प्रकृति के क्रिया कलाप में उसकी वेदना को व्यक्त किया है। गगन में अनादि काल का इतिहास संचित है। विश्व के समस्त सुखो दुखो का वही आगार है। मेघ गर्जन तथा वर्षा में कवि का संवेदनशील हृदय उसकी करुणा तथा करुणा की तीव्रता

का अनुभव करता है जो मेघो के माध्यम स अश्रुधार के रूप म प्रवाहित होता है। अठारहवी कविता म कवि दवता तथा नन्दन-कानन को तुच्छ कह कर मानव-जगत तथा मानव मन को अगीकर करने की आकाक्षा व्यक्त करता है। उन्नीसवी कविता म कवि प्रकृति के समक्ष स्वय के लघुतम रूप को प्रदर्शित करता है। बीसवी कविता भावुकता स पूर्ण है। 'हल्दी घाटी शीर्षक कविता कवि के वीर भावों से ओतप्रोत है। प्रस्तुत कविता ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म मौन, उदास हल्दी घाटी क चित्र के रूप म प्रस्तुत की गयी है।

कवि द्विवेदी जी और हिन्दी काव्य की पृष्ठभूमि

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी की काव्य सपत्ति प्राचीन ब्रजभाषा कविता थी अतएव प्राचीनता की रूढियो को मानन वाले कविया न ब्रजभाषा मे अपनी प्राचीन परिपाटी क अनुरूप ही कविता रची परन्तु भारतेन्दु युग म मानव चेतना के नव जागरण तथा राष्ट्र प्रेम की भावना का उद्रेक हुआ। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा की दृष्टि स खडी बोली को साहित्य म स्थान मिला। अतएव कविता के क्षेत्र मे भी खडी बोली को अपनाया जाने लगा। ब्रजभाषा के अतिरिक्त अवधी भाषा म भी काव्य साहित्य की रचना हुई। यद्यपि इस युग म विषय वस्तु एव शैलीगत विशिष्टता की दृष्टि से प्राचीन परिपाटी का ही अधिक अनुगमन किया गया है परन्तु जो कविगण प्राचीन परिपाटी और रीतिकाल क विरुद्ध एक प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण स पूर्ण थे उन्होंने काव्य म नवीन चेतना एव राष्ट्र प्रेम से सम्बन्धित विषयो का निरूपण किया। इस युग मे खडी बोली को जन भाषा के रूप म मानन क लिए अनेक आन्दोलन हुए। इसके अतिरिक्त विभिन्न सस्थाओं न राजनीति के क्षेत्र म अपना प्रमुख एव महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्राचीन परिपाटी का अनुकरण करन वाल प्रमुख कवियो मे भारतेन्दु द्विजदेव मन्नालाल, सेवक रघुराज सिंह भुवनेश ललित किशोरी आदि कवि उल्लेखनीय हैं। इनमे भारतेन्दु जी का हिन्दी काव्य साहित्य एव आधुनिक युग म अन्यतम स्थान है। उन्होंने ब्रजभाषा म काव्य का प्रणयन करत हुए भी काव्य म खडी बोली को स्थान दिया। भारतेन्दु के काव्य साहित्य म काव्य क प्राचीन रूपो क अतिरिक्त उनम राष्ट्र प्रेम तथा नव जागरण का सन्देश भी निहित है। नवीन परिपाटी का अनुसरण करने वाले कविया न काव्य म नवीनता का ग्रहण किया अत एव इस युग का काव्य यथार्थवाद प्रधान है जिसम देशभक्ति सामाजिक और धार्मिक पुनर्निर्माण मातृभाषा उद्धार राजनीतिक चेतना साम्राज्यवादी नीति, आर्थिक शोषण क प्रति विद्रोह का स्वर तथा भारत की स्वतन्त्रता का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। इस युग के विशिष्ट कवियों म भारतेन्दु हरिश्चन्द्र रचित भक्ति सर्वस्व विजय वल्लरी जातीय सगीत मूक प्रश्न आदि कृतियाँ, ठाकुर जगमोहन सिंह क प्रेम सम्पत्ति लता, प्रतापनारायण मिश्र लिखित 'मन की लहर लोकोक्ति शतक राधा

चरण गोस्वामी की 'भारत सगीत' रामकृष्ण वर्मा की समस्या पूर्ति प्रकाश' कृति, राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा', 'जुबली बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन' रचित कजली कादम्बिनी लादा सुमेर सिंह रचित सुन्दरी तिलक', तथा राव कृष्णादेव शरण सिंह गोप' रचित प्रेम सदेसा', 'मान चरित्र तथा दोहावली आदि विशेष रूप स उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त अ य भारतेन्दु युगीन कवियो मे महेश नारायण, लक्ष्मी प्रसाद हाथरसी चिरजीलाल, नथाराम, लाला गोवि द राम मातादीन चौत्र, विजयानद त्रिपाठी शिवरत्न शुक्ल सिरस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी काव्य साहित्य की प्रमुख प्रवत्तियो एव विकास के आधार पर आगामी काल विशष को दूसरे शब्दो म द्विवदी युग अथवा पुनरुत्थान काल का द्वितीय चरण अथवा परिष्काल काल के नाम स भी सम्बोधित किया गया है। जसा कि नाम स ही स्पष्ट है इस युग म हिन्दी साहित्य की विविध विधाओ का परिष्कार एव परिमाजन हुआ। इस क्षत्र म महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्वपूण योगदान रहा है। इनके सम कालीन कवियो एव लखको पर उनके साहित्यादर्शो का अत्यधिक प्रभाव पडा। इस काल म साहित्य की विविध विधाओ के अतिरिक्त भाषा के क्षेत्र म आमूल परिवतन हुए तथा कला की दृष्टि से भी शलियो का विकास हुआ। इस काल म महाका य खडका य आख्यानक का य प्रेमाख्यानक का य और गीतिका य की रचना हुई जिनका भारतन्दु युग म प्राय अभाव सा ही था। खडी बोली का समुचित विकास हुआ परन्तु ब्रजभाषा की प्राचीन काव्य परम्परा का रूप भी परिलक्षित होता है। इस युग क कवियो न रीति कालीन विविध परम्पराओ अतिशय नियमबद्धता तथा पाडित्य प्रदशन का विरोध कर उद्दाम प्रवृत्ति मानव और जीवन के सन्दभ म नवीन दृष्टिकोणो का प्रतिपादन किया। इस युग का काव्य अपनी समसामयिक विशिष्ट परिस्थितियो से अत्यधिक प्रभावित है। विभिन्न सस्थाओ के अनेक आन्दोलनो के फल स्वरूप मानव की सुप्त चेतना जाग्रत हुई जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय काव्यधारा की प्रवत्ति का इस युग म समुचित विकास हुआ। द्विवेदी युग क अन्य कवियो म श्रीधर पाठक की कश्मीर सुषमा' भारत गीत तथा स्वर्गीया वीणा आदि, नाथूराम शर्मा शकर क अनुराग रत्न शकर सवस्व' तथा कविता कल्पतरु अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध की रसिक रहस्य प्रिय प्रवास कर्मवीर' पद्यप्रसून' चोख चौपद वदेही वनवास रसकलश आदि रायदेवी प्रसाद पूण की मृत्युजय तथा वसन्त वियोग आदि रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चितामणि' रामनरश त्रिपाठी क काव्य ग्रथो म मिलन, पथिक' 'मानसी 'स्वप्न आदि दुलारे लाल भागव का दुलारे दोहावली मैथिलीशरण गुप्त की अनेक कृतियो म 'किसान, वीरा गना मेघनाद वध' की ब्रजागना 'यशोधरा भारत भारती, 'जयद्रथ वध, 'द्वापर पचवटी तथा प्रदक्षिणा' आदि गोपालशरण सिह की माधवी', कादम्बिनी तथा जगदालोक' आदि काव्य कृतियाँ, गुरु भक्तसिह भक्त की 'सरस सुमन', 'कुसुम

कुज 'प्रमद वन तथा 'नूरजहाँ' आदि हृरदयालु सिंह की 'दत्यवश', रावण महाकाव्य', वियोगीहरि की विभिन्न कृतिया म 'साहित्य विहार, 'भावना, 'प्रेम पथिक' 'वीर वाणी, 'सतवाणी, 'बुद्धवाणी, 'श्रद्धा कण' तथ तरंगिनी' आदि डा० बलदव प्रसाद मिश्र 'राजहंस' की अनेक कृतिया म शकर दिग्विजय', मानस म धुरी', 'साकेत सत तथा 'मानस मथन आदि गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' की तारक वध', मोहनलाल महता वियोगी' की काव्य कृतियो म निर्माल्य, धुधले चित्र, कल्पना' आदि तथा आयावत महाकाव्य, द्वारिकाप्रसाद मिश्र का महाकाव्य कृष्णायन' तथा केदारनाथ मिश्र प्रभात लिखित ज्वाला', 'कम्पन 'ककेयी' स्वर्णोदय तप्तगीत' आदि सग्रह विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं।

गांधीवाद का समकालीन छायावाद युग हिन्दी साहित्य क विकासात्मक इति हास म प्राय प्रथम विश्वयुद्ध से द्वितीय महायुद्ध तक सीमित किया जाता है। इस हिन्दी साहित्य का उत्कप काल कहा जाता है। छायावाद के सम्बन्ध मे विभिन्न मत मना नर है तथा उनके प्रवत्तको के सन्दभ म भी विभिन्न विद्वानो का दष्टिकोण भिन्न भिन्न है। पर तु सवसम्मत स इस बात की पुष्टि होती है कि छायावाद युग बगला एव अँग्रेजी साहित्य स प्रभावित है तथा उसके प्रवतक जयशकर प्रसाद जी हैं। छाया वाद युगीन काव्य सौदय और प्रेमाभिव्यक्ति की प्रवत्ति स पूण है तथा इसम रवीन्द्र काव्य की आध्यात्मिकता अथवा लोकपरक मानववादिता का भी समावेश हुआ है। इसम मानव जीवन क वयक्तिक पक्षो का ही अधिक उदघाटन हुआ है। छायावाद की परिभाषा भी विभिन्न विचारको ने विविध रूप से दी है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल न छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों म किया है। प्रथम रहस्यवाद के सकुचित अथ म तथा द्वितीय वाव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थों मे। परतु उनकी दष्टि स *यह काव्य की एक नवीन शली मात्र है।* *श्री शांतिप्रिय द्विवदी* के मत म द्विवेदी युग न काव्य को नये छन्द नय कठ नये विषय नये आलम्बन नये चित्रपट, नये विचार तथा नये परिवेश के माध्यम से उसे एक नया शरीर दिया। द्विवेदी युग न जिस नवीन काव्य शरीर को गढा था उसमे प्राण प्रतिष्ठा का श्रेय छायावाद युग को है। आचाय न ददुलारे वाजपेयी ने छायावाद का *भावुकता साकेतिकता* रहस्य, दुरूहता कोमलकात पदावली प्रकृति प्रेम तथा उच्छ खलता आदि तत्वा स परिपूण माना है। डा० देवराज क मत म छायावादी काव्य म तीन मुख्य तत्व विद्यमान हैं—धूमिलता या अस्पष्टता गुम्फन की सूक्ष्मता तथा काल्पनिकता और काल्पनिक वभव। *विश्वम्भर मानव न प्रकृति मे मानवीय भावा और चेतना के आरोप को छायावाद माना* है। छायावाद के प्रमुख स्तम्भ जयशकर प्रसाद जी न छायावाद की तीन विशेषताओ की ओर मुख्य रूप स सकेत किया है—स्वानुभूति की विवति या आत्मव्यजकता, सौदय प्रम तथा अभिव्यक्ति की भगिमा या साकेतिकता। डा० नगेन्द्र न छायावाद को स्थूल क प्रति सूक्ष्म का विद्रोह माना है। उसी के व्यापक अथ मे महादेवी वर्मा ने इस

काव्य प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध मनुष्य की कोमल और सूक्ष्म भावनाओं का विद्रोह माना है। इसके अतिरिक्त श्री सुमित्रानन्दन पंत ने इसे एक आधुनिक आन्दोलन कहा है। उपयुक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छायावाद युगीन काव्य साहित्य में सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक बन्धनों और रूढ़ियों से विद्रोह तथा उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्ति के साथ ही साथ इसमें आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, कल्पना की अतिशयता, सौंदर्य के प्रति आकर्षण एवं विस्मय की भावना आदि विशेषताएं परिव्याप्त है। इन प्रमुख तत्वों के समावेश के प्रभावस्वरूप ही छायावादी काव्यधारा में मानव मनोभावों के परिवर्तन रूप में अहम् भावना वयक्तिकता एवं ऐकान्तिकता आदि तत्वों का भी समावेश हो गया है। छायावादी युग के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद की लहर आँसू, झरना और महाकाव्य कामायनी के अतिरिक्त अन्य विशिष्ट कवियों में सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की परिमल अणिमा, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, बेला नये पत्ते, कुकुरमुत्ता तथा अपरा आदि उल्लेखनीय हैं। निराला जी के साहित्य में छायावाद के उत्तरार्द्ध के दर्शन होते हैं। इनकी कुछ काव्य कृतियों में प्रगतिशील मानव चेतना का भी आभास मिलने लगता है जो आगे की प्रगति का सूचक है। इसके अतिरिक्त निराला की अर्चना और 'आराधना काव्य कृतियाँ भी इस युग के काव्य साहित्य में परिगणित की जा सकती हैं। श्री सुमित्रानन्दन पंत इस युग के तृतीय स्तम्भ हैं जिनकी कुछ काव्य कृतियों में गाँधी और अरविन्द के विचारों का रूप परिलक्षित होता है। पंत जी की प्रतिनिधि काव्य कृतियों में उच्छवास ग्रंथि, 'वीणा 'पल्लव गुंजन युगान्त युगवाणी ग्राम्या 'स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि युगपथ उत्तरा, अमिता, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद के अतिरिक्त आधुनिक कवि, 'पल्लवनि' रश्मिबन्ध चिदम्बरा आदि संकलन के साथ ही लोकायतन महाकाव्य आदि भी उल्लेखनीय हैं। पंत जी के सम्पूर्ण साहित्य के विश्लेषण से उनकी विचारधारा के क्रमिक विकास का परिचय मिलता है। छायावाद की अन्यतम कवयित्री महादेवी वर्मा की काव्य कृतियों में नीहार रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत और दीपशिखा आदि में महादेवी वर्मा के काव्य की विशिष्टता वेदना की चरम अभिव्यक्ति तथा दार्शनिक काल्पनिकता स्पष्ट रूप से लक्षित होती है। इसके अतिरिक्त अतिरंजित भावना सुन्दर शब्द विन्यास तथा एक अनन्त की खोज इनकी कविताओं के प्रमुख तत्व हैं। प्रमुख छायावादी कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों में रामकुमार वर्मा भगवतीचरण वर्मा, उदयशंकर भट्ट नरेन्द्र शर्मा अचल हरिकृष्ण 'प्रेमी, मोहन लाल महतो वियोगी जानकी वल्लभ शास्त्री सुभद्राकुमारी सिन्हा विद्यावती कोकिल हंसकुमार तिवारी गोपाल शरण सिंह नेपाली तथा बच्चन आदि भी उल्लेख्य हैं।

छायावाद के उत्तरार्द्ध में ही कवियों की विचारधारा में परिवर्तन लक्षित होने लगा था तथा छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन स्पष्ट हो

रहे थे जो छायावाद के प्रतिक्रियात्मक रूप की सूचना देते हैं। छायावाद की प्रतिक्रिया म प्रगतिवाद एक समकालीन आवश्यकता थी जो साम्यवादी तथा माक्सवादी विचारा के समथन म हुए आन्दोलन के रूप म परिगणित किया जाता है। छायावाद युग की कल्पनात्मक भावभूमि के विरुद्ध यथाथ की कठोर व्यावहारिकता के आधार पर विचारको की चिन्तन शक्ति केन्द्रित हुई। मानव की आर्थिक आवश्यकताओ तथा समाज की आर्थिक असमानता ने भी कवियों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया और फलस्वरूप हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म प्रगतिवादी आन्दोलनो का सूत्रपात हुआ। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दी काव्य साहित्य मे इसका प्रारम्भ १९३६ मे हुआ। समकालीन सामाजिक साम्प्रदायिक विभिन्न समस्याओ का स्वर प्रगति युग के कवियो ने उठाया। इसम कुछ छायावादी कवि और कुछ प्रयोगवाद का महत्व देने वाले कवि थे जिन्हाने प्रगतिशीलता को महत्ता प्रदान करत हुए काव्य साहित्य म भी उस स्वीकार किया। समसामयिक समस्याओ से प्रेरित हाने के कारण प्रगति युग का काव्य जन सामान्य के अधिक निकट है। भाषा की दृष्टि स साहित्यिक खडी बोली के साथ सामान्य बोलचाल के शब्द भी इसम प्रयुक्त हुए तथा मुक्तक छन्दो को प्रधानता मिली। इस युग के प्रमुख कविया म श्री सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य कृति 'युगान्त और युगवाणी के अतिरिक्त सम्पादक रूप म रूपाभ' पत्रिका म भी उनका विद्रोही रूप स्पष्ट हुआ। 'ग्राम्या स्वण धूलि स्वण किरण तथा अमिता तक की काव्य कृतियाँ म कवि का जीवन दशन एक स्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है। सूयकान्त त्रिपाठी निराला की तीसरे दशक मे लिखी कविताओ म प्रगतिशील विचारधारा का सकेत मिलता है परन्तु उसका सुनियोजित रूप चौथे दशक की कविताओ म मिलता है। कुकुरमुत्ता म कवि के प्रगतिशील विचारो का कविता रूप सगृहीत है जिसम यथाथ के प्रति व्यग्यात्मक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। श्री भगवतीचरण वर्मा की भी अनेक कविताओ मे प्रगतिवादी विचारधारा के दशन होते हैं। डा० रागेय राघव के पिघलते पत्थर' काव्य सग्रह, श्री नरेन्द्र शर्मा के 'प्रवासी के गीत' तथा 'अग्निशस्य काव्य सग्रह रामधारी सिंह दिनकर की काव्य कृतिया म 'इतिहास के आसू धूप का धुआ शिवमगल सिंह सुमन' की पर आख नही भरी काव्य कृति, श्री केदारनाथ अग्रवाल की 'नीद के बादल' तथा 'युग की गगा, त्रिलोचन का सवप्रथम सग्रह धरती, डा० महेन्द्र भटनागर की काव्य कृतियो म अभिमान जिजीविषा टूटती शृखलाए तारा के गीत नई चेतना बदलता युग, मधुरिमा विहान तथा सतरग आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल 'अचल तथा नागाजुन की अनेक कविताओ म प्रगतिशील तत्व विद्यमान हैं तथा उनम परम्परागत रूढियो और मान्यताओ के विरोध म नवीन चेतना का आह्वान है। आधुनिक युग की काव्य क्षत्रीय इसी पृष्ठभूमि मे श्री शातिप्रिय द्विवेदी का आविर्भाव हुआ। अपनी समकालीन काव्य प्रवृत्तियो से उन्होने किस रूप म प्रेरणा तथा प्रभाव ग्रहण किया, इसका विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

द्विवेदी जी का काव्य और समकालीन प्रवृत्तियाँ

भारतीय काव्य शास्त्र म काव्य क अत्यन्त व्यापक अथ को लिया गया है जिसक अ तगत गद्य और पद्य क रूपो की व्याख्या एव भेद प्रभेद का निरूपित किया गया है। का य क इस व्यापक अथ की दृष्टि स काव्य का प्रमुख काय कल्पना और अनुभूति स प्रेरित विचारा को सजीवता आकषक तथा रमरणीय अभिव्यक्तियो क आधार पर जीवन्त रूप प्रदान करना है। डा० भगीरथ मिश्र क अनुसार काव्य म कल्पना और अनुभूति के माध्यम स गृहीत सत्य का निरूपण किया जाता है परन्तु इसम गहीन क साथ साथ ही उसकी अभिव्यजनागत विशषता भी महत्व रखती है।'[१] काव्य क सक्षिप्त अर्थों मे भारतीय काव्य शास्त्र म का य के लक्षणो क आधार पर सस्कृत क प्रकाण्ड विद्वानो न काव्य के स्वरूप एव अथ का स्पष्ट किया है जो स्वय म स्वत त्रागी होते हुए भी अपनी समग्रता म काव्य के विविध स्वरूपो एव तत्वो का बोध कराता है। अग्निपुराण' म उपलब्ध काव्य की प्राचीन परिभाषा के अनुसार इष्टाथ सक्षिप्त वाक्य अलकार, गुण और दोष के आधार पर काव्य की वाह्य रूपरेखा का स्पष्ट किया गया है। आचाय भामह ने शब्दार्थो सहितौ काव्यम के आधार पर शब्द अथ के सयोग को काव्य माना है। लक्षणो पर आधारित परिभाषाए काव्य की आत्मा को स्पश करती हैं और इस दृष्टि से सस्कृत साहित्याचाय विश्वनाथ की वाक्य रसात्मकम काव्यम तथा पडितराज जग नाथ की परिभाषा रमणीयार्थ प्रति पादक शब्द काव्यम को मान्यता प्रदान की गयी है। डा० भगीरथ मिश्र न भी शब्द, अथ अथवा दोना की रमणीयता से युक्त वाक्य रचना को काव्य माना है। आधुनिक युग म काव्य के पर्याय रूप म कविता और पद्य शब्द का प्रयाग होता है। इसम बहुत कम भिन्नता होती है अतएव यह शब्द समानार्थी मान जाते हैं। पद्य म विचारा को छ दबद्ध रूप म प्रस्तुत किया जाता है। आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पाठक या श्रोता के मन को आनन्दित करनेवाली प्रभावशाली रचना को कविता माना है। आपका मत है कि अन्त करण की वृत्तियो के चित्र का नाम कविता है।[२] श्री जयशकर प्रसाद जी न का य को आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति' मानते हुए उसे श्रयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा माना है। आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति का स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व म सहसा ग्रहण कर लती है का य म सकल्पात्मक अनुभूति कही जा सकती है।[३] इस दृष्टि से काव्य मे सत्य के पूण सौन्दय की अभिव्यक्ति होती है। कवि अपने वस्तु जगत क सत्य को अनुभूति म ग्रहण कर शब्द छन्द, शली आदि

---

१ काव्य शास्त्र डा० भगीरथ मिश्र पृ० ४७।

२ रसज्ञरञ्जन श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ० ५०।

३ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध श्री जयशकर प्रसाद पृ० ३८।

काव्य के बाह्य उपकरणों के माध्यम से अपनी कल्पना को काव्य चित्र रूप में प्रकट करता है। कल्पना कला का अन्तपक्ष है जो भावों का सूक्ष्म शरीर है और हृदय से सम्बन्धित है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी की धारणा के अनुसार काव्य कल्पना के पंख जहाँ तितली की अनुरागिनी आत्मा का नहीं, बल्कि केवल उसके अनुरंजित बाह्य कलेवर की रंगसाजी का ही प्रदर्शन करते हैं वहाँ वे हमारे बाह्य नेत्रों को ही लुभा कर रह जाते हैं परन्तु कविता जब अपने मधुप के से स्वर्ण पंख फैला कर, कुसुम के कानों काँटों में छिप कर नन्दा के पल्लव-पल्लव में छिप कर अनुभूतिपूर्ण मधुमय जीवन गुजार करती है तब वह हमारे कानों तक ही नहीं, मर्मस्थल तक भी पहुँच जाती है। कल्पना में केवल भावना की उड़ान ही नहीं बल्कि उसकी विदग्धता भी अपेक्षित है।[1]

[१] राष्ट्रीय काव्य की प्रवृत्ति भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय चेतना की जागृति का आभास समय समय पर होता रहा है। आधुनिक युग से पूर्व भी देश प्रेम और राष्ट्रीय चेतना भारतीय संस्कृति की विशिष्टता रही है। आधुनिक युग में राष्ट्रीयता की प्रवृत्ति अधिक जागरूक रही है तथा यह प्रवृत्ति काव्य के क्षेत्र में भी विकासशील रही है। 'राष्ट्रीयता के मूलभूत तत्वों के रूप में भौगोलिक एकता जातीय एकता सांस्कृतिक एकता'[2] आदि को मान्यता प्राप्त है। सन १८५७ ई० में भारतीय स्वतन्त्रता के लिए हुई क्रान्ति से मानव में माइ राष्ट्रीय चेतना का जागरण हुआ। जिसका प्रभाव समाज में हुए विभिन्न सामाजिक सुधारों एवं शिक्षा पर पड़ा। राजाराममोहन राय महादेव रानाडे, स्वामी दयानन्द स्वामी रामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द आदि ने राष्ट्रीय चेतना से अभिभूत हो सामाजिक क्षेत्र में नव जागरण अछूतों का उद्धार सांस्कृतिक एवं जातीय एकता एवं सुप्त राष्ट्रीय चेतना के जागरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। यद्यपि भारतेन्दु युग से पूर्व ही स्फुट रूप में राष्ट्रीय काव्य की प्रवृत्ति लक्षित होने लगी थी किन्तु एक सुस्पष्ट परम्परा का रूप भारतेन्दु युग में ही विकासशील हुआ। भारतेन्दु युग के प्रमुख राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्य रचना करने वालों में बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन राधाकृष्ण गोस्वामी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त तथा प्रतापनारायण मिश्र आदि विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने भौगोलिक एकता प्राकृतिक सौंदर्य, सांस्कृतिक गौरव धार्मिक उच्चता तथा गौरवपूर्ण अतीत की प्रशस्ति के माध्यम से राष्ट्रीय भावना का जन जीवन में संचार किया।

भारतेन्दु युग के पश्चात द्विवेदी युग भी राष्ट्रीय प्रवृत्ति से ओतप्रोत रहा है। इस युग में यह प्रवृत्ति भारतेन्दु युग की तुलना में अधिक विकसित हुई। बीसवीं

---

१ कवि और काव्य श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, पृ० १३।

२ हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास डा० प्रतापनारायण टंडन, पृ० ३१७।

शताब्दी के प्रारम्भिक चरणो म स्वतन्त्रता की आवाज अत्यधिक तीव्र थी। बीसवी शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश म प्रथम महायुद्ध के दुष्परिणामो के प्रभावस्वरूप मानवतावादी विचारको ने गम्भीर चिन्तन के आधार पर ठोस कदम उठाये। द्विवेदी युग म राष्ट्रीय एव स्वदेशी आन्दोलन मे उग्रता आ गई तथा महात्मा गांधी के नतृत्व म भारतीय जनता नवीन उत्साह एव लगन से राष्ट्रीय हित के कार्यों म लिप्त हुई। ऐम उथल पुथल एव क्रान्तिकारी युग म साहित्यकार और कविया की लखिनी न भी अपना वही क्षेत्र चुना। उसमे से भी राष्ट्रीय भावना से पूण ओजपूण गीत नि सृत हुए। इस युग के प्रमुख कवियो म श्रीधर पाठक, नाथूराम शकर, गोपालशरण सिह मैथिलीशरण गुप्त सत्यनारायण कविरत्न, ठाकुर प्रसाद शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्यासिह उपाध्याय तथा राम देवी प्रसाद पूण आदि कवियो ने राष्ट्रीय भावना प्रधान काव्यो की रचना की जिन्हान आर्थिक सामाजिक सास्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र म व्याप्त दुव्यवस्था एव उनके कारणो की ओर सकेत करते हुए भारतवासियो को राष्ट के प्रति सचेत किया तथा उन्ह नवीन दष्टिकाण स चिंतन करने के लिए उत्साहित किया।

द्विवेदी युग के पश्चात् प्रसाद तथा उनके परवर्ती युग के कविया म राष्ट्रीय भावना का और भी अधिक प्रखर एव प्राजल रूप हिन्दी साहित्य म प्रत्यक्ष हुआ। विश्व युद्धो की प्रतिक्रिया का प्रभाव साहित्य एव साहित्यकारो पर भी पडा तथा अनक अहिंसात्मक आन्दोलनो का प्रारम्भ हुआ। स्वराज्य की माग समाज मे भौतिक प्रभावो स ग्रसित, दुर्भिक्ष से पीडित जनता की करुण दशा तथा राष्ट्र के लिए सत्याग्रह आदि समाज म परिव्याप्त तत्वो की प्रतिक्रिया साहित्य म भी लक्षित हुई तथा इस युग म अनेक राष्ट्रीय भावना स पूण काव्य रचनायें प्रकाशित हुइ। इस युग के अनकानेक कवियो मे सियारामशरण गुप्त जयशकर प्रसाद सुभद्रा कुमारी चौहान सुमित्रान दन पन्त, रामधारी सिंह दिनकर मोहनलाल महतो वियोगी सूयका त त्रिपाठी निराला सोहनलाल द्विवेदी गिरजादत्त शुक्ल गिरीश, डा० रामकुमार वर्मा, गोपालशरण सिंह नेपाली, माखनलाल चतुर्वेदी हरिवशराय बच्चन', हरिकृष्ण प्रेमी नरेन्द्र शर्मा, शिवमगल सिंह सुमन, भगवतीचरण वर्मा डा० रागेय राघव शमशेर बहादुर सिंह रामश्वर शुक्ल अचल' बालकृष्ण शर्मा नवीन त्रिलोचन शास्त्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द उदयशकर भटट, श्यामनारायण पाण्डेय तथा गगाप्रसाद पाण्डेय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लखनीय हैं। अतएव हम दखत हैं कि राष्ट्रीय काव्य धारा आधुनिक हिन्दी साहित्य म उन्नीसवी शताब्दी क अन्तिम चरणो स प्रारम्भ हाकर बीसवी शताब्दी म वतमान काल मे प्रवाहशील मिलती है। हिन्दी साहित्य के विभिन्न युगो क अनुशीलन स यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय कविता की यह प्रवत्ति नवीन नही प्रत्युत यह युगो-युगा स प्रवाहमान है तथा समय समय पर इसका रूप परिवर्तित होता रहता है। वतमान काल म राष्ट्रीय भावना क क्षेत्र म द्विवेदी युग

तथा उसके परवर्ती युगों में इस भावना की क्रियाशीलता अत्यधिक आभासित होती है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने भी इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत 'खादी' तथा 'पथिक' जैसी कविताएँ प्रस्तुत की हैं, जो उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का परिचय देने में समर्थ हैं।

[२] छायावादी काव्य की प्रवृत्ति आधुनिक हिंदी साहित्य में छायावादी काव्य प्रवृत्ति बीसवीं सदी के दूसरे दशक से परिलक्षित होती है। हिंदी काव्य पर पाश्चात्य साहित्य की देन के रूप में छायावादी प्रवृत्ति को माना जाता है। छायावादी काव्य प्रवृत्ति हिंदी काव्य में बंगला और अंग्रेजी के प्रभावस्वरूप आविर्भूत हुई है। कुछ विद्वानों ने काव्य में छायावाद के जन्म का कारण द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह के फलस्वरूप माना है। कुछ विचारक इसे 'आधुनिक पौराणिक धार्मिक चेतना के विरुद्ध लौकिक चेतना का विद्रोह तथा कुछ इसे 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' मानते हैं। आधुनिक हिन्दी कविता में छायावाद से तात्पर्य उस कविता से है जो द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता का त्याग कर नवीन छंदों में प्रतीक पद्धति तथा चित्रभाषा की शैली में प्रवाहित हुई है। वस्तुतः इस छायावादी काव्य धारा में यथार्थता से पलायन प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण, मानव प्रेम, आत्माभिव्यंजना, नीति विद्रोह दुखवाद तथा रहस्यवाद की विशिष्टता आदि प्रवृत्तियाँ प्रतिभासित होती हैं। आधुनिक हिंदी काव्य धारा में छायावाद का प्रादुर्भाव केवल पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव की देन है यह तथ्य असंगत है कारण आधुनिक हिंदी साहित्य प्राचीन भारतीय साहित्य एवं भारतीय परम्परा से भी प्रभावित हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि छायावादी युग पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित तथा बंगाल की नवीन काव्यधारा से परिचित होने के साथ साथ अपनी प्राचीन भारतीय रहस्यवाद की परम्परा से भी अवगत था। यही कारण है कि छायावाद में सूक्ष्म की सौंदर्यानुभूति एवं रहस्यवादिता की अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी काव्य प्रवृत्ति की विभिन्न विद्वानों ने विविध रूप से परिभाषा करने का प्रयत्न किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद शब्द का दो अर्थों में प्रयोग किया है। प्रथम अर्थ में उन्होंने रहस्यवाद को छायावाद के अंतर्गत माना है जिसकी अभिव्यक्ति अत्यंत चित्रमयी सूक्ष्म व्यंजनात्मक भाषा में होती है और दूसरे अर्थ के अंतर्गत शुक्ल जी ने काव्य शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थों में प्रयुक्त किया है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के मत में छायावाद में भावुकता, सांकेतिकता, रहस्य, दुरूहता कोमल कान्त पदावली, प्रकृति प्रेम उच्छृंखलता आदि समाविष्ट है। डा० नगेन्द्र ने तो छायावाद को भावात्मक स्तर पर एक भाव पद्धति ही मान लिया है। डा० देवराज ने छायावादी काव्य को ही विभिन्न नामों यथा गीति काव्य प्रकृति काव्य, प्रेम काव्य तथा रहस्यवादी आदि कहा है। श्री विश्वम्भर मानव के विचार से तो प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप ही छायावाद है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद में ब्रजभाषा के माधुर्य, खड़ी बोली के ओज और प्रकृति की अतीन्द्रिय

अनुभूति का सम वय माना है।

छायावादी कवियो म श्री जयशकर प्रसाद, श्री सुमित्रानन्दन पत श्री सूय कात त्रिपाठी निराला तथा श्रीमती महादेवी वर्मा का नाम विशिष्ट रूप स उल्लिखित किया जाता है। छायावाद के प्रमुख प्रवतक श्री जयशकर प्रसाद जी ने काव्य म वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभियक्ति को छायावाद के नाम स अभिहित किया। प्रसाद जी के मत मे ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता सौन्दयमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताए हैं। अपने भीतर स मोती के पानी की तरह अन्तर स्पश करके भाव समपण करने वाली अभियक्ति छाया कान्तिमयी होती है। प्रसाद जी के साहित्य मे छायावादी काय की समस्त विशेषताएँ निहित हैं। उनके साहित्य म अनुभूत्यात्मक वेदना की अति शयता प्रम व्यापार की सूक्ष्माभिव्यक्ति फलस्वरूप उसकी गम्भीर प्रतिक्रियात्मक सम्भावनाए प्रकृति मे चेतन सत्ता का आरोपण तथा प्रतीक विधान आदि विशेषताएँ परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त कामायनी महाकाव्य म आध्यात्मिक और दाशनिक तथ्यो के निरूपण के साथ उनके जीवन दशन का भी स्पष्टीकरण हुआ है। श्री सुमित्रानन्दन पत छायावादी काय धारा के प्रमुख स्तम्भो मे एक हैं। उन्होने छायावाद को एक आधुनिक आन्दोलन माना है तथा उसके सौन्दय बोध एव कल्पना म पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव को स्वीकार किया है। युग चिन्तन के अनुरूप पत जी की विचारधारा मे युग प्रभाव के फलस्वरूप क्रमिक परिवतन उनके सपूण साहित्य मे परिलक्षित होता है। *अतएव काव्य म एक विकासशीलता का सकेत मिलता है।* उन पर गाधी तथा अरविन्द दशन का विशेष प्रभाव है। प्रकृति तथा नारी सौन्दय के चित्रण म विशिष्टता है। भाषा को गढने मे वह सिद्धहस्त हैं अतएव भाषा एव *शैली के नवीन एव* मौलिक रूपो का आभास भी उनके साहित्य म होता है। उन्हें सौन्दय और संस्कृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। काय कला की दृष्टि से उन्होने नवीन प्रयोग किए हैं। युग प्रभाव के कारण उनके काय मे छायावादी काय की विशिष्टताओ के अतिरिक्त समकालीन अय प्रवृत्तियो का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उनके साहित्य म चेतन प्रकृति का प्रखर रूप मानव और सौन्दय का चित्रण प्रकृति म मानवीय चेतना की सहज अभियक्ति कलात्मक विशिष्टता, सुकुमार एव कोमल भावनाओ आदि की चित्रबद्धता का रूप चित्रित हुआ है।

श्री सूयकान्त त्रिपाठी निराला' के साहित्य मे छायावादी प्रवृत्तियो के साथ आधुनिक काय की अय प्रवृत्तिया और विशेषत प्रगतिवाद और प्रयोगवाद आदि *के तत्त्व भी विद्यमान हैं। निराला जी के साहित्य म भाषा भाव छन्द अभिव्यजना* तथा प्रतीकों के नवीन प्रयोग हुए हैं। उन्हे मुक्त छन्द का सफल कवि माना जाता है। उनके साहित्य म आधुनिक नवीन विशेषताओ के अतिरिक्त छायावादी विशेषताए भी प्रखर रूप म मिलती हैं। उन्होने मानवतावादी दृष्टिकोण के आधार पर कटु

यथार्थ के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टि को अपनाया। यही भाव उनके संपूर्ण साहित्य में परिलक्षित होता है। इस दृष्टि से उनके साहित्य में एक विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का भी आभास होता है। प्रयोगात्मकता की दृष्टि से उनकी काव्य उपलब्धियाँ स्तुत्य हैं। श्रीमती महादेवी वर्मा के साहित्य में वेदना की चरम अभिव्यक्ति के साथ दार्शनिक कल्पना भी व्यक्त हुई है। आपने भी छायावादी काव्य प्रवृत्ति को इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध मानव की कोमल और सूक्ष्म भावनाओं के प्रति विद्रोह माना है। आपके साहित्य में छायावादी विशिष्टताओं के साथ प्रकृति के सूक्ष्म सौंदर्य में परोक्ष सत्ता का आभास तथा प्रकृति के व्यष्टिगत सौंदर्य में मानवीय चेतना का आरोपण भी लक्षित होता है। महादेवी वर्मा जी के मत में छायावाद और रहस्यवाद के अंतर्गत सूक्ष्मतम अनुभूतियों के कोमलतम मूर्त रूप, भावना के हल्के रंगों का वैचित्र्य, वेदना की गहरी रेखाओं की विविधता, करुणा का अतल गाम्भीर्य और सौंदर्य का असीम विस्तार[1] आदि विशिष्टताएँ अवलोकित होती हैं। इन उपर्युक्त विशिष्टताओं के अतिरिक्त महादेवी जी के काव्य में गीतों की भी अपनी विशिष्टता है। उनके गीतों में कोमल कल्पना, भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति, लाक्षणिकता, माधुर्य एवं मार्मिकता आदि विशेषताएं भी परिलक्षित होती हैं। उपर्युक्त चार प्रमुख कवियों के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति के अन्य गण-मान्य साहित्यिकों में डा० रामकुमार वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अचल, गोपालशरण सिंह, नेपाली, बच्चन, भगवतीचरण वर्मा तथा शांतिप्रिय द्विवेदी आदि के नाम भी उल्लेख-नीय हैं जिन्होंने छायावादी काव्यधारा का पोषण किया है। शांतिप्रिय द्विवेदी आरम्भ में इस विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। उनकी लिखी हुई छायावादी शैली से युक्त अनेक कविताएं 'नीरव' में संगृहीत हैं, जिनका आगे विवेचन किया जायगा।

[३] **प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्ति** आधुनिक हिंदी कविता में प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्ति उत्तर छायावादी काव्य प्रवृत्ति के रूप में उल्लेख की जाती है। तीसरे दशक के मध्य से हिंदी काव्य साहित्य पर मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के परिणामस्वरूप हिंदी काव्य साहित्य में परिवर्तन परिलक्षित होने लगा तथा इस युग में विभिन्न प्रवृत्तियों का जन्म हुआ। मार्क्सवाद से प्रभावित इन विशिष्ट प्रवृत्तियों को ही प्रगतिवाद के नाम से अभिहित किया गया। छायावादी कल्पनात्मक भावभूमि के विरुद्ध प्रतिक्रिया रूप में प्रगतिवाद का आविर्भाव हुआ। जीवन के प्रति दृष्टि-कोण में परिवर्तन से साहित्यकार भी उससे प्रभावित हुआ तथा साहित्य में एक नवीन आन्दोलन का जन्म हुआ। भारत में होने वाली इस युग की राजनीतिक, सामाजिक तथा प्राकृतिक घटनाओं का प्रभाव साहित्य में पड़ा और काव्य में सामाजिक यथार्थ-वाद के रूप में एक साहित्यिक आन्दोलन का जन्म हुआ। इसी को प्रगतिवाद के नाम से भी आख्यायित किया गया। ऐतिहासिक दृष्टि से हिंदी साहित्य में इसका प्रचार

---

१ आधुनिक कवि श्रीमती महादेवी वर्मा (अपने दृष्टिकोण से), पृ० ३०।

सन १९३६ मे हुआ । इसी वष लखनऊ मे मुशी प्रेमचन्द के सभापतित्व मे प्रगतिशील लखक सघ का अधिवेशन हुआ जिसम प्रेमचन्द जी न कला और साहित्य की सामाजिक उपयोगिता को मान्यता प्रदान की । प्रगतिवाद के उद्देश्य की ओर 'हिन्दी साहित्य कोष म सकेत किया गया है— प्रगतिवाद का उद्देश्य था साहित्य म उस सामाजिक यथार्थवाद का प्रतिष्ठित करना जो छायावाद के पतनोन्मुख काल की विकृतियो को नष्ट करके एक नये साहित्य और नये मानव की स्थापना करे और उस सामाजिक सत्य को उसके विभिन्न स्तरो को साहित्य म प्रतिपादित होने का अवसर प्रदान करे। वग सघष की साम्यवादी विचारधारा और उस सन्दभ मे नये मानव नये हीरो की कल्पना इस साहित्य का उद्देश्य था।' वस्तुत इस काल मे छायावादी प्रवृत्तिया का प्राय ह्रास हो चुका था उसका आशिक रूप ही विद्यमान था। आधुनिक युग के प्रारम्भिक क्षणो स ही राष्ट्रीय काव्य प्रवत्ति मे प्रगतिवादी तत्वो का समावेश परोक्षत मिलता है। सन १९३६ स साहित्यकारो की रचनाओ म प्रगतिशील युग का आभास होने लगा परन्तु उसमे प्रगतिवादी दशन की पूणत स्थापना न हो सकी थी। इस दृष्टि स पन्त जी की युगवाणी' को ही प्रथम प्रगतिवादी काव्य ग्रथ का श्रेय प्राप्त हुआ।

श्री सुमित्रानन्दन पन्त जी को युगवाणी तथा उसके अनन्तर की काव्य रचनाओ मे प्रगतिवादी तत्व विद्यमान हैं तथा प्रगतिवादी प्रवृत्ति के दशन होते है। युगान्त म कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण युगवाणी' म समन्वयात्मकता की ओर परिलक्षित होता है। पन्तजी की प्रगतिवादी नवीन विचारधारा स्वणधूलि स्वण किरण तथा अमिता तक आते आते एक जीवन दशन रूप म उपलब्ध होती है। इसमे अभिव्यक्ति की प्रौढता एव काव्यात्मक विकास के रूप म सामाजिक चेतना का नवीन रूप परिलक्षित होता है। कवि की आगे की रचनाओ म दाशनिक बोझिलता न होकर प्रयोगात्मकता प्रौढता तथा बौद्धिकता के दशन होते हैं। श्री सूयकान्त त्रिपाठी निराला' के काव्य सग्रहो म भी प्रगतिवादी विचारधारा के तत्व हैं तथा हिन्दी साहित्य की इस प्रवत्ति ने उनके काव्य सग्रहो म सगहीत यथार्थवादी कविताओ स प्रेरणा ग्रहण की। प्रगतिवादी काव्य प्रवत्ति के अन्तगत कुकुरमुत्ता म सगहीत अधिकाश रचनाएँ इस दष्टि से महत्वपूण हैं जो अपन नवीन रूप की ओर सकेत करती हैं। निराला जी का दष्टिकोण यथाथ के प्रति व्यग्य प्रधान है तथा यथाथ स समझौता न होन पर उनका निराशावादी दष्टिकोण भी अभिव्यक्त हुआ है।

उत्तर छायावादी युग के कवि श्री भगवतीचरण वर्मा की कविताओ म प्रगतिवादी तत्वो की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी काव्य प्रवत्ति की दष्टि म डा० रांगेय राघव के पिघलते पत्थर काव्य सग्रह म जन क्रान्तिकारी विचारधारा क

१ हिन्दी साहित्य कोश, प्रधान सपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४६८।

रूप मे जन चेतना का आह्वान किया गया है। श्री नरेन्द्र शर्मा के अग्निशष्य शीर्षक काव्य संग्रह में समकालीन जीवन की यथाथता के प्रति जागरूकता तथा नय युग की नयी समस्याओं की ओर सकेत किया गया है। श्री रामश्वर शुक्ल अचल' की कवि ताओ मे परम्परागत रूढियो और मान्यताओ के विरुद्ध नवीन चेतना का आह्वान है तथा नय युग का स्वर मुखर हुआ है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर के इतिहास के आसू' 'धूप, और धुआ आदि काव्य सग्रहो मे प्रयोगात्मकता के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिपादन हुआ है। डा० शिवमगल सिंह 'सुमन के पर आखें नही भरी शीर्षक काव्य-सग्रह मे सगहीत कविताओ मे कवि का क्रान्तिकारी स्वर मुखरित हुआ है। श्री केदारनाथ अग्रवाल की नीद के बादल' तथा 'युग की गगा' शीर्षक काव्य-सग्रह, श्री नागाजुन का कृपक और श्रमिकों से सम्बन्धित समस्या प्रधान काव्य-सग्रह श्री त्रिलोचन का धरती काव्य सग्रह डा० महेन्द्र भटनागर का अभि यान निर्जीविषा' 'टूटती शृखलाएँ, तारो क गीत' 'नइ चेतना, बदलता युग मधुरिमा विहाग तथा 'सतरण आदि काव्य सग्रह भी प्रगतिवादी काव्य प्रवत्ति क अन्तगत उल्लिखित किये जा सकते हैं। उपयुक्त कवियो के अतिरिक्त भी अनक एस कविगण हैं जिन्होने प्रगतिशील काव्य प्रवत्ति म अपना समथ योगदान दिया है। उप युक्त विश्लपण के आधार पर यह आभासित होता है कि प्रगतिवाद युगीन काव्य साहित्य मे जन जीवन की प्रमुख समस्याएँ समसामयिक परिस्थितियो का चित्रण, कविता म बौद्धिक तत्व की प्रधानता क्रान्ति एव परिवतन की सशक्त भावना सास्कृतिक समन्वय राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना मानवतावाद की महत्ता, स्त्री स्वतन्त्रता काव्य मे कला पक्ष का नवीन रूप आदि प्रगतिवादी काव्य प्रवत्तियो का समावेश हुआ है। ये तत्व श्री शान्तिप्रिय द्विवदी लिखित भिखारिणी' जसी कविताओ म बहुलता स विद्यमान मिलते हैं, जिनका आग उल्लख किया जायगा।

द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का सैद्धान्तिक विश्लेपण

सिद्धान्तत काव्य के विश्लषण का आधार रस अलकार भाषा शली छन्द, प्रकृति वणन, प्रेम भावना, यथार्थात्मकता तथा अनुभूत्यात्मकता आदि तत्व होत हैं। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी ने जो कविताए लिखी हैं व प्रधा नत नीरव' तथा हिमानी म सग्रहीत हैं। इन दोनो का रचना काल द्विवेदी जी के गद्य साहित्य की भाँति लगभग चार दशक का प्रसार नही रखता है। इसके विपरीत यह समस्त कविताए द्विवदी जी न अपन साहित्य रचना के प्रारम्भिक लगभग दस वर्षों म ही लिखी हैं। इसलिए जहाँ एक ओर इनम कवि की कोमल कल्पनाएँ और सरल भावनाएँ सहज रूप म अभिव्यजित हुई हैं वहाँ दूसरी ओर वैचारिक प्रौढ़ता का स्पष्ट अभाव भी इनम मिलता है। नीचे विभिन्न काव्य तत्वो के आधार पर द्विवेदी

जी के काव्य का जो सद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है उससे यह कथन स्पष्ट हो जायगा कि द्विवेदी जी के काव्य में अनुभूत्यात्मकता की विशेष रूप से प्रधानता है।

[१] रस योजना प्राचीन आचार्यों ने रस को काव्य की आत्मा माना है तथा इसे ब्रह्मानन्द सहोदर के रूप में स्वीकार किया है। रस की निष्पत्ति विभाव अनुभाव तथा व्यभिचारी भावो के सयोग से होती है। दृश्य अथवा श्रव्य काव्य में व्यक्ति रसानुभूति की अलौकिकता में प्रवेश कर आत्मलीन हो उठता है, उसमें रस की परिकल्पना की जाती है। द्विवेदी जी ने अपने काव्य साहित्य में रस को स्थान दिया है। उनके सम्पूर्ण काव्य साहित्य में उनकी प्रकृति के प्रति अनुरागिनी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनके काव्य साहित्य में शृगार शान्त और करुण रस की योजना अधिकता से हुई है परन्तु यत्र-तत्र वात्सल्य और वीर रस की कविताएँ भी मिलती हैं। शृगार रस की कविताओं में कवि ने सयोग शृगार की अपेक्षा वियोग शृगार को प्रधानता दी है। सयोग शृगार मे भी कवि ने सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है। कहीं भी अश्लीलता नहीं दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति के विभिन्न व्यापारों से प्रभावित मनोभावो के अनुकूल ही कहीं सयोग और कहीं वियोग शृगार का रूप अंकित हुआ है। कवि की शान्त रस से पूर्ण कविताओं में उनकी बोझिल दार्शनिकता प्रतिबिम्बित हुई है। कवि का रुझान आध्यात्मिकता की ओर हुआ है।

सयोग शृगार
निर्निमेष दोनों के लोचन
छोड रहे दोनों उच्छ्वास
पखडियों के पत्र खोल
उड गये प्राण वा मधुर सुवास ! (हिमानी ४)

वियोग शृगार
कहते ही जाते हैं सखि !
मेरे ये जले फफोले
मैं इनकी तीव्र जलन को
कैसे शीतल कर पाऊँ ? (नीरव २८)

शान्त रस
दो हृदयों में शान्त भाव से
करता है जो प्रेम निवास
वहाँ अचल है मन सचल हो
रवि शशि का भी अमिताभास ! (नीरव १०)

करुण रस
कहाँ गई अब इन अधरों की
कलिका सी प्यारी मुस्कान !
शुष्क कंठ में आज कहाँ सखि
जीवन का मधु गुंजित गान ! (हिमानी ९)

वात्सल्य रस
तुम्हीं विश्व के भावी गायक
तुम्हीं सृष्टि के कवि छविमान

इस अस्फुट तुतली वाणी मे
जीवन क चिरमगल गान। (हिमानी ७)

वीर रस
इसी शून्य मे कभी हुआ था वीरो का वह पद सचार
जिसस कातर प्राणो स भी निकल उठा भीषण हुकार !
मिला यही था अर्घ्य भरवी को शोणित की धारा स
भरव राग वजा था शस्त्रो की झनयन झनकारो से ! (हिमानी २१)

[२] **अलकार योजना** भाषा के अलकरण उसकी पुष्टि एव राग की परिपूणता तथा भावो की यथाथ अभिव्यक्ति म अलकारो का प्रयोग कवियो क चनन मस्तिष्क की परिचायक है। द्विवदी जी क काव्य साहित्य मे अलकारो का प्रयोग बिना किसी अतिरिक्त प्रयास क सयत रूप म हुआ है। अनुप्रास अलकार का प्रयोग अधिकता स हुआ है परन्तु वह भावो की सुदरता को सुदरतर रूप प्रदान करता है। छायावाद से प्रभावित होन क कारण द्विवेदी जी के काव्य म छायावादी विशपताए भी लक्षित होती हैं जो वस्तुत पाश्चात्य प्रभाव के रूप म मान्य हैं। यही कारण है कि उनके काव्य साहित्य म विभिन अलकारो ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता शब्द शक्तियो क साथ मानवीकरण तथा विशपण विपयय का रूप प्रतिबिम्बित हुआ है। उनम प्रस्तुत म अप्रस्तुत विधान की भी सुदर योजना हुई है। द्विवेदी जी की कविताओ म अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति विरोधाभास, उपमा अयोक्ति तथा स्मरण अलकारो का प्रयोग हुआ है।

अनुप्रास
वही गीत अकित है नीरव
ओसो के उज्ज्वल मन म
उसको ही दुहराते खग कुल
पुलको कुल कल कुजन म ! (हिमानी १)

रूपक
अरी अनादिनि ! अरी विपादिनि !
क्षुब्ध न हो तू या तत्काल
भाग्य चद्र की शीतल किरणें
कभी करेंगी तुझे निहाल ! (नीरव ३१)

उत्प्रेक्षा
मेरे चुम्बन के सिचन म
खिले तुम्हारा कोमल गात
ज्यो दिनकर से चुम्बित होकर
खिल खिल उठते हैं जलजात ! (हिमानी ७)

उल्लेख
तुम्ही विश्व के भावी गायक
तुम्ही सृष्टि के कवि छविमान ! (हिमानी ७)

अतिशयोक्ति
महाबली हो महाकाल ! तम
विश्व तुम्हारा कारागार

मुरा हो गया कि तु कौन यह
कहो था तुम्हे साधार ?
अमर प्रेम का विहग देख लो
तोड़ तुम्हारे पिंजर द्वार
मुक्त देश में मुक्त पथ से
करता है स्वच्छंद विहार ! (हिमानी १६)

विरोधाभास
सजन हृदय में चमक रही ये
ज्वालायें क्या बारम्बार ?
सघन स्वरों में घहर रहा यह
किस पीड़ा का हाहाकार ? (हिमानी १७)

उपमा
तुम पग पग पर पड़ हुये हो
मेरे प्रिय के दूत समान । (नीरव ४)

फैला देता है शशि अपनी
धुली चाँदनी का साया
युगल प्रेमियो की समाधि पर
मानो करुणा की छाया ! (हिमानी २०)

अन्योक्ति
वसुध हो किस मधु मदिरा में
यह कैसा है मनोविकार ?
चार दिनों की चटक चाँदनी
उस पर हो क्या यों बलिहार ?
लोहे तक को जंग लगाकर
कुटिल काल कर देता नाश
फिर फूलो सी कोमल छवि की
कितने दिन रखते हो आस ? (नीरव १०)

स्मरण
निरखता हूँ जब प्रात काल
अरुण रवि की मृदु छटा विशाल
तुम्हारी अरुण कांति का ध्यान
मुझे आ जाता तब तत्काल ! (नीरव १५)

मानवीकरण
अहो तुम भी रोती हो आज व्यथा के गाकर व्याकुल गान
कहो किस निर्दय ने सुकुमारि ! तुम्हारे बेधे हैं ये प्रान ?
व्यथा में भी है भरी मिस तभी तो मृदु मधुमय हैं गान
बसी की क्रन्दन ध्वनि भी हाय सुरीली बन जाती है तान !
(नीरव २९)

विशेषण विपर्यय इन्हीं आखों में नित निरुपाय
उमड़ आते हैं नीरव गान। (नीरव २९)

विशेषण विपर्यय का रूप द्विवेदी जी के काव्य साहित्य में अन्यत्र भी परिलक्षित होता है। कवि ने प्रकृति चित्रण एवं मनोभावों की अभिव्यक्ति में उपमानों के चयन में कहीं अपनी नवीनता प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है और कहीं रूढ़िग्रस्त परम्परा का।

[३] भाषा, शैली एवं छंद श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी मूलत छायावाद युग के कवि हैं। अतएव उनके काव्य में इस युग की विशेषताएं निसन्देह विद्यमान मिलती हैं। छायावाद के प्रमुख कवियों विशेष रूप से पन्त के काव्य के समान भाषा शैलीगत विशेषताएं मिलती हैं। द्विवेदी जी की धारणा है कि काव्य में भाषा मुख्यत भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। इस दृष्टि से उसे भावों के समान ही समृद्ध होना चाहिए। उनकी धारणा है कि भाषा का निर्माण मनुष्य के द्वारा होता है जब कि भावों की सृष्टि का आधार प्रकृति होता है। एक कवि अपनी भावात्मक विविधता के अनुसार भाषा को सामर्थ्य बनाता है यदि वह इसमें सफल होता है तब उसके काव्य का कलात्मक सौन्दर्य बढ़ जाता है। इस सन्दर्भ में यदि द्विवेदी जी की काव्य भाषा पर विचार किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि उनकी भाषा में शब्द योजना में चित्रात्मकता, स्वर मयता माधुर्य और ध्वन्यात्मकता के गुण विद्यमान हैं। बहुत सजग भाव से द्विवेदी जी ने ऐसे शब्दों का बहिष्कार किया है जो काव्य में रुक्षता, नीरसता अथवा दुरूहता उत्पन्न करते हैं। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग उन्होंने अवश्य किया है परन्तु यह वहीं हुआ है जहाँ भावात्मक गम्भीरता अपेक्षित होती है। अन्यथा कवि ने अधिकांशत कोमल कान्त पदावली का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर भाषा चित्रात्मक हो गयी है और कवि की कल्पना को पाठक के समक्ष चित्रवद्ध रूप में उपस्थित कर देती है। इस दृष्टि से 'हिमानी' में संगृहीत सरिता से सम्बन्धित कविता यहाँ पर उल्लिखित की जा सकती है जिसमें कवि ने मानवीकरण के आधार पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण को व्यंजित किया है। यह कविता भाव तथा व्यंजना की दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त लिखित 'नौका विहार' जैसी कविताओं से पर्याप्त साम्य रखती है। इसमें भी सरल शब्द चयन ने भावात्मक सौंदर्य में वृद्धि कर दी है। उदाहरणार्थ—

वह टलमल टलमल सरिता रे
बहती रहती है अविरल
वह कल कल छल छल सरिता रे
गाती रहती है प्रतिपल
नहीं जानती वह किस पथ से
बहता किस दिशि में जीवन
नहीं जानती वह किस-प्रिय से
मिलने जाता उसका मन।

मुक्त हो गया किन्तु कौन यह
ब ी बना तुम्ह लाचार ?
अमर प्रम का विहग दख लो
तोड तुम्हारे पिजर द्वार
मुक्त देश म मुक्त पथ स
करता है स्वच्छद विहार ! (हिमानी १६)

विरोधाभास
सजन हृदय म चमक रही य
ज्वालायें क्यो बारम्बार ?
सघन स्वरा म घहर रहा यह
किस पीडा का हाहाकार ? (हिमानी १७)

उपमा
तुम पग पग पर पड हुये हो
मेरे प्रिय क दूत समान । (नीरव ४)
फला देता है शशि अपनी
धुली चाँदनी का साया
युगल प्रेमियो की समाधि पर
मानो करुणा की छाया ! (हिमानी २०)

अ योक्ति
वसुध हो किस मधु मदिरा म
यह कसा है मनोविकार ?
चार दिना की चटक चान्नी
उस पर हो क्या या बलिहार ?
लोहे तक को जग लगाकर
कुटिल काल कर देता नाश
फिर फूला सी कोमल छवि की
कितने दिन रखते हो आस ? (नीरव १०)

स्मरण
निरखता हूँ जब प्रात काल
अरुण रवि की मृदु छटा विशाल
तुम्हारी अरुण काति का ध्यान
मुझे आ जाता तब तत्काल ! (नीरव १५)

मानवीकरण
अहो तुम भी रोती हो आज यथा के गाकर व्याकुल गान
कहो किस निदय न सुकुमारि ! तुम्हारे बेधे हैं य प्रान ?
यथा म भी है भरी मिस तभी तो मृदु मधुमय हैं गान
बसी की क्रन्दन ध्वनि भी हाय सुरीला बन जाती है तान !
(नीरव २९)

विशेषण विपर्यय इन्हीं आंखों में नित निरुपाय
उमड आते हैं नीरव गान। (नीरव २९)

विशेषण विपर्यय का रूप द्विवेदी जी के काव्य साहित्य में अन्यत्र भी परिलक्षित होता है। कवि ने प्रकृति चित्रण एवं मनोभावों की अभिव्यक्ति में उपमानों के चयन में कहीं अपनी नवीनता प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है और कहीं रूढिग्रस्त परम्परा का।

[३] भाषा, शैली एवं छंद श्री शांतिप्रिय द्विवेदी मूलत छायावाद युग के कवि हैं। अतएव उनके काव्य में इस युग की विशेषताएँ निसंगत विद्यमान मिलती हैं। छायावाद के प्रमुख कवियों विशेष रूप से पन्त के काव्य के समान भाषा शैलीगत विशेषताएं मिलती हैं। द्विवेदी जी की धारणा है कि काव्य में भाषा मुख्यत भावों की अभिव्यक्ति का साधन है। इस दृष्टि से उसे भावों के समान ही समृद्ध होना चाहिए। उनकी धारणा है कि भाषा का निर्माण मनुष्य के द्वारा होता है जब कि भावों की सृष्टि का आधार प्रकृति होती है। एक कवि अपनी भावात्मक विविधता के अनुसार भाषा को सामर्थ्य बनाता है यदि वह इसमें सफल होता है तब उसके काव्य का कलात्मक सौन्दर्य बढ़ जाता है। इस सन्दर्भ में यदि द्विवेदी जी की काव्य भाषा पर विचार किया जाये तो यह ज्ञात होगा कि उनकी भाषा में शब्द योजना में चित्रात्मकता स्वरमयता माधुर्य और ध्वन्यात्मकता के गुण विद्यमान हैं। बहुत सजग भाव से द्विवेदी जी ने ऐसे शब्दों का बहिष्कार किया है जो काव्य में रूक्षता नीरसता अथवा दुरूहता उत्पन्न करते हैं। संस्कृत के शब्दों का प्रयोग उन्होंने अवश्य किया है परन्तु यह वही हुआ है जहाँ भावात्मक गम्भीरता अपेक्षित होती है। अन्यथा कवि ने अधिकांशत कोमल कान्त शब्दावली का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं पर भाषा चित्रात्मक हो गयी है और कवि की कल्पना को पाठक के समक्ष चित्रबद्ध रूप में उपस्थित कर देती है। इस दृष्टि से हिमानी में संगृहीत सरिता से सम्बंधित कविता यहाँ पर उल्लिखित की जा सकती है जिसमें कवि ने मानवीकरण के आधार पर आध्यात्मिक दृष्टिकोण को व्यंजित किया है। यह कविता भाव तथा व्यंजना की दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त लिखित नौका विहार जैसी कविताओं से पर्याप्त साम्य रखती है। इसमें भी सरल शब्द चयन ने भावात्मक सौन्दर्य में वृद्धि कर दी है। उदाहरणार्थ—

वह टलमल टलमल सरिता रे
बहती रहती है अविरल
वह कल कल छल छल सरिता रे
गाती रहती है प्रतिपल

नहीं जानता वह किस पथ से
बहता किस दिशि में जीवन
नहीं जानती वह किस प्रिय से
मिलने जाता उसका मन!

संगीतात्मकता के प्रभाव से युक्त लालित्यपूर्ण शब्द योजना के साथ सूक्ष्म संकेतात्मक और प्रतीकात्मक शैलियो के सम्मिश्रण ने द्विवेदी जी की कविता को प्रभावशाली स्वरूप प्रदान किया है। जहाँ तक छन्द योजना का सम्बन्ध है, द्विवेदी जी के विचार से भावो की गति भी छन्द म सहायक होती है। उन्होने जहाँ एक ओर 'उपक्रम', 'पद अक', 'तितली' तथा 'शरच्च द्र' जैसी कविताओ मे तुकान्त छन्दो का प्रयोग किया है वही दूसरी ओर अधखिली कली से यमुने तथा 'मनोवेग' जैसी कविताओ मे मुक्त छन्दो को ध्वनि मुक्त न करके केवल लय प्रवाह से मुक्त किया है क्योकि उनकी धारणा है कि मुक्त छन्द भावनाओ के सहज उद्रेक मे सहायक होते हैं।

[४] प्रकृति वर्णन काव्य म प्रकृति चित्रण की परम्परा आदि काल स परिलक्षित होती है पर तु प्रकृति के निरन्तर बदलते रूपो के साथ कवियो के मानस एव अभिव्यक्ति की पद्धतियो मे भी निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक युग के काव्य म प्रकृति चित्रण का रूप अपनी पूर्व पीठिका से सर्वथा भिन्न है। आधुनिक युग के कवियो के समक्ष प्रकृति अपने विभिन्न रूपो म अवतरित हुई है। उनकी दृष्टि मे प्रकृति मानव की चिरसगिनी है, वह मानव भावनाओ के साथ ही हसती खेलती तथा वेदना से उद्वेलित भी होती है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी प्रकृति से प्रभावित होकर उसके प्रति एक जिज्ञासा, कौतूहल, भावुकता तथा उत्कण्ठा के अतिरेक एव मानवीय प्राकृतिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर काव्य जगत मे आविर्भूत हुए। प्रकृति उन्हे निरन्तर अपनी ओर आकृष्ट करती रहती थी। उन्होने सकेत किया है कि मेरी वृत्ति कोमला है। बचपन मे प्रकृति को जिस निर्द्वन्द्वता और प्रफुल्लता के वातावरण म खेलता था उसे ही कवि और काव्य मे देखना चाहता था। अपनी इसी कोमल सरस और हार्दिक मनोवृत्ति के कारण द्विवेदी जी हिन्दी साहित्य के काव्य जगत म सबसे पहले आए। उनके काव्य म छायावाद की विभिन्न विशेषताओ के दर्शन होते हैं। कवि शैशव के सारल्य एव किशोरावस्था की उमगो से अधिक अभिभूत हुआ है और प्रकृति के माध्यम स उसने अपनी इन वृत्तियो का प्रत्यक्षीकरण किया है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य म प्रकृति चित्रण के विभिन्न रूपो के दर्शन होते हैं कही उन्होने प्रकृति को विशुद्ध आलम्बन के रूप म गृहीत किया है तो कही उद्दीपन के रूप मे। आलम्बन के रूप म कवि ने बहती हुई सरिता का शुद्ध रूप से यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है

> वह टलमल टलमल सरिता रे
> बहती रहती है अविरल
> वह कल कल छल छल (सरिता) र
> गाती रहती है प्रतिपल।[1]

द्विवेदी जी न प्रकृति के उद्दीपन रूप को अपने काव्य साहित्य मे विशिष्ट स्थान दिया है।

---

१ हिमानी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी, कविता स० ३, पृ० १३।

कवि न प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन रूपा के अतिरिक्त प्रकृति को निर्जीव न मानकर उसे सजीव चेतन तथा मानव क्रियाआ स पूण माना है। काव्य म प्रकृति म मानव के मनोभावो की अभिव्यक्ति है। कवि न प्रकृति के मानवीकरण के द्वारा अमूत को मूत रूप देन का अत्यत सजीव एव मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है—

उस सूखे सूने तट पर
बिखरे हैं बालू के कण
क्या टूटे हुए हृदय से
गिनते वे जीवन के क्षण ?
व्याकुल समीर म बहता
उनके प्राणो का क्रन्दन
पतझड की सासों सा ही
उनके उर मे भी स्पदन।[1]

प्रस्तुत म अप्रस्तुत का विधान छायावादी कविया की प्रमुख विशषता है। द्विवदी जी ने भी अपने काव्य-सग्रह 'हिमानी म इस विधान को अपनाया है। हिमानी मे 'जुगनू की बात' इस तथ्य का प्रमुख उदाहरण है, जिसमे कवि जुगनू के माध्यम से अपने हार्दिक भावों को अभिव्यक्त करता है

नदिया तो पीछे लहराती
लौट चलू फिर क्या आली !
पर पथ तो मैं भूल गयी हूँ
औ अधियारी है काली।
लौट चलू तो कलश कहा है
कसे भर लूगी पानी
रीते हाथा अब सखि कसे
होगी प्रिय की आगवानी ?[2]

द्विवेदी जी न प्रकृति मे उस अलौकिक शक्ति का आभास किया जो प्रकृति क कण-कण म तथा मानव जीवन म अपन गीत लिख कर अपनी प्रतिष्ठा कर जाती है। कवि न उस अलौकिक शक्ति से पूण प्रकृति का कही नारी के रूप म रूपायित किया तो कही पुरुष के रूप म। नारी रूप म कवि न मा का रूप श्रेष्ठ माना है। प्रकृति पुरुष क रूप होने पर कवि स्वय नारी हो जाता है। प्रकृति क पुरुष रूप को कवि न अपना अनेक कविताओ म स्थान दिया है जिमम हिमानी की दसवी और ग्यारहवी कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मा रूप मे प्रकृति कवि क मानस मे श्रद्धा की

---

१ गगन क प्रति (हिमानी), श्री शातिप्रिय द्विवेदी कविता स० १७, पृ० १६।
२ हिमानी', श्री शातिप्रिय द्विवेदी कविता स० १०, पृ० २७।

पात्री है जो प्रकृति के जड चेतन म अपने गीतो को लिख जाती है। 'हिमानी' की उन्नीसवी कविता मे मा का अत्यन्त प्राजल रूप व्यक्त हुआ है। कवि उससे तादात्म्य स्थापित कर उसम लय होकर केवल उसी की महिमा के गीत गाना चाहता है। अन्यत्र कवि प्रकृति मे ईश्वर का आभासित करता है

तुम आती हो फिर धीरे से
गोधूली की वेला मे
वही गीत लिख लिख जाती हो
जगमग उडगन स्पन्दन म।
अर्द्ध निशा मे तपस्विनी भी
लहरा निज नीरवपन मे
वही गीत भर देती, मेरे
सूने स्वप्निल जीवन म।'

कवि प्रकृति के प्रति विशेष रूप से मोहासिक्त है। वह प्रकृति से ही जीवन मे चेतना का सचार करना चाहता है। कवि मानव के प्राकृतिक जीवन की ओर अनुरक्त है। प्रकृति वणन मे कवि ने प्रकृति के करुण एव उज्ज्वल रूपो को ही प्रस्तुत किया है।

[५] प्रेम भावना द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे प्रेम के लौकिक एव अलौकिक दोनो रूप सवत्र व्याप्त हैं। कवि ने स्थूल प्रेम का चित्र केवल प्रकृति के मनोरम दृश्यो को कल्पना की उडान से अभिव्यजित कर के प्रस्तुत किया है परन्तु कवि के इस पार्थिव मनोभाव मे अश्लीलता का आभास नही होता है। प्रकृति चित्रण म कवि ने सयोग शृगार तथा वियोग शृगार के माध्यम से स्थूल प्रेम का रूप अकित किया है। सयोग शृगार के प्रेम गीतो म अनेक मानवीय क्रियाओ, सकोच लज्जा आदि के बाद मधुर मिलन का वातावरण प्रस्तुत किया गया है वही वियोग शृगार मे निराश हृदय का असफल प्रम अश्रु, उच्छवास, निराशा आदि का मार्मिक एव हृदयद्रावक रूप व्यजित हुआ है। अधिकाश कविताओ म कवि ने अलौकिक प्रेम का चित्र अकित किया है। यही कारण है कि कही पुरुष रूप म और कही स्त्री रूप म कवि का मानस कभी अपने प्रियतम और कभी अपनी प्रेयसी से मिलन के लिए उल्लसित हो उठता है। हिमानी म 'लता कुज से झाँक रही है, एक सुमन बाला सुकुमार' से कवि का प्रेम भावना का जो स्वरूप दृष्टिगत होता है वह छायावादी कवियो विशेषत सुमित्रान दन पन्त से पर्याप्त साम्य रखता है। इसी काव्य मे ग्यारहवी कविता म कवि न अपने प्रिय को सम्बोधित करके उसकी स्मृति के आधार पर जो प्रेम भावनाभिव्यक्त की है वह अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से जयशकर प्रसाद के 'आँसू' से पर्याप्त साम्य रखती है। इसकी

१ हिमानी', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी पृ० १०।

तुम आये प्रिय ! हाँ ले आये
वह मेरा सुख स्वप्न विलास
मेरी आँखों म फिर उमडा
नव शोभामय नव उल्लास !
किन्तु हाय, क्यो दो दिन म ही
तुम भी मुरझा चले अहो
किस विषाद से, किस अभाव से
मुझसे भी कुछ कहो कहो !

जसी पक्तिया 'आँसू' में अभिव्यजित भावनाओ के समान ही प्रकृति की मानव रूप म चेतन सत्ता को मुक्त करती है। इस सग्रह की आगामी कविता म भी कवि ने लौकिक प्रेम व्यजना के साथ-साथ उसकी आध्यात्मिक परिणति की ओर भी सकेत किया है जिसम वह अपने प्रिय के साथ शरीर उ मन स एकाकार होने की अभिलाषा अभि यक्त करता है। शातिप्रिय द्विवेदी के का य साहित्य मे अभिव्यजित प्रेम भावना का एक अ य रूप नीरव म भी दृष्टिगत होता है जा मुख्यत विशुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर व्यक्त हुआ है और जिसमे अदृष्ट की ओर सकेत करत हुए कवि न निरासक्ति से मुक्त भावनाए व्यक्त की हैं। नीरव' म सगहीत निवेदन' तथा लता सुहागिन जसी कविताओं मे इसे स्पष्टत लक्षित किया जा सकता है।

[६] यथार्थात्मकता श्री शातिप्रिय द्विवेदी के काव्य सग्रह मे यथाय की दृष्टि से रचित अनक कविताए हैं जिनमे कवि ने मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रति पादन किया है।

ससार मे दूसरो की आह और आँसू सब तुच्छ हैं, परिहास सदश हैं। इसीलिए कवि ने भिखारिणी शीषक कविता म दीन स्त्री का चित्र प्रस्तुत करके उसस अपने जीवन का सामजस्य स्थापित किया है

जगती के निमम पथिकों से
सखि ! रखती हो कैसी आस ?
अपने नीले अचल म तुम
पाओगी केवल उपहास।
छोडो उनकी मिथ्या आशा
आओ चलें प्रकृति के देश
वही पूण होगी अभिलाषा
जग को दे दो जग का क्लेश ![1]

अपने तात्कालिक समय के अनुरूप कवि जहाँ प्रकृति प्रागण में कल्लोल करना चाहता

---

१ 'हिमानी, श्री शातिप्रिय द्विवदी कविता स० १३, पृ० ३३।

है वही विश्व प्रेम और देश प्रेम को भी विस्मृत नही कर देता है

उसे लिया है दिव्य भेंट मा
छोहमयी जिस माता ने
अपने को तू अर्पित कर दे
उसके दुख म, मस्ताने ।
अहो देखता नही कभी क्या
जन्मभूमि यह रोती है
तेरे जस वीरों न ही
अपनी चिन्ता धोती है ।[1]

कवि अपने समय की गांधीवादी विचारधारा का पोषक एव समथक था । कवि खादी की रुचिता, शुचिता तथा उज्ज्वलता स अधिक प्रभावित होकर खादी के धागो की एकता की कामना वह भारतवासियों स करने लगता है

सरल गरीबा के आँसू सी
खादी तू है शुचि निमल
शीतल है तू सत हृदय सी
धवल चाँदनी सी उज्ज्वल
तू अपनी निमलता स कर
कलुषित हृदयो को निमल
औ अपनी उज्ज्वलता से कर
भारत की भावी उज्ज्वल ।[2]

[७] दाशनिकता सस्कृति के आरम्भिक चरणो से ही मानव प्रकृति के अज्ञात रहस्यो के प्रति जिज्ञासु रहा है । इन रहस्यो के उद्घाटन मे ही वह निरन्तर कमशील एव प्रयत्नशील होकर उनके गूढ रूपा से आत्मसात कर सुख का अनुभव करता है । अपने इन्ही सतत प्रयत्नो के द्वारा वह अपनी उत्कण्ठा को शान्त कर अनेक तात्विक ग्रथियो को प्रत्यक्ष करता है । कवि प्रकृति के उस अलौकिक सौंदय एव उसम किसी अलौकिक शक्ति को आभासित कर उसके प्रति अनुरक्त हो उसी मे लीन हो जाना चाहता है । यह तात्विक ग्रथियाँ ही दशन के रूप मे प्राचीन काल से साहित्य मे अपने अस्तित्व को बनाये हुए है । परन्तु कालक्रमानुसार परिवर्तित दृष्टिकोण एव परिवर्तित परिस्थितियो के कारण दाशनिक चिन्तन मे मौलिक अन्तर आता रहा है । हिन्दी साहित्य मे भी इस अन्तर को प्रत्यक्ष लक्षित किया जा सकता है । उदाहरणाथ मध्ययुगीन सन्तो एव भक्तो के दाशनिक चिन्तन तथा आधुनिक युग के छायावादी

१ नीरव श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी कविता स० २२ (पथिक)
२ वही कविता स० २३ (खादी)

कवियो के दार्शनिक चिन्तन मे पर्याप्त वैषम्य परिलक्षित होता है। अपनी प्राचीन रूढि, परम्परागत मान्यताओ से छायावादी कवि मुक्त है। आधुनिक युग की सजग सामाजिक परिस्थिति के कारण इन कवियो की व्यापक जीवन दृष्टि तथा मानववाद की भावना ही अधिक मुखर हुई है। छायावादी कवि ने दर्शन के अवलम्बन पर मानव समाज की समस्याओ का निराकरण करने का प्रयत्न किया है। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी भी काव्य के क्षेत्र म छायावाद से प्रभावित हैं तथा उन्हे छायावाद के अन्य कवियो के के साथ उल्लिखित किया जा सकता है। कवि ने मानव कल्याण की कामना हेतु काव्य मे दर्शन को एक साधन बनाया है। कवि ईश्वर की ज्योति को सर्वत्र व्याप्त देखकर मानव जीवन की शाश्वत गति को स्वीकार करता है। परन्तु मानव जीवन दुख और सुख से आप्लावित है। वह सुख म प्रसन्न तथा दुख में द्रवित हो उठता है, परन्तु कवि का मन्तव्य है कि सुख दुख दोनो को एक रूप म ही स्वीकार करना चाहिए, कारण

अरे सुख दुख का यह ससार
चाहता सुख दुख का उपहार
बैठ कर किसी प्रेम की द्वार
सुना दे एक मधुर उदगार।[1]

आत्मा और परमात्मा से सम्बन्धित विचारों को भी कवि अपने काव्य म स्वीकार करता है। भगवान सत चित्त और आनन्दस्वरूप हैं तथा आत्मा उसी का एक अश मात्र है जिसमे ईश्वर अपने रूप मे अवस्थित है। मनुष्य व्यर्थ ही ससार की माया प्रवचना म उस अलौकिक ईश्वर को खोजता रहता है

तेरे प्रभु का क्रीडागार
तेरे ही मन मन्दिर म रे,तेरे प्रभु का क्रीडागार।
माया के इस लीलागृह म खोल विश्व के नेत्र अपार
स्वय छिप गया चतुर खिलाडी, पलक यवनिका के उस पार।
निखिल नयन थक गये खोज कर, मिला न पर उसका आभास
व्यर्थ हो गया रवि शशि ग्रह का राशि राशि यह स्वर्ग प्रकाश।
नेत्रहीन! क्या तू प्रकाशमय? तेरा ही तो भाग्य महान
देख-देख तेरे ही मन मे खेल रहे तर भगवान।[2]

कवि ने जहाँ ईश्वर को एक ओर प्रियतम के रूप मे मान कर सुख और दुख को प्रियतम का धन माना है तथा उनसे तादात्म्य होने के लिए स्वय को अनुगामिनी छाया रूप मे माना है—

१ हिमानी', श्री शांतिप्रिय द्विवेदी कविता स० १४, पृ० ३६।
२ वही पृ० ३८।

जीवन के इस एक तार म
मेरे भाव अकेले
कहो तुम्हारे बिना बजेंगे
कस ऐ अलबेल !

मुझे छोड कर जाते हो तुम
कितनी दूर, कहा बोलो
मैं तो हूँ अनुगामिनी छाया
मुझको भी निज सग ल लो ।[1]

वहा कवि ने प्रकृति के उदात्त वैभव परम चतन शक्ति को माँ रूप म भी निरूपित किया है । ईश्वर क समक्ष मानव उसी का एक लघु रूप है । प्रकृति के प्रत्येक व्यापार म कवि अपने उस प्रिय रूप ईश्वर को आभासित करता है परन्तु वह ससार स विमुख नही, उसी म रह कर वह मानवता के उच्च शिखर म पहुचना चाहता है । उस उस देवता की आकाक्षा नही जो नित्य अपने पूजन अचन की कामना करता है । कवि कह उठता है—

चिर पाप पुण्य मय है मानव
चिर हास अश्रु मय जीवन
मानव रह कर मानव से मैं
जोडूगा चिर अपनापन ।[2]

कवि के समक्ष इस नश्वर और मिथ्या ससार का रूप स्पष्ट है । वह इसी म लय नही हो जाना चाहता क्योकि समय क अन्तराल म सभी कुछ नष्ट हो जायेगा ।

[८] *वेदना वाद* श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य मे वेदना तथा करुणा का अत्यन्त सूक्ष्म और मार्मिक विश्लेषण हुआ है । उनके गद्यवत शुष्क जीवन मे उनका करुणा कलित काव्य हृदय ही मरुस्थल म ओएसिस के सदश था अतएव काव्य मे करुणा की धारा प्रवाहित हुई है । कवि के काव्य साहित्य म वेदना दो रूपो म अभिव्यक्त हुई है—व्यक्तिगत और समष्टि रूप म । व्यष्टि रूप मे कवि अपने विदग्ध हृदय का भार प्रकृति प्रागण म ही समाहित करना चाहता है । उसे प्रकृति म अपना सा ही निराधार रूप दृष्टिगोचर होता है—

सूने दिगन्त म बार बार
मैं रह रह कुछ उठता पुकार
निज व्यथित हृदय का व्यथित भार
रे किसके उर मे दू उतार ?

---

१ हिमानी श्री शांतिप्रिय द्विवेदी कविता स० १२, पृ० १३२।
२ वही कविता स० १८।

उस पार खड़े वे तरु अपार
हैं मुझे रहे अपलक निहार
इस पार भग्न है यह कगार
मुझसा ही माना निराधार।[1]

प्रकृति के विभिन्न कार्य व्यापारों को मानव अपने मनोभावों के अनुरूप ही अभिव्यंजना करता है। छायावादी कवियों की यह एक प्रमुख विशेषता है कि प्रकृति भी उनके दुख सुख के साथ हर्षित, उन्मादित तथा दुखित रूप में आभासित होती है। 'नीरव' की 'अधखिली कली में' शीर्षक कविता में कवि ने विकसित फूल की मादकता एवं मुरझाये फूलों की विदग्धता के चित्रण के माध्यम से अपने जीवन की करुण अनुभूतियों को अभिव्यक्त किया है

क्या के वाक्यों में उड़कर
भरती तू क्या दीर्घ उसास ?
तुझे स्नेह से आलिंगन कर
चलती कैसी दग्ध बतास ?[2]

परन्तु व्यथित और सिसकते हुए प्राणों से निःसृत गान ही संसार के लिए सुमधुर तथा सुरीले हो जाते हैं। समष्टि रूप में कवि 'भिखारिणी' के प्रति करुणा से प्लावित हो जाता है और 'गगन के प्रति' भी उसका हृदय द्रवित हो उठता है जिसमें युगों-युगों के दुखों का इतिहास अंकित होता है। वह व्यथित हो उठता है—

हाय तुम्हारे उर दर्पण में
छाई क्या जग की छाया ?
सुख दुख के मधु औ निदाघ ने
उसको विकसा मुलसाया।[3]

प्रकृति मानव के मनोभावों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है। कवि सृष्टि के कण-कण में अपने व्यथित हृदय की वेदना का आभास पाता है। वेदना की इस विस्तृत रूपरेखा से वह रोमांचित हो वेदना को अपनी प्रिया रूप में ही देखने लगता है

तू मेरी है प्रिया वेदने ! मैं तेरा चिर प्रियतम
बालकाल से परिचित हैं हम जो तम से दिन, दिन से तम।
बीत गया वह बाल काल आलि ! अब यौवन का छाया राग,
आ कुसुमों सा हृदय कुंज में सज अपने नूतन शृंगार
प्रिये ! परस्पर आलिंगन कर वहन करें हम जीवन भार।[4]

---

१ हिमानी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी, कविता सं० ६ पृ० १८।
२ नीरव, श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी कविता सं० ३१ (बालुका)।
३ हिमानी श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी कविता सं० १७ (गगन के प्रति) पृ० ४३।
४ नीरव' श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी कविता सं० २७ (वेदना से)।

कवि ने मानव जीवन म सुख दुख के समन्वय को स्वीकार किया है। मानव सुख म पुलकित तथा दुख मे द्रवित एव पीडित हो उठता परन्तु कवि की दृष्टि म सुख-दुख उस चिर सुन्दर ईश्वर की अमर साधना के साधन मात्र है। इसीलिए तो कवि सुख और दुख म अपने प्रियतम के मनोभावो के अनुरूप ही छवि को आभासित करता है—

दुख मे आता है वह प्रियतम
फला कर निज करुणा कर
सुख मे गाता है वह निरुपम
अधरो पर निज मुरलीधर।

मेरे सुख मे सुन्दर की छवि
उज्ज्वलतर से उज्ज्वलतर
मेरे दुख मे प्रियतम की छवि
कोमलतर से कोमलतर।[1]

इस प्रकार द्विवेदी जी ने जहा अपने काव्य साहित्य मे विदग्धहृदय की भावुकता व्याकुलता तथा परिणामस्वरूप करुणा की ओजस्विनी धारा को प्रवाहित किया है वही दूसरी ओर उन्होंने सासारिक मानव जीवन में सुख दुख के अस्तित्व को स्वीकार कर उसकी समन्वयात्मकता एव समरसता से ग्रहण करने की प्रवत्ति को निर्दशित किया है।

शातिप्रिय द्विवेदी की काव्य क्षेत्रीय उपलब्धियाँ

प्रस्तुत अध्याय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी की काव्य कृतियो का समकालीन हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि म जो विश्लेषण किया गया है वह इस क्षेत्र म उनकी उपलब्धियो क साथ प्रतिभा वशिष्ट्य का परिचय देन म समथ है। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी का आविर्भाव आधुनिक हिन्दी काव्य के छायावाद युग स सम्बन्धित है। इस काल म जो कवि साहित्य रचना कर रहे थ उनकी विचारधारा पर छायावाद की ही प्रधानता है। द्विवेदी जी की कविता म जहाँ एक ओर छायावाद के प्रभावस्वरूप कल्पना तत्वो का अधिकता स समावेश हुआ है वहाँ दूसरी ओर वयक्तिक और सामाजिक चेतना के स्वर भी निहित हैं। इस दृष्टि से द्विवेदी जी की अधिकाश कविताएँ छायावादी वस्तु तथा शिल्प से न्यूनाधिक रूप से साम्य रखते हुए भी उसम पर्याप्त भिन्न कही जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त द्विवेदी जी के गद्य साहित्य म जो सवेदनशीलता और भावनात्मकता विद्यमान है वह उनके कवि हृदय की कामनता का ही कारण है। ऊपर द्विवेदी जी के काव्य साहित्य के रचना काल के विषय म इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि वह उनके गद्य साहित्य के पूव

१ हिमानी श्री शातिप्रिय द्विवेदी कविता स० , पृ० १२।

का कृतित्व है। यद्यपि द्विवेदी जी की लिखी हुई काव्य कृतियों में 'नीरव', 'हिमानी', 'मधुमय' और 'परिचय' का उल्लेख मिलता है परन्तु उनकी मौलिक कविताओं के संकलन प्रथम दो ही हैं। इनमें 'नीरव' में कवि की १९२४ से लेकर १९२९ तक के मध्य लिखी कविताएँ संगृहीत हैं जो इस संग्रह में प्रकाशित होने के पूर्व पृथक रूप से अनेक पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित और प्रशंसित हो चुकी थीं। नीरव की कविताएँ कवि की प्रारंभिक कालीन कविताएँ होने के कारण कवि की सहज जिज्ञासा, उत्कंठा, उत्सुकता, कौतूहल तथा भावुकता से परिपूर्ण हैं। इनमें विभिन्न मानवीय मनोवृत्तियों की अभिव्यंजना है। अधिकांश कविताएँ शृंगारिक हैं परन्तु यत्र-तत्र शांत, करुण और वात्सल्य रसों का भी समावेश उनमें मिलता है। 'मलयानिल' तथा 'यमुने' जैसी कविताएँ प्रकृति चित्रण की सौन्दर्यमयी भावना को प्रस्तुत करती हैं तो 'विज्ञापन', 'आकांक्षा' और 'खादी' जैसी कविताएं आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में कवि के जागरूक चिंतन की परिचायक हैं। इनकी उत्तरकालीन रचनाएं 'हिमानी' में संगृहीत हैं जो विषय विस्तार की दृष्टि से अधिक प्रशस्त कही जा सकती हैं। प्रकृति चित्रण और सौन्दर्य भावना के साथ-साथ इसकी अनेक कविताएँ ऐतिहासिक सन्दर्भ में लिखी गयी हैं। 'हल्दीघाटी' इसी कोटि की कविता है। इनकी कुछ रचनाएँ जैसे 'अंध का गान' इत्यादि दार्शनिक आध्यात्मिक तत्व भी निरूपित करती हैं। द्विवेदी जी की कविताओं का विषयगत वैविध्य समकालीन काव्य प्रवृत्तियों के अनुरूप ही कहा जा सकता है क्योंकि इसमें जहाँ एक ओर छायावाद की कोमल कल्पनाएँ एवं सौन्दर्यपरक भावनाएँ अभिव्यंजित हुई हैं वहाँ द्वितीय विश्वयुद्ध के काल में भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए किये गये राजनीतिक और क्रांतिकारी आन्दोलन के सन्दर्भ में नवीन चेतना के स्वर भी बोलते हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की कविताओं में छायावाद की भावुकता, सात्विकता कोमलता तथा प्रकृति प्रेम आदि तो दृष्टिगत होता है परन्तु धूमिलता, दुरूहता रहस्यात्मकता आदि का अभाव है। स्वयं द्विवेदी जी के विचार से छायावाद की प्रमुख विशेषता यही है कि उसमें हमें सृष्टि के कण-कण में निहित अन्तश्चेतना की अनुरागिनी छाया का आभास मिलता है। इनका यह भी विचार है कि छायावाद में मध्यकालीन शृंगारिक काव्य से रसात्मकता तथा भक्ति काल से आत्मा की तन्मयता लेकर आधुनिक कविता को सरसता प्रदान की है। इस रूप में छायावाद केवल काव्य कला ही नहीं है वरन दार्शनिक अनुभूतियों का निरूपक होकर एक प्राण और एक सत्य भी है वह एक श्रेष्ठतर अभिव्यक्ति भी है। छायावाद की कविता प्रकृति की मौन भाषा को समझने में सहायक है तथा वह प्रकृति में मानव के रागात्मक सम्बन्धों को भी परिपुष्ट करती है। द्विवेदी जी की कविता में प्रमुख छायावादी कवियों की भाँति प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य के मांगल स्वरूप के साथ साथ एक शारीरिक प्रणय सम्बन्धों की प्रतीक मानवीयता भी मिलती है जिसके कारण सुमित्रानन्दन पंत के समान उन्हें वह प्रेयसि रूप में आकृष्ट करती है। १

कविताओं के साथ ही इस विचारधारा की प्रतिक्रिया रूप में जन्मे प्रगतिवादी चिन्तन की यथार्थात्मकता ने भी द्विवेदी जी को प्रभावित किया है। यह प्रभाव 'भिखारिणी' जैसी कविताओं के सन्दर्भ में स्पष्टतः लक्षित होता है। यहां पर इस तथ्य की ओर संकेत करना असंगत न होगा कि द्विवेदी जी की कविताओं में प्रकृति का चित्रण वात्सल्य और ममता की मूर्ति के रूप में भी हुआ है जहां कवि ने प्रकृति में नारी को मां के रूप में देखा है। यह भावना 'हिमानी' की अनेक कविताओं में दृष्टिगत होती है। सैद्धांतिक दृष्टिकोण से भी द्विवेदी जी की अधिकांश कविताएँ विभिन्न तत्वों की कसौटी पर कलात्मकता से युक्त प्रतीत होती हैं। द्विवेदी जी की अधिकांश कविताएँ मुख्यतः शृंगारपरक हैं परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, उनमें वात्सल्य, शांत, करुण और वीर रसों का परिपाक भी हुआ है। जहाँ तक अलंकार योजना का संबंध है द्विवेदी जी ने मुख्यतः अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, अतिशयोक्ति, विरोधाभास, उपमा, अन्योक्ति, स्मरण, मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय अलंकारों का प्रयोग अपनी अनेक कविताओं में किया है। भाषा के सम्बन्ध में द्विवेदी जी की धारणा है कि काव्य में भाषा मुख्यतः भावाभिव्यक्ति का साधन होती है और इसलिए उसे भावों के समान ही समृद्ध होना चाहिए। द्विवेदी जी की काव्य भाषा में चित्रात्मकता, स्वरमयता, माधुर्य और ध्वन्यात्मकता का गुण विद्यमान है तथा रूक्षता, नीरसता एवं दुरूहता का अभाव है। द्विवेदी जी की काव्य शैली में संगीतात्मकता, संकेतात्मकता तथा प्रतीकात्मकता के गुण विद्यमान हैं। 'उपक्रम', 'पदक' तथा 'तितली' जैसी कविताओं में द्विवेदी जी ने यदि तुकांत छन्दों का प्रयोग किया है तो 'अधखिली कली से', 'यमुने' तथा 'मनोवेग' जैसी कविताओं में मुक्त छन्द प्रयुक्त किये हैं। प्रकृति चित्रण के कलात्मक रूप छायावादी कवियों की रचनाओं में बहुलता से मिलते हैं। द्विवेदी जी ने 'गगन के प्रति' जैसी कविताओं में प्रकृति का मानवीकरण करते हुए उसकी बहुरूपात्मक अभिव्यंजना की है। छायावादी रोमांटिकता प्रधान काव्य होने के कारण द्विवेदी जी की कविताओं में प्रेम के लौकिक और अलौकिक दोनों रूपों की व्यंजना मिलती है। द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि यथार्थ जगत के कटु अनुभवों के सत्य को अपने मन और हृदय के सौन्दर्य को काव्य में व्यक्त करता है। उनकी यह भी धारणा है कि कवि मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही प्रकृति के सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुआ है। द्विवेदी जी के काव्य में प्रेम भावना और सौन्दर्य भावना का आधार भी दयानन्द है और उसे लौकिक तथा ईश्वरीय सौन्दर्य में व्यक्त किया गया है। छायावादी विचारधारा के इस प्रभाव के साथ-साथ द्विवेदी जी की कविताओं में प्रगतिवाद के प्रभावस्वरूप यथार्थ चेतना का निदर्शन भी मिलता है। यह विशेष रूप से 'विज्ञापन' तथा 'भिखारिणी' जैसी कविताओं में मिलती है। इस युग में चूंकि गांधीवादी विचारधारा का हिन्दी साहित्य पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है इसलिए 'पथिक' तथा 'ग्राम' आदि कविताओं के माध्यम से कवि ने इसी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त

किया है। छायावाद म जो दाशनिकता पूण रहस्यमयता मिलती है वह भी द्विवदी जी की कविताओ म दृष्टिगन हाती है। कोलाहल, अध का गान, वालुक, याचना' तथा मलयानिल आदि कविताओ म दाशनिकता और रहस्यमयता के साथ आध्या त्मिकता का भी समन्वय मिलता है। सुमित्रानन्दन पत आदि छायावादी कविया के समान द्विवेदी जी की कविताओ में भी प्रकृति के बहुरूपीय चित्रण का आधार करुण एव वेदनामय भावनाएँ ही हैं। कवि जीवन की करुण और दुखद अनुभूतिया से सवन्न शील बना जाता है और उसके मानस म मूक करुणा निरतर रुदन करती है। इस मन स्थिति म उसे प्रकृति के विभिन्न काय व्यापार समरूप प्रतीत होते हैं जो उसके दुख में दुखित भी होते हैं। यह भावना जयशकर प्रसाद के आसू काव्य म अभि व्यजित वदना भाव स साम्य रखती है। इस प्रकार स द्विवेदी जी की काव्य कला और भाव पक्षो की दृष्टि से युगीन पृष्ठभूमि म वैशिष्टय रखना है। छायावाद और प्रगतिवाद के अनक कविया से प्रभावित होते हुए भी द्विवेदी जी की काव्य प्रतिभा ने अपने विकास क लिए स्वतन्त्र माग की खाज की है। इस क्षत्र म जहाँ अनक काव्य तत्वो की दृष्टि से उनका काव्य परम्परानुगामी है वहा दूसरी ओर छदात्मकता की दृष्टि स उसम पर्याप्त नवीनता भी मिलती है। द्विवेदी जी न सहज रूप म कविता की परिपूणता के लिए भाषा भाव और रस की अनिवायता निर्दशित की है। उनकी इस कसौटी पर भी उनका काव्य खरा सिद्ध होता है। उनकी यह भी धारणा है कि कवि अपन माग का स्वय निर्देश करता है और यह सत्य है कि अनेक प्ररणाओ और प्रभावो के होते हुए भी द्विवेदी जी न एक कवि के रूप म अपने माग का स्वय निर्देश किया है और पूव स्थापित स्वार्थो स असम्बद्ध रह कर नवीन रचनात्मक दृष्टि से उस प्रशस्त किया है। इस दृष्टि स भी उनका काव्य मनुष्य के प्रेम, सहानुभूति, करुणा और ममता आदि आदशवादी सदगुणो का प्रतीक कहा जा सकता है जिसम यत्रवाद के विपरीत मानवीय चेतना का उद्रक और सचार दृष्टिगत होता है।

उपसहार द्विवेदी जी की हिन्दी साहित्य को देन

प्रस्तुत प्रबन्ध के विगत अध्यायो म किये गए अध्ययन के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि श्री शातिप्रिय द्विवेदी की साहित्य क्षत्रीय उपलब्धियाँ अनक दष्टियो स विशिष्टता रखती है। यह एक उल्लखनीय तथ्य है कि हिन्दी के अनक महान साहित्यकार द्विवेदी जी के महत्व के विषय म एकमत हैं और उनकी साहित्यिक उपलब्धियो को स्वीकार करते हैं। महाकवि श्री सुमित्रान दन पन्त न द्विवेदी जी के विषय म अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि साहित्य के अतिरिक्त द्विवेदी जी क चिन्तक का रूप भी अपनी एक विशेषता रखता है। ग्राम जीवन के स्वच्छ सरल परिवेश से प्रभावित होने के कारण उनक सस्कारा म खादी के सूतो की सी एक शुद्धता और सर्वोपयोगिता मिलती है।' आचाय प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के विचार स वे "शान्त, निश्छल बुद्धिजीवी थे। प्रत्येक साहित्यिक को वे अपनी बिरादरी का सदस्य मानत थे और उसके साथ स्नेहसपृक्त बिरादराना व्यवहार करते थे। हिन्दी सवियो की वह पीढी और उनकी वह भूमिका अब समाप्त प्राय है। वे उन व्यक्तियो की माला की अन्तिम गुरिया थे। सरल और सहज व्यक्तित्व वाले प० दुर्गादत्त त्रिपाठी न उनके विषय मे जो उदगार प्रकट किये है वे उन्होने प्रस्तुत प्रबन्ध की लेखिका को भेजे गए एक पत्र मे लिखे हैं जिसे परिशिष्ट के अन्तगत उद्धत किया जा रहा है। कविवर डा० शिवमगल सिह सुमन ने उनक महत्व का स्वीकरण करते हुए लिखा है कि " हिन्दी साहित्य के नवोन्मेषी जागरण काल के सवाहको मे शान्तिप्रिय जी का नाम अग्रगण्य है। जीवन साधन की समुचित सुविधाओ से वचित रहन पर भी कणादि की भाँति उन्होन प्राचीन कवियो की परम्परा को पुनर्जीवित और प्रतिष्ठित किया है। उनकी वाणी म ऋचाओ की पवित्रता और आरती की समुज्ज्वलता है। वयोवृद्ध साहित्य और कला चिन्तक श्री रायकृष्ण दास ने द्विवेदी जी का हिन्दी साहित्य मे स्थान निर्धारण करते हुए बताया है कि "भारतेन्दु काल स आज तक हिन्दी म एक स एक लखक हुए हैं और हो रहे हैं होते रहेगे। तभी तो हिन्दी कहा स कहाँ पहुच गई और दिन दिन उठती ही जायगी। किन्तु लखको क इस भारी समुदाय म श्री शातिप्रिय द्विवेदी का स्थान अद्वितीय है। उन्ह अन्य किसी देशी या विदेशी भाषा का सम्बल नहीं उनकी उपमा ही उनका निर्माण करती आई है। ऐस मौलिक विचार वाल साहित्यिक विरले ही होते हैं। कविवर डा० हरवशराय बच्चन न द्विवदी जी का हिन्दी आलोचना क क्षत्र म महत्व निर्दिष्ट करते हुए लिखा है कि ' द्विवेदी जी मेर प्रिय लेखका म स हैं। इसम कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि

हिन्दी समालोचना का सृजन की सरसता देन का सवप्रथम काय द्विवेदी जी ने ही किया है।' हिन्दी के मूधन्य समालोचक डा० नगेन्द्र ने द्विवेदी जी की साहित्य मम पता के विषय में लिखा है कि "शातिप्रिय जी को साहित्य के मम की जैसी परख है वसी कम आलोचको को है। परिमाण और गुण दोनो की दष्टि से हिन्दी आलाचना क विकास मे उनका योगदान अक्षुण्ण है। उनकी मार्मिक रचनाओ के अभाव म छाया वादी काव्य का रूप हिन्दी के सहृदय समाज तक सप्रेषित न हो पाता। ऐस आलोचक कम हैं जिनकी समीक्षा शैली भी आलोच्य काव्य और आलोचक के हृदय रस से इस प्रकार मधुसिक्त हो उठती है। और इन सबसे ऊपर आधुनिक युगीन हिन्दी काव्य क स्तम्भ स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने द्विवेदी जी के विषय म जो उदगार व्यक्त किय हैं व ममपूण हैं शातिप्रिय सकुशल रहो तुम काटों के फूल, मधु सौरभ तुमने दिय लिए सहज सौ शूल।' इन मन्तव्या का पारायण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी क साहित्य के अध्ययन की हिन्दी मे अत्यधिक आवश्यकता थी। लेखिका को इस बात का सतोष है कि उसके द्वारा इस दिशा म सवप्रथम प्रयास किया जा रहा है, भले ही वह नगण्य हो।

श्री शातिप्रिय द्विवेदी के जावन वत्त का उल्लेख करते हुए पीछे यह सकत किया जा चुका है कि उनका जीवन अनेक सघर्षों म व्यतीत हुआ। काशी म उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि तथा साहित्यिक वातावरण इस प्रकार का था कि उनके सस्कार भी उसी प्रकार के घन गए। बडी बहिन के वात्सल्य की जो आचलिक छाया द्विवदी जी के शशव काल से ही रही थी द्विवेदी जी न 'पथचिन्ह तथा परिव्राजक की प्रजा म उनक प्रति जो आभार और कृतनता ज्ञापित की है वह उस काल की ममस्पर्शी स्मृतियो का प्रभावशाली चित्राकन करती है। द्विवेदी जी ने अपने जीवन स सम्बधित जो वत्तात प्रस्तुत किया ह उसम प० रामनारायण मिश्र का भी उल्लख आवश्यक है जिन्होन उनका शातिप्रिय नाम रखा जिसे द्विवदी जी ने नतमस्तक होकर आशीर्वाद क साथ शिरोधाय किया और इसी नाम स वह साहित्य के क्षेत्र म विख्यात हुए। वास्तव म यह नाम द्विवेदी जी के गुणो के भी अनुकूल था। द्विवदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है कि बचपन म नगर और ग्राम म निरन्तर आवागमन के कारण उन पर नाग रिक और ग्रामीण वातावरण का सयुक्त प्रभाव पडा है। एक ओर उनके व्यक्तित्व पर काशी के गम्भीर साहित्यिक वातावरण का प्रभाव पडा तो दूसरी ओर प्रकृति क प्रागण म किसी अदश्य शक्ति एव चेतना के अस्तित्व के सकेत भी आभासित हुए। परन्तु इस सब के होते हुए भी स्वाभाविक निश्छलता और जीवन के कठोर यथाथ के वरूप्य म उनके स्वास्थ्य को खोखला बना दिया। उदर राग की भयानक अवस्था न उन्हे जजर बना दिया और यही उनकी मृत्यु का भी कारण बना। उनका सारा जीवन साहित्य प्रेम और आदश का प्रतीक है। आत्म तल्लीनता उनके आत्म व्यजना प्रधान दृष्टिकोण का कारण है। द्विवेदी जी का साहित्यिक जीवन छायावाद काल स

सम्बन्धित है। उनके कथनानुसार रवीन्द्र की बंगला कविताओं के गुनगुनाने से प्रेरणा मिली और उनका काव्यानुराग जाग्रत हुआ। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी के सम्पर्क से यह वृत्ति निरन्तर विकसित होती रही। इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने अन्य अनेक महानुभावों से भी प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किया। अपने जीवन काल में द्विवेदी जी ने जिन विविध विषयक कृतियों का प्रणयन किया उनमें 'परिचय', 'नीरव', 'हिमानी', 'मधुसंचय', 'साथियों की सेवा', 'हमारे साहित्य निर्माता', 'साहित्यिकी', 'संचारिणी', 'युग और साहित्य', 'सामयिकी', 'पथचिह्न', 'जीवन-यात्रा', 'ज्योति विहग', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान', 'दिगम्बर', 'साकल्य', 'धरातल', 'पद्मरागिनी', 'आधान', 'चारिका', 'वृन्त और विकास', 'समवेत', 'कवि और काव्य', 'परिक्रमा', 'चित्र और चिन्तन' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो आलोचना, निबन्ध, उपन्यास, संस्मरण तथा काव्य के क्षेत्र में उनकी रचनात्मक प्रतिभा की मौलिकता और पाण्डित्य की निदर्शक हैं।

द्विवेदी जी की हिन्दी आलोचना को देन

हिन्दी आलोचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में द्विवेदी जी के स्थान निर्धारण के साथ द्विवेदी जी की आलोचनात्मक कृतियों के आधार पर उनकी आलोचनात्मक मान्यताओं एवं सिद्धान्तों का परिचय भी पीछे दिया जा चुका है। द्विवेदी जी के आलोचनात्मक साहित्य में 'हमारे साहित्य निर्माता', 'ज्योति विहग', 'संचारिणी', 'कवि और काव्य' तथा 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' आदि परिगणित की जाती हैं। जैसा कि द्वितीय अध्याय में संकेत किया जा चुका है, उपर्युक्त आलोचनात्मक कृतियों में 'ज्योति विहग' द्विवेदी जी के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षात्मक चिंतन का समग्र स्वरूप प्रस्तुत करती है तथा 'हमारे साहित्य निर्माता', 'संचारिणी', 'कवि और काव्य' एवं 'स्मृतियाँ और कृतियाँ' जैसी रचनाओं के द्वितीय वर्ग को समीक्षात्मक निबन्धों के संग्रह के अन्तर्गत रखा गया है। यद्यपि द्विवेदी जी के सम्पूर्ण गद्य साहित्य में स्फुट रूप में उनकी समीक्षात्मक प्रवृत्ति स्पष्ट होती है परन्तु उसका अध्ययन समीक्षा प्रधान निबन्धों के अन्तर्गत विश्लेषण हुआ है। इस अध्याय में उपर्युक्त कृतियों के आधार पर ही उनके सैद्धान्तिक विचारों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। यह कृतियाँ द्विवेदी जी के आलोचक व्यक्तित्व पर समकालीन प्रवृत्तियों के प्रभाव को इंगित करती हैं। आलोचना के क्षेत्र में द्विवेदी जी की दृष्टि उनकी रसग्राहिणी शक्ति की भी द्योतक है। प्राचीन संस्कृत साहित्य मे रस की मान्यता काव्य की आत्मा के रूप में हुई है। द्विवेदी जी ने काव्य का आदि रस शृंगार माना है जिसमे हृदय का आकर्षण माधुर्य रूप मे परिणत होकर अनेकता में एकता का बोध कराता है। उनके विचार से मनुष्य अभावमय जीवन में ही भावों से उद्वेलित होता है और विरह का अनुभव करता है। उसके यही विरोधोद्गार और विरोध भाव काव्य रूप मे अभि

व्यंजित होते हैं। शृगार, भक्ति शात, करुण और वात्सल्य रसो को द्विवेदी जी न कोमल रसो की कोटि म रखा है जब कि रौद्र, वीभत्स और भयानक आदि रस मनुष्य के पाशव अश के सूचक हैं। काव्य और साहित्य म शब्द और छन्द योजना का महत्व इगित करते हुए द्विवेदी जी ने यह निर्देश किया है कि भावो को व्यक्त करन म समुचित एव सुनियोजित शब्दा की आवश्यकता होती है और भावो की गति म छन्द सहायक होते हैं। साथ ही शब्दा के रसानुकूल निर्वाह के लिए रस विदग्धता की भी आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से काव्य म शब्द छद और रस का वही स्थान है जा पुष्पा म विभिन्न सुगन्धो का। छद तत्व के शास्त्रीय महत्व का स्वीकार करन क साथ द्विवेदी जी ने मुक्त छन्द के प्रयाग का भी काव्य म अनुमोदन किया है। उनकी धारणा है कि अतुकान्त स काव्य गद्य-काव्य हो जाता है और मुक्त छन्द म उदगार को स्वतत्रता मिली रहती है। इसी प्रकार स उन्होंने काव्य म भावा को स्पष्ट रूप से नियाजित करन म अलकार को एक साधन माना है क्योंकि उनके मत स अलकारों का वास्तविक सम्बन्ध सौन्दर्य बोध स होता है। काव्य म त्रिगुण त्रिमूर्ति और त्रिवाणी के शाश्वत महत्व का निदशन भी उन्होंने किया है। काव्य की भाषा को द्विवेदी जी न भावा की अभिव्यक्ति का साधन माना है। कविता की परिपूर्णता के लिए भाषा, भाव और रस का सम्यक नियोजन आवश्यक होता है। काव्य मे कल्पना तत्व और अनुभूत्यात्मकता के विषय में द्विवेदी जी की धारणा है कि कवि वास्तविक जगत के माध्यम से इस ब्रह्माड में व्याप्त अदृश्य झाकियों अदृश्य चेतन भावा को काव्य मे रूप रग और स्वर देकर लौकिक जीवन में चेतना का सचार करता है। वेदनानुभूति का स्वरूप निर्दशित करते हुए द्विवेदी जी न यह बताया है कि उसस प्रभावित होकर मनुष्य अपने क्षुद्र अह की भावना को विस्मृत कर राग द्वेषा से अलग एक दूसरे स तादात्म्य स्थापित करता है और इस रूप मे वेदना ही मानव-जीवन की मूल रागिनी सिद्ध होती है। काव्य म सौंदय बोध के सम्बन्ध म द्विवेदी जी न अपनी इस धारणा को व्यक्त किया है कि कवि यथाथ जगत म कटु अनुभवो के सत्य का काव्य म अपने मन एव हृदय क सौदय स स्निग्ध करके व्यक्त करता है। आधुनिक हिन्दी साहित्य म छायावादी काव्यान्दोलन के प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त क काव्य क मूल्याकन क सन्दभ म द्विवेदी जी न सास्कृतिक चेतना का स्वरूप भी स्पष्ट किया है। उनकी धारणा है कि पन्त कृत गुजन म जो कविताए सगहीत हैं व नव चेतना के जागरण की ओर सकेत करती हैं। ज्योतिविहग' म काव्य के विभिन्न तत्वा के आधार पर द्विवेदी जी न सुमित्रानन्दन पन्त क काव्य का जो समग्र रूपात्मक विश्लेषण किया है वह उनक आलोचनात्मक सिद्धान्तो की व्यावहारिक परिणति है। साहित्य म आदश और यथाथ के विषय म विचार करत हुए द्विवेदी जी न बताया है कि आदशवाद मानव के प्रेम सहानुभूति करुणा और ममता आदि मानवीय गुणों का प्रतीक है। वह मनुष्यता की तरह विस्तृत एव आत्मा की तरह व्या-

पक है। यथार्थ के बिना आदर्श गति रहित है और आदर्श के बिना यथार्थ जीवन रहित है। रहस्यवाद और छायावाद के सम्बन्ध में द्विवेदी जी की धारणा है कि रहस्यवाद धार्मिक और अलौकिक कोटि का है। इनमें से प्रथम के अन्तर्गत सगुणोपासक कवियों को रखा जा सकता है और द्वितीय के अन्तर्गत छायावादी कवियों को। रहस्यवाद में केवल अलौकिकता और अन्तर्मुखता है जब कि छायावाद में लौकिकता और अलौकिकता का समन्वय है। इस रूप में छायावाद में आत्मा का अन्तर्मन के साथ सम्बन्ध है परन्तु रहस्यवाद में आत्मा का परमात्मा से सन्निवेश है। एक में आत्मानुभूति की प्रधानता है और दूसरे में विश्वव्यापी परम चेतन की रहस्यानुभूति है। इसी प्रकार से प्रगतिवाद उपयोगितावाद का दूसरा रूप है जिसका आधार कार्ल मार्क्स का ऐतिहासिक भौतिकवाद है। इस रूप में वह केवल आर्थिक शास्त्र पर ही बन गया है। द्विवेदी जी की धारणा है कि कविता में वस्तु जगत और स्वप्न जगत दोनों ही की बातें होती हैं। साहित्य में कला का अर्थ सत्य साधन के रूप में है। विभिन्न प्रसंगों में अन्य आलोचना साहित्य के अन्तर्गत द्विवेदी जी ने विभिन्न काव्य रूपों की भी व्याख्या की है। उनका विचार है कि गीति काव्य किसी युग का प्रतिनिधित्व नहीं करता वरन् वह कवि की हार्दिक रसात्मकता पर निर्भर करता है। उसमें काव्य साधना की अपेक्षा आत्म साधना की अधिक आवश्यकता होती है। उसमें वस्तुतः मानव स्वयं को विस्मृत कर आत्मलीन हो जाता है और इस प्रकार वह रागात्मकता में अपने अस्तित्व को विलीन कर देता है। गीति काव्य का ही एक नवीन रूप प्रगीत काव्य है जिसकी सृष्टि गीति और दृश्य के संयोजन से होती है। इन सिद्धान्तों और वैचारिक मान्यताओं की पृष्ठभूमि में यदि हिन्दी आलोचना को द्विवेदी जी के योगदान के विषय में विचार किया जाए तो हम इस निष्कर्ष पर आयेंगे कि अपनी विभिन्न आलोचनात्मक कृतियों में द्विवेदी जी ने गद्य और पद्य साहित्य का सर्वेक्षण करने के साथ अन्य भाषाओं के साहित्य पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस सन्दर्भ में उन्होंने जो मौलिक स्थापनाएँ की हैं वे उन मानव मूल्यों की वास्तविक प्रसारक हैं जो जीवन के सांस्कृतिक विकास का उत्कर्ष करते हैं। हिन्दी साहित्य के विविध विकास युगों के साहित्य और समस्याओं की पृष्ठभूमि में परम्परानुगामिता और आधुनिकता का विवेचन करते हुए उन्होंने अपने जिस व्यापक अध्ययन और जागरूक दृष्टिकोण का परिचय दिया है वे एक सफल आलोचक के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करते हैं। जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है द्विवेदी जी की विभिन्न आलोचनात्मक कृतियों में ऐतिहासिक, शास्त्रीय, तुलनात्मक, छायावादी तथा प्रगतिवादी आलोचना पद्धतियों का समावेश है जो उनकी रचना काल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। एक आलोचक के रूप में अपने समकालीन समीक्षकों से द्विवेदी जी में प्रमुख अंतर यह है कि उनका दृष्टिकोण आत्मपरक है। एक भावुक, सहृदय, रस सिद्ध और प्रबुद्ध आलोचक होने के कारण उनके आलोचनात्मक दृष्टिकोण में वह संकुचितता

नही है जो आलोचना को सीमित और दोषपूर्ण बना देती है। इसके विपरीत उन्होने साहित्य के अन्तरग और बहिरग के सम्यक परीक्षण के साथ जहाँ एक ओर आलोच्य साहित्य मे रस छन्द अलकार कल्पना भाव और भाषा के परम्परागत उपकरणों का विश्लेषण किया है तो दूसरी ओर अनुभूत्यात्मकता, सवेदनशीलता, बौद्धिकता, दार्शनिकता एव सास्कृतिक चेतना के निदेशक सूत्रो का भी परीक्षण किया है। इस प्रकार स द्विवेदी जी का आलोचनात्मक दष्टिकोण समकालीन रूढ और शास्त्रीय समीक्षा स पृथक होने के साथ अशास्त्रीय अथवा आधुनिकतावादी उच्छ खलता से भी मुक्त है। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र म उनकी देन इसलिए विशिष्ट और महत्वपूर्ण है क्योकि उन्होने आत्म व्यजना प्रधान अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना का एक ऐसा दष्टिकोण प्रस्तुत किया है जिसम शास्त्रीय और आधुनिक समीक्षात्मक दृष्टियो का समन्वय है।

द्विवेदी जी की हिन्दी निबन्ध को देन

द्विवेदी जी की निबन्धात्मक कृतिया विषयगत विस्तार, रचनात्मक उत्कृष्टता तथा वचारिक परिपक्वता की दृष्टि स निबन्ध साहित्य के क्षेत्र म महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। द्विवेदी जी की निबन्धात्मक कृतियो मे मुख्यत 'जीवनयात्रा माहित्यिकी, 'युग और साहित्य सामयिकी 'धरातल, साकल्य, पदमनाभिका' 'आधान, 'वत और विकास, 'समवेत' तथा परिभ्रमा' आदि हैं जो द्विवेदी जी के बहुक्षेत्रीय चिन्तन एव रचनात्मक क्रियाशीलता की परिचायक हैं। ऐतिहासिक दष्टि से ये निबध कृतिया निबध साहित्य के इतिहास म शुक्लोत्तर युग से सबधित हैं अतएव इसमे लेखक की समकालीन वचारिक जागरूकता क साथ अपन पूववर्ती प्रवत्तियो से प्रभावित होने की ओर भी सकेत करती हैं। निबधो के क्षेत्र म द्विवेदी जी की दष्टि विषयगत विविधता लिए हुए है। वह कही आत्मपरक रूप मे वैयक्तिक है तो सिद्धात रूप म सद्धान्तिक। द्विवेदी जी सदव निबन्धो के विषय को रसनता एव ममनता से स्पष्ट करते हैं। फलत उनम बौद्धिकता और भावुक हृदय का समन्वय हो जाता है। द्विवेदी जी ने दार्शनिक निबन्धो म मानव जीवन के यथाथ रूप की अभिव्यक्ति म सासारिक मृग तृष्णा जीवन के वास्तविक मूल्यो आदि पर अपने विचारात्मक परन्तु भावुकता से ओतप्रोत मूल्यो का निदशन किया है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे पार्थिव ससार के क्षुब्ध मनुष्यो की मुक्ति का एकमात्र उपाय आत्मबोध एव मानव की आत्मप्रज्ञा शक्ति है जिस विस्मृत कर मानव निरयक भटक रहा है। द्विवदी जी मानव स्वार्थ के परिपूरन म अति को विश्व कल्याण तथा मानव कल्याण की दष्टि स बाधक मानते हैं। स्वाथ के इस 'अति रूप के त्याग क उपरान्त ही पीडित एव उपेक्षित मानव की करुण पुकार स्पष्ट होती है। समसामयिक समस्या के रूप मे नारी जीवन की विभिन्न विडम्बनाओ एव मानव के वीभत्सतापूर्ण कार्यों के

प्रति द्विवेदी जी अपनी छिद्रान्वेषणी दृष्टि के कारण सजग हैं। वतमान जीवन क विविध पहलुओ की ओर द्विवेदी जी का चेतन मस्तिष्क जागरूक है। विभिन्न सामाजिक, धार्मिक राजनीतिक एव आर्थिक परिस्थितिया के यथाथ रूप तथा मानव-त्राहि से मुक्ति के माग को भी निर्दशित किया है। द्विवदी जी काव्य के क्षेत्र म छायावाद युगीन साहित्य स प्रभावित थे परन्तु निबन्ध के क्षेत्र मे वह यथाथ की कठोर भूमि मे खडे हुए हैं। समाजवाद गाँधीवाद के वह प्रशसक हैं। गाँधी जी की रचनात्मक क्रियाशीलता एव उनके सिद्धान्त द्विवेदी जी की दृष्टि मे स्तुत्य एव प्रशसनीय हैं। अपने पुरातन सास्कृतिक मानवीय गुणो के प्रत्यक्षीकरण क आधार पर लेखक पुन अपन नसर्गिक एव प्राकृतिक जावन का आह्वान करता है। द्विवेदी जी की दृष्टि म मानव जीवन का रसात्मक इतिहास कविता और कहानी मात्र मे अवस्थित हो गया है। आधुनिक मानव की दिनचर्या मे सस्कृति का लोप हो गया है। सस्कृति मनुष्य के जीवन को सयत और सुसगत बनाती है। वह प्रकृति के साहचय मे प्राण और काया को अन्विति देती है। मानव जीवन मे सांस्कृतिक एव प्राकृतिक अभाव का कारण वतमान युग की विभिन्न समस्याएँ, आहार विहार तथा यत्न युग का प्रभाव है जिसमे राजनीति का विशिष्ट स्थान है। भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी ने भाषा को मानव जीवन की यात्रा प्रवत्तियो अनुभूतियो आदि के दिग्दशन का साधन माना है तथा भाषा, समाज एव सस्कृति के समन्वित रूप को समाज के व्यावहारिक पक्ष म श्रेष्ठ निर्दशित किया है। विश्व कल्याण का एकमात्र आधार सस्कृति है जिसका सम्बन्ध कृषि की परिष्कृति एव मानव की आत्मपरिष्कृति से है। दोनो के परिष्कार एव परिमाजन स ही मानव समाज एव विश्व का कल्याण सम्भव है। मानव कल्याण के लिए उठाई गयी आवाज, अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, द्विवेदी जी की दृष्टि मे अवसरवादियो का खेल है। द्विवेदी जी मानव की सजीवता एव चेतन मे यान्त्रिक साधनो तथा औद्योगिक माध्यमो को निरथक मानते हैं। यान्त्रिक युग का ही प्रभाव है कि अब मानव म सवदनात्मक भावना का अभाव हो गया है, मानव स्वय यान्त्रिक बन गया है। मानव अथलिप्सित हो गया है। इसका समाधान औद्योगिक क्रान्ति मे न होकर मानव के प्राकृतिक एव स्वाभाविक जीवन के कमक्षेत्र के सुधार म केन्द्रित है। द्विवेदी जी ने मानव मे मौलिकता के प्रतिमानो क रूप म उसे चेतन क सदृश ही अन्तर्व्याप्त सूक्ष्म सत्ता माना है जो मानव मे अवस्थित होती है। द्विवदी जी ने नयी पीढी और नये साहित्य के सन्भ म भी अपन विचारो के प्रतिपादन के माध्यम से अपनी स्वाध्याय पवति मननशीलता एव जागरूकता का उदबोधन किया है। उन्होने नई और पुरानी पीढी के मध्य के अन्तराल मे आदश और यथाथ तथा सस्कृति और विकृति को स्थापित किया है। साहित्य, सगीत और कला मे कला का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है तथा यह मानव मात्र म केन्द्रित न होकर चतन मात्र की सदवत्ति है। लेखक के मत म सौन्य की रचनात्मक वत्ति आचरण की दृष्टि से सस्कृति का रूप है और इसी से कला की उत्पत्ति एव

विकास होता है। आधुनिक औद्योगिक वैज्ञानिक युग मे मानव अपने नैसर्गिक जीवन से, प्रकृति स निरन्तर दूर होता जा रहा है। परिणामत उसके जीवन मे तथा उसके सर्जित काव्य म रागात्मकता की प्रवत्ति का अभाव सा हो गया है। यही कारण है कि आज मानव मे स्वाथ के कारण ममता सवेदना शून्य हो गयी है उसमे गति, रस और राग का अभाव है वह यन्त्र बनता जा रहा है। प्रगति से संस्कृति प्रादुभूत होगी तभी मानव प्रगति पथ पर जीवन्त रूप म गतिमान हो सकता है। उसके लिए गाधी जी के सिद्धातो—कुटीर शिल्प, भाषा, अछूतोद्धार, हिन्दु मुस्लिम एकता, विश्व मानवता, अहिंसा आदि—को मान्य करने एव उस पर कठोरता से चलने पर मानव पुन अपने नसर्गिक सुख शाति का आभास कर सकता है। समसामयिक समस्याओ की दृष्टि से लिखे निबन्ध प्रचलित मनोवत्तियो एव जीवन मे व्याप्त असन्तुलित क्रम तथा उच्छ खलता आदि के परिचायक हैं। आज विश्व की प्रत्येक समस्या के पीछे विज्ञान औद्योगिक महामारी, मानव की अथलिप्सा तथा स्वाथ की भावना आदि क साथ सामथ्यवान मनुष्यो की क्रियाशीलता म ह्रास एव अकमणयता आदि का महत्व पूण योगदान है। जीवन के इस आक्रान्तकालीन परिस्थितियों मे मानवीय सहयोग सम्भावना, सम्वेदना तथा आत्मीयता आदि मानवीय मनोवृत्तियाँ जीवन की लौकिक और आत्मिक शान्ति के लिए आवश्यक हैं जो मानव को पुन उसी चिर मौलिक स्थान स्वरूप अपने नसर्गिक जीवन म प्रविष्ट करा सकती हैं। अपने समसामयिक विचारात्मक आन्दोलनो—रहस्यवाद छायावाद प्रगतिवाद यथाथवाद और आदश वाद—का प्रभाव द्विवेदी जी के मानसिक एव बौद्धिक क्षेत्र म पडा और परिणामत निबन्धात्मक रूप म लेखक की मौलिक रचनात्मकता का परिचय एव महत्व प्रतिपादित हुआ। अपनी समसामयिक प्रवत्तियो से प्रभावित द्विवेदी जी का निबन्धकार व्यक्तित्व अत्यन्त विद्वत्तापूण तथा प्रखर है। उनका यही व्यक्तित्व भाषा शैली की दष्टि स प्रौढता का द्योतन करता है तो दूसरी ओर उनक व्यक्तित्व की जागरूकता और चतन सम्पन्नता का भी आभास देता है। द्विवेदी जी के निबन्ध सग्रहो की विषयगत वविध्यता तथा अभिव्यक्तिगत मौलिकता का समन्वय द्विवेदी जी के समकालीन निबन्धकारो मे विशिष्ट स्थान निर्धारण की क्षमता रखता है। दाशनिक और आध्यात्मिक पृष्ठभूमि मे लिखे गये निबन्ध निबन्धकार के व्यक्तित्व की आत्मकेन्द्रता के परिचायक हैं। द्विवेदी जी का व्यक्तित्व आत्मचिन्तन और आत्मविश्वास के आधार पर निर्मित हुआ है। अत उनकी दष्टि म मानव अपनी क्षमता पर विश्वास करके ही प्रगति के पथ पर अग्रसित हो सकता है। वस्तुत यह तथ्य लेखक के व्यक्तित्व क विशिष्ट गुणो सरलता आदशमयता आध्यात्मिकता और स्वावलम्बनप्रियता की प्रवत्ति के परिचायक हैं। विषय वविध्य की दष्टि से द्विवेदी जी न दशन, संस्कृति परम्परा आधुनिकता ज्ञान विज्ञान, समाज शास्त्र, राजनीति, साहित्य और जीवन दशन के मूल्यो से सम्बन्धित विषयो पर निबन्ध रचना की है जो लेखक के गम्भीर

चितन प्रवाह के परिचायक हैं। द्विवेदी जी ने विभिन्न राजनतिक और साहित्यिक वादो के सदभ मे अपने मौलिक चितन से ओतप्रोत मतव्यो को व्यक्त किया है। छायावाद म द्विवेदी जी ने सगुण रोमाटिकता की भावना को विद्यमान माना है जो भक्तिकालीन सगुण पौराणिकता के अधिक निकट है। दोनो म ही सगुण रूप म सपूण सृष्टि के साथ एकात्मकता अथवा ईश्वरता और अनुभूति की विशदता अथवा विश्व व्यापकता है। अन्तर रूप मे मध्ययुगीन सगुण म आलम्बन नर रूप नारायण पुरुष है जबकि छायावाद युगीन आलम्बन नारी रूप नारायणी प्रकृति है। अतएव छायावाद म प्रकृति स्वय मे पूण एव सतुष्ट है। वह योगमाया है जिसकी साधना ही राग साधना है। मार्क्सवाद और विश्लेपणवाद के रूप म प्रगतिवाद और प्रयोगवाद से छायावाद *सवथा भिन्न है। यह भेद आर्थिक और औद्योगिक दृष्टिकोणगत विरोध के ही कारण* है। राजनीतिक जीवन दशन स प्रभावित मतवादो म द्विवेदी जी ने गाँधीवाद और समाजवाद को मान्यता दी है। उन्होने गाँधीजी के सर्वोदय और समाजवाद मे आर्थिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण पर बल दिया है। उनकी दृष्टि मे दोनो रूपात्मकता रखते है। उनकी धारणा है कि गाँधीवाद के अतगत खादी का प्रयोग और ग्रामोद्योग को प्रोत्साहित करना व्यक्ति के श्रमगत स्वावलम्बन को उन्मेषित करता है। द्विवेदी जी की दृष्टि मे व्यक्तिवाद और पूजीवाद से मुक्ति केवल आत्मचेतना के परिनिष्ठित स्वरूप पर बल दन वाले गाँधीवाद के द्वारा ही सम्भव है। लेखक की भाषा और शैली पर समसामयिक साहित्यिक आन्दोलनो का प्रभाव पडा है। उन्होने समकालीन समस्याओ पर विचार करते हुए वतमान जीवन और उसके विविध पक्षो के विश्लेषण क साथ प्राचीन भारतीय जीवन के गौरवमय आदर्शों के अनुगमन तथा आधुनिक जीवन म सन्तुलन की आवश्यकता पर बल दिया है। इस दृष्टि से गाँधीवाद और छायावाद की तुलना म समाजवाद की एक नवीन आर्थिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है जो तात्विक पुष्टता स भी युक्त है। इस प्रकार द्विवेदी जी का निबन्ध साहित्य *उनकी विचारधारा और जीवन-दशन क स्पष्टीकरण क साथ उनकी चिन्तन क्षेत्र की* व्यापकता और विषयगत विविधता क कारण निबन्ध साहित्य म उनकी पैठ को और सजन एव महत्व का प्रतिपादन करता है। निबन्ध के सद्धातिक स्वरूप और तात्विक कलापूणता म द्विवेदी जी के साहित्यिक व्यक्तित्व की प्रखरता का आभास होता है। निबन्ध जसी नीरस साहित्य विधा म द्विवेदी जी की अभिव्यक्तिगत मौलिकता क परिणामस्वरूप आई सजीवता एव चेतना ही उनके निबन्धो क क्षेत्र म विशिष्ट उपलब्धि एव उनके महत्व का परिचायक है।

द्विवेदी जी की हिन्दी उपन्यास को देन

द्विवेदी जी क उपन्यास सामाजिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में लिखे गये हैं जो उपन्यास क प्रचलित स्वरूपों स सवथा भिन्नता रखते हैं। इस दृष्टि म यह द्विवे

जी की मौलिक प्रतिभा एव नवीन रचनात्मक प्रवृत्ति के परिचायक हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासा मे 'दिगम्बर' तथा 'चित्र और चिन्तन' कलात्मक विशिष्टता की दष्टि से केवल औपन्यासिक रेखाकन हैं तथा 'चारिका' एतिहासिक पौराणिक पृष्ठभूमि मे लिखी आख्यायिका है। शिल्प विधान की दष्टि स औपन्यासिक रेखाकन उपन्यास का ही एक अन्य विकसित एव मौलिक रूप कहा जा सकता है जिसमे रेखा चित्रो के रूप मे एक क्रमबद्ध कथानक का औपन्यासिक विन्यास है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म लिखे उपन्यासो को छोडकर अन्य औपन्यासिक कृतिया आत्मकथात्मक शली म लिखी गयी हैं। द्विवेदी जी के उपन्यास साहित्य म मध्यवर्गीय भारतीय सामाजिक जीवन की ग्रामीण और नागरिक पृष्ठभूमि मे कथानक के नायक का भावात्मक किन्तु यथार्थपरक चित्रण किया गया है। जन जीवन की बदलती हुई मान्यताए प्राचीन नैतिक स्तर, आधुनिक राजनीति की विरूपताएँ अदष्ट विडम्बनाएँ मानवीय कुठाए एव मनोवैज्ञानिक विकृतियो का अत्यन्त सूक्ष्म निरूपण स्वातन्त्र्योत्तर विकास युग की देन है और इस दष्टि स द्विवेदाजी के उपन्यास साहित्य म उपयुक्त विभिन्न विडम्बनाआ का अत्यन्त ही सूक्ष्म एव मार्मिक विश्लेषण हुआ है। उपन्यास साहित्य क इतिहास के स्वातन्त्र्योत्तर विकास युग मे प्रचलित विभिन्न सामयिक समस्याओ एव प्रवत्तिया से प्रभावित द्विवेदी जी का उपन्यास साहित्य अपनी मौलिक विशिष्टता के कारण उनके महत्व एव उनकी विशिष्ट देन का परिचायक है। द्विवेदी जी के सामाजिक उपन्यास आधुनिक औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि म आर्थिक समस्या तथा श्रमिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याआ से प्रभावित है। उनके उपन्यास सामाजिक जीवन की वयक्तिक अनुभूतिया के प्रभावशाली चित्रण म समथ हैं। द्विवदी जी के उपन्यासा के सद्धान्तिक विश्लेषण की दष्टि से उपन्यास का प्रथम मूल उपकरण कथानक तत्व है। द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासो मे घटनाआ को प्रमुखता न देकर विशेष चरित्र के चारो ओर घटनाओ का सयोजन किया है। उपन्यास क नायक नायकत्व के विशिष्ट गुणा से आभूषित न होकर यथाथ मानव समाज के मध्यम वग का प्रतिनिधित्व करत हैं। इस दृष्टि से वह समाज का जीता जागता जीवन रूप प्रस्तुत करने म समथ हैं। कथानक की पृष्ठभूमि मे उपन्यास का पात्र समाज क यथाथ जीवन को प्रत्यक्ष करके वहाँ की विभिन्न विडम्बनाओ मानव की अथ लोलुप दष्टि तथा कुत्सित व्यवहारो को निर्दशित करता है। समाज के गतिशील जीवन की भाँति कथानक म भी एक सूक्ष्म गतिशीलता है जिसम अनक प्रासगिक कथाएँ समाविष्ट हुइ हैं और य प्रासगिक कथाए कथानक की गति म व्यवधान न होते हुए भी कथा शिल्प की दृष्टि से उपन्यास के कथानक को क्षीणता प्रदान करती हैं और इसका प्रमुख कारण यह है कि द्विवदी जी ने यथार्थपरक चित्रण म मानवीय मनोवत्तिया का भी परिचय दिया है। कथानक के विशिष्ट गुण पारस्परिक सम्बद्धता का प्राय अभाव है। कथानक के अन्य गुणो वचारिक मौलिकता घटनात्मक सत्यता शैलीगत निर्माण कौशल वणनात्मक रोचकता

आदि का द्विवेदी जी के उपन्यासों में समावेश हुआ है। द्विवेदी जी के तीनों उपन्यास कथानक की दृष्टि से 'शिथिल वस्तु प्रधान उपन्यास' वर्ग में अन्तर्गत आते हैं। परन्तु अपने मौलिक रूप में कथानक में संगठन और सुसम्बद्धता का अभाव उपन्यास में निहित गम्भीर चिन्तन प्रणाली एवं शिल्प विधान के रचनात्मक रूप को प्रस्तुत करता है जो लेखक के रचनात्मक उद्बोधन का प्रतीक है। सामाजिक उपन्यासों के नायक बुद्धि जीवी हैं जो समाज के विभिन्न कटु अनुभवों को यथार्थ रूप में साकार कर देते हैं। चरित्र चित्रण की दृष्टि से पात्रों के चयन में लेखक की सजगता प्रतिबिम्बित होती है। द्विवेदी जी के उपन्यास के पात्र कल्पित न होकर व्यावहारिक जगत से सम्बन्धित हैं। प्रमुख पात्र भावनापरक, अन्तर्द्वन्द्व प्रधान, बौद्धिक एवं कलात्मक सौन्दर्य का अनुगमन करने वाले हैं जो अपनी विशिष्ट परिस्थितियों में बौद्धिक स्तर पर जीवन पथ पर सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं। द्विवेदी जी ने अपने औपन्यासिक पात्रों के चित्रांकन में विश्लेषणात्मक, अभिनयात्मक, स्वगत कथनात्मक, आत्म कथात्मक, संवादात्मक, विवरणात्मक, संकेतात्मक और मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया है। विमल, वैष्णवी, मालती, इन्दुमोहन, यमुना, कमल, कुमुदिनी, गौतम बुद्ध, यशोधरा, शुद्धोदन, प्रसनजित तथा आम्रपाली आदि पात्र पात्रियों के चरित्रांकन का आधार उपयुक्त विधियाँ ही हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासों में कथोपकथन तत्व का समावेश मुख्यतः कथानक का विकास करने, पात्रों की व्याख्या करने तथा लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करने की दृष्टि से हुआ है। इनमें उपयुक्तता, स्वाभाविकता, संक्षिप्तता, उद्देश्यपूर्णता, अनुकूलता, सम्बद्धता, मनोवैज्ञानिकता तथा भावात्मकता आदि गुण विद्यमान हैं। समन्वित भाषा, सामान्य प्रयोग की भाषा, उर्दू प्रधान भाषा, अंग्रेजी प्रधान भाषा, मिश्रित भाषा, लोक भाषा, संस्कृत प्रधान भाषा, काव्यात्मक भाषा तथा क्लिष्ट भाषा के रूप द्विवेदी जी के उपन्यासों में मिलते हैं। शैली के क्षेत्र में वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, आत्मकथात्मक, डायरी, पत्रात्मक, स्मृतिपरक, सम्वादात्मक, नाटकीय, लोककथात्मक, आंचलिक तथा मनोविश्लेषणात्मक शैलियों का प्रयोग द्विवेदी जी के उपन्यासों में हुआ है। देश काल अथवा वातावरण के चित्रण में द्विवेदी जी ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आचार विचार, रूढ़ियों, प्रथाओं, रीति रिवाजों तथा समाज की अन्य अनेक कुरीतियों एवं विशिष्टताओं की पृष्ठभूमि में यथार्थ समाज का चित्र प्रस्तुत किया है। देश काल के विभिन्न गुणों, वर्णनात्मक सूक्ष्मता, विश्वसनीय कल्पनात्मकता तथा उपकरणात्मक संतुलन आदि का भी निर्वाह इनमें हुआ है। सामाजिक, प्राकृतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक और आंचलिक वातावरण प्रसंग के अनुसार इनमें चित्रित हुए हैं। उपन्यास के उद्देश्य तत्व का जहाँ तक सम्बन्ध है द्विवेदी जी ने अपने उपन्यासों में गाँधीवादी चिन्तन से सहमति प्रकट करते हुए यह संदेश प्रस्तुत किया है कि जीवन के नवनिर्माण के लिए मनुष्य को स्वावलम्बी बनना होगा। धर्म, राजनीति, संस्कृति, सभ्यता, शिक्षा और साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी

मानवीय भावनाओ और मानवतावादी दृष्टिकोण के कल्याणकारी पक्ष की प्रतिष्ठा करते हैं। द्विवेदी जी के उपन्यासो में सामूहिक कुरीतियो के निवारण सामाजिक नैतिकता के खोखलेपन, बौद्धिकता, यान्त्रिकता और कृत्रिमता आदि के विरुद्ध नैसर्गिक और सरल जीवन का सन्देश दिया है। यह उनके उदात्त जीवन मूल्यो की व्यावहारिक परिणति का प्रतीक है।

द्विवेदी जी की हिन्दी संस्मरण की देन

संस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने 'पथचिह्न', 'परिव्राजक की प्रजा', 'प्रतिष्ठान' तथा स्मृतियाँ और कृतियाँ शीर्षक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। ये रचनाएँ आत्मव्यंजना प्रधान हैं। इनमे लेखक ने जहाँ एक ओर अपने जीवन के विभिन्न संस्मरण प्रस्तुत किये हैं वहाँ दूसरी ओर इनके माध्यम से साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शन विषयक अपनी वैचारिक मान्यताएँ भी सामने रखी हैं। द्विवेदी जी के संस्मरण साहित्य में उनके सम्पूर्ण जीवन वृत्त के रूप मे उनके संघर्षमय जीवन तथा मानव जीवन के विविध रूपो एवं उनकी मनोवृत्तियो की ओर भी संकेत किया है। इस दृष्टि से द्विवेदी जी के इन संस्मरणो में अनेक विशेषताओ के साथ आत्मचिन्तन और आत्मव्यंजना का जो स्वरूप परिलक्षित होता है वह लेखक के मीठे कड़ुवे अनुभवो की रोचकता से पूर्ण है। संस्मरण की प्राथमिक विशेषता आत्मानुभूति प्रधान होने के कारण उसकी आत्मपरकता है। द्विवेदी जी के संस्मरण निबन्धात्मक आत्मचरितात्मक साहित्यिक, भावनात्मक और यात्रा विवरणात्मक हैं। साहित्यिक संस्मरण विशेष रूप से द्विवेदी जी के समकालीन साहित्यकारो के सम्बन्ध में हैं। आत्म परिचयात्मक संस्मरणो के अन्तर्गत उन्होने अपने जीवन में घटित घटनाओ तथा विभिन्न परिस्थितियो में अपनी प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करते हुए सहज स्वाभाविकता निष्कपट आत्म प्रकाशन तथा सहृदयता का परिचय दिया है। भावात्मक संस्मरणो में अनुभूति की प्रधानता है तथा विशेष रूप से वे प्रसंग हैं जो संवेदनशील क्षणो से सम्बन्धित हैं। यात्रा विवरणात्मक संस्मरणो में मिथिला की अमराइयो में' जैसी रचनाएँ आती हैं जिनमे आकर्षण, भाव प्रवणता, आत्मीयता तथा उन्मुक्त चित्रण आदि विशेषताओं का समावेश हुआ है। निबन्धात्मक संस्मरण मुख्य रूप से समकालीन जीवन में सम्बन्धित समस्याओं पर आधारित हैं। सिद्धान्तत संस्मरण की सफलता का आधार जो उपकरण होते हैं वे अनुभूत्यात्मकता अथवा स्वानुभूति की प्रधानता, वर्णनात्मकता, विवरणात्मकता, वैचारिकता भावात्मकता, यथार्थता तथा कल्पनात्मकता आदि हैं। इनमें से वैचारिकता की दृष्टि से पर्यवेक्षण, वर्णनात्मकता की दृष्टि से मिथिला की अमराइयो में' विवरणात्मकता की दृष्टि से रचनात्मक दृष्टिकोण यथार्थात्मकता की दृष्टि में 'अभिलाषा की परिक्रमा, भावात्मकता की दृष्टि से पथचिह्न', अनुभूत्यात्मकता की दृष्टि से प्रतिक्रिया आदि संस्मरण विशेष रूप से उल्लिखित किये जा सकते हैं। भारतेन्दु

वविध्य, शलीगत प्रवाहमयता तथा विषयगत विविधता इन सस्मरणो की अन्य विशेषताएँ हैं। द्विवेदी जी के सस्मरणो म सस्कृत गर्भित, मिश्रित, काव्यात्मक लोकपरक, आलकारिक तथा मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है। इनम शलीगत अनेकरूपता हा विद्यमान है और वणनात्मक, विश्लेषणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक निणयात्मक तथा उद्बोधनात्मक शलिया का प्रयोग हुआ है। विषयगत विस्तार की दृष्टि स यह सस्मरण इसलिए महत्व रखते हैं क्योंकि इनम साहित्यिक सस्मरणो के अन्तगत लखक ने सूयकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पन्त तथा श्रीमती महादेवी वर्मा क (गाविन्द्य) व द्योतक अतीत के प्रसगो का उल्लेख किया है। आत्मपरिचयात्मक सस्मरणा म लखक ने अपन साहित्यिक जीवन क विभिन्न युगो के समर्पों क साथ-साथ बाल्यावस्था मे सम्बधित उन पारिवारिक प्रसगो का भी उल्लेख किया है जो अभिव्यजना शली की दृष्टि स अत्यन्त मार्मिक हैं। भावात्मक सस्मरणो म वे स्मृतिया सम्बद्ध हैं जो करुणापूण प्रसगो पर आधारित हैं। यात्रा सस्मरण रमणीय स्थलो के भ्रमण स सम्बधित हैं। इस प्रकार से यह सस्मरण आत्मव्यजनात्मक और वयक्तिक अनुभूतिपरक होते हुए भी विषय वविध्य और विस्तार म युक्त हैं। यह सस्मरण जहाँ एक आर लेखक की इस क्षेत्र विशेष म उपलब्धियो के द्योतक हैं वहाँ दूसरी ओर उनके आलोचक व्यक्तित्व और कवि हृदय की सूचक वैचारिकता और काव्यात्मकता स भी युक्त हैं। इनम लखक न अपने अतीत जीवन पर दृष्टिपात करते हुए उन प्रसगो का उल्लख किया है जो उसके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक हैं। इनम साहित्य, समाज धम सस्कृति, सभ्यता और राजनीति स सम्बधित समकालीन समस्याओ का भी विश्लेषण है। जसा कि ऊपर सकेत किया जा चुका है सिद्धान्तत सस्मरण रूपी साहित्यिक विधा कथात्मक दृष्टि से कहानी के निकट वचारिक दृष्टि स निबन्ध के निकट तथा भावात्मक दृष्टि स कविता के निकट है। इस दृष्टि से द्विवदी जी के सस्मरण इन तीनो विधाओ की विशेषताओ स युक्त हैं और उनकी मौलिक प्रतिभा रचनात्मक सामथ्य और विशिष्ट देन का परिचय देने मे समथ हैं।

द्विवेदी जी की हिन्दी काव्य को देन

द्विवेदी जी का साहित्यिक जीवन छायावाद काल से सम्बधित है। द्विवेदी जी अनेक छायावादी कवि कलाकारो से प्रभावित हुए परिणामत उन्हे काव्यानुराग एव काव्य सजन की प्ररणा मिली। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य क अतिरिक्त उनके सपूण गद्य साहित्य म भी सवेदनशीलता और भावनात्मकता के रूप म उनके कवि हृदय का परिचय मिलता है। द्विवेदी जी की काव्य रचनाओ मे नीरव' तथा हिमानी दो मौलिक काव्य कृतिया हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने दो काव्य कृतियो मे विशिष्ट ब्रज भाषा काव्य के शृगारिक कवियो एव छायावादी कवियो की कविताओ का सकलन किया है उनके नाम क्रमश मधुसचय' और 'परिचय है। परिचय मे कवि

न काव्य सकलन के अतिरिक्त विभिन्न कवियों की काव्यात्मा का भावात्मक परिचय भी दिया है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे कवि का सौंदर्योपासक हृदय अभिव्यजित हुआ है। कवि प्रकृति के विभिन्न रूपो मे एक सुदरता का आभास एव उसके प्रति आकर्षण अनुभव करता है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से सासारिक प्रणय कथा एव उससे उत्पन्न वेदना का चित्र भी प्रस्तुत किया है। कवि शैशवावस्था एव किशोरावस्था के प्रति अधिक ममत्वपूर्ण तथा अनुरक्त है। शैशवावस्था की उन्मुक्तता निश्छलता, चचलता एव कोमलता कवि को प्रिय है। प्रकृति के माध्यम से कवि ने मानवीय प्रवृत्तियो का सजीव एव मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। प्रकृति के सौंदर्य म अनुरक्त कवि हृदय सासारिक जटिलताओ एव जीवन की नश्वरता का आभास करता है। वह तरु एव लघु तरु म भी जीवन की अस्थिरता एव क्षणभगुरता का आभास करता है। कवि ने अपनी कविताओ म दार्शनिक पक्ष को भी स्पष्ट किया है। वह प्रकृति के विभिन्न क्रिया कलाप म अपने प्रिय के स्वरो की गूज सुनता है। निर्झरिणी की स्वतत्रता के माध्यम से कवि ने मानव को स्वतत्रता के वास्तविक महत्व का निदर्शन करते हुए महान सदेश प्रतिपादित किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने यथार्थ धरातल म अपनी जन्मभूमि के प्रति अनुराग तथा कठोर भूमि पर चलने के लिए प्रोत्साहित करते हुए मानव मे वीरता की भावना का सचार किया है। कवि का ममत्व खादी के प्रति भी है। खादी कवि के मानस एव बाह्य रूप म जीवन की सादगी उज्ज्वल एव निर्मल जीवन का प्रतीक तथा देश के प्रति अनुरक्त भावना का परिचायक है। इन कविताओं म कवि ने देश प्रेम के प्रति निर्द्वन्द्व एव स्वच्छद भावना के साथ विश्वबन्धुत्व की भावना का भी उद्रेक किया है। मानवता की पृष्ठभूमि म कवि ने भिखारिणी के प्रति सवेदना प्रकट करते हुए उसे पुन प्रकृति प्रागण म चलने की प्रेरणा देता है। कवि का मानवीय हृदय उस भिखारिणी के सहयोग से जग की कलुषताओ से परे पुन अपने प्राकृतिक जीवन को प्राप्त करना चाहता है जहा शैशव का सारल्य मधुर्यौवन का उच्छवास तथा शरतचद्रिका का सान्निध्य प्रकाश विद्यमान है। दार्शनिक पृष्ठभूमि म कवि प्रभु का क्रीडागार मानव मन तथा उसकी अतरात्मा को मानता है जिसके लिए मानव व्यर्थ ही इधर उधर भटकता रहता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे कवि ने ताजमहल के स्मरण के आधार पर विश्व के कालचक्र एव मानव नश्वरता का रूप अकित करते हुए अनन्य प्रेम को निर्दर्शित किया है। कवि ने मौन उदास हल्दीघाटी के चित्र का रूपायित कर मानव को जीवन के सार तत्व से परिचित कराया है। हल्दीघाटी की स्मृति ज्वाला म निसृत उच्छवासो को सुनकर कवि उसके पूर्व वैभव तथा वीरो के कर्तव्यो एव बलिदानो का स्मरण कराता है। मानवता की पृष्ठभूमि म कवि मानव जगत तथा मानव मन का अगीकार करने की आकाक्षा करता है देवता तथा नन्दन कानन की नहीं। मानव अपने पुरुषार्थ तथा मानवीय गुणों के द्वारा ही कष्टो दुखो मे भी मानव से अपनापन जोड कर तादात्म्य

स्थापित करता है। मानव जीवन को श्रेष्ठ मानते हुए भी कवि प्रकृति में स्वयं मधु तम रूप में लय हो जाने की तथा प्रकृति पूजा में अर्पण होने की कामना करता है। इस प्रकार कवि ने अपने काव्य साहित्य में जहाँ एक ओर छायावाद से प्रभावित हो प्रकृति के माध्यम से अपने सौन्दर्यपरक भावों को व्यक्त किया है वहीं दूसरी ओर सम सामयिक वातावरण से प्रभावित होकर गाँधीवादी विचारधारा के प्रति भी अपनी आस्था व्यक्त की है, और इसी के माध्यम से कवि ने एक राष्ट्रीय कवि की भाँति देश प्रेम के द्वारा देश की जागरूकता का आह्वान किया है और इस दृष्टि से द्विवेदी जी का काव्य लोकपरक मानवतावाद के अधिक निकट है। द्विवेदी जी के काव्य में उनका समकालीन प्रवृत्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के काव्य साहित्य के सैद्धांतिक विश्लेषण की दृष्टि से रस योजना के अंतर्गत शृंगार करुण, शांत, वात्सल्य तथा वीर रस से पूर्ण कविताओं का संचयन हुआ है। कवि के संपूर्ण काव्य साहित्य में प्रकृति के प्रति अनुरागिनी प्रवृत्ति के रूप में जहाँ एक ओर कवि की कोमल कल्पनाएं एवं सरल भावनाएँ व्यंजित हुई हैं वहीं दूसरी ओर कवि की वैचारिक प्रौढ़ता का स्पष्ट अभाव भी इनमें परिलक्षित होता है और इसका मुख्य कारण यह है कि द्विवेदी जी का काव्य साहित्य गद्य साहित्य की भाँति चार दशक तक प्रसारित न होकर केवल साहित्य रचना के प्रारम्भिक दस वर्षों में ही केंद्रित है। अलंकार योजना की दृष्टि से जहाँ कवि ने भारतीय काव्यालंकारों को सहज रूप में अपने काव्य में अभिव्यंजित किया है वहीं दूसरी ओर अपने भावों के प्रकटीकरण में कवि ने ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता शब्द शक्तियों के साथ मानवीकरण तथा विशेषण विपर्यय आदि का भी आश्रय लिया है। काव्यालंकारों के द्वारा कवि ने प्रस्तुत में अप्रस्तुत विधान की योजना भी की है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य में (प्रमुखत) अनुप्रास रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख अतिशयोक्ति विरोधाभास उपमा, अन्योक्ति तथा स्मरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है जो भाषा के अलंकरण उसकी पुष्टि एवं राग की परिपूर्णता तथा भावों की यथार्थ अभिव्यक्ति में सक्षम हैं। विशेषण विपर्यय तथा मानवीकरण का रूप द्विवेदी जी के काव्य में यत्र-तत्र भी उपलब्ध होता है। कवि ने प्रकृति चित्रण एवं मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए उपमानों के चयन में कहीं अपनी नवीनता प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है और कहीं रूढ़िग्रस्त परम्परा का। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य में छायावाद के शीर्षस्थ कवियों में पन्त और निराला के काव्य के समान भाषा शैलीगत विशिष्टताएं मिलती हैं। द्विवेदी जी की दृष्टि में भाषा भावों की अभिव्यक्ति का साधन है तथा यह मानव द्वारा निर्मित है परन्तु भावों की सृष्टि में प्रकृति का हाथ है अतएव भाषा को भी भावों की तरह ही सामर्थ्यवान एवं समृद्ध होना चाहिए। द्विवेदी जी का मत है कि भावात्मक विविधता के अनुसार भाषा को समृद्ध बना कर ही कवि कलाकार काव्य के कलात्मक सौंदर्य की वृद्धि में सहायक होता है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य में शब्द चयन के प्रति जो सजगता

विद्यमान है वह कवि की सुरुचिपूर्ण परिष्कृत प्रवृत्ति की द्योतक है। भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी के काव्य की भाषा मे रूक्षता नीरसता तथा दुरूहता का अभाव है। इसके साथ ही काव्य की शब्द योजना मे चित्रात्मकता, स्वरमयता, माधुर्य तथा ध्वन्यात्मकता आदि के गुण विद्यमान हैं। भाषा की दृष्टि से कवि ने कोमल कान्त शब्दावली का प्रयोग किया है। लालित्यपूर्ण शब्द योजना मे सगीतात्मकता के गुण के साथ ही सूक्ष्म सकेतात्मक तथा प्रतीकात्मक शैलियो का भी मिश्रण हुआ है जो कविता के प्रभावशाली रूप व्यक्त करने मे सहायक हैं। द्विवेदी जी ने भावो की विविधता एव अभिव्यक्ति की तीव्रता मे समुचित तथा सुनियोजित शब्दो की आवश्यकता के साथ छन्दो को भी महत्व दिया है। शब्द योजना मे कवि ने तुकान्त और मुक्त छन्दो को स्थान दिया है, क्योकि अतुकान्त छन्दो के प्रयोग से काव्य गद्य काव्य हो जाता है और मुक्त छन्द भावनाओ के सहज उद्रेक मे सहायक होता है। कवि ने मुक्त छन्दो को ध्वनि मुक्त न करके केवल लय प्रवाह से मुक्त किया है। कवि ने प्रकृति को मानव की चिरसगिनी माना है जो मानव भावनाओ के साथ ही हँसती खेलती तथा वेदना से उद्वेलित होती है। कवि शैशव के सारल्य एव किशोरावस्था की उन्मुक्त उमगो से अभिभूत है। प्रकृति मे उसे अपनी इन्ही प्रवृत्तियो का आभास होता है। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य मे प्रकृति के आलम्बन और उद्दीपन—दोनो रूप प्रकट हुए हैं। आलम्बन में कवि विशुद्ध यथार्थ रूप मे प्रकृति के चित्र को प्रस्तुत करने के पक्ष में है। उद्दीपन रूप मे प्रकृति मानव के भावो का उद्दीपन करती है तथा मानवीय भावनाओ की अभिव्यक्ति मे भी सहायक होती है। द्विवेदी जी ने प्रकृति के नारी और पुरुष दोनो रूपो मे उसके प्राजलतम रूप को प्रतिबिम्बित कर उससे तादात्म्य स्थापित किया है। कवि उसी मे ईश्वर को आभासित कर उसी मे लय हो जाना चाहता है। इस दृष्टि से कवि मानस मे प्रकृति का कोमल मनोरम, सुन्दर तथा ममन रूप ही है उसका भयावह और भीषण रूप नही। प्रकृति के उज्ज्वलतम रूप को कवि ने अभिव्यजित किया है। कवि ने स्थूल प्रेम के चित्रो को प्रकृति के मनोरम एव अभिसारिक दशा मे अपनी कल्पनात्मक प्रतिभा के द्वारा व्यक्त किया है। अधिकाशत कवि ने अलौकिकता के प्रति अपनी प्रेम भावना को व्यक्त किया है। लौकिक प्रेम व्यजना की आध्यात्मिक परिणति को भी कवि ने प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त अभिव्यजित प्रेम में उसका तृतीय रूप विशुद्ध आध्यात्मिक स्तर पर निरासक्त युक्त भावनाएँ आदि कवि मानस की विशालता एव भावुक प्रकृति के परिचायक है। द्विवदी जी ने मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रतिपादन मे यथार्थ की अभिव्यक्ति की है तथा उसके निराकरण मे कवि ने अपने शान्त मस्तिष्क के परिचायक रूप में उग्रता के स्थान पर शातिपूर्वक अपने प्राकृतिक जीवन को पुन आत्मसात करने की प्रेरणा दी है। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित कवि की दृष्टि मे मानव अपने नैसर्गिक जीवन में ही सुखी रह सकता है। अत खादी को द्विवेदी जी ने महत्वपूर्ण स्थान दिया है। इसके

अतिरिक्त कवि ने मानव जीवन के प्रति अनुरक्त होने तथा देश प्रेम की भावनाओं का भी स्तवन किया है। द्विवेदी जी ने मानव कल्याण की कामना हेतु काव्य के क्षेत्र को एक साधन बनाया है। इस दृष्टि से कवि ने सुख और दुख को एक रूप में स्वीकार करने के साथ ही उस विराम का साधन माना है जो सुख और दुख में अपने उत्तमतम रूप में तथा कल्याणकर रूप में मानव के सम्मुख आता है। कवि की दृष्टि में ईश्वर अंश जीव अविनाशी सदृश ही ईश्वर सर्वविद्यमान स्वरूप है आत्मा उसी का अंशमात्र है। यथार्थतः मानव के अन्तरतम में ही ईश्वर का वास होता है। जीवन के अमूल्य क्षणों में ही उसे उद्घाटित किया जा सकता है। कला के दो रूप व्यक्तिगत और समष्टिगत में कवि अपने विराट हृदय के भाव को प्रकृति प्रांगण में समाहित करने की कामना करता है। संसार की मंगलकामना हेतु कवि रूप द्विवेदी जी मानव के प्रति करुणा कलित होकर या अपने हित उद्गारों के रूप में उन अपने भावनाप्रसूत भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। द्विवेदी जी की काव्य सम्बन्धी उपलब्धियों की दृष्टि से उनका काव्य साहित्य कवि की विशिष्ट प्रतिभा एवं करुणा कलित रसात्मकता पूर्ण हृदय का द्योतक रहा है। द्विवेदी जी अपनी दृष्टि के मानस जगत में कवि रूप में सहज जिज्ञासा उत्कट उत्सुकता, कौतूहल एवं भावुकता से परिपूर्ण अपने काव्य साहित्य में भी इसी रूप में अवतरित होते हैं। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य का विषय संकुचित न होकर विस्तृत है। उन्होंने ऐतिहासिक सामाजिक दार्शनिक आध्यात्मिक राष्ट्रीय एवं सौन्दर्य उपासना की पृष्ठभूमि में काव्य सृजन कर हिन्दी काव्य साहित्य में अपने महत्व को प्रतिपादित किया है। द्विवेदी जी ने छायावाद की प्रमुख विशेषता सृष्टि के कण कण में परिव्याप्त अनुरागिनी छाया का आभास माना है। उन्होंने छायावाद को मध्यकालीन शृंगारिक रसात्मकता तथा भक्तियुगीन आत्मा की तन्मयता का समन्वित रूप माना है। तात्कालिक प्रभाव के कारण द्विवेदी जी प्रगतिवादी यथार्थात्मकता से भी प्रभावित हैं। द्विवेदी जी के काव्य साहित्य के विभिन्न प्रसंगों में यह धारणा स्पष्ट हुई है कि कवि मानवीय सौन्दर्य से प्रभावित होकर ही प्रकृति के सौन्दर्य की ओर उन्मुख होता है। अतएव उनके काव्य साहित्य में व्यक्त प्रेम भावना और सौन्दर्य भावना द्वयात्मक है। द्विवेदी जी का हिन्दी काव्य साहित्य में महत्व काव्य के भाव एवं कला पक्ष की दृष्टि से युगीन पृष्ठभूमि में वैशिष्ट्य रखता है। कवि ने छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य अपने विकासात्मक स्वतन्त्र मार्ग की खोज की। यद्यपि अन्य तत्वों के आधार पर उनका काव्य साहित्य परम्परानुगामी है परन्तु छन्दात्मकता की दृष्टि से उसमें पर्याप्त नवीनता परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की दृष्टि में कविता की परिपूर्णता में भाव तथा रस की अनिवार्यता है। हिन्दी काव्य साहित्य में द्विवेदी जी का महत्व इसलिए भी मान्य है क्योंकि उन्होंने अनेक प्रेरणाओं एवं प्रभावों के होते हुए भी कवि रूप में अपने नवीन मार्ग को निर्दिष्ट किया है और पूर्व स्थापित स्वार्थों से असम्बद्ध होकर नवीन रचनात्मक दृष्टि से

मनुष्य प्रेम, सहानुभूति, करुणा, ममता आदि आदशवादी सदगुणो के रूप मे अपन माग को प्रशस्त किया है।

अध्ययन का निष्कष

इस प्रकार से प्रस्तुत प्रबन्ध हि ी क एक सवथा उपेक्षित परन्तु मौलिक प्रतिभा स सम्बद्ध साहित्यकार के जीवन और साहित्य के अध्ययन की दिशा म सव प्रथम प्रयत्न है। हिन्दी के महान साहित्यकारा म सुमित्रान दन प त ने उनकी साहित्य क्षत्रीय सेवाएँ सदैव स्मरणीय घोषित की हैं। आचाय प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उन्हे शान्त निश्छल और बुद्धिजीवी साहित्यकार के रूप म मसिजीवी साहित्य साधक के रूप में मान्य किया है। डा० रामकुमार वमा न स्पष्ट रूप से घोषित किया है कि वे हिन्दी समालोचना जगत म सबस मौलिक थ। डा० शिवमगल सिंह सुमन न अपने उदगारो मे बताया है कि व भारत की ग्रामीण सस्कृति के प्रतीक थ। इन महानुभावो के वभिन्न वक्तन्यो की पृष्ठभूमि मे यदि इस अध्ययन का निष्कष प्रस्तुत किया जाय तो यह स्पष्ट रूप स ज्ञात होगा कि गद्य और पद्य साहित्य क क्षेत्र म श्री शांतिप्रिय जी की उपलब्धियाँ यथाथ में विरल हैं। हि दी आलोचना के क्षेत्र मे द्विवदी जी न समकालीन रूढ और शास्त्रीय दष्टिकोण स युक्त तथा अशास्त्रीय अथवा आधुनिकता वादी आलोचनात्मक दृष्टि की उच्छ खलता से रहित मानदड सामन रखे। तथ्यत यह मानदड आत्मव्यजना अथवा आत्मपरक आधार पर आलोचना की एक ऐसी दष्टि प्रस्तुत करता है जिसमे शास्त्रीय और आधुनिक दष्टियो का समन्वय है। निबन्ध साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की रचनाएँ उनकी विचारधारा और जीवन दशन की सुस्पष्टता का द्योतन करने के साथ साथ उनके चिन्तन क्षेत्र की व्यापकता और विषय गत विविधता का भी परिचय देती हैं। सद्धान्तिक तत्वो के सम्यक निर्वाह क साथ द्विवदी जी के निब धो मे अभि यक्तिगत मौलिकता का भी समन्वय मिलता है। दशन सस्कृति परम्परानुगामिता आधुनिकता ज्ञान विज्ञान समाजशास्त्र राजनीति साहित्य तथा जीवन मूल्यो आदि का विविध पक्षीय मूल्याकन करते हुए द्विवेदी जी न जो निबन्ध प्रस्तुत किये हैं वे परिनिष्ठित अभिव्यजना तत्वो से युक्त हैं। उनके निब धो की भाषा समकालीन प्रभावो स युक्त है और विषयानुरूप परिवर्तित होती रही है। रागात्मक, रूपात्मक सश्लिष्ट आलकारिक भावात्मक विचारात्मक, आलोचनात्मक निणयात्मक उदबोधनात्मक, वणनात्मक और व्यग्यात्मक शलियो का प्रयोग विविधता कलात्मकता और प्रौढता का भी निदशक है। उप यास साहित्य के क्षेत्र म द्विवेदी जी की कृतियाँ समकालीन औपन्यासिक स्वरूप से भिन्न हैं और इसलिए उनके उपन्यासो का अध्ययन और मूल्याकन मात्र शास्त्रीय तत्वो की कसौटी पर नही किया जा सकता वरन् उपन्यास के क्षेत्र म शिल्पगत अभिनव प्रयोगात्मकता की कसौटी पर करना सगत है क्योकि स्वय लेखक न इन्हें उपन्यास न कह कर मात्र औपन्यासिक

रेखांकन कहा है। कथात्मकता की दृष्टि से इन कृतियो म कल्पनात्मकता और व्याव हारिकता का सम्मिश्रण है और आदश और यथाथ की सतुलित अभिव्यजना भी उसम दष्टिगत होती है। उनक चरित्र विशिष्ट हैं और उनका चित्रण मनोवैज्ञानिकता से युक्त है। कथोपकथन अपनी सैद्धांतिक विशेषताओ अर्थात उपयुक्तता, स्वाभा विकता सक्षिप्तता, उद्देश्यपूणता आदि से युक्त है और इनके माध्यम स लेखक न अतीत युगो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि म यांत्रिकता तथा भौतिकवादिता का निरूपण किया है। उपयासो की भाषा काव्यात्मक तथा बौद्धिक अभिव्यजना शक्ति स युक्त है। इनम विभिन्न शलियो का सग्रथन प्रयोगात्मकता और मौलिकता का आभास देता है। द्विवेदी जी के उपयास आधुनिक यांत्रिक जीवन की पृष्ठभूमि म मानवीय चेतना का उन्बोधन करते हैं। युद्ध की विभीषिका से अभिशप्त मानव जीवन को इस समय अतर्राष्ट्रीय स्तर पर जिस शाति दशन की अपेक्षा है उसकी यावहारिक परिणति द्विवेदी जी के उपयासो का उनात्तरक उद्देश्य है। हिन्दी सस्मरण साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी ने जो रचनाएँ प्रस्तुत की है वे मुख्यत उन प्रसगो पर आधारित हैं जो वास्तविक अर्थ म उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के नियामक हैं। द्विवेदी जी के सस्मरण विषयगत वविध्य और विस्तार से युक्त होते हुए भी आत्म यजनात्मक, भावात्मक यात्रा विवरणात्मक निबधात्मक तथा साहित्यिक कोटियो के हैं। द्विवेदी जी की भावनाए मूलत का यात्मक हैं और इसके प्रभावस्वरूप उनके सस्मरण भावना तथा अनुभूति प्रधान हो गये हैं। भाषा तथा शैलीगत परिपक्वता ने भी इन्हे कलात्मक समृद्धि प्रदान की है। का य साहित्य के क्षेत्र मे द्विवेदी जी की रचनाएँ कवि की सहज जिज्ञासा, उत्कठा उत्सुकता, कौतूहल तथा भावुकता से परिपूण हैं। इनमे विभिन्न मानवीय मनोवत्तियो की अभि यजना है। अधिकाश कविताए शृगारिक हैं जिनम यत्र तत्र शात, करुण वात्सल्य और वीर रसो का भी समावेश मिलता है। द्विवेदी जी की कविता मे अनुप्रास रूपक उत्प्रेक्षा उल्लेख, अतिशयोक्ति विरोधाभास, उपमा अ योक्ति स्मरण मानवीकरण तथा विशेषण विपयय आदि अलकार उपलब्ध होते है। उनकी का य भाषा चित्रात्मकता स्वरमयता माधुय तथा ध्वयात्मकता के गुणो म युक्त है। उनकी काव्य शली सगीतात्मक सकेतात्मक तथा प्रतीकात्मक है जो छद बद्ध भी है और छद रहित भी। उनके का य मे प्रेम भावना और सौंदय भावना का आधार भी द्वयात्मक है और उस लौकिक एव ईश्वरीय स दभ मे व्यक्त किया गया है। इस रूप मे द्विवेदी जी का काव्य कला और भाव पक्षो की दष्टि से युगीन पृष्ठ भूमि मे विशिष्टता रखता है। अनेक प्रेरणाओ और प्रभावो के होते हुए भी द्विवेदी जी न एक कवि रूप म अपन माग का स्वय निर्देश किया है और पूव स्थापित स्वार्थों स असम्बद्ध रह कर नवीन रचनात्मक दष्टि से उस प्रशस्त किया है। इस प्रकार से, द्विवेदी जी का साहित्य मनुष्य के प्रेम, सहानुभूति करुणा और ममता आदि सदगुणो का प्रतीक है और उसम मानवता के उनयन क सकेत निहित हैं।

परिशिष्ट सहायक ग्रन्थ-सूची

१	आधान	शांतिप्रिय द्विवेदी
२	आधुनिक कविता मे विरह भावना	डा० मधुमालती सिंह
३	आधुनिक काव्य धारा	डा० केसरी नारायण शुक्ल
४	आधुनिक समीक्षा	डा० देवराज
५	आधुनिक साहित्य	डा० प्रतापनारायण टंडन
६	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
७	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास	डा० बेचन
८	आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान	डा० देवराज उपाध्याय
९	आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीक विधान	डा० नित्यानन्द शर्मा
१०	आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली	डा० रांगेय राघव
११	आधुनिक हिन्दी कविता मे शिल्प	डा० कैलाश वाजपेयी
१२	आधुनिक हिन्दी काव्य कृति और विधा	डा० सुरेन्द्र माथुर
१३	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास	कृष्ण शंकर शुक्ल
१४	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	डा० श्रीकृष्ण लाल
१५	आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास	डा० वेंकट शर्मा
१६	आलोचक की आस्था	डा० नगेन्द्र
१७	आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त	डा० एस० पी० खत्री
१८	आलोचना के सिद्धान्त	ब्योहार राजेन्द्र सिंह
१९	आलोचना तथा काव्य	डा० इन्द्रनाथ मदान
२०	आस्था के चरण	डा० नगेन्द्र
२१	कवि और काव्य	शान्तिप्रिय द्विवेदी

२२ कविता के नये प्रतिमान — डा० नामवर सिंह
२३ काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध — जयशंकर प्रसाद
२४ काव्य के रूप — डा० गुलाब राय
२५ काव्य शास्त्र — डा० भगीरथ मिश्र
२६ कुछ विचार — श्री प्रेमचन्द
२७ चारिका — शांतिप्रिय द्विवेदी
२८ चित्र और चिन्तन — शांतिप्रिय द्विवेदी
२९ छायावाद — डा० उदयभानु सिंह
३० छायावाद — डा० नामवर सिंह
३१ छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य — डा० विष्णुनाथ तिवारी
३२ छायावाद काव्य और दर्शन — डा० हरनारायण सिंह
३३ जीवन यात्रा — शांतिप्रिय द्विवेदी
३४ ज्योति विहग — शांतिप्रिय द्विवेदी
३५ तुलनात्मक साहित्य शास्त्र इतिहास तथा समीक्षा — डा० विष्णुदत्त राकेश
३६ दिगम्बर — शांतिप्रिय द्विवद्वी
३७ धरातल — शांतिप्रिय द्विवेदी
३८ नवजीवन (दैनिक) — स० सत्यदेव शर्मा
३९ नव्य हिन्दी समीक्षा — डा० कृष्ण बल्लभ जोशी
४० निबन्ध निचय — ब्रजकिशोर मिश्र
४१ निराला का कथा साहित्य — कुसुम वार्ष्णेय
४२ नीरव — शांतिप्रिय द्विवेदी
४३ पथचिन्ह — शांतिप्रिय द्विवेदी
४४ पद्मनाभिका — शांतिप्रिय द्विवेदी
४५ परिक्रमा — शांतिप्रिय द्विवेदी
४६ परिचय — शांतिप्रिय द्विवेदी
४७ परिव्राजक की प्रजा — शांतिप्रिय द्विवेदी
४८ प्रगतिवाद — डा० शिवकुमार मिश्र
४९ प्रगतिशील इतिहास — रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव
५० प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड — डा० रांगेय राघव
५१ प्रतिष्ठान — शांतिप्रिय द्विवेदी
५२ प्रमाद का जीवन और साहित्य — डा० रामरतन भटनागर
५३ प्रेमचन्द — डा० प्रतापनारायण टंडन
५४ भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा — डा० नगेन्द्र

५५ भारतेन्दु युग	डा० रामविलास शर्मा
५६ मिश्रबंधु विनोद	मिश्रबंधु
५७ मूल्य और मूल्यांकन	डा० रामरतन भटनागर
५८ युग और साहित्य	शांतिप्रिय द्विवेदी
५९ रस सिद्धान्त	डा० नगेन्द्र
६० रहस्यवाद	डा० राममूर्ति त्रिपाठी
६१ राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य	रामेश्वर शर्मा
६२ विचार और निष्कर्ष	डा० सरनाम सिंह शर्मा
६३ वृन्त और विकास	शांतिप्रिय द्विवेदी
६४ संचारिणी	शांतिप्रिय द्विवेदी
६५ संस्कृत आलोचना	आचार्य बलदेव उपाध्याय
६६ संस्कृत साहित्य का इतिहास	आचार्य बलदेव उपाध्याय
६७ समवेत	शांतिप्रिय द्विवेदी
६८ समीक्षा और मूल्यांकन	डा० हरीचरण शर्मा
६९ समीक्षा के मान और हिंदी समीक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियां	डा० प्रतापनारायण टंडन
७० समीक्षा के मानदंड	राजेन्द्र शर्मा
७१ समीक्षा के सिद्धान्त	डा० सत्येन्द्र
७२ समीक्षा लोक	डा० भगीरथ दीक्षित
७३ समीक्षाशास्त्र	डा० दशरथ ओझा
७४ सरस्वती (पत्रिका)	सं० प० श्रीनारायण चतुर्वेदी
७५ साकल्य	शांतिप्रिय द्विवेदी
७६ सामयिकी	शांतिप्रिय द्विवेदी
७७ साहित्य और संस्कृति	डा० देवराज
७८ साहित्य का उद्देश्य	श्री प्रेमचंद
७९ साहित्य की मान्यताएं	श्री भगवतीचरण वर्मा
८० साहित्य के तत्व	डा० गणपति चन्द्र गुप्त
८१ साहित्य चिंता	डा० देवराज
८२ साहित्य मीमांसा	डा० इन्द्रनाथ मदान
८३ साहित्यालोचन	डा० श्याम सुंदर दास
८४ साहित्यिकी	शांतिप्रिय द्विवेदी
८५ स्मृतियां और कृतियां	शांतिप्रिय द्विवेदी
८६ हमारे साहित्य निर्माता	शांतिप्रिय द्विवेदी

८७ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास	डा० भगवत्स्वरूप मिश्र
८८ हिन्दी आलोचना स्वरूप और विकास	डा० रामदरश मिश्र
८९ हिन्दी उपन्यास	श्री शिवनारायण श्रीवास्तव
९० हिन्दी उपन्यास	डा० सुषमा धवन
९१ हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण	महेन्द्र चतुर्वेदी
९२ हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डा० त्रिभुवन सिंह
९३ हिन्दी उपन्यास कला	डा० प्रतापनारायण टंडन
९४ हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास	डा० प्रतापनारायण टंडन
९५ हिन्दी उपन्यास का परिचयात्मक इतिहास	डा० प्रतापनारायण टंडन
९६ हिन्दी उपन्यास का विकास और नैतिकता	डा० सुखदेव शुक्ल
९७ हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास	डा० श्रीमती ओम शुक्ल
९८ हिन्दी उपन्यास पृष्ठभूमि और परम्परा	डा० बदरीदास
९९ हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास	डा० प्रतापनारायण टंडन
१०० हिन्दी उपन्यास म लोक तत्व	डा० इन्दिरा जोशी
१०१ हिन्दी उपन्यास समाजशास्त्रीय अध्ययन	डा० चण्डी प्रसाद जोशी
१०२ हिन्दी उपन्यास साहित्य	श्री ब्रजरत्न दास
१०३ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन	डा० गणशन्
१०४ हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन	डा० श्रीनारायण अग्निहोत्री
१०५ हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षा	डा० माखनलाल शर्मा
१०६ हिन्दी कथा साहित्य	पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी

१०७	हिन्दी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव	डा० गोपाल राय
१०८	हिन्दी कविता मे युगान्तर	डा० सुधीन्द्र
१०९	हिन्दी का गद्य साहित्य	डा० रामचन्द्र
११०	हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
१११	हिन्दी काव्य शैलियो का विकास	डा० हरदेव बाहरी
११२	हिन्दी का सामयिक साहित्य	विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
११३	हिन्दी की गद्य शली का विकास	डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा
११४	हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा	डा० लक्ष्मी नारायण दुबे
११५	हिन्दी के आलोचक	श्रीमती शचीरानी गुर्टु
११६	हिन्दी के प्रतिनिधि लेखकों की गद्य शलियां	श्री कमलेश्वर प्रसाद भटट
११७	हिन्दी के स्वच्छदतावादी उपन्यास	डा० कमल कुमारी जौहरी
११८	हिन्दी गद्य काव्य	डा० पदमसिंह शमा कमलेश
११९	हिन्दी गद्य शली और विधाओं का विकास	डा० अमरनाथ सिन्हा
१२०	हिन्दी गद्य साहित्य	शिवदान सिंह चौहान
१२१	हिन्दी गद्य साहित्य एक सर्वेक्षण	डा० जगदीश चन्द्र जोशी
१२२	हिन्दी निबन्ध का विकास	डा० ओंकारनाथ शमा
१२३	हिन्दी भाषा तथा साहित्य	डा० उदयनारायण तिवारी
१२४	हिन्दी साहित्य एक परिवत्त	शिवनन्दन प्रसाद
१२५	हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति	डा० विजयन्द्र स्नातक
१२६	हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल	डा० जयकिशन प्रसाद
१२७	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचाय रामचन्द्र शुक्ल
१२८	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
१२९	हिन्दी साहित्य का इतिहास	विजयानन्द शर्मा
१३०	हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास	जाज गियसन
१३१	हिन्दी साहित्य का प्रवत्तिगत इतिहास	डा० प्रतापनारायण टडन
१३२	हिन्दी साहित्य का विकास	डा० वासुदेव शर्मा
१३३	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	डा० गणपति चन्द्र गुप्त